ओ३म्

महर्षि अङ्गिरा पर आविर्भूत

अथर्व-वेद संहिता

(काण्ड ११-२०)

भाग २

अनुवादक, भाष्यकार तथा सम्पादक, प्रकाशक तथा मुद्रक—
वेदर्षि वेदाचार्य, वीरेन्द्र सरस्वती, ऐम० ए०, काव्यतीर्थ,
अध्यक्ष, विश्व वेदपरिषद्, आदर्श प्रेस, सी ८१७ महानगर लखनऊ ,२२६००६ दूरभाष ७१५०१
२५० प्रतियाँ मार्गशीर्ष पूर्णिमा २०४९ वि०, ६ दिसम्बर १९९२ ई० मूल्य ५०) पचास रुपये

ओ३म्

अथर्ववेद कांड ११, सूची

अनुवाक	सूक्त	मन्त्र	ऋषि	देवता	विषय	छन्द	महर्षि दयानन्द-कथित विषय
१	१	३७	ब्रह्मा	ब्रह्मौदन		त्रि गा ज उ	पुत्रेष्टिविधानादि अग्नीश्वरप्रार्थना ज्योति-
	२	३१	अथर्वा	रुद्र		,,	रमृतं हिरण्यामत्यादि विमानादि शिल्पविद्या रुद्रेश्वरस्तुतिप्रार्थनादि पदार्थविद्या
२	३	५६	,,	बार्हस्पत्यौदन		,,	मासाज्यालङ्कार ब्रह्माण्डालंकारौदनेश्वरादि
	४	२६	वैदर्भि	प्राण		,,	ब्रह्मौदन प्राशन प्राणेश्वराद्यनेकनामा प्राणेश्वरे सर्वं प्रतिष्ठितम् इति पदार्थ विद्या
३	५	२६	ब्रह्मा	ब्रह्मचारी		,,	ब्रह्मचर्याचार्य ईश्वरादि ब्रह्मचर्याश्रमादि
	६	२३	शन्ताति	मन्त्रोक्त		,,	ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिमित्यादि ब्राह्मण ब्रह्म ज्येष्ठामित्याद्यग्नीश्वर प्रार्थनादि स्तुतिः प०
४	७	२७	अथर्वा	उच्छिष्ट		अनुष्टुप्	उच्छिष्टे नामरूपं च उच्छिष्टे लोक आहितः इत्यादि
	८	३४	कौरुपथि	मन्यु		,,	उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः इत्यादि मन्युर्जायां ब्रह्म ज्येष्ठादि, प्रश्नोत्तरादि, सत्य श्रद्धादि प०
५	९	२६	कांकायन	अर्बुदि		,,	बाहु इषु उत्तिष्ठ युद्धादि अदिते अर्बुदे तवेश्वरादि
	१०	२७	भृग्वङ्गिरा	त्रिसन्धि		,, आदित्यो	ब्राह्मणस्पतिरित्यादि विजयार्थेश्वर प्रार्थनाहुति त्रिसन्धेत्यादि युद्धादि पदार्थ विद्या

योग २ ५ १० ३१३ पूर्वागत २९८६ जोड़कर अब तक सब ३२९९ हुए।

छन्द

सूक्त १ त्रिष्टुप् गायत्री जगती उष्णिक्।

२ ,, अनुष्टुप् महाबृहती शक्वरी अतिशक्वरी।

३ आसुरी गा-पं-बृ-अ-उ-ज। साम्नी अ-उ-बृ-त्रि। प्राजापत्या अ-बृ-गा। याजुषी ज-त्रि-पं-गा। दैवी ज-पं। आर्ची अ-उ।

४ शंकुमती अनुष्टुप् पंक्ति त्रिष्टुप् जगती।

५ त्रिष्टुप् ,, ,, अतिजगती जगती आर्ची उष्णिक्।

६-७-८ अनुष्टुप् पथ्या ,,।

९ ,, गायत्री ,, ,, ,, ब्राह्मी ,, त्र्यवसाना सप्तपदा शक्वरी

१० ,, त्रि ,, ,, ,, ,, ,, ,,

ओ३म्

अथर्ववेद काण्ड ११

प्रपाठक २४ अनुवाक एक

३७ मन्त्रों का सूक्त १ । बृह्मौदन

२६८७ अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा ।
सप्त ऋषयो भूतकृतस् ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह ॥ १
८८ कृणुत धूमं वृषणः सखायोऽद्रोघाविता वाचमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवा असहन्त दस्यून् ॥ २
८९ अग्ने ऽजनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः ।
सप्तऋषयो भूतकृतस् ते त्वाजीजनन्नस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥ ३
९० समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान् देवान् यज्ञियाँ एह वक्षः ।
तेभ्यो हविः श्रपयं जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४
९१ त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितॄणां मर्त्यानाम् ।
अंशान् जानीध्वं वि भजामि तान् वो यो देवानां स इमां पारयाति ॥ ५
९२ अग्ने सहस्वानभिभूरभीदसि नीचो न्युब्ज द्विषतः सपत्नान् ।
इयं मात्रा मीयमाना मिता च सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु ॥ ६
९३ साकं सजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्याय ।
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति ॥ ७



अथर्ववेदकाण्ड ११ प्रपाठक २४ अनुवाक एक [सूक्त १ से दस तक]

अनुवाक-विषय- पुत्रेष्टि विधानादि०, अग्नीश्वर-प्रार्थना, ज्योतिरमृतं हिरण्यमित्यादि०, विमानादि-शिल्प विद्या, रुद्रेश्वर-स्तुति-प्रार्थनादि-पदार्थ विद्या -महर्षि दयानन्द सरस्वती

३७ मन्त्रों का सूक्त १। ब्रह्मौदन (वेद-ज्ञान-अन्न)

२६८७ हे अग्रणी ! तू प्रसिद्ध हो, वह सनाथ प्रकृति-पृथिवी पुत्रों (जीवों) की सुख-कामना वाली होकर वेद-ओदन पकाती है। वे प्राणी-उत्पादक ७ ऋषि(५ ज्ञानेन्द्रिय-मन-बुद्धि और पृथिवी-जल-आग-वायु-आकाश-विद्युत्-नक्षत्र) यहाँ प्रजा के साथ तुझे मथें (प्रेरणा करें)। १

८८ हे सुख-वर्षक सखाओ ! तुम हमचल करो, अद्रोही-रक्षक बनकर वाणी प्रयुक्त करो। यह संग्राम-जयी अग्रणी वीर है जिसने देव दस्युओं को जीतते हैं। २

८९ हे ज्ञानी अग्रणी ! तू बड़े पराक्रम और वेदज्ञान के पकाने के लिए बढ़। भूतों के बनाने वाले ऋषि तुझे बढ़ाते हैं। इस प्रजा को सब वीरता-युक्त ऐश्वर्य दे। ३

९० हे तेजस्वी ! तू तेज से प्रदीप्त हो, पूजनीय देवों को जानकर यहाँ ला। हे धनी ! उन्हें धन दे और इस को उत्तम स्वर्ग मोक्ष तक चढ़ा। ४

९१ देव-पितर-मनुष्यों का २ प्रकार का भाग जो पहले ही बनाया है, तुम वे अंश जानो, मैं इन्हें तुमको बाँटता हूं, जो देवों का भाग (ज्ञान) है वह इस प्रजा को पार करता है। ५

९२ हे नेता ! बली तू शत्रु को हराने वाला है, नीच शत्रुओं को नीचे कर, यह मापी जाती और मापी गयी सत्ता-मात्रा तेरे सजातीयों को शत्रु से कर लेने वाला बनाये। ६

९३ तू सजातीयों के साथ दूध-अन्न से बढ़, इस को बड़े पराक्रमार्थ आगे बढ़ा। तू बड़ा होकर सुख के लोक में चढ़ जिसे स्वर्ग कहते हैं। ७

९४ इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म पृथिवी देवी सुमनस्यमाना ।
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ।। ८
९५ एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्धि चर्मणि निर्भिन्ध्यंशून् यजमानाय साधु ।
अवघ्नती नि जहि य इमां पृतन्यव ऊर्ध्वं प्रजामुद्भरन्त्युदूह ।। ९
९६ गृहाण ग्रावाणौ सकृतौ वीर हस्त आ ते देवा यज्ञिया यज्ञमागुः ।
त्रयो वरा यतमांस्त्वं वृणीषे तास्ते समृद्धीरिह राधयामि ।। १०
९७ इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा ।
परा पुनीहि य इमां पृतन्यवोऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ।। ११
९८ उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयं वि विच्यध्वं यज्ञियासस् तुषैः ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस् पादयामि ।। १२
२९९९ परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोऽध्यरुक्षद् भराय ।
तासां गृह्णीताद् यतमा यज्ञिया असन् विभाज्य धीरीतरा जहीतात् ।। १
३००० एमा अगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व ।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय ।। १
३००१ ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः ।
अयं यज्ञो गातुविन् नाथवित् प्रजाविदुग्रः पशुविद् वीरविद् वो अस्तु ।। १
२ अग्ने चरुर्यज्ञियस् त्वाध्यरुक्षच् छुचिस् तपिष्ठस् तपसा तपैनम् ।
आर्षेया दैवा अभिसङ्गत्य भागमिमं तपिष्ठा ऋतुभिस् तपन्तु ।। १६
३ शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः ।
अदुः प्रजां बहुलान् पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् ।। १७
४ ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस् तण्डुला यज्ञिया इमे ।
अपः प्रविशत प्रतिगृह्णातु वश्चरुरिमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम् ।। १
५ उरुः प्रथस्व महता महिम्ना सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके ।
पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्ता पञ्चदशस् ते अस्मि ।। १
६ सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः ।
अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान् बलिहाराय मृडतान् मह्यमेव ।।
७ उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम् ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्याम अधस्पदं द्विषतस् पादयामि ।। २१



२९९४ यह सुखदा देवी पृथ्वी प्रसन्न होकर अच्छा आचरण-ज्ञान स्वीकार करे और हम पुण्यके लोक में जायें। ८

९५ हे सेना! इन सिल-बट्टों के समान वैश्य-क्षत्रियों को मिला, यज्ञ (सङ्गठन)-कर्ता (राष्ट्रपति) के लिए अन्नादि कूट-पीस। प्रहार करती हुई तू अक्रामकों का संहार कर, प्रजा को उन्नत करने का उच्च विचार कर। ९

९६ हे वीर! तू इन पत्थरों के समान दृढ़ क्षत्रिय-वैश्यों को हाथ (अधिकार) में ले, याज्ञिक देव तेरे यज्ञ सङ्गठन में आयें, जिन्हें तू वरण करता है उनमें ३ (मन्त्री-सेनापति-पुरोहित) श्रेष्ठ हैं, मैं उन तेरी समृद्धियों को यहाँ सिद्ध करता हूं। १०

९७ यह (सेना-प्रजा) तेरी धारक शक्ति है और यह जन्म उत्पादक है, शूर पुत्रों वाली यह अदिति अखण्डित पञ्चजना प्रजा) तुझे वरण करे, इसे शत्रुओं से दूर रख, इस के लिए सब वीरों से युक्त ऐश्वर्य दे। ११

९८ हे पूज्यो! तुम उत्तम जीवन के उद्योग के लिए बैठो, तुच्छों से छूटो, हम लक्ष्मी द्वारा समानों से बढ़कर हों, मैं द्वेषियों को नीचे गिराता हूं। १२

९९ हे नारी (नरों की सभा)! तू पराक्रम से चल और फिर लक्ष्य पर शीघ्र आ, तुझे आप्तों का समूह पुष्टि के लिए ऊपर चढ़ाता है, जितनी स्त्रियाँ पूज्य हों, उन्हें ले, धीरी होकर अन्यों को छोड़ दे। १३

३००० ये शोभित योग्य प्रजा आयी है, हे नारी (सभा)! उठ, बली को पति बना, उसके साथ सुपत्नी और प्रजा से प्रजावती तुझे यह सङ्गठन मिला है, तू कुम्भ (भूमि-धारक राष्ट्र) ले। १४

३००१ हे आप्त प्रजा! जो अन्न-बल का भाग पहले से ऋषियों से बताया नियत हो उससे इन्हें पुष्ट कर। यह उग्र सङ्गठन तुमको मार्ग-दर्शक, ऐश्वर्य-प्रजा-पशु-वीरों को लाने वाला हो। १५

२ हे तेजस्वी! यह पूजनीय आचरण तुझे उच्च उठाता है, पवित्र-तपस्वी होकर इसे तप द्वारा और तपा। मन्त्रद्रष्टाओं में प्रसिद्ध विद्वान्-गुणी-तपस्वी सब एकत्र होकर इस सेवनीय आचरण को सदस्यों के द्वारा तपायें। १६

३ ये शुद्ध-पवित्र-पूज्य-याज्ञिक-योग्य-आप्त- स्त्रियाँ ज्ञान-आचरण तक पहुंचे। ये हमें प्रजा, बहुत पशु दें और ब्रह्मौदन (ज्ञान) को पक्का करने वाला सुकर्मियों के लोक को जाये। १७

४ वेद-ज्ञान से शुद्ध और तेज से पवित्र ये दुष्टों को ताड़ना देने वाले सैनिक शान्ति के बांटने वाले, और संगठन के अंग पूजनीय हैं। हे सैनिको! तुम आप्तों में प्रवेश करो, ज्ञान-आचरण तुम को स्वीकार करे, इसे पक्का कर सुकर्मियों के समाज को जाओ। १८

५ हे राजन्! तू बड़ी महत्तासे महान्, हजारों पीठों की शक्ति से और हजारों, अनुयायी-युक्त हो कर बहुत बढ़। पितामह-पिता-पुत्र-पौत्र के साथ मैं पक्का भक्त १५ (प्राणेन्द्रिय-भूत) वाला, राष्ट्र के चौदह विभागों का अधिष्ठाता १५ वाँ हूं। १९

६ हजारों का पोषक, सहस्रों स्तोत्र वाला, शतवीर्य, अक्षय ब्रह्म रूपी ओदन (भात) सुखप्रद और देवों का यान है। इन शत्रुओं को तुझे सौंपता हूं, सन्तान-सहित नाश कर, मुझ करदाताको सुख दे। २०

७ तू पृथिवी पर बढ़, इसे प्रजा से बढ़ा, राक्षसों को हटा, इसे अधिक पुष्ट कर, श्री के द्वारा मैं सब समानों से आगे बढ़ूं और द्वेषियों को पैरों के नीचे गिरा दूँ। २१

३००८ अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङ्ङेनां देवताभिः सहैधि ।
मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज ॥ २२
९ ऋतेन तष्टा मनसा हितैषा ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे ।
अंसद्रीं शुद्धामुप धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम् ॥ २३
१० अदितेर्हस्तां स्रुचमेतां द्वितीयां सप्तऋषयो भूतकृतो यामकृण्वन् ।
सा गात्राणि विदुष्योदनस्य दर्विर्वेद्यामध्येनं चिनोतु ॥ २४
११ शृतं त्वा हव्यमुप सीदन्तु दैवा निःसृप्याग्नेः पुनरेनान् प्र सीद ।
सोमेन पूतो जठरे सीद ब्रह्मणामार्षेयास् ते मा रिषन् प्राशितारः ॥ २५
१२ सोम राजन्त्संज्ञानमा वपैभ्यः सुब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।
ऋषीनामार्षेयांस्तपोऽधि जातान् ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि ॥ २६
१३ शुद्धा पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं मे ॥ २७
१४ इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात् कामदुघा म एषा ।
इदं धनं निदधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥ २८
१५ अग्नौ तुषाना वप जातवेदसि परः कम्बूकाँ अप मृड्ढि दूरम् ।
एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विद्म निर्ऋतेर्भागधेयम् ॥ २९
१६ श्राम्यतः पचतो विद्धि सुन्वतः पन्थां स्वर्गमधि रोहयैनम् ।
येन रोहात् परमापद्य यद् वय उत्तमं नाकं परमं व्योम ॥ ३०
१७ बभ्रेरध्वर्यो मुखमेतद् वि मृड्ढ्याज्याय लोकं कृणुहि प्रविद्वान् ।
घृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥ ३१
१८ बभ्रे रक्षः समदमा वपैभ्योऽब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।
पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्तादार्षेयास् ते मा रिषन् प्राशितारः ॥ ३२
१९ आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा नानार्षेयाणामप्यस्त्यत्र ।
अग्निर्मे गोप्ता मरुतश्च सर्वे विश्वे देवा अभि रक्षन्तु पक्वम् ॥ ३३
२० यज्ञं दुहानं सदमित् प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम् ।
प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम ॥ ३४
२१ वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान् गच्छ । सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम् ॥ ३५
३०२२ समाचिनुष्वानु शं प्रयाह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान् ।



६००८ (हे राजन्,) इस प्राणी-सहित पृथिवी-प्रजा का पालन कर, देवों के साथ सामने बढ़, निन्दा-आक्रमण तुझ तक न पहुंचें, अपने क्षेत्र में नीरोग विराज। २२

९ हे नेताओं की सभा! सत्य से बनायी, मन से स्थापित, यह ब्रह्म-ज्ञान की वेदि आगे है, तू कानों वाली कढ़ाई (बुद्धि) चढ़ा, वहाँ विद्वानों का अन्न पहुँचा। २३

१०. भूतों के कर्ता ७ ऋषि (५ ज्ञानेन्द्रिय-मन-बुद्धि) जिसे बनाते हैं, अदिति (प्रजा) की रक्षक इस दूसरी स्रुचा के समान, ओदन के अङ्ग जानने वाली दर्वि (सेना) इसे वेदि पर रक्खे। २४

११ परिपक्व स्वीकार्य तेरे पास विद्वान् बैठें; इन्हें मन्त्री से परामर्श करके प्रसन्न कर; सोम से पवित्र होकर वेदज्ञों के जठर (रक्षण) में बैठ, वे प्रकृष्ट भोगी दुःखी न हों। २५

१२ हे सौम्य राजन्! तू उन अच्छे ब्राह्मणों से सत्य ज्ञान पाया कर जो तेरे पास बैठते हों; मैं ऋषि-आर्षेयों को ब्रह्मोदन में सुन्दर बुलावा देकर बुलाया करूँ। २६

१३ ये याज्ञिक-शुद्ध-पवित्र प्रजाएँ हैं, इन्हें वेद-विद्वानों के हाथों में अलग-अलग सौंपता हूं जिस कामना से मैं उनका अभिषेक करूँ उसे परमेश्वर और सैनिकों वाला राजा पूरी करे। २७

१४ यह मेरी ज्योति अमृत सुवर्ण, खेत से मिला पका अन्न और यह मेरी कामधेनु गौ है यह धन मैं ब्राह्मणों में रखता हूं और पितरों में अपना मार्ग बनाता हूं जो स्वर्ग (सुखद) है। २८

१५ तू भूसी को आग में बो (डाल); छिलके दूर (पशुओं के लिए) फेंक, इसे हम घर के राजा (अग्नि-पशु) का भाग सुनते हैं और (शेष) पृथिवी का भाग (खाद) जानें। २९

१६. श्रमी, परिपक्व, तत्त्व निचोड़ने वाले (वैद्य-वैज्ञानिक) को जान और इस जीव को स्वर्ग (सुख) के मार्ग पर चढ़ा, जिससे बड़ी आयु पा यह उत्तम सुख परम रक्षा-स्थान (मोक्ष-ईश्वर) तक पहुंचे। ३०

१७ हे अध्वर्यु (गृह-रक्षा-मन्त्री)! तू पोषक राष्ट्रपति के मुख्य अंग को सँभाल, विद्वान् होकर घी आदि के लिए भण्डार बना, सब अंगों को प्रेम-दीप्ति से शोध, मैं वह पथ बनाता हूं जो पितरों में स्वर्ग (सुखप्रद) है। ३१

१८ हे पोषक! तू उन्हें भी राक्षस-मतवालों से बचा जो ब्राह्मणों के अतिरिक्त जन तेरे पास बैठें, पुरवासी आगे बढ़ते हुए आर्षेय और तेरे आजीवी कर्मचारी दुःखी न हों। ३२

१९ हे ओदन! तुझे आर्षेयों में रखता हूं, यहाँ ऋषि-विरोधियों का कोई भाग नहीं है। अग्नि, सब सैनिक और विद्वान् मेरे रक्षक हैं वे इस पके अन्न-ज्ञान की रक्षा करें। ३३

२० सदा ही यज्ञ के पूरक, समृद्ध, ऐश्वर्यों के घर, रक्षक बैल-गौ, सन्तान की अमरता और बड़ी आयु को पाकर हम ऐश्वर्यों के पोषणों से तेरे पास पहुंचें। ३४

२१ हे शासक! तू सुख-वर्षक सुखद है; तू ऋषियों, उनकी सन्तानों और शिष्यों के पास जा, सुकर्मियों के समाज में बैठ, वहाँ हम दोनों (राजा-प्रजा) सुसंस्कृत हों। ३५

२२ हे विद्वान् और अग्रणी शासक! तू अच्छे प्रकार चुन, सब को संगठित कर और आगे बढ़, देवों के यानों (मोटर-जहाजों) के मार्गों को बना। इन अच्छे कार्यों से हम यज्ञ (संगठन) को और ७ रश्मियों वाले सूर्य और मोक्ष के अधिष्ठाता परमात्मा को प्राप्त करें। ३६

एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ ॥ ३६
३०२३ येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन् ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥ ३७

सूक्त २

३०२४ भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम् ।
प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥ १
२५ शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः ।
मक्षिकास् ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥ २
२६ क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः । नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥ ३
२७ पुरस्तात्ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत । अभीवर्गाद्दिवस् पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥ ४
२८ मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव । त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥ ५
२९ अङ्गेभ्यस् त उदराय जिह्वाया आस्याय ते । दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥ ६
३० अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना । रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥७
३१ स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत आप इवाग्निः परिवृणक्तु नो भवः ।
मा नोऽभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥ ८
३२ चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दशकृत्वः पशुपते नमस्ते ।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥ ९
३३ तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वऽन्तरिक्षम् ।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु ॥ १०
३४ उरुकोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः ।
स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥ ११
३५ धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन् ।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीऽतः ॥ १२
३६ योऽभियातो निलयते त्वा रुद्र निचिकीर्षति । पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव ॥ १३
३७ भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय । ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ १४
३८ नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते । नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ १५
३९ नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा । भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥ १६

३०२३ जिस प्रकाश से विद्वान् ब्रह्मौदन को पकाकर पुण्य के लोक द्यौ को पहुंचते हैं उसी से हम उत्तम दुःख-रहित स्वः (मोक्ष) तक चढ़ते हुए पुण्य के समाज को खोजें। ३७

सूक्त २ । रुद्र (राजा) और भव-शर्व (गृह-रक्षा-मन्त्री)

२४ हे भव-शर्व ! तुम दोनों हमें सुखी करो, विरुद्ध मत चलो, हे भूत-पशु-पति ! तम दोनों को नमः । धनुष पर रक्खे ताने बाण को न छोड़ो, हमारे दुपायों-चौपायों को मत मारो। १

२५ हे पशु-पति! हमारे शरीरों को कुत्ता-गीदड़-भयानक गिद्ध और जो काले हिंसक (कौए आदि) हैं उन के लिए न करो। तेरी मक्खियाँ-पक्षी भोजन पर न आयें। २

२६ हे अमर भव-रुद्र ! तेरे रोदन-प्राण और जो तेरी शक्तियां हैं उनके लिए और हजारों (चर रूपी) आँखों वाले तेरे लिए नमः हो। ३

२७ सामने-ऊपर-नीचे से तेरे लिए नमः करते हैं, सब ओर फैले द्यौ से अन्तरिक्ष तक (शक्ति वाले) के लिए नमः हो। ४

२८ हे पशुपति ! तेरे मुख्य अधिकारी के लिए, हे भव ! जो तेरे चक्षु (चर) हैं उनके लिए, और तेरी त्वचा- रूप-दृष्टि-प्रत्यक्ष दर्शन के लिए नमः हो। ५

२९ तेरे अंगों-उदर-जीभ-मुख-दाँतों-सुगन्ध के लिए नमः (सन्मान) हो। ६

३० अस्त्र फेंकनेवाले; नीले मुकुट वाले, हजारों आँखों (चरों) वाले, हिंसक-घाती इन रुद्र से न लड़ें। ७

३१ वह भव हमें सब तरफ से जल-अग्निवत् बचाये, हमें न सताये, इसके लिए नमः हो। ८

३२ भव को ४ बार (४ आश्रमों के लिए), ८ बार (८ योगांगों के लिए) नमः, हे पशुपति ! तुझे दस बार (दस इन्द्रियों के लिए) नमः हो। तेरे ये ५ प्राणी बँटे हैं— गौ-अश्व-पुरुष-अज-भेड़। ९

३३ हे उग्र ! तेरी ४ दिशाएँ-द्यौ-पृथिवी-बड़ा अन्तरिक्ष, यह चेतन जगत् हैं जो पृथ्वी पर प्राणवाला है। १०

३४ बड़ा कोश धन का भण्डार है जिसके अन्दर ये सब भुवन हैं। हे पशुपति ! वह तू हमें सुखी कर, तेरे लिए नमः, हिंसक गीदड़-कुत्ते दूर हों, पाप से रोती, केश बिखेरे स्त्रियाँ दूर हों। ११

३५ हे उद्योगी ! तू हरणशील-सुनहरी धनुष, हजारों को मारनेवाली (तोप), सैकड़ों की वध-कर्त्री (बन्दूक) धारण करता है। रुद्र का दिव्य शस्त्र क्षेप्यास्त्र चला करता है, वह यहाँ से जहाँ चले उस दिशा के लिए नमः हो। १२

३६ हे रुद्र! जो हारा हुआ छिप जाता, तुझे हराना चाहता है उस के पीछे खोजकर तू दण्ड देता है जैसे व्याधा घायल पशु के पैर के निशानों से खोजता है। १३

३७ भव-रुद्र दोनों उग्र साथ मिलकर पराक्रम के लिए चलते हैं, वे यहाँ से जिस दिशा में हों उन के लिए नमः हो। १४

३८ हे रुद्र ! आते-जाते-खड़े और बैठे हुए तेरे लिए नमः हो। १५

[११-४-७ में 'रुद्र' के स्थान में 'प्राण' है।]

३०३९ मैं भव [गृह-मन्त्री] और शर्व [रक्षा-मन्त्री] दोनों के लिए सायं-प्रातः-रात-दिन सदा नमः [आदर-सन्मान] किया करूँ। १६

३०४० सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद् रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम् ।
मोपाराम जिह्वयेयमानम् ॥ १७

४१ श्यावाश्वङ्कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथङ्केशिनः पादयन्तम् ।
पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥ १८

४२ मा नोऽभि स्रा मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते ।
अन्यत्रास्मद्दिव्या शाखां वि धूनु ॥ १९

४३. मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्धि मा क्रुधः । मा त्वया समरामहि ॥ २०

४४ मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु । अन्यत्रोग्र वि वर्तय पियारूणां प्रजां जहि ॥ २१

४५ यस्य तक्मा कासिका हेतिरेकमश्वस्येव वृषणः क्रन्द एति ।
अभिपूर्वं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै ॥ २२

४६ योऽन्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितो ऽयज्वनः प्रमृणन् देवपीयून् ।
तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः ॥ २३

४७ तुभ्यमारण्याः पशवो मृगा वने हिता हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
तव यक्ष पशुपते अप्स्वऽन्तस् तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या आपो वृधे ॥ २४

४८ शिशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि ।
न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान्परिपश्यसि भूमिं पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन्समुद्रे ॥ २५

४९ मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना ।
अन्यत्रास्मद्विद्युतं पातयैताम् ॥ २६

५० भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्वऽन्तरिक्षम् ।
तस्मै नमो यतमस्यां दिशीऽतः ॥ २७

५१ भव राजन् यजमानाय मृड पशूनां हि पशुपतिर्बभूथ ।
यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदे अस्य मृड ॥ २८

५२ मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा नो वहन्तमुत मा नो वक्ष्यतः ।
मा नो हिंसीः पितरं मातरञ्च स्वां तन्वं रुद्र मा रीरिषो नः ॥ २९

५३ रुद्रस्यैलबकारेभ्यो ऽसंसूक्तगिलेभ्यः । इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः ॥ ३०

३०५४ नमस्ते घोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः । नमो नमस्कृताभ्यो नमः संभुञ्जतीभ्यः ।
नमस्ते देव सेनाभ्यः स्वस्ति नो अभयं च नः ॥ ३१

सूक्त २, अनुवाक १ पूर्ण हुआ ।

३०४० हजारों आँखों [चरों] वाले, जानने अधिद्रष्टा, बहुधा शस्त्र-प्रहर्ता, बुद्धिमान्, जयशक्ति के साथ चलते हुए रुद्र का हम विरोध न करें । १७

४१ काले-सफेद अश्वों वाले, आक्रमक, बन्धन-रहित, क्लेशकारी का रथ गिरानेवाले सेनापति से हम पहले मिलें, इसके लिए नमः हो । १८

४२ हे पशुपति ! तुझे नमः, हमपर सम्भाव दिव्यास्त्र न चला, क्रुद्ध न हो, दिव्य शस्त्र हमसे अन्यत्र चला

४३ हमें मत मार । उपदेश कर । रक्षा कर । क्रुद्ध न हो । हम तुझसे लड़ाई न करें । २०

४४ हमारे गौ-पुरुष-बकरी-भेड़ों की इच्छा न कर, अन्यत्र जा, हिंसकों की प्रजा को मार । २१

४५ जिसका वज्र ज्वर-खाँसी वाली अश्व की हिनहिनाहट के समान, जिसी पर आक्रमण करते हैं यथाक्रम यथायोग्य निर्णायक इस के लिए नमः हो । २२

४६ जो अन्तरिक्ष में दृढ़ होकर अयाज्ञिक, देव-हिंसकों को मारता हुआ स्थित रहता है उसके लिए दसों उँगलियों से [हाथ जोड़ कर] दस दिशाओं में नमः । २३

४७ हे पशुपति ! तेरे (शासन) के लिए वन में जंगली जानवर-हिरन-हंस-गरुड़-गिद्ध आदि पक्षी रक्खे हैं, तेरा पूज्य रूप जल [सेना] के अन्दर है, तेरे लिए दिव्य जल वृद्ध्यर्थ बरसते हैं । २४

४८ हे भव ! जल में रहने वाले घड़ियाल-नाके-मगर-कछुए-अजगर-मछलियों का तू शासक है । तुझसे कोई दूर परे नहीं सबको तत्काल देखता है, पृथिवी पर पूर्व से उत्तर समुद्र तक जाता है । २५

४९ हे रुद्र ! हमें बुखार-विष-दिव्य अग्नि से संयुक्त न कर, यह बिजली अन्यत्र गिरा । २६

५० हे भव ! तू द्यौ-पृथिवी-बड़े अन्तरिक्ष का ईश है, उस तेरे लिए नमः यहाँ से जिसी दिशामें हो । २७

५१ हे भव राजन् ! याज्ञिक को सुख दे, क्योंकि तू प्राणियों का पति है । जो श्रद्धा करता है कि देव हैं इसके चौपाये-दुपाये को सुख दे । २८

५२ हे रुद्र ! तू हमारे बड़े-छोटे-युवा-बच्चे-पिता-माता की हिंसा न कर, हमारा शरीर नष्ट न कर । २९

५३ मैं रुद्र के प्रेरणा-प्राप्त, अमंगल विकृत शब्द बोलने वाले, बड़े मुख वाले कुत्तों के लिए यह नमः (अन्न) दूँ । ३०

३०५४ हे देव ! घोष-घोषणा करने वाली, केश वाली, अन्न-युक्त, मिलकर सम्पत्ति का भोग करने वाली तेरी सेनाओं के लिए नमः हो । हमारा कल्याण और अभय हो । ३१

सूक्त २ और पहला अनुवाक पूर्ण हुआ ।

अथर्ववेद काण्ड ११ अनुवाक २ सूक्त तीन

३०५५ तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् । १

५६ द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी सप्त ऋषयः प्राणापानाः ॥ २

५७. चक्षुर्मुसलङ्काम उलूखलम् ॥ ३

५८ दितिः शूर्पमदितिः शूर्पग्राही वातोऽपाविनक् ॥ ४

५९ अश्वाः कणा गावस् तण्डुला मशकास् तुषाः ॥ ५

६० कब्रु फलीकरणाः शरो ऽभ्रम् ॥ ६

६१ श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥ ७

६२. त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥ ८

६३-६४. खलः पात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये ॥ ९ ॥ आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः ॥ १०

६५. इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम् ॥ ११

६६-६७. सीताः पर्शवः सिकता ऊबध्यम् ॥ १२ ॥ ऋतं हस्तावनेजनं कुल्योपसेचनम् ॥ १३

६८-६९ ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता ॥ १४ ॥ ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा ॥ १५

७०-७१ बृहदायवनं रथन्तरं दर्विः ॥ १६ ॥ ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धत ॥ १७

७२. चरुं पञ्चबिलमुखङ्घर्मोऽभीन्धे ॥ १८

७३. ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः ॥ १९

७४. यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस् त्रयोऽवरपरं श्रिताः ॥ २०

७५. यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः ॥ २१

७६. तं त्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् ॥ २२

७७. स य ओदनस्य महिमानं विद्यात् ॥ २३

७८ नाल्प इति ब्रूयान्नानुपसेचन इति नेदं च किं चेति । ४२

७९. यावद्दाताभिमनस्येत तन्नाति वदेत ॥ २५

८०. ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदनं प्राशीः प्रत्यञ्चामिति ॥ २६

८१. त्वमोदनम्प्राशीस् त्वामोदना इति ॥ २७

८२ पराञ्चं चैनम्प्राशीः प्राणास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २८

८३. प्रत्यञ्चं चैनम्प्राशीरपानास् त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २९

३०८४-८५. नैवाहमोदनं न मामोदनः ॥ ३० ॥ ओदन एवौदनं प्राशीत् ॥ ३१

पर्याय १ पूर्ण हुआ।

अनुवाक दो

विषय – मासान्नाद्यलंकार अण्डालंकार ओदनेश्वरादि बहुमौदन-प्राशन प्राणेश्वराद्यनेक-नामा प्राणेश्वरे सर्वं प्रतिष्ठितम् इति पदार्थ विद्या – महर्षि दयानन्द सरस्वती ।

५६ मन्त्रों के सूक्त तीन का इकतीस मन्त्रों का पर्याय १। ओदन अन्नरूप ईश्वर ।

३०५५ उन ओदन का बृहस्पति वायु-नेच सिर और ब्रह्म (अन्त) मुख है। १

५६ द्यौ-पृथिवी कान; सूर्य-चन्द्रमा आँखें, ७ ऋषि तारे प्राण-अपान हैं। २

५७ चक्षु मूसल और काम उखल है। ३

५८ दिति (खण्डन-शक्ति) सूप, अदिति (अखण्डित शक्ति) सूपग्राही, वायु भूसा-पृथक्कर्ता है। ४

५९ घोड़े कण, गौएँ चावल, मच्छर भूसी हैं। ५

६० विविध रङ्ग का संसार फटकन, बादल सरकण्डा-घास-फूस है। ६

६१ काला लोहा इसके मांस, लाल (ताँबा) इसका खून है। ७

६२ सीसा-राँगा भस्म; सोना रङ्ग कमल इसकी सुगन्ध है। ८

६३ खलियान बरतन, दो स्फ्य (फावड़े-कुदाली) कन्धे, दो ईषा (हल में हरसे-मूठ) स्कन्धास्थि हैं। ९

६४ जोतें (बैलों के गले की रस्सियाँ) आँतें और वरत (बड़े रस्से चर्म-पट्टियाँ) गुदायें हैं। १०

६५ यही पृथिवी राँधे जाते ओदन की बटलोई और द्यौ ढक्कन है। ११

६६ सीताएँ (हल जोतने की रेखाएँ) पसलियाँ और बालू कुपच अन्न है। १२

६७ सब जल हाथ धोने का पानी और छोटी नदी छिड़काव है। १३

६८ ऋग्वेद से बटलोयी चढ़ायी और ऋत्विजों के कर्म (यजुर्वेद) से सँभाली गयी। १४

६९ अथर्व वेद से पकड़ा गया और साम वेद से सर्वत्र ले जायी गयी। १५

७० बृहत् साम चमचा और रथन्तर साम दर्वि (करछी) है। १६

७१ ऋतुएँ पाचक और मास-दिन आग ठीक जलाते हैं। १७

७२ चरु ५ छिद्रवाला है उसकी उबा हाडी को घाम दीप्त करती है। १८

७३ ओदन-द्वारा यज्ञ से बने ये सब लोक सम्यक् प्राप्य हैं। १९

७४ जिसमें समुद्र (अन्तरिक्ष)—द्यौ-भूमि तीनों परस्पर नीचे-ऊपर ठहरे हैं। २०

७५ जिसके उच्छिष्ट (प्रलय में शेष बचे सर्वश्रेष्ठ साम र्थ्य) में देव और ६ दिशाएँ बनी हैं। २१

७६ मैं तुझसे ओदन की महिमा पूछता हूं जो इसकी महान् है। २२ [१६-२२ मिलकर २ अनु० हु ए]

७७-७८ वह जो ओदन की महिमा जाने बताये कि यह कम और उपसेचन-रहित नहीं, और न यह कुछ है। २३-२४

७९ जितना ज्ञान-दाता मन से विचारे उससे अधिक बढ़ाकर न बोले। २५

८० ब्रह्मवादी कहते हैं- क्या तू दूरवर्ती ओदनको खाता है या प्रत्यक्षवर्ती को? २६

८१ तू ओदन को खाता है या तुझे ओदन? २७

८२ इससे कह कि यदि दूरवर्ती ओदन को खाता है तो प्राण तुझे छोड़ देंगे। २८

८३ इससे कह कि यदि प्रत्यक्ष ओदन को खाता है तो अपान तुझे छोड़ देंगे। २९

८४-८५ न मैं ओदन को न ओदन मुझे खाता है। ओदन ही ओदन को खाता है। ३०-३१

[परमात्मा जगत् को प्रलय में अपने में लीन कर लेता है।]

सूक्त ३ का पर्याय २

३०८६ ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैतं पूर्वऋषयः प्राश्नन्। ज्येष्ठतस् ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। बृहस्पतिना शीर्ष्णा। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः संभवति य एवं वेद ॥ ३२

८७.ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्वऋषयः प्राश्नन्। बधिरो भविष्यसीत्येनमाह।तं०।द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम्।ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्०॥ ३३

८८.ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां०। अन्धो भविष्यसीत्येनमाह। तं०। सूर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षीभ्याम्। ताभ्यामेनं ०॥ ३४

८९ ततश्चैनमन्येन मुखेन०। मुखतस् ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह। तं ब्रह्मणा मुखेन। तेनैनं० ॥ ३५

९० ततश्चैनमन्यया जिह्वया प्राशीर्यया ०। जिह्वा ते मरिष्यतीत्येनमाह। तं० अग्नेर्जिह्वया। तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम्। एष० ॥ ३६

९१ ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्यैश्चैतं०। दन्तास् ते शत्स्यन्तीत्येनमाह। तं०। ऋतुभिर्दन्तैः। तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम्। एष० ॥ ३७

९२ ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्यैश्चैतं०। प्राणापानास् त्वा हास्यन्तीत्येनमाह। तं०। सप्तर्षिभिः प्राणापानैः। तैरेनं०। एष० ॥ ३८

९३ ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन चैतं ०। राजयक्ष्मस् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह तं०। अन्तरिक्षेण व्यचसा।। तेनैनं ०। एष० ॥ ३९

९४ ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन चैतं ०। विद्युत्त्वा हनिष्यतीत्येनममाह। तं ०। दिवा पृष्ठेन। तेनैनं ०। एष० ॥ ४०

९५ ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन चैतं ०। कृष्या न रात्स्यसीत्येनमाह। तं ०। पृथिव्योरसा। तेनैनं ०। एष० ॥ ४१

९६ ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन चैतं० । उदरदारस् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह तं ०।। सत्येनोदरेण। तेनैनं०। एष० ॥ ४२

३०९७.ततश्चैनमन्येन वस्तिना प्राशीर्येन चैतं पूर्वऋषयःप्राश्नन्।अप्सु मरिष्यसीत्येनमाह तं वाहं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चं। समुद्रेण वस्तिना।तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्।एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४३

१८ मन्त्रों का पर्याय २

३०८६ इस योगी से परमात्मा कहता है — और तब तू इस ओदन को अन्य सिर से जान जिससे इसे श्रेष्ठ ऋषि खाते हैं। तब तेरी प्रजा बड़े के क्रम से मरेगी।[योगी का संकल्प—] मैं उसे पीछे-दूर-सामने ही समझ कर नहीं जानता, उसे बृहस्पति (आचार्य) के सिर से जानता और उससे इसे पाता हूं। यह ओदन निश्चय ही सर्वाङ्ग (सब अङ्गों में व्यापक, सब साधन वाला). सर्व-परु (सब का पालक) और सर्वतनू (सब के शरीरों में व्यापक, सब उपकारों वाला) है, जो ऐसा जानता है वह सर्वांग सर्वपरु और सर्वतनू ही हो जाता है। ३२

[अन्तिम वाक्य 'यह ...है' आगे के १७ मन्त्रों में (मन्त्र ४९ तक) समान है।]

८७ परमात्मा आचार्य इस योगी शिष्य भक्त से कहता है— २. और तब इसे अन्य कानों से जान, जिनसे श्रेष्ठ ऋषि जानते हैं। बहरा हो जायेगा।

[योगी] मैं... इसको न पीछे, न दूर, न सामने, द्याव.-पृथिवी रूपी कानों से जानूँ-पाऊँ। यह...है।३३

८८ ईश्वर इससे कहता है— ३. और तब इसे अन्य आंखों से जान ...। अन्धा हो जायेगा। मैं ... सूर्य-चन्द्रमा रूपी आँखों से इसे जानूँ-पाऊँ। यह ... है। चौंतीस

८९ ईश इससे कहता है — ४. और तब इसे अन्य मुख से खा ..। मुख के बल तेरी प्रजा मरेगा। मैं ... वेद- ब से इसे खाऊँ-पाऊँ। यह ... है। पैंतीस

९० परमात्मा इससे कहता है— ५. और तब इसे अन्य जीभ से खा ...। जीभ तेरी मर जायेगी। मैं ... अग्नि-जीभ से इसे खाया करूँ। यह...है। छत्तीस

९१ आचार्य इससे कहता है— ६. और तब अन्य दाँतों से खा। तेरे दाँत निकल जायेंगे। ...। मैं ऋतु रूपी दाँतों से इसे खाऊँ-पाऊँ। यह ... है। सैंतीस

९२ आचार्य इससे कहता है— ७. और तब इस अन्य प्राण-अपान से पा. वे तुझको छोड़ेंगे। मैं ... सप्तर्षि रूपी प्राण-अपानों से इसको जानूँ-प्राप्त करूँ। यह .. है। अड़तीस

९३ आचार्य इससे कहता है— ८. और तब इसको अन्य वक्षस्थल से पा। राजयक्ष्मा तुझे मारेगा। मैं ... इसको अन्तरिक्ष रूपी वक्षस्थल से प्राप्त करूँ-जानूँ। यह... है। उनचालीस

९४ आचार्य इससे कहता है— ९. और तब इसको अन्य पीठ से पा ...। बिजली तुझे मारेगी। मैं ... द्यौ-पीठ से उठाऊँ-प्राप्त करूं। यह ... है। ४०

९५ आचार्य इससे कहे— १०. और तब इसको अन्य उरःस्थल से ले। खेती से न बढ़ेगा। मैं ... पृथिवी रूपी उरःस्थल से इसे लूँ-प्राप्त करूँ। यह .... है। ४१

९६ आचार्य इससे कहता है— ११. और तब इसे अन्य उदर से खा। तुझको उदर-रोग मारेगा। मैं ... इसे सत्य रूपी उदर से खाऊँ-प्राप्त करूं। यह ... है। ४२

९७ आचार्य इससे कहे— १२. और तब तू ओदन को अन्य बस्ति (नाभि के नीचे पेड़ू) से ले ...। तू पानी में मरेगा। मैं ... समुद्र रूपी बस्ति से उसे लूँ और जानूँ। यह ... है।

तितालीस

३०९८ ततश्चैनमन्याभ्यामूरुभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन। ऊरू ते मरिष्यत इत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। मित्रावरुणयोरूरुभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४४

९९ ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां०। स्रामो भविष्यतीत्येनमाह। तं०। त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम्। ताभ्यामेनं० एष० ॥ ४५

३१०० ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां०। बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह। तं०। अश्विनोः पादाभ्याम्। ताभ्यामेनं०। एष० ॥ ४६

१ ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां०। सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं०। सवितुः प्रपदाभ्याम्। ताभ्यामेनम्०। एष० ॥ ४७

२ ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां०। ब्राह्मणं हनिष्यसीत्येनमाह। त०। ऋतस्य हस्ताभ्याम्। ताभ्यामेनं०। एष० ॥ ४८

३ ततश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्यया०। अप्रतिष्ठानोऽनायतनो मरिष्यसीत्येनमाह तं०। सत्ये प्रतिष्ठाय। तयैनं०। एष० ॥ ४९

सूक्त ३ का ७ मन्त्रोंका पर्याय ३

३१०४ एतद्वै ब्रध्नस्य विष्टपं यदोदनः ॥ ५०

५ ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते य एवं वेद ॥ ५१

६ एतस्माद्वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं लोकान् निरमिमीत प्रजापतिः ॥ ५२

७ तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत ॥ ५३

८ स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि ॥ ५४

९ न च प्राणं रुणद्धि सर्वज्यानिं जीयते ॥ ५५

१० न च सर्वज्यानिं जीयते पुरैनं जरसः प्राणो जहाति ॥ ५६

२६ मन्त्रों का सूक्त ४। प्राण

११ प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे। यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १

१२ नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे। नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥ २

१३ यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः। प्रवीयन्ते गर्भान्दधतेऽथो बह्वीर्विजायन्ते ॥ ३

१४ यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः। सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ॥ ४

१५ यदा प्राणो अभ्यवर्षीद्वर्षेण पृथिवीं महीम्। पशवस्तत्प्रमोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥ ५

३०९८ आचार्य शिष्य से कहे– और तब तू इस ब्रह्मौदन को अन्य १३. जाँघों से खा(पा) जिनसे इसे श्रेष्ठ ऋषि पाते हैं, नहीं तो तेरी जाँघें मर जायेंगीं। शिष्य– मैं उसे पीछे–दूर–सामने मानकर नहीं पाता। मित्र–वरुण की जाँघों से इसे –पाऊँ। यह ... है। (शेष पूर्व मन्त्र ३२ के समान)।४४

९९ ... अन्य १४. घुटनों से पा, नहीं तो स्राम (फोड़ोंवाला–लँगड़ा) हो जायगा। मैं ...। इसे त्वष्टा (शिल्पी) के घुटनों से पाऊँ। ...।४५

३१०० ... १५.अन्य पैरों से पा, नहीं तो बहुत चलने वाला हो जायगा। मैं अश्वी(दिन–रात) के पैरों से पाऊँ। ...।४६

१ ... १६.अन्य पंजों से पा ...नहीं तो सर्प डसेगा। मैं सविता के पंजों से उसे पाऊँ। ...।४७

२ ... १७.अन्य हाथों से इसे पा...नहीं तो ब्राह्मण को मारेगा। मैं ऋत के हाथों से इसे पाऊँ।४८

३ ...और तब तू इसे १८.अन्य प्रतिष्ठा से पा.. नहीं तो प्रतिष्ठा–स्थान–रहित मरेगा। मैं... सत्य में प्रतिष्ठा पाऊँ, उनसे इसे पाऊँ। यह ओदन सर्वाङ्ग–सर्वपरु–सर्वतनू है, इसे जानने वाला ऐसा हो जाता है।४९

सूक्त ३ का पर्याय ३। ७ मन्त्र

यही महान् का तेज है जो ओदन [ब्रह्म रूपी भात] है।५०

५ जो ऐसा जानता है वह महान् दर्शनीय होता है, महान् के तेज में आश्रय पाता है।५१

६ इसी ओदन [प्रकृति] से प्रजापति ने तैंतीस लोक बनाये। [अ. ६–१३६ १]।५२

७ उनके विशेष ज्ञान के लिए यज्ञ रचा।५३

८ जो ऐसे विद्वान् का दोषदर्शी होता है वह प्राण–बल को रोकता है।५४

९ न केवल प्राण रोकता अपितु सब हानि से हीन हो जाता है।५५

१० न केवल सब हानि उठाता अपितु बुढ़ापे से पहले ही प्राण इसे छोड़ देता है।५६

सूक्त ४। प्राण

११ उस प्राण के लिए नमः हो जिसके वश में यह सब है, जो सबका ईश्वर है, जिसमें सब प्रतिष्ठित है।१

१२ हे प्राण! ध्वनि करते, गरजते, बिजली रूप, बरसते तेरे लिए नमः हो।२

१३ जब प्राण बादल–बिजली की गर्जना से मानो अन्न–औषधियों को बल से पुकारता है तब वे प्रजनन करतीं, गर्भ धारण करतीं और बहुत पैदा होतीं हैं।३

१४ प्राण जब ऋतु के आने पर औषधियों को पुकारता है तब जो कुछ भूमि पर है वह सभी बड़ा आनन्द मनाता है।४ [उत्तरार्ध ऋ ५–८३–६ में भी है।]

३११५ जब प्राण वर्षा द्वारा महती पृथिवी का सिंचन करता है तब पशु [प्राणी] प्रसन्न होते हैं कि हमारे लिए अन्न और बढ़ती होगी।५

३११६.अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन्।आयुर्वै नःप्रातीतरःसर्वा नःसुरभीरकः॥६
१७. नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते। नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः॥७
१८ नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः॥ ८
१९.या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी। अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे।९
२०.प्राणःप्रजा अनुवस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम्।प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न।१०
२१ प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत्॥ ११
२२ प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम्। १२
२३.प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते।यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते१३
२४.अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा। यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः॥ १४
२५ प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ १५
२६.आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत।ओषधयः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि॥१६
२७.यदा प्राणोऽभ्यवर्षीद्वर्षेण पृथिवीं महीम्। ओषधयः प्रजायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः॥१७
२८.यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः।सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिँल्लोक उत्तमे।।१८
२९.यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः।एवा तस्मै बलिं हरान्यस्त्वा शृणवत्सुश्रवः१९
३० अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः।
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः॥ २०
३१ एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन्।
यदङ्ग स समुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः स्यान्न व्युच्छेत् कदाचन॥ २१
३२ अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः॥ २२
३३.यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः।अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोस्तु ते॥२३
३४.यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः।अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु॥ २४
३५. ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् निपद्यते। न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन॥ २५
३६.प्राण मा मत्पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि।अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि२६

३११६ वर्षा से सींची औषधियाँ मानो प्राण से कहतीं हैं कि तू सचमुच हमारी आयु बढ़ाता है और हमें सुगन्धित करता है। ६

१७ हे प्राण! आते-जाते-खड़े और बैठे हुए तेरे लिए नमः हो। [१६-२-५ में प्राण के स्थान में रुद्र] ७

१८ हे प्राण! आते-जाते-दूर जाते-सामने स्थित, तुझ सर्वस्व के लिए यह नमः है। ८

१९ हे प्राण! जो तेरा प्रिय शरीर [आत्मा]-उपकार-औषधि है उसे हमें जीवन के लिए दे। ९

२० पुत्र को पिता के समान प्राण प्रजा पालता है; वही प्राणी-अप्राणी सबका स्वामी है। १०

२१ प्राण मौत-बुखार है, विद्वान् उसकी उपासना करते हैं, वही सत्यवादी को उत्तम लोकमें रखता है। ११

२२ प्राण विराट्, प्रेरक शक्ति को सब उपासना करते हैं, वही सूर्य-चन्द्र-प्रजापति कहाता है। १२

२३ प्राण-अपान चावल-जौ हैं, बैल प्राण कहाता है, जौ में प्राण भरा है, अपान चावल कहाता है। १३

२४ पुरुष गर्भ में अन्दर प्राण-अपान प्रयुक्त करता है, हे प्राण! जब तू पुष्ट हुआ तभी गर्भ पैदा होता है। १४

२५ प्राण मातरिश्वा-वायु भी कहाता है, इसमें ही भूत-भविष्य सब प्रतिष्ठित है। १५

२६ हे प्राण! जब तू पुष्ट होता है तब चार तरह की औषधियाँ पैदा होती हैं — अथर्व [आत्मा] के लिए आथर्वणी, अङ्ग-रस के लिए आङ्गिरसी, देव[मेघ]से पैदा दैवी, और मनुष्य की बनायी। १६

२७ जब प्राण वर्षा से बड़ी पृथिवी को सींचता है तब औषधियाँ-वनस्पतियाँ पैदा होतीं हैं। १७

२८ हे प्राण! जो तेरा यह रहस्य, जहाँ तू स्थित है, जानता है उसे उस उत्तम लोकमें सब उपहार दें। १८

२९ हे प्राण! जैसे यह प्रजा तुझे उपहार दे वैसे ही उसे भी दे जो तुझ सुकीर्ति की बात सुने। १९

३० वही दिव्य शक्तियों में अन्दर गति देता, वही फिर व्याप्त होकर पैदा होता है, वह भूत-वर्तमान-भविष्य होकर अपनी कर्म-शक्तियों से, पुत्र में पिता के समान, प्रविष्ट होता है। २०

३१ हंस (गतिशील प्राण-जीवात्मा-ईश्वर-सूर्य) संसार-सलिल से उदय होता हुआ एक ही पैर नहीं उखाड़ता, हे मनुष्य! यदि वह उसे उखाड़ ले तो न आज हो न कल, न रात न दिन, और न कभी उषा ही हो। २१ [हंस के लिए देखो अ १०.८.१७-१८]

३२ परमात्मा ८ चक्रों (५ भूत-काल-दिशा-मन) का स्वामी, जीवात्मा ८ चक्रों(मूलाधार-मणिपूरक-नाभि-अनाहत-विशुद्ध-आज्ञा-सूर्य-सहस्रार, और ८ योगाङ्ग तथा ७ धातु १ ओज) वाला है और दोनों १ नेमि (नियम-प्राण) वाले हैं। हजारों अक्षय शक्ति वाला वह आगे-पीछे विद्यमान है। वह अर्ध (समृद्ध) से विश्व-भुवन को बनाता और जो इसका शेष समृद्ध स्वरूप है वह ज्ञानमय परम आनन्द है। [तुलना — अ १०.८.७-१३ ,२२

३३ हे प्राण! जो तू सब चेष्टा-युक्त विश्व का ईश है, उन अन्यों (परमाणुओं) में शीघ्र गति को देने वाले तेरे लिए नमः हो। २३

३४ इस सब के उत्पादक चेष्टा-युक्त सब का ईश, आलस्य-रहित, धीर प्राण मुझे ब्रह्म (वेद-अन्न) से मिले। २४

३५ वह प्राण सोते हुओं में ऊपर रहकर जागता है, तिरछा होकर कभी नहीं गिरता, सोये हुओं में इसका सो जाना किसी ने नहीं सुना। २५

३१३६ हे प्राण! मुझ से दूर न हो, तू मुझ से अलग न होगा। हे प्राण! मैं जीवन के लिए आपः (नीहारिका-जल-स्त्रियो) के गर्भ के समान तुझे अपने में बाँधता हूं। २६

अनुवाक २, सूक्त ४ पूर्ण हुआ।

अथर्व वेद काण्ड ११ प्रपाठक २५ अनुवाक तीन सूक्त ५

२६ मन्त्रों का सूक्त ५ । ब्रह्मचारी

३१३७ ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति ॥ १
३८ ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग्देवा अनुसंयन्ति सर्वे ।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट्सहस्राः सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥ २
३९ आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥ ३
४० इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ॥ ४
४१ पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस् तपसोदतिष्ठत् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥ ५
४२ ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्सङ्गृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥ ६
४३ ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम् ।
गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरांस् ततर्ह ॥ ७
४४ आचार्यस् ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवञ्च ।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ॥ ८
४५ इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवञ्च ।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ ९
४६ अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस् पृष्ठाद् गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य ।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान् ॥ १०
४७ अर्वागन्य इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे ।
तयो श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढास् ताना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ॥ ११
४८ अभिक्रन्द स्तनयन्नरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार ।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १२
३१४९ अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचार्यप्सु समिधमा दधाति ।
तासामर्चींषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः ॥ १३

अनुवाक ३

अनुवाक ३ का विषय- ब्रह्मचर्याचार्येश्वरादि-ब्रह्मचर्याश्रमादि- ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिमित्यादि- ब्राह्मणा ब्रह्म ज्येष्ठमित्यादि पदार्थविद्या अग्नीश्वरप्रार्थनादिस्तुतिः (म० द० स०)

सूक्त ५ । ब्रह्मचारी

२१३७ ब्रह्मचारी सूर्य-पृथिवी दोनों को खोजता हुआ विचरता है. उसमें दिव्य गुण एक-मन होते हैं, वह पृथिवी-द्यौ के गुण धारण करता है, वह आचार्य को तप से पूर्ण करता है । १

३८ पितर-देवजन सब नाना दिव्य शक्तियाँ ब्रह्मचारी के पीछे चलती हैं, ३३६ (अनेक) गन्धर्व (पृथिवी-धारक गुण) इनके साथ रहते हैं, वह सब देवों को तप से पालता है । २

३९ आचार्य ब्रह्मचारी का उपनयन कर (यज्ञोपवीत कर पास ले जाता हुआ) नियन्त्रण में रखता है उसे ३ रात पास में रखता है, उस नये जन्मे को देखने के लिए विद्वान् आते हैं । ३

४० यह पृथिवी पहली समिधा, द्यौ दूसरी और अन्तरिक्ष तीसरी है इनको ब्रह्मचारी पूर्ण करता है, वह लोकों को समिधा-मेखला-श्रम-तप से पालता है । ४

४१ ब्रह्मचारी ज्ञान से श्रेष्ठ बन कर तेज धारण करता हुआ तप से उच्च बनता है । उससे ज्ञान-ईश्वर और अमरता के साथ सब विद्वान् प्रसिद्ध होते हैं । ५

४२ ब्रह्मचारी समिधा से दीप्त आकर्षक काला (मृग-चर्म) पहिने, दीक्षित, लम्बी दाढ़ी-मूछ रखे हुए आता है, वह पूर्व समुद्र (ब्रह्मचर्य) से दूसरे (गृहस्थ) में शीघ्र आता और लोगों को सङ्गठित कर बार-बार धर्म-प्रेरणा करता है । ६

४३ ब्रह्मचारी ज्ञान-कर्म-आप्त-प्राण-लोक-विराट्-परमेष्ठी-प्रजापति को प्रसिद्ध करता हुआ अमृत की योनि विद्या में गर्भ (प्रविष्ट) हुआ, ऐश्वर्यशाली होकर दुष्टों का नाश करता है । ७

४४ आचार्य इन दोनों सम्बद्ध-विशाल-गहरे पृथिवी-द्यौ को सरल समझने योग्य करता है जिन की रक्षा ब्रह्मचारी तप से करता है, इस पर विद्वान् एकमत होते हैं । ८

४५ पहले ब्रह्मचारी इस विस्तृत भूमि और द्यौ की भिक्षा लेता है, उनकी समिधा बनाकर ध्यान करता है जिनमें सब भुवन आश्रित हैं । ९

४६ ब्राह्मण की बुद्धि में २ निधियाँ रहती हैं एक पास में (वेद) और दूसरी द्यौ से परे (मुक्ति), ब्रह्मचारी तप से दोनों की रक्षा करता और केवल ब्रह्म को अपनाता है । १०

४७ एक अग्नि यहाँ पृथिवी पर, दूसरी दूर (सूर्य), दोनों द्यौ-पृथिवी के मध्य सम्बद्ध रहती हैं इनकी रश्मियाँ दृढ़ता से परस्पर आश्रित हैं जिनपर ब्रह्मचारी तप से अधिकार करता है । ११

४८ गरजते-चमकते-जलभरे-श्याम मेघ के समान ब्रह्मचारी भूमि पर बड़ा सामर्थ्य लाता है वह पृथिवी-पर्वत पर पराक्रम-जल सींचता है जिससे चार दिशाएँ जीती हैं । १२

२१४९ ब्रह्मचारी अग्नि-सूर्य-चन्द्रमा-वायु-जलमें तेज धारण करता, जिनकी ज्वालाएँ अलग-अलग मेघ में चलती हैं जिनका घी (सार) पुरुष-वर्षा-जल-पूजा हैं । १३

३१५०.आचार्योमृत्युर्वरुणःसोम ओषधयःपयः।जीमूता आसन्त्सत्वानस् तैरिदं स्वराभृतम्।।१४
५१ अमा घृतङ्कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ ।
तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत् स्वान् मित्रो अध्यात्मनः ।। १५
५२.आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः। प्रजापतिर्विराजति विराडिन्द्रोऽभवद्वशी ।१६
५३.ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति । आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते । १७
५४. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् । अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ।। १८
५५. ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत । इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ।। १९
५६. ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः । संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ।। २०
५७.पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्चये।अपक्षाःपक्षिणश्चये तेजाता ब्रह्मचारिणः।।२
५८.पृथक्सर्वे प्राजापत्याःप्राणानात्मसु बिभ्रति।तान्त्सर्वान्ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम्२
५९ देवानामेतत् परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ।।२३
६० ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः ।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्ममेधम् ।। २४
६१ चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम् ।। २५
३१६२ तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे ।
स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ।। २६

सूक्त ६ । मन्त्रोक्त अग्नि आदि देवता

३१६३अग्निं ब्रूमो वनस्पतीनोषधीरुत वीरुधः । इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।१।
६४ ब्रूमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम् । अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते॰[पूर्ववत्] ।। २
६५ ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम् । त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्॰ ,, ।। ३
६६ गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् । अर्यमा नाम यो देवस्॰ ,, ।। ४
६७ अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा । विश्वानादित्यान् ब्रूमस्॰ ,, ।। ५
६८ वातं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः । आशाश्च सर्वा ब्रूमस्॰ ,, ।। ६
७९.मुञ्चन्तु मा शपथ्यादहोरात्रे अथो उषाः।सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमाइति।।७
७०.१पार्थिवा दिव्याःपशव आरण्या उत ये मृगाः।शकुन्तान्पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः८
७१भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः।इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः ।। ९
७२दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान्।समुद्रा नद्यो वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः१०

३१५० आचार्य-मृत्यु-जल-चन्द्र-ओषधि-दूध-मेघ ये सत्त्वयुक्त हैं उनसे यह सुख लाया जाता है। १४

५१ आचार्य वरुण (वरणीय-श्रेष्ठ) होकर स्वयं घर में अपरिमित तेज पाता है, वह प्रजापति के विषय में जो-जो चाहता है उसे मित्र ब्रह्मचारी अपने सम्बन्धियों को देता है। १५

५२ आचार्य ब्रह्मचारी हो, जो प्रजापति हो, वह विराट्-ऐश्वर्यशाली-वशीकर्ता हो राजता है। १६

५३ ब्रह्मचर्य-तप से राजा राष्ट्र की रक्षा करता है, उससे आचार्य ब्रह्मचारी को चाहता है। १७

५४ ब्रह्मचर्य से कन्या युवा पति पाती है, उसी से बैल-घोड़ा घास खाने में समर्थ होते हैं। १८

५५ ब्रह्मचर्य-तप से विद्वान् मौत को जीतते हैं। उससे इन्द्र (ईश्वर-जीव-राजा-वायु बिजली-सूर्य) देवों (विद्वान्-प्रजा-इन्द्रिय-प्राणों) के लिए भरपूर सुख-प्रकाश देता है। १९

५६ औषधि-भूत-वर्तमान-दिन-रात-वनस्पति-ऋतुओं के साथ संवत्सर वे ब्रह्मचारी प्रसिद्ध हैं। २०

५७ जो पृथिवी-द्यो के पदार्थ, जङ्गली-ग्राम्य पशु, बिना पंख और पंखवाले हैं वे ब्रह्मचारी हुए। २१

५८ अलग-अलग सब प्रजापति-सन्तान प्राणों को आत्माओं में धारण करते हैं उन सब की रक्षा ब्रह्मचारी में भरा ब्रह्म करता है। २२

५९ देवों का यह प्रेरक-अपराजित-प्रकाशमान ज्ञान है, उससे वेद, अमृत के साथ सब देव हुए। २३

६० ब्रह्मचारी प्रकाशमान ईश्वर को धारण करता है, उसमें सब दिव्य गुण समाये रहते हैं. वह प्राण-अपान-व्यान-वाणी-मन-हृदय-वेद-बुद्धि को प्रकट करता है। २४

६१ हे ब्रह्मचारी ! तू हम में चक्षु-कान-यश-अन्न-वीर्य-रक्त-पाचनशक्ति धारण करा २५

३१६२ ब्रह्मचारी ये कर्म करता हुआ समुद्र (ब्रह्मचर्य) में तपता हुआ जल की पीठ पर स्नानके लिए ठहरता, स्नातक-पोषक-शक्तिमान् बनकर वह पृथिवी पर अति रुच्यमान होता है। २६

२३ मन्त्रों का सूक्त ६। अग्नि आदि देवता

३१६३ अग्नि-वनस्पति-ओषधि-जड़ीबूटी-इन्द्र-बृहस्पति-सूर्य को हम बताते हैं। वे हमें अंहस् [पाप-कष्ट-दुःख-बुराई] से छुड़ायें। [वे हमें अंहस् से छुड़ायें यह प्रार्थना सूक्त भर में है।] १

६४ राजा-वरुण (वरणीय न्यायाधीश)-मित्र-विष्णु (परमात्मा-यज्ञ)-भग-अंश (धन-विभाजक)-विवस्वान् (सूर्य-निवास दाता) को हम बताते हैं वे हमें पाप से छुड़ायें। २

६५ देव सविता-धाता-पूषा-त्वष्टा-अग्रगामी को हम बताते हैं वे०... । ३

६६ गन्धर्व-अप्सरा (उपदेशक-कार्यकर्त्री स्त्रियाँ)-अश्वी (माता-पिता)-वेद के पति (आचार्य)-अर्यमा नामक देव (न्यायकारी परमात्मा) को बताते ० ... । ४

६७ दिन-रात-सूर्य-चन्द्रमा दोनों-सब आदित्यों (१२ मासों) को बताते ० ... । ५

६८ वायु-मेघ-अन्तरिक्ष-दिशाओं-सब विदिशाओं को बताते० ... । ६

६९ दिन-रात, उषा और सोम देव जिसे चन्द्रमा कहते हैं वे मुझे शपथ के दोष से छुड़ायें। ७

७० पृथिवी-द्यौ के पदार्थ, और जो जंगली पशु हैं उन्हें और शक्तिशाली पक्षियों को बताते हैं, वे हमें कष्ट से बचायें। ८

७१ परमात्मा की भव-शर्व (रचना-विनाश) शक्तियाँ हैं, रुद्र जो पशुपति है, इनके जो चप्याख हैं. इन्हें हम जानें, वे हमारे लिए सदा कल्याण-कारी हों। ९

३१७२ हम द्यौ-नक्षत्र-भूमि-यक्ष (पवित्र स्थान)-पर्वत-समुद्र-नदी-तालाब-नहरों को बताते हैं, वे हमें अंहः (पाप-कष्ट-दुःख-बुराई) से छुड़ाएँ-बचाएँ-मुक्त करें-मुक्त रक्खें। १०।

३१७३ सप्तर्षीन्वा इदं ब्रूमोऽपो देवीःप्रजापतिम् । पितृन्यमश्रेष्ठान्ब्रूमस० [पूर्ववत्] ।। ११
७४ ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये । पृथिव्यां शक्रा ये श्रितास्० ,, ।। १२
७५ आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः । अङ्गिरसो मनीषिणस्० ,, ।। १३
७६ यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा । यजूंषि होत्रा ब्रूमस्० ,, ।। १४
७७ पञ्च राज्यानि वीरुधा सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः । दर्भो भङ्गो यवः सहस्० ,, ।। १५
७८ अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान पुण्यजनान् पितृन् । मृत्यूनेकशतं ब्रूमस्० ,, ।। १६
७९ ऋतून्ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् । समाः संवत्सरान् मासांस्० ,, ।। १७
८० एत देवा दक्षिणतः पश्चात् प्राञ्चा उदत । पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वेदेवाः समेत्य० ,, ।। १८
८१ विश्वान्देवानिदं ब्रूमो सत्यसन्धानृतावृधः । विश्वाभिः पत्नीभिः सह० ,, ।। १९
८२ सर्वान्देवानिदं ब्रूमः सत्यसन्धानृतावृधः । सर्वाभिः पत्नीभिः सह० ,, ।। २०
८३ भूतं ब्रूमो भूतपतिं भूतानामुत यो वशी । भूतानि सर्वा सङ्गत्य० ,, ।। २१
८४ या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तवः । संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते नो सन्तु सदा शिवाः ।। २२
८५ यन्मातली रथक्रीतममृतं वेद भेषजम् । तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत्तदापो दत्त भेषजम् ।। २३

अनुवाक ४

३१८६. २७ मन्त्रों का सूक्त ७ । उच्छिष्ट देवता

उच्छिष्टे नामरूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः । उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् ।। १
८७ उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम् । आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः ।। २
८८ सन्नुच्छिष्टे असंश्चोभौ मृत्युर्वाजः प्रजापतिः । लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि ३
८९ दृढो दृंहस्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश । नाभिमिव सर्वतश्चक्रमुच्छिष्टे देवताः श्रिताः ।। ४
९० ऋक्साम यजुरुच्छिष्ट उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम् । हिङ्कार उच्छिष्टे स्वरः साम्नो मेडिश्च तन्मयि ।। ५
९१ ऐन्द्राग्नं पावमानं महानाम्नीर्महाव्रतम् । उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्यन्तर्गर्भ इव मातरि ।। ६
९२ राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस् तदध्वरः । अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ।। ७
९३ अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्दसा सह । उत्सन्ना यज्ञाः सत्राण्युच्छिष्टेऽधि समाहिताः ।। ८
९४ अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः । दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टेऽधि समाहिताः ।। ९
९५ एकरात्रो द्विरात्रः सद्यःक्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः । ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया ।। १०
९६ चतूरात्रः पञ्चरात्रः षड्रात्रश्चोभयः सह ।
षोडशी सप्तरात्रश्चोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा अमृते हिताः ।। ११
३१९७ प्रतीहारो निधनं विश्वजिच्चाभिजिच्च यः ।
साह्नातिरात्रावुच्छिष्टे द्वादशाहोऽपि तन्मयि ।। १२

३१७३ हम ७ ऋषि-दिव्य आप:-प्रजापति-पितर-श्रेष्ठ यमों को कहते हैं, वे हमें कष्ट से छुड़ायें।११
७४ जो देव द्यौ-अन्तरिक्ष-पृथिवी पर शक्तिशाली होकर विराजते हैं वे० ...। १२
७५ जो आदित्य-रुद्र-वसु, द्यौ में दिव्य शक्तियाँ. अटल निःसंशय-वैज्ञानिक-मनीषी हैं वे०...।१३
७६ हम यज्ञ-यजमान-ऋचा-साम-भेषज(अथर्व)-होत्रार्थों को कहते हैं, वे ...। १४
७७ जड़ी-बूटियों के ५ राज्य (पत्ता-डंडी-फूल-फल-जड़) हम बताते हैं जिनमें सोम श्रेष्ठ है, अन्य दर्भ-भङ्ग(सन)-जौ-सहमाना हैं वे० ...। १५
७८ अदानी-राक्षस-सर्प-पुण्यजन-पितर-एक सौ (अनेक) मृत्युओं को हम बताते हैं वे० ...। १६
७९ हम ऋतुओं, उनके स्वामी(सूर्य-चन्द्र-वायु), मास-वर्ष(सौर-चान्द्र) को बताते हैं वे० । १७
८० हे सब सशक्त विद्वानो ! तुम दक्षिण-पश्चिम-पूर्व-सामने-उत्तर से आओ; मिलकर वे० । १८
८१ हम सत्य-प्रतिज्ञ, सत्य की वृद्धि करनेवाले विश्वे-देवों, से यह कहते हैं कि पत्नी-सहित वे० । १९
८२ " सब " शक्तियों-सहित वे० । २०
८३ भूत(उत्पन्न ५ भूत); भूत-पति और जो भूतों का वशीकर्ता है, सब मिल कर वे० । २१
८४ जो दिव्य ५ दिशाएँ(पूर्वादि ४ और ऊपर-नीचे १), जो १२ मास, गति-शील १२ सावन (दस इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि), जो संवत्सर की दाढ़ें (डसनेवाले अवसर)हैं व हमें सदा कल्याणमय हों। २२
३१८५ मातली (इन्द्र जीवात्मा और उसका सारथि मन) शरीर रथ से खरीदी जो अमृत-औषधि (मोक्ष और शक्ति) जानता है उसे परमात्मा ने आप: (आप्तों और कर्मों तथा वायु-सूर्य ने जल) में प्रविष्ट किया है। हे आपः ! वह औषधि दो । २३

अनुवाक ४

विषय— उच्छिष्टे नाम रूपं च उच्छिष्टे लोक आहितः इत्यादि, उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिवि श्रितः इत्यादि, मन्युर्जाया ब्रह्म ज्येष्ठादि; प्रश्नोत्तरादि; सत्यशब्दादि पदार्थविद्या(म०द०स०)

२७ मन्त्रों का सूक्त ७। उच्छिष्ट (प्रलय में भी शेष परमात्मा)

३१८६ उच्छिष्ट(शेष परमात्मा) में नाम-रूप-संसार-इन्द्र-अग्नि सब अन्दर स्थित-समाहित है । १
८७ उच्छिष्ट में द्यौ-पृथिवी-सब भूत-आपः-समुद्र-चन्द्रमा-वायु स्थित हैं। २
८८ " दोनों सत्-असत्(कार्य-कारण जगत्)-मृत्यु-अन्न-प्रजापति(मेघ-मन) -लौकिक पदार्थ-प्रजा-आकाश-काल-व्यष्टि-समष्टि आधीन हैं, श्री (लक्ष्मी-शोभा) हैं वे मुझ में हों। ३
८९ केन्द्रके सब ओर चक्रके समान ये दृढ़,बलसे स्थिर लोक-वेद-विश्वस्रष्टा १०देन उ०के आश्रित हैं।४
९० इस में ऋक्-साम-यजु-उद्गीथ-प्रस्तोता-गान-स्तोत्र-हिंकार-स्वर-सामवाणी हैं, वे मुझमें हों ।५
९१ माता में अन्दर गर्भवत् परमात्मा में ऐन्द्राग्न-पावमान-महानाम्नी-महाव्रत-यज्ञ के अङ्ग हैं। ६
९२ राजसूय-वाजपेय- अग्निष्टोम-चितियाग-अर्क-अश्वमेध-जीवनवर्धक हर्षप्रद कथन इसमें हैं। ७
९३ अग्न्याधेय-दीक्षा-छन्द(अथर्व) के साथ कामप्र-बड़े यज्ञ-सत्र(सोमयाग आदि) इसमें हैं। ८
९४ अग्निहोत्र-श्रद्धा-वषट्कार-व्रत-तप-दक्षिणा-इष्ट-पूर्त इस में समाहित हैं। ९
९५ एकरात्र-द्विरात्र-सद्यःक्री-प्रक्री-उक्थ्य और विद्या के साथ यज्ञ के सूक्ष्म रूप इस में हैं। १०
९६ चतूरात्र-पञ्चरात्र-षड्रात्र और साथ में दूने (८-१०-१२ रातों के) -षोडशी-सप्तरात्रि सब इससे पैदा हुए जो यज्ञ अमृत में स्थित हैं। ११
३१९७ प्रतीहार-निधन-विश्वजित्-अभिजित्-साह्न-अतिरात्र-द्वादशाह भी उच्छिष्ट में हैं वे मुझमें हों।

३१९८ सूनृता संनतिः क्षमः स्वधोर्जामृतं सहः ।
उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः कामाः कामेन तातृपुः ॥ १३
३१९९ नव भूमीः समुद्रा उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिवः ।
आ सूर्यो भात्युच्छिष्टेऽहोरात्रे अपि तन्मयि ॥ १४
३२०० उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा गुहा हिताः ।
बिभर्ति भर्ता विश्वस्योच्छिष्टो जनितुः पिता ॥ १५
३२०१ पिता जनितुरुच्छिष्टोऽसोः पौत्रः पितामहः ।
स क्षियति विश्वस्येशानो वृषा भूम्यामतिघ्न्यः ॥ १६
२ ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च ।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ॥ १७
३ समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः ।
संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः ॥ १८
४ चतुर्होतार आप्रियश्चातुर्मास्यानि नीविदः ।
उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुबन्धास् तदिष्टयः ॥ १९
५ अर्धमासाश्च मासाश्चार्तवा ऋतुभिः सह ।
उच्छिष्टे घोषिणीरापः स्तनयित्नुः श्रुतिर्मही ॥ २०
६ शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस् तृणा ।
अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रिता ॥ २१
७ राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिर्व्याप्तिर्मह एधतुः ।
अत्याप्तिरुच्छिष्टे भूतिश्चाहिता निहिता हिता ॥ २२
८ यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २३
९ ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह । ३० ॥ २४
१० प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या । ३० ॥ २५
११ आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये । ३० ॥ २६
३१२२ देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २७

३१९८ सत्य-प्रिय वाणी-नम्रता-रक्षा-अन्न-ऊर्जा-मोक्ष-बल-सहन-शीलता- सब प्रत्यक्ष कामनाएँ उच्छिष्ट में हैं, वे काम से मनुष्य को तृप्त करती हैं। १३

९९ नौ भूमियाँ-समुद्र-द्यौ लोक इसमें आश्रित हैं; सूर्य इसमें चमकता है; दिन-रात भी इस में हैं इनकी शक्ति मुझमें हो। १४

३२०० उपहव्य-विषूवान् (२१ स्तोत्रों का गवामयन) और जो यज्ञ बुद्धि में रक्खे हैं उन्हें विश्व-भर्ता, उत्पादक प्रकृति का पिता उच्छिष्ट धारण करता है। १५

३२०१ हम पैदा करनेवाली प्रकृति का पिता होने से हमारा पितामह और प्राण के पुत्र (मन) का प्रकाशित पुत्र होने से प्राण का पौत्र, विश्व का ईश, बली उच्छिष्ट भूमि पर अपराजित है। १६

२ बली उच्छिष्ट में ऋत-सत्य-तप-राष्ट्र-श्रम-धर्म-कर्म-भूत-भविष्य-वीर्य-लक्ष्मी-बल हैं। १७

३ समृद्धि-ओज-संकल्प-क्षात्रबल-राष्ट्र-६ फैली दिशाएँ और पदार्थ (द्या-पृथिवी-दिन-रात-आप:-औषधि)-संवत्सर-इडा (अन्न-वाणी)-प्रैष (यज्ञ के निर्देश)-ग्रह (सोम के पात्र-मङ्गल आदि) और हवि (चरु-पुरोडाश आदि) सब उच्छिष्ट के अधिकार में हैं। १८

४ चार होताओं वाले चतुर्होता-आप्री-चातुर्मास्य (वैश्वदेव-वरुणप्रघास-साकमेध-शुनासीरीय)-निविद (नामक ऋचायें)-यज्ञ-होता-पशुबन्ध-और इनकी इष्टियाँ इस शेष में हैं। १९

५ पक्ष-मास-ऋतुओं के साथ इनके पदार्थ, घोष करने वाली जल-धाराएँ, मेघ-गर्जना, सुननेयोग्य वेद-वाणी और पृथिवी शेष में हैं। २०

६ शर्करा (रेत)-बालू-पत्थर औषधि-जड़ीबूटी-घास-बादल-बिजली-वर्षा शेष में आश्रित हैं। २१

७ सिद्धि-प्राप्ति-समाप्ति-व्याप्ति-तेज-आनन्दोत्सव-बढ़ती-अधिक पाना-समृद्धि शेष में रक्खी हैं। २२

८ और जो कुछ प्राण से जीता तथा जो आँख से देखता है वह सब और द्यौ में आश्रित दिव्य लोक सब शेष परमात्मा से पैदा हुए। २३

९ ऋचा-साम-छन्द (अथर्व)-यजुः के साथ पुरानी नित्य सृष्टि को बताने वाले प्रकरण और द्यौ में आश्रित लोक सब उच्छिष्ट से उत्पन्न हुए। २४

१० प्राण-अपान-चक्षु-श्रोत्र और जो तत्वों की हानि-वृद्धि, पृथिवी तथा अन्य लोक हैं वह और द्यौ में सूर्य के आश्रित दिव्य पदार्थ शेष से पैदा हुए। २५

११ आनन्द-मोद-प्रमोद-अभिमोद-हर्ष-प्रसन्नता द्यौ में आश्रय पाये सूर्यादि शेष से पैदा हुए। २६

१२ देव-पितर-मनुष्य-गन्धर्व (गायक-वादक)-अप्सरा [जल-नभ-चारी कार्य-व्यस्त स्त्रियाँ] ये और आकाश में सूर्य के आकर्षण में रुके सब दिव्य पदार्थ उच्छिष्ट से उत्पन्न हुए। २७। ७

१४ मन्त्रों का सूक्त ८। मन्यु

३२१३ यन्मन्युर्जायामावहत् सङ्कल्पस्य गृहादधि ।
क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥ १

१४ तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।
त आसं जन्यास्ते वरा ब्रह्म ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥ २

१५ दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद् वदेत् ॥ ३

१६ प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ् मनस् ते वा आकूतिमावहन् ॥ ४

१७ अजाता आसन्नृतवो ऽथो धाता बृहस्पतिः ।
इन्द्राग्नी अश्विना तर्हि कं ते ज्येष्ठमुपासत ॥ ५

१८ तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।
तपो ह जज्ञे कर्मणस् तत् ते ज्येष्ठमुपासत ॥ ६

१९ येत आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद्विदुः ।
यो वै तां विद्यान् नामथा स मन्येत पुराणवित् ॥ ७

२० कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुत अग्निरजायत ।
कुतस् त्वष्टा समभवत् कुतो धाता अजायत ॥ ८

२१ इन्द्रादिन्द्रः सोमात् सोमो अग्नेरग्निरजायत ।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताजायत ॥ ९

२२ ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥ १०

२३ यदा केशानस्थि स्नाव मांसं मज्जानमाभरत् ।
शरीरं कृत्वा पादवत् कं लोकमनु प्राविशत् ॥ ११

२४ कुतः केशान् कुतः स्नाव कुतो अस्थीन्याभरत् ।
अङ्गा पर्वाणि मज्जानं को मांसं कुत आभरत् ॥ १२

२५ संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन् ।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १३

३२२६ ऊरू पादावष्ठीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम् ।
पृष्टीर्बर्जह्ये पार्श्वे कस् तत् समदधादृषिः ॥ १४

सूक्त ८। मन्यु ब्रह्म

३२१३ जब मननशील मन्युरूप ब्रह्म ने संकल्प के घर से जाया (प्रकृति)पायी तो वधू-वर पक्ष के कौन थे और ज्येष्ठ वर कौन था ? १

१४ (उत्तर—)महान् प्रलय-सागर के अन्दर तप और कर्म थे, वे वधू-वर-पक्ष के थे और ब्रह्म ज्येष्ठ वर था। २

१५ पहले देवों (महत्तत्व, ५ तन्मात्रा आदि)से (अगले मन्त्रोक्त) १० देव साथ पैदा हुए। जो उन्हें निश्चय से प्रत्यक्ष जाने वह बड़ी बात (ब्रह्म) को बताये। ३

१६ प्राण-अपान-दृष्टि-श्रवणशक्ति-ज्ञान क्रिया-व्यान-उदान-वाणी-मन इन १० ने निश्चय संकल्प को धारण किया। ४

१७ जब ऋतुएं-आकाश-वायु-सूर्य-विद्युत्-अग्नि-मेघ-प्राण-अपान पैदा नहीं हुए थे तब वे किस ज्येष्ठ के पास रहते थे ? ५

१८ (उत्तर—) महान् प्रलय-समुद्र के अन्दर तपः-कर्म ही थे,तप निश्चयं हो कर्म से पैदा हुआ, अतः वे ऋतुएँ आदि ज्येष्ठ ब्रह्म के पास रहते हैं। ६

१९ जो इस भूमि से पहले भूमि (कारण-रूप) थी जिसे सत्य-ज्ञानी ही जानते हैं उसे जो नाम प्रकार से जाने वह पुराण-वेत्ता माना जाये। ७

२० इन्द्र (विजली)-सोम(जल) -अग्नि-त्वष्टा(सूर्य-पृथिवी)-धाता (आकाश-वायु-मेघ) कहाँ से उत्पन्न हुए ? ८

२१ (ब्रह्म-शक्ति-रूप समष्टि) इन्द्र-सोम-अग्नि-त्वष्टा-धाता से ही ये व्यष्टि रूप उत्पन्न हुए। [परमात्मा-प्रकृति की ये शक्तियां प्रलय में भी बनी रहती हैं।] ९

२२ जो १० देव [मन्त्र १५ में कहे] देवों से पहले थे वे पुत्र-समान उत्पन्न हुए देवों के लिए यह लोक देकर किस लोक में रहते हैं ? उत्तर— 'क' प्रजापति के लोक प्रकृति में। १०

२३ जब केश-हड्डी-स्नायु-मांस-मज्जा भर दी तो शरीर को पैर-सहित बना कर परमात्मा किस लोक में प्रविष्ट होता है ? उत्तर— 'क' आनन्दमय लोक में। ११

२४ केश-स्नायु-हड्डी-अङ्ग-पोरुए-मज्जा-मांस किसने कहाँ से भरे ? उत्तर— 'क' प्रजापति ने 'कु' पृथिवी से भरे। १२

२५ संसिच् नामक वे आपः आदि के परमाणु हैं जो केशआदि सामग्री भरते हैं। वे मर्त्य का सब भाग सींच कर पुरुष में प्रविष्ट हुए रहते हैं। १

३२२६ जांघें-घुटनेवाले पैर-सिर-हाथ-मुख-कन्धे-हँसली-पसलियाँ यह कौन ऋषि जोड़ता है ? १४

३२२७ शिरो हस्तावथो मुखं जिह्वां ग्रीवाश्च कीकसाः ।
त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत् सन्धा समदधान् मही ॥ १५
२८ यत्तच्छरीरमशयत् संधया संहितं महत् ।
येनेदमद्य रोचते को अस्मिन् वर्णमाभरत् ॥ १६
२९ सर्वे देवा उपाशिक्षन् तदजानाद् वधूः सती ।
ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णमाभरत् ॥ १७
३० यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः ।
गृहङ्कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १८
३१ स्वप्नो वै तन्द्रीर्निर्ऋतिः पाप्मानो नाम देवताः ।
जरा खालत्यं पालित्यं शरीरमनु प्राविशन् ॥ १९
३२ स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत् ।
बलञ्च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥ २०
३३ भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः ।
क्षुधश्च सर्वास् तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥ २१
३४ निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च ।
शरीरं श्रद्धा दक्षिणाश्रद्धा चा नु प्राविशन् ॥ २२
३५ विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम् ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः ॥ २३
३६ आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश् च ये ।
हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन् ॥ २४
३७ आलापाश् च प्रलापाश् चाभीलापलपश् च ये ।
शरीरं सर्वे प्राविशन्नायुजः प्रयुजो युजः ॥ २५
३८ प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश् च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ् मनः शरीरेण त ईयन्ते ॥ २६
३९ आशिषश्च प्रशिषश् च संशिषो विशिषश्च याः ।
चित्तानि सर्वे सङ्कल्पाः शरीरमनु प्राविशन् ॥ २७
३२४० आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः ।
गुह्याः शुक्रा स्थूला अपस् ता बीभत्सावसादयन् ॥ २८

३२२७ [उत्तर—] महती सन्धान-शक्ति ईश्वर ही सिर-हाथ-मुख-जिह्वा-गरदन-पीठ के मोहरे इन सब को खाल से ढँक कर जोड़ता है। १५

२८ बड़ी जोड़नेवाली शक्ति से जोड़े गये शरीर में जब वह शयन करती है तो जिससे यह सदा चमकता है उस रंग को इस में कौन भरता है ? १६

२९ (उत्तर—) सब देव [illegible] शक्ति जगाते हैं, इसे यती परमात्मा को ईश्वर जानता सती प्रकृति-वधू जान लेती है, वह इसमें रंग भरती है। १७

३० जब त्वष्टा सूर्य का उत्कृष्ट पिता त्वष्टा परमात्मा शरीर में छिद्र बनाता है तब इन्द्रियादि मरणधर्मा शरीर को घर बनाकर पुरुष में प्रविष्ट होते हैं। १८

३१ उसके पीछे स्वप्न-तन्द्रा-कष्ट-पाप नामक-देव (व्यवहार) -बुढ़ापा-गंजापन-केशों की सफेदी शरीर में प्रवेश करते हैं। १९

३२ चोरी-दुष्कृत्य-वर्जनीय दुराचाह-सत्य-यज्ञ-यश-बड़प्पन-बल-क्षात्रशक्ति और ओज शरीर में पीछे प्रविष्ट होते हैं। २०

३३ समृद्धि और निर्धनता, दान और जो कंजूसियाँ हैं, सब भूख और सब प्यासें शरीर में पीछे प्रविष्ट होती हैं। २१

३४ निन्दाएँ और कीर्तियाँ, और हाँ तथा नहीं यह, और श्रद्धा-दक्षिणा-अश्रद्धा शरीर में पीछे प्रविष्ट होती हैं। २२

३५ विद्याएँ और अविद्याएँ तथा अन्य जो उपदेश-योग्य हैं, और अ॰ वं—ऋचाएँ-साम-यजुः शरीर में प्रवेश करते हैं। २३

३६ आनन्द-विनोद-हर्ष-प्रसन्नता-उत्सवों के आनन्द-हँसी-नृत्त-नर-नारियों के इष्ट-सुख-इच्छाएँ स्वच्छन्द खेल-कूद-मनोरंजन शरीर में अनुप्रविष्ट होते हैं। २४

३७ आलाप (गान) -प्रलाप-वार्तालाप-व्याख्यान-संवाद-आयोजन-प्रयोजन-योजनाएँ ये सब शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। २५

३८ प्राण-अपान-चक्षु-कान-लाभ-हानि-सुख-दुःख-व्यान-उदान-वाणी-मन वे सब शरीर के साथ गति करते हैं। २६

३९ आशीर्वाद-आशाएँ-प्रशासन-प्रबन्ध-सम्मतियाँ-सम्यक शासन-विशेष शासन-चित्तवृत्तियाँ-सब संकल्प शरीर में अनुप्रविष्ट हो जाते हैं। २७

३२४० अस्ति के(लाल-नीले रक्त)-बस्ति में भरे(मूत्र)-शीघ्रगतिक(मूत्र)-मन्दगतिक(थूक-लार-पसीना-पित्त)-छिपे हुए-शुक्र (वीर्य-रज)-स्थूल(आँख-नाक-गला से निकला-आपः(सब शरीर में फैला)- वे ८ प्रकार के जल बीभत्सु [कल्याणी-सुखी-सुबद्ध] शरीर में दिव्य शक्तियों ने रक्खे। २८

३२४१ अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन् ।
रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ २९
४२ या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः ॥ ३०
४३ सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ॥ ३१
४४ तस्माद् वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥ ३२
४५ प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विष्वङ् वि गच्छति ।
अद एकेन गच्छत्यद एकेन गच्छतीहैकेन नि षेवते ॥ ३३
३२४६ अप्सु स्तीमासु वृद्धासु शरीरमन्तरा हितम् ।
तस्मिञ्छवोऽध्यन्तरा तस्माच्छवोऽध्युच्यते ॥ ३४

अथर्ववेद काण्ड ११ प्रपाठक २५ अनुवाक ५ सूक्त ९-१०

२६ मन्त्रों का सूक्त ९ । अर्बुदि

३२४७. ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च । असीन्परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद्धृदि ।
सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥ १
४८. उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
संदृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे ॥ २
४९ उत्तिष्ठतमा रभेथामादानसंदानाभ्याम् ।
अमित्राणां सेना अभि धत्तमर्बुदे ॥ ३
५० अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्यर्बुदिः । याभ्यामन्तरिक्षमावृतमियं च पृथिवी मही ।
ताभ्यामिन्द्रमेदिभ्यामहं जितमन्वेमि सेनया ॥ ४
५१ उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।
भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परि वारय ॥ ५
५२ सप्त जातान्न्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन् ।
तेभिष्ट्वमाज्ये हुते सर्वैरुत्तिष्ठ सेनया ॥ ६
३२५३ प्रतिघ्नानाश्रुमुखी कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
विकेशी पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥ ७

३२४१ हड्डी को समिधा बनाकर उन शरीर में उन ८ आपः को बिठाया । देव (इन्द्रियाँ) वीर्य को घी बना कर पुरुष में प्रविष्ट हुए । २९

४२ जो आपः और जो देव तथा ब्रह्म के साथ जो विराट् प्रकृति है वह और ब्रह्म शरीर में तथा उस में प्रजापति (जीव) प्रविष्ट हुआ । ३०

४३ पुरुष के चक्षु को मर्त्य, प्राण को वायु विशेष स्वीकार करते हैं । फिर इसके शेष को देव अग्नि (जठराग्नि) के लिए दे देते हैं । ३१

४४ अतएव विद्वान् पुरुष परमात्मा को यह ब्रह्म मानता है । गोष्ठ में गौओं के समान इसमें सब देव शयन करते हैं । ३२

४५ जीव प्रथम मारक ईश्वर के द्वारा तीन प्रकार से विविध दशाओं में जाता है— एक से वहाँ (मोक्ष) जाता, एक से यहाँ (नीच योनि) जाता, एक से यहाँ (मनुष्य योनि में) फल भोगता है । ३३

३२४६ बढ़े हुए गीले पानी में बीच (गर्भ) में शरीर स्थित होता है, उसमें अधिष्ठाता बली जीव अधिष्ठाता है, उस पर अधिष्ठाता परमात्मा बली कहाता है । ३४

अथर्ववेद काण्ड ११ प्रपाठक २५ अनुवाक ५ सूक्त ९-१०

विषय— बाहु इषु, उत्तिष्ठ, युद्धादि, अदिते अर्बुदे तवेश्वरादि०, आदित्यो ब्रह्मणस्पतिरित्यादि०, विजयार्थेश्वर प्रार्थनाहुति०, त्रिसन्धेत्यादि युद्धादि पदार्थ विद्या —महर्षि दयानन्द सरस्वती

२६ मन्त्रों का सूक्त ९ । अर्बुदि १ लाख सेना का पति, न्यर्बुदि दस लाख सेना का पति

३२४७ हे अर्बुदि ! जो बाहु-क्षेप्यास्त्र-धनुर्धारियों के पराक्रम हैं उन्हें और जो तलवारें-फरसे-शस्त्र तथा जो हृदय में चित्त के सङ्कल्प हैं उन सब को तू शत्रुओं को दिखाने के लिए बना और विशाल महाशस्त्र और उदार भाव भी दिखला । १

४८ हे मित्र विजयी सैनिक जनो ! तुम उठो, प्रस्तुत हो जाओ । हे अर्बुदि ! जो हमारे मित्र हैं वे तेरे देखे और सुरक्षित रहें । २

४९ हे अर्बुदि-न्यर्बुदि ! तुम दोनों उठो, पकड़ने-बाँधने के द्वारा युद्ध आरम्भ करो, शत्रुओं की सेनाओं को रस्सियों से बाँध लो । ३

५० अर्बुदि नामक जो सेनापति है और उसका भी ईश जो न्यर्बुदि महासेनापति है; जिन दोनों से (युद्ध के) अन्तरिक्ष और यह बड़ी पृथिवी घेरे जाते हैं, उन दोनों सम्राट् के स्नेहियों के साथ मैं (पुरोहित और जन-प्रतिनिधि) सेना द्वारा जीते देश में जाऊँ । ४

५१ हे जीतने के इच्छुक सेनापति ! तू सेना-सहित उठ । शत्रुओं की सेना को भग्न करता हुआ भोगों (भोग्य वस्तुओं से, साँप की कुण्डलियों के समान व्यूहों) से घेर । ५

५२ हे महासेनापति ! ७ महाशस्त्रों का उत्पात दिखाता हुआ, ७ दिशाओं से शत्रुओं को घेरता हुआ, ७ राज्याङ्ग काम में लाता हुआ, ७ उदार भावों की समीक्षा करता हुआ तू उन सब से अग्नि में घी पड़ जाने पर सेना-सहित उठ । ६

३२५३ हे अर्बुदि ! तेरे प्रहार से शत्रु के मरने पर उसकी पत्नी आदि सिर-छाती पीटती हुई, अश्रुमुखी, हल्के कानों वाली; बाल बिखेरे रोयें — चिल्लायें । ७

३२५४.सङ्कर्षन्ती करूकरं मनसा पुत्रमिच्छन्ती।पतिं भ्रातरमात्स्वान् रदिते अर्बुदे तव ॥८

५५. अलिक्लवा जाष्कमदा गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ।
ध्वांक्षाः शकुनयस् तृप्यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते० [पूर्ववत्] ॥ ९

५६. अथो सर्वं श्वापदं मक्षिका तृप्यतु क्रिमिः । पौरुषेयेऽधि कुणपे० ,, ॥ १०

५७.आ गृह्णीतं संबृहतं प्राणापानान्न्यर्बुदे । निवाशा घोषाः संयन्त्वमित्रेषु समीक्षयन्०॥ ११

५८ उद्वेपय संविजन्तां भियामित्रान्त्संसृज । उरुग्राहैर्बाह्वङ्कैर्विध्यामित्रान् न्यर्बुदे ॥१२

५९ मुह्यन्त्वेषां बाहवश् चित्ताकूतं च यद्धृदि । मैषामुच्छेषि किञ्चन रदिते० ॥ १३

६० प्रतिघ्नानाः संधावन्तूरः पटूरावाघ्नानाः । अघारिणीर्विकेश्यो रुदत्यः पुरुषे हते०॥१४

६१ श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे, अन्तःपात्रे रेरिहतीं रिशां दुर्णिहितैषिणीम् ।
सर्वास् ता अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूद्धारांश्च प्र दर्शय ॥ १५

६२ खडूरेऽधिचङ्क्रमां खर्विकां खर्ववासिनीम् । य उदारा अन्तर्हिता गन्धर्वा-
प्सरसश्च ये । सर्पा इतरजना रक्षांसि ॥ १६

६३ चतुर्दंष्ट्राञ्छ्यावदतः कुम्भमुष्काँ असृङ्मुखान् । स्वभ्यसा ये चोद्भ्यसाः ॥ १७

६४ उद्वेपय त्वमर्बुदेऽमित्राणाममूः सिचः । जयांश्च जिष्णुश्चामित्राँ जयतामिन्द्रमेदिनौ॥१८

६५ प्रब्लीनो मृदितः शयां हतोऽमित्रो न्यर्बुदे।अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया ॥१९

६६तयार्बुदे प्रणुत्तानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम्।अमित्राणां शचीपतिर्मामीषांमोचि कश्चन॥२०

६७उत्कसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु।शौष्कास्यमनुवर्ततामित्रान मोत मित्रिणः॥२१

६८ ये च धीरा ये चाधीराः पराञ्चो बधिराश्च ये, तमसा ये च तूपराः अथो
बस्ताभिवासिनः । सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूद्धारांश्च प्रदर्शय ॥ २२

६९ अर्बुदिश्च त्रिषन्धिश्चामित्रान् नो वि विध्यताम् ,
यथैषामिन्द्र वृत्रहन् हनाम शचीपतेऽमित्राणां सहस्रशः ॥ २३

७० वनस्पतीन वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः । गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्य-
जनान् पितॄन् । सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूद्धारांश्च प्रदर्शय ॥ २४

१ ईशां वो मरुतो देव आदित्यो ब्रह्मणस्पतिः । ईशां व इन्द्रश्चाग्निश्च धाता
मित्रः प्रजापतिः । ईशां व ऋषयश्चक्रुरमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥ २५

७२ तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत संनह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम् ॥ २६

१२५४ हे अर्बुदि ! तेरे नाग-समान डसने और विनाश करने पर— (मन्त्र १४ तक)
कार्यकर्ता-हाथ को खींचती, मन से पुत्र-पति-भाई और अपनों को चाहती हुई रिपु-नारी रोए। ८
५५ भौंरों के समान उत्तेजित-मस्त गिद्ध-बाज-कौए-शक्तिशाली पक्षी शत्रुओं पर तृप्त हों, तू देख। ९
५६ और कुत्ते के समान पैर वाले सब पशु-मक्खियाँ-कीड़े पुरुषों के मरे शरीरों पर तृप्त हों। १०
५७ हे न्यर्बुदि ! तू शत्रु के प्राण-अपानों को जकड़-रोक, अमित्रों में कोलाहल-घोष उठें, तू देख। ११
५८ हे महासेनापति ! तू अमित्रों को कँपा, वे विचलित-भयभीत हों, तू बड़ी पकड़ के, जालों, वरुओं को जकड़ने वाले और बाहुओं (बाहु-समान, बाहें टेढ़ी करनेवाले) शस्त्रों से शत्रुओं को बींध। १२
५९ इनकी बाहें और जो हृदय में चित्त-सङ्कल्प हैं वे निकम्मे हों, इनका शेष कुछ न बचे। १३
६० शत्रु-पुरुष के मरने पर उनकी स्त्रियाँ दुखी, छाती-उरू-सिर पीटती, बाल नोचती-रोती दौड़ें। १४
६१ हे सेनापति ! तू शत्रुओं को दिखाने को शिकारी कुत्तों वाली; जल-नभ-चारी, नाना रूप की सेना, तथा पात्र में अन्दर बन्द, दिशाओं में फैलने वाली, घातक-पदार्थ रक्खे, हिंसक कृत्या (बम) बना और उत्पात तथा उदार विचार भी प्रदर्शित कर। १५
६२ आकाश में भेदन-मन्थन में दूर तक अधिक गति-युक्त, गर्वीली, सर्व-संज्ञक, विकृत-शब्द-कारी और जो उत्पाती-छिपी-चमत्कारी स्थल-जल-नभ-सेनाएँ, सर्प-समान विषैली, नीच राक्षसी सेनाएँ हैं उन्हें दिखला। १६
६३ चार दाढ़े (अनी) वाले, काले-लौहमय-दन्त-युक्त बाण, घड़े-समान मोटे-मुस्टण्डे-योद्धा खून-भरे मुख वाले भयानक-अतिभ्रामक बाण तथा योद्धा दिखा। १७
६४ हे सेनापति ! तू विजयेच्छु ये अमित्र-सेनाएँ कँपा। उन्हें राज-स्नेही हम दोनों जीतें। १८
६५ हे अर्बुदि ! घिरा-घायल-मरा अमित्र भूमि पर शयन करे। आग की जीभ, धुएँ की लपट वाले विजयी बाण सेना-द्वारा चलाये जावें। १९
६६ हे अर्बुदि ! उस सेना-द्वारा पराजितों में बड़े-बड़े को कर्म-पति राजा मारे, इनमें कोई न छूटे। २०
६७ अमित्रों के हृदय टूट जावें, प्राण ऊपर निकले; मुख सूख जाये, मित्रों का नहीं। २१
६८ हे अर्बुदि ! जो धीर-अधीर-भागनेवाले-बहरे-तमस्त्रास्त्र से सींग-रहित पशु-समान बलबलाते खाल-वस्त्र-कवच पहने हैं उन सब को तू शत्रुओं को दिखाने के लिए तय्यार कर और उत्पातों तथा उदार भावों का भी प्रदर्शन कर। २२
६९ हे दुष्ट-हन्ता कर्माधिपति राजन ! अर्बुदि और सर्वोच्च त्रिषन्धि सेनापति हमारे अमित्रों को ऐसा बींधें कि उनमें हम हजारों का हनन कर दें। २३
७० हे अर्बुदि ! तू वनस्पति-फल-ओषधि-लता और स्थल-जल-नभ-चारी सेनाएँ-सर्प-समान-देव-पवित्रजन-पितर सब अमित्रों को दिखाने के लिए प्रस्तुत कर तथा उदारता भी दिखला। २४
७१ हे अर्बुदि ! तेरे काटने, विनाश करने पर हम देखें कि हमारे सैनिक-देव आदित्य ब्रह्मचारी-वेद-पति-प्रधान-मन्त्री-विधाता-मित्र-प्रजारक्षक-ऋषि तुम अमित्रों पर शासन करें। २५
१२७२ हे मित्र देवजनो ! तुम उन पर शासन करते हुए उठो-तय्यार होओ। यह संग्राम जीत कर यथास्थान विशेषता से विराजो। २६

२७ मन्त्रों का सूक्त १० । त्रिषन्धि आदि

३२७३. उत्तिष्ठत संनह्यध्वमुदाराःकेतुभिःसह। सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥ १

७४ ईशां वो वेद राज्यं त्रिषन्धे अरुणैः केतुभिः सह । ये अन्तरिक्षे ये दिवि

पृथिव्यां ये च मानवाः । त्रिषन्धेस्ते चेतसि दुर्णामान उपासताम् ॥ २

७५ अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकङ्कतीमुखाः ।

क्रव्यादो वातरंहस आ सजन्त्वमित्रान् वज्रेण त्रिषन्धिना ॥ ३

७६ अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणपं बहु ।

त्रिषन्धेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे ॥ ४

७७ उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।

अयं बलिर्व आहुतस् त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ॥ ५

७८ शितिपदी सं द्यतु शरव्येयं चतुष्पदी ।

कृत्येऽमित्रेभ्यो भव त्रिषन्धेः सह सेनया ॥ ६

७९ धूमाक्षी सं पततु कृधुकर्णी च क्रोशतु ।

त्रिषन्धेः सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः ॥ ७

८० अवायन्तां पक्षिणो ये वयांस्यन्तरिक्षे दिवि ये चरन्ति ।

श्वापदो मक्षिकाः सं रभन्तामामादो गृध्राः कुणपे रदन्ताम् ॥ ८

८१ यामिन्द्रेण सन्धां समधत्था ब्रह्मणा च बृहस्पते ।

तयाहमिन्द्रसन्धया सर्वान् देवानिह हुव इतो जयत मामुतः ॥ ९

८२ बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः ।

असुरक्षयणं वधं त्रिषन्धिं दिव्याश्रयन् ॥ १०

८३ येनासौ गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः ।

त्रिषन्धिं देवा अभजन्तौजसे च बलाय च ॥ ११

८४ सर्वांल्लोकान्त्समजयन् देवा आहुत्यानया ।

बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ॥ १२

८५ ” ” ” ।

तेनाहममूं सेनां नि लिम्पामि बृहस्पतेऽमित्रान् हन्म्योजसा ॥ १३

३२८६ सर्वे देवा अत्यायन्ति ये अश्नन्ति वषट्कृतम् ।

इमां जुषध्वमाहुतिमितो जयत मामुतः ॥ १४

सूक्त १० । त्रिषन्धि आदि

३२७३ हे उदारो ! उठो, कवच पहनकर झण्डों के साथ तय्यार होओ, हे सर्प-समान, अन्य जन, राक्षस-स्वभाव सैनिको ! शत्रुओं का पीछा करो । १

७४ हे त्रिषन्धि(तीन राज्यों की सन्धि से बने वज्र-सेनापति)! मैं अरुण झण्डों के साथ तेरा शासन राज्य जानता हूं, जो अन्तरिक्ष-द्यौ-पृथिवी पर बुरे नाम के मानव हैं वे त्रिषन्धि के चित्त में रहें । २

७५ त्रिषन्धि वज्र० के द्वारा लोह-मुख, सुई-समान मुख वाले और कङ्घी-समान नाना पैने मुख के, कच्चा-मास-भक्षी, वायु-वेग-युक्त वाण शत्रुओं को लगें । ३

७६ हे स्थितिज्ञ आदित्य-समान सेनापति ! तू बहुत शब्द (युद्ध के अन्दर) रख । त्रिषन्धि की बह अच्छी हित-कारिणी व्यवस्थित सेना मुझ राजा के वश में रहे । ४

७७ हे विजयेच्छु अर्बुदि ! तू सेना-सहित उठ । तुम्हारा यह बलिदान आहुति है जो त्रिषन्धि की प्यारी है । ५

७८ प्रकाश-अन्धकार में चलने वाली, काले सांढे के चार पैरों (पहियों) वाली यह शरव्या तोप शत्रु-नाश करे । हे कृत्या, (छेदक) तू त्रिषन्धि की सेना के साथ शत्रुओं के (वध के) लिए हो । ६

७९ धुआँ-भरी आँखों वाली शत्रु-सेना गिरे, बहरे कानों वाली होकर चिल्लाए । त्रिषन्धि की सेना द्वारा जीतने पर झण्डे लाल हों । ७

८० जो कौए आदि पक्षी दिन में अन्तरिक्ष में घूमते हैं वे नीचे आयें । कुत्ते जैसे पंजों वाले पशु मक्खी-कच्चा-मास-भक्षी गिद्ध शव को नोचें । ८

८१ हे बड़े पति (त्रिषन्धि) ! तू सम्राट्-मन्त्री के साथ जो सन्धि करता है उस इन्द्र-सन्धि से मैं सब विद्वानों को बुलाऊँ कि इस ओर से जीतो, उस (शत्रु की) ओर से नहीं । ९

८२ युद्ध के अङ्गों का रक्षक बड़ा सेनापति और वेद-विज्ञान-निष्णात ऋषि असुर-नाशक शस्त्र त्रिषन्धि को सूर्य-बिजली से चलायें और यथार्थ उसका तथा सेनापति का आश्रय लें । १०

८३ जिससे वह सुरक्षित सेनापति और सम्राट् दोनों बचे रहते हैं, जिससे सूर्य-बिजली दोनों गुप्त रहते हैं उस त्रिषन्धि(३ विद्युत्-अग्नि-सूर्य-सन्धि-निर्मित)को विद्वान् ओज-बल के लिए स्वीकार करें ।११

८४-८५ विजिगीषु सैनिक इस बलिदान से सब लोकों को जीतते हैं । अथर्ववेदी वैज्ञानिक जिस असुर-नाशक वधकारी शस्त्र वज्र (तोप और वारुणास्त्र) को सींचता (बनाता) है; उससे मैं उस सेना का नाश करूँ, हे बड़े सेनापति ! मैं ओज से अमित्रों को मारूँ । १२-१३

३२८६ वे सब विद्वान् (और विजयेच्छु सैनिक अपना स्थान छोड़ कर युद्ध के लिए आयें, वे राष्ट्र-रक्षा-यज्ञ में वषट् (स्वाहा) कहकर दी गयी आहुति को खाते हैं । [बैठकर किये हवन में—स्वाहा, और खड़े होकर किये गये यज्ञ में वषट् कहकर आहुति दी जाती है । युद्ध खड़े होकर ही होता है ।] हे सैनिको ! इस आहुति का सेवन करो । इधर से जीतो, उधर (शत्रु की भूमि) की ओर से नहीं । १४

३२८७. सर्वे देवा अत्यायन्तु त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ।
सन्धां महतीं रक्षत ययाग्रे असुरा जिताः ॥ १५
८८ वायुरमित्राणामिष्वग्राण्याञ्चतु । इन्द्र एषा बाहून् प्रति भनक्तु मा शकन् प्रति-
धामिषुम् । आदित्य एषामस्त्रं विनाशयतु चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम् ॥ १६
८९ यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥ १७
९० क्रव्यादानुवर्तयन् मृत्युना च पुरोहितम् । त्रिषन्धे प्रेहि सेनया जयामित्रान्प्रपद्यस्व ॥ १८
९१ त्रिषन्धे तमसा त्वममित्रान्परिवारय । पृषदाज्यप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥ १९
९२ शितिपदी संपतत्वमित्राणामनूः सिचः । मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां न्यर्बुदे ॥ २०
९३. मूढा अमित्रा न्यर्बुदे जह्येषां वरंवरम् । अनया जहि सेनया ॥ २१
९४ यश्च कवची यश्चाकवचोऽमित्रो यश्चाज्मनि ।
ज्यापाशैः कवचपाशैरज्मनाभिहतः शयाम् ॥ २२
९५ ये वर्मिणो येऽवर्माणो अमित्रा ये च वर्मिणः ।
सर्वांस्तां अर्बुदे हतां छ्वानोऽदन्तु भूम्याम् ॥ २३
९६ ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः
सर्वानदन्तु तान् हतान् गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ॥ २४
९७ सहस्रकुणपा शेतामामित्री सेना समरे वधानाम् । विविद्धा ककजाकृता ॥ २५
९८ मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु दुश्चितं मृदितं शयानम् ।
य इमां प्रतीचीमाहुतिममित्रो नो युयुत्सति ॥ २६
२३९९ यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति विराधनम् ।
तयेन्द्रो हन्तु वृत्रहा वज्रेण त्रिषन्धिना ॥ २७

सूक्त १०, काण्ड ११ पूर्ण हुआ ।

३२८७ सब विजयेच्छु आयें; त्रिषन्धि को आहुति प्यारी है, उस बड़ी सन्धि की रक्षा करो जिससे असुर सामने जीते जाते हैं। १५

८८ वायव्यास्त्र, वायु-सेनापति शत्रुओं के क्षेप्यास्त्रों का अग्र-भाग कुण्ठित करे, विद्युदस्त्र—सम्राट् इनकी बाहें काट दे कि क्षेप्यास्त्र न फेंक सकें, सूर्यास्त्र-अर्बुद इनका अस्त्र नष्ट करे, चन्द्रमा-अस्त्र, शान्त सेनापति हम तक न पहुंचे, शत्रु को पथ-भ्रष्ट करे; घर वापस न गये का पथ खोल दे। १६

८९ [पहले ५-८-६ में आचुका है।] (हे अर्बुदि) यदि शत्रु देव-पुरों में घुस आयें, अन्न-धन को कवच बनायें, शरीर-रक्षा और मर्म-घात करके हम तक पहुंचें तो वह सब विफल कर। १७

९० हे त्रिषन्धि! तू मांस-भक्षी पशु, आग्नेयास्त्र के पीछे रहकर, मारक शस्त्र से सामने खड़े का पीछा करता हुआ सेना के साथ आगे बढ़, अमित्रों तक पहुंच और जीत। १८

९१ हे त्रिषन्धि! तू तामस नामक अस्त्र से शत्रु घेर, हवि-घी की आहुति ले थकेले जीवाणुओं के समान महान् पराक्रम से पराजित इनमें का कोई न छूटे। १९

९२ अमित्रों की उन दूरस्थ पंक्तियों पर शरव्या तोप, बिजली गिरे। हे न्यर्बुदि! अमित्रों की वे सेनाएँ आज ही बेहोश हो जाएं। २०

९३ हे न्यर्बुदि! शत्रु बेहोश हैं, इनके बड़ों-बड़ों को मार। इस सेना से मार। २१

९४ युद्ध में वाहन पर जो अमित्र लौह-कवच वाला, या कवच-रहित है वह धनुष की डोरियों और कवचों के पाशों द्वारा मारा गया युद्ध में सो जाये। २२

९५ हे अर्बुदि! जो अमित्र चर्म-कवची या अकवची हों, उन सब मरे हुओं को भूमि पर कुत्ते खाएं। २३

९६ जो रथी-अरथी-अश्वारोही-पैदल हों उन सब मरे अमित्रों को गिद्ध-बाज़-पक्षी खाएँ। २४

९७ शस्त्रों के युद्ध में हजारों मुर्दों वाली अमित्र-सेना बींधी-पीडित, उलझे बालों की सी आकृति वाली होकर सो (मर) जाए। २५

९८ जो अमित्र हमारी इस सामने जाती आहुति (सेना) से युद्ध करना चाहता है तो बाणों द्वारा मर्म-विद्ध, दुःखी-रोते कुचले-सोते [मरे] उस को पक्षी खायें। २६

३२९९ जिस का देव [विद्वान्-गतिशील-विजिगीषु सैनिक] अनुष्ठान करते हैं, जिसकी विफलता नहीं है, उस [आहुति-बलिदान] द्वारा वृत्र-हन्ता [दुष्ट-नाशक] इन्द्र [सम्राट] त्रिषन्धि वज्र [तोप, अग्नि-सूर्य-बिजली के मेल द्वारा बने शस्त्रास्त्र, स्थल-जल-वायु-सेना और सर्वोच्च सेनापति] के द्वारा शत्रु-नाश करे॥ २७

❀ यह सूक्त १०, अनुवाक ५, प्रपाठक २५, और काण्ड ११ पूर्ण हुआ। ❀

ओ३म्

अथर्ववेद काण्ड १२, सूची

प्र० अनुवाक सूक्त मन्त्र ऋषि देवता विषय छन्द महर्षि दयानन्द-कथित विषय

२६ १ १ ६३ अथर्वा पृथिवी त्रि ज पं श्र श महा न् अतिज गा आदि सत्यादिभिः पृथिवी-धारणादि पृथिवी-लक्षणानि, प्रार्थनादि, मेधाप्राप्त्यर्थ विश्वकर्मेश्वरादि पदार्थ विद्या

२ २ ५५ भृगु अग्नि, यक्ष्मा-निवारण यक्ष्मादि रोग निवारणादि अग्न्यादि पदार्थ विद्या मृत्यु-निवारणायु प्राप्त्यादि विधवा-विधानादि अग्नीश्वर प्रार्थनादि पदार्थ विद्या

२७ ३ ३ ६० यम स्वर्गौदन, अग्नि पुरुषार्थादि, शिल्पाद्यनेकसोमाद्यनेकौषधादि पदार्थविद्या

४ ४ ५३ कश्यप वशा वशा शब्दार्थादि पदार्थ विद्या ।

५ ५ ७३ अथर्वाचार्य ब्रह्मगवी धर्मोपदेशादि ब्रह्मविद्याद्यग्न्यादि दुष्टताडनादि प०

योग २५ ५ ३०४ ५ ऋषि ६ देवता पूर्वागत ३२९९ सब मन्त्र-योग ३६०३

ओ३म्

अथर्ववेद काण्ड १२

प्रपाठक २६, अनुवाक १ सूक्त १ (पृथिवी) ६३ मन्त्र

विषय– सत्यादिभिः पृथिवी-धारणादि, पृथिवी-लक्षणादि, प्रार्थनादि, मेधा-प्राप्त्यर्थ विश्व-कर्मेश्वरादि-प्रार्थना पदार्थविद्या –महर्षिः स्वामी दयानन्द सरस्वती

३३०० सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥ १
३३०१ असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥ २
२ यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥ ३
३ यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु । ४

३३०० सत्य-बृहत्(वृद्धि)-ऋत (न्याय-युक्त व्यवहार, नियम)-उग्रता[क्षात्र तेज]-दीक्षा[दृढ़ता संकल्प]-तप-ब्रह्म [ईश्वर-वेद-अन्न]-यज्ञ [श्रेष्ठतम कर्म, ५ महायज्ञ] ये ८ गुण-कर्म पृथ्वी को धारण करते हैं । वह हमारे भूत-भविष्य की पालक पृथ्वी हमारे लिए बड़ा स्थान करे [दे] । १

३०१ मानवों की अल्प भी असम्बद्धता को हटानेवाली जिसके उच्च-नीच-सम स्थल हैं जो नाना-शक्ति-युक्त औषध [दवाई-अन्न] धारण करती है वह पृथ्वी हमें समृद्ध-रूफल करे । २

२ जिसमें समुद्र-नदी-जलाशय हैं, कृषक अन्न उत्पन्न करते हैं, प्राण वाला-सचेष्ट संसार तृप्त होता है, वह भूमि हमें सब खाद्य-पेय दे । ३

३ जो पृथ्वी की ४ दिशाएँ हैं, जहाँ मनुष्य खेती कर अन्न उत्पन्न करते हैं, जो प्राणी-संसार को पालती है वह भूमि हमें गौ-अन्न से समृद्ध करें । ४

४ यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥ ५
५ विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥ ६
६ यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ७
७ यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः । यस्या हृदयं
परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः । सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥ ८
८ यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ९
९ यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे । इन्द्रो यां चक्र आत्मने-
ऽनमित्रां शचीपतिः । सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥ १०
१० गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु । बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्व
रूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् । अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥ ११
११ यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः । तासु नो धेह्यभि नः
पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः । पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥ १२
१२ यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः । यस्यां मीयन्ते
स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् । सा नो भूमिर्वर्धयद्वर्धमाना ॥ १३
१३ यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन ।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥ १४
१४ त्वज्जातास् त्वयि चरन्ति मर्त्यास् त्वं बिभर्षि द्विपदस् त्वं चतुष्पदः । तवेमे पृथिवि
पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥ १५
१५ ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥ १६
१६ विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥ १७
१७ महत् सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे । महांस्त्वेन्द्रो
रक्षत्यप्रमादम् । सा नो भूमे प्ररोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ १८
१८ अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु । अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥ १९

३३०४ जिनमें श्रेष्ठ नेता विशेष कार्य करते हैं, विद्वान्-नैतिक दुष्टों का दमन करते हैं, जो गौ-अश्व-पक्षियों का विशेष स्थान है वह पृथिवी हमें ऐश्वर्य-तेज दे। ५

५ विश्व-पोषक, धन-धारक, सबका आधार, अन्दर सोना रखने वाली; जगत् को बसाने वाली नर-हितकारी अग्नि धारण करती हुई, इन्द्र (सूर्य-बिजली-राजा-जीव) को श्रेष्ठ मानने वाली भूमि हमें धन-बल दे। ६

६ जिस भूमि-पृथिवी की निद्रा-आलस्य-रहित विद्वान् सदा रक्षा करते हैं वह हमें मधुर-प्यारी वस्तुएँ दे और तेज से पुष्ट करे। ७

७ जो पहले जल-समान द्रव-सलिल-रूप थी, जिसे मनन-शील प्रज्ञाओं से अनुकूल बनाते हैं, जिस पृथिवी (के मनुष्यों) का अमर-हृदय परम-रक्षक परमात्मा में सत्य से ढँका है वह भूमि हमें उत्तम राष्ट्र में तेज-बल धारण कराये। ८

८ जिसमें आप: [जल-आप्त] सर्वत्र गमन करते, समान रूप से वर्ष भर दिन-रात प्रमाद-रहित बहते-चलते हैं वह बहुत धारा वाली भूमि दूध आदि दुहाए [दे] और वर्च से सींचे। ९

९ जिसे दो अश्वी [दिन-रात, सूर्य चन्द्र, अध्यापक-उपदेशक, राजा-सेनापति, नापन-अधिकारी] नापते हैं, जिसमें विष्णु [सूर्य] करण फेंकता है, कर्मों का स्वामी इन्द्र [सम्राट्-जीवात्मा] जिसे अपने हेतु शत्रु-रहित करते हैं वह भूमि-माता मुझ पुत्र के लिए दूध आदि दे। १०

१० हे पृथ्वी! तेरे बरफ-ढँके पहाड़-पहाड़ियाँ-वन सुखद हों। भूरी-पोषक; काली-कृषि-योग्य आकर्षक, अनाज-युत; इन्द्र [परमात्मा-सम्राट्-सूर्य-वायु-बिजुली-मेघ] से गुप्त, दृढ़, उत्पादक पृथ्वी का मैं अपराजित-अहिंसित-अक्षत होकर अधिष्ठाता रहूँ। ११

११ हे पृथिवी! जो तेरा मध्य और अन्दर केन्द्रीय भाग है, जो अन्नादि तुझ से उत्पन्न होतेहैं, उनमें हमें स्थापित कर, हमें पवित्र कर, भूमि माता है, मैं पृथिवी का पुत्र हूं, मेघ पिता है, वह हमें पाले। १२

१२ विश्वकर्मा कारीगर जिस भूमि पर वेदि बनाते, जिस पर यज्ञ फैलाते हैं, जिस पृथिवी पर आहुति से पहले ऊँचे-चमकीले यूप-स्तम्भ निर्मित होते हैं वह बढ़ती हुई हमें बढ़ाये। १३

१३ हे पृथिवी, पहले से तय्यार; शीघ्रता-छेदन वाली हमारी भूमि! जो हमसे द्वेष करे, हमपर आक्रमण करे, जो मनसे, वधकारी शस्त्र से हमें दास बनाये उसे वशमें कर, नष्ट कर। १४

१४ हे पृथिवी! तुझ से उत्पन्न मनुष्य तुझ पर विचरते हैं, तू दुपायों-चौपायों को धारण करती है, तेरे ये विस्तृत ५ मानव (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-पापी) हैं जिनके लिए उदय होता हुआ सूर्य किरणों से अमर ज्योति को फैलाता है। १५

१५ हे पृथिवी! वे सब हमारी प्रजाएँ मिलकर तुझे दुहें, तू मेरे लिए वाणी की मधुरता दे। १६

१६ सब मनोरथपूरक, ओषधियों की माता, दृढ़, धर्म से धारित, कल्याण-कारिणी; सुखद, विस्तृत भूमि की हम सब दिन सेवा करें। १७

१७ हे भूमि! तेरा स्थान बड़ा, तू बड़ी, तेरे वेग-कम्पन-संचलन महान् हैं; महान् इन्द्र (परमात्मा सूर्य-वायु-बिजली-मेघ-राजा) प्रमाद-रहित होकर तेरी रक्षा करता है, वह तू हमें स्वर्ण-समान रूप में प्रकाशित कर, कोई हम से द्वेष न करे। १८

३३१८ अग्नि भूमि-ओषधियों में है; अग्नि को जल धारण करते हैं, अग्नि पत्थरों-मेघों में; अग्नि पुरुषों में अन्दर है, अग्नियाँ गौओं-अश्वों में हैं। १९

३३१६. अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम् ।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥ २०
२० अग्निवासाः पृथिव्यसितज्ञूस् त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥ २१
२१ भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरङ्कृतम् । भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन
मर्त्याः । सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥ २२
२२ यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः ।
यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २३
२३ यस् ते गन्धः पुष्करमा विवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे ।
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २४
२४ यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः । यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत
हस्तिषु । कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्माँ अपि सं सृज मा० [पूर्ववत्] ॥ २५
२५ शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता ।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥ २६
२६ यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ॥ २७
२७ उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥ २८
२८ विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि [illegible] म भूमे ॥ २९
२९ शुद्धा न आपस् तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।
पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि ॥ ३०
३० यास् ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात् ।
स्योनास् ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥ ३१
३१ मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥ ३२
३३३२ यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ३३

३ १९ अग्नि (सूर्य-रूप) आकाश में तपता है। सूर्य से आकर अग्नि तपाता है। उसका विशाल अन्तरिक्ष है। आहुति को ले जाने वाले, घी के प्रिय अग्नि को मनुष्य दीप्त करते हैं। २०

२० अग्नि से ढँकी, साथ रहने वाली पृथिवी बन्धन-रहित कर्म को जताने वाली है। वह मुझको तेजस्वी-तीक्ष्ण बनाये। २१

२१ इसी भूमि पर मनुष्य देवों के लिए यज्ञ करते और सुन्दर हव्य देते हैं। भूमि पर मरण-शील मनुष्य अपनी धारण-शक्ति और अन्न से जीते हैं। वह हमारी भूमि हमें प्राण-आयु दे। पृथिवी मुझको वृद्धावस्था तक प्रशंसा-योग्य करे। २२

२२ हे पृथिवी! जो तेरा गन्ध-गुण है जिसे औषधियाँ-जल धारण करते हैं, जिसे गन्धर्व-अप्सरा (पृथिवी-जल-नभ के प्राणी) धारण करते हैं उससे मुझको सुगन्धित कर, कोई मुझसे द्वेष न करे। २३

२३ हे पृथिवी! जो तेरा गन्ध पुष्टिकर जल-कमल में प्रविष्ट है, जिसे सूर्य-प्रभा के विशेष वहन में अमर शक्तियाँ सृष्टि के आरम्भ में धारण करती हैं उससे० (पूर्ववत्)। २४

२४ हे भूमि! जो तेरा गन्ध (अंश) पुरुषों में; ऐश्वर्य-दीप्त स्त्री-पुरुषों में, जो वीर अश्वों-मृगों-हाथियों में है, जो कान्ति कन्या में रहती है उससे हम भी युक्त करें। २५

२५ भूमि शिला-पत्थर-धूल रूप है, वह उत्तम रीतिसे धारित होकर सुरक्षित रहती है। अपने वक्ष में सुवर्ण रखनेवाली उस पृथिवी के लिए मैं आदर करूँ। २६

२६ जिसमें सब प्रकार के वृक्ष, वनस्पतियों से उत्पन्न पदार्थ दृढ़ होकर स्थित हैं उस विश्व-धारक, वीरों से धारित पृथिवी को हम अच्छा कहें। २७

२७ उठते बैठते-खड़े-चलते हुए हम भूमि पर दायें-बायें पैरों से न डगमगायें, व्यथित न हों, किसी को व्यथित न करें। २८

२८ विशेष खोजने-योग्य, क्षमा-शील, ब्रह्म से बढ़ायी गयी विस्तार-युक्त भूमि का मैं वर्णन करता हूं। हे भूमि! ऊर्जा-पोषण-अनेक अन्न-घी-धारक तुझ पर हम बैठें-रहें। २९

२९ हे पृथिवी! शुद्ध जल हमारे शरीर के लिए मुझ पर बहे, जो हमारा नाशक-कष्ट-प्रद व्यवहार है उसे हम अप्रिय दुष्ट पर डालें। मैं अपने को पवित्रता से शुद्ध करूँ। ३०

३० हे भूमि! जो तेरी पूर्व-उत्तर-नीचे (दक्षिण)-पीछे (पश्चिम) दिशाएँ हैं वे चलते हुए हमें सुख-दायिनी हों, भुवन में आश्रित मैं पतित न होऊँ। ३१

१ हे भूमि! हमें पीछे-आगे-ऊपर-नीचे से न ढकेले। हमें कल्याण-कारिणी हो, शत्रु-लुटेरे हमें न मिलें, वध-कारी शस्त्र दूर कर। ३२

३२३२ हे भूमि! जबतक मैं आनन्द-दायक सूर्य की सहायता से तुझे देखूं तबतक मेरी दर्शन-शक्ति उत्तरोत्तर वर्षों तक नष्ट न हो। ३३

३३३२ यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् । उत्तानास्त्वा प्रतीचीं
यत् पृष्टीभिरधिशेमहे । मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ।। ३४
३४ यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु । मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ।। ३५
३५ ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद् धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस् ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ।। ३६
३६ याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वन्तः ।
परा दस्यून्ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम्। शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ।। ३७
३७ यस्यां सदो-हविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते । ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना
यजुर्विदः । युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ।। ३८
३८ यस्यां पूर्वे भूतकृतः ऋषयो गा उदानृचुः । सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ।। ३९
३९ सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनङ्कामयामहे । भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ।।४०
४० यस्याङ्गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलवाः । युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां
वदति दुन्दुभिः । सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ।।४१
४१ यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ।। ४२
४२ यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ।। ४३
४३ निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ।। ४४
४४ जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ।। ४५
४५ यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये ।
क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोपसृपद् यच्छिवं तेन नो मृड ।। ४६
४६ ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे ।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ।। ४७
३३४७ मल्वं बिभ्रती गुरुभृत् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ।। ४८

३३३३ हे मात् भूमि, जब मैं सोता हुआ दाहिनी और बायीं करवट बदलूँ, जब हम चित्त होकर अपनी पसलियां से तुझे नीचे दबाकर सोएँ तब सबको सुलाने वाली तू हमारा हिंसा मत कर। ३४

३४ हे भूमि ! जो कुछ तेरा भाग मैं खोदूँ वह भी शीघ्र उग आये। हे विशेष रूप से खोदने योग्य मैं तेरे मर्म और हृदय को हानि न पहुँचाऊँ [जमीन को बहुत गहरा न खोदूँ और मनुष्यों के मर्म स्थल और हृदय पर आघात न करूँ।] ३५

३५ हे विस्तार-युक्त भूमि ! ग्रीष्म-वर्षा-शरद्-हेमन्त-शिशिर-वसन्त ६ ऋतुएँ, वर्ष-दिन-रात तेरे लिए ईश्वर ने बनायी हैं वे हमें सुख दें। ३६

३६ जो कुटिलों से डरती पृथिवी पवित्र-कर्त्री है; जिसमें पानी में विद्युत् है; वह देव-नाशक दस्युओं को नष्ट करती, इन्द्र को वरण करती; दुष्ट का त्याग करती हुई वीर को वरती है। ३७

३७ जिसमें सदन; हव्य-भण्डार और यूप बनते, अध्वर्यु-ब्रह्म ऋचा-सामों से उपासना करते हैं, ऋत्विज इन्द्र को सोम पिलाते हैं। ३८

३८ जिस पर श्रेष्ठ; प्राणियों को ज्ञानी बनाने वाले मन्त्र-द्रष्टा वाणी बोलते हैं, शरीर के विधाता (? ज्ञान-इन्द्रिय-मन-बुद्धि सत्र-यज्ञ-तप के साथ वेद-वाणी बोलते हैं। ३९

३९ वह हमारी भूमि हमें वह धन दे जो हम चाहते हैं; धनी पीछे चले; पश्चात् नेता हो। ४०

४० जिसमें विविध क्रीडा-प्रेरणा वाले मनुष्य गाते-नाचते, युद्ध करते-ललकारते हैं, दुन्दुभि गाजती है वह हमारी भूमि शत्रुओं को दूर भगाये, मुझे शत्रु-रहित करे। ४१

४१ जिसमें अन्न धान(चावल)-जौ होते; ये ५ खातिया, ५ कारीगर हैं; मघ की पत्नी, वर्षा से स्निग्ध उस भूमि के लिए आदर हो। ४२

४२ जिसके नगर श्रेष्ठ कारीगरों के बने; खेत में अनेक कर्म होते; सब को अन्दर रखने वाली उस पृथ्वी को प्रजा का रक्षक स्वामी हर दिशा में रमणीय करे। ४३

४३ खानों में अनेक प्रकार के खजाने रक्खे पृथ्वी मुझे धन-रत्न-सोना दे; धनदा देवी हमें धन देती, प्रसन्न होकर वह पोषण करे। ४४

४४ अनेक प्रकार की भाषा-कर्तव्य वाली जनता का एक घर के समान रखती पृथिवी मेरे लिए अटल, न कूदती गो के समान धन को हजारों धाराएँ दुहाये (दें)। ४५

४५ हे पृथिवी ! जो तेरा भरमाया साँप-बिच्छू-भौंरा काटने पर प्यास लगाने वाला, शीत से ठिठुरा गुफा में सोता है, वर्षा में प्रसन्न कीड़ा यत्र-तत्र चलता है वह रेंगता हुआ हमतक न आये, जो कल्याण-कारी है उससे हमें सुख दे। ४६

४६ मनुष्यों के चलने के जो तेरे अनेक पथ है, जाने के लिए रथ-गाड़ी के मार्ग है, जिनसे भद्र-पापी दोनों चलते हैं उसे हम जीतें, जो शत्रु-डाकू-रहित कल्याण-पथ है इससे हमें सुखी कर। ४७

४७ मलीन पापी और गुरु को धारण करती, भले-बुरे के निधन (समूह-मौत) को सहने वाली; वराह (मेघ) से सङ्गत, सुन्दर किरणों वाले सूर्य के लिए विशेष गति करती है। ४८

३३४८ हे पृथिवी ! जो तेरे आरण्य पशु, वनवासी मृग पुरुष-भक्षी शेर-बाघ घूमते हैं, क्रोधी [illegible] कुटिल-राक्षसों-राक्षसों को हम से अलग कर। ४९

३३४८ ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति ।
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् ॥ ४९
४९ ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः। पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद्भूमे यावय
५० या द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् ।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥ ५१
५१ यस्यां कृष्णमरुणञ्च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि ।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनि धामनि ॥ ५२ ।
५२ द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षंच मे व्यचः। अग्निःसूर्य आपो मेधा विश्वेदेवाश्च सं ददुः॥
५३ अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्। अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः॥
५४ अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् ।
आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५५
५५ ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम्। ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥ ५६
५६ अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य आक्षियन् पृथिवीं यादजायत
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥ ५७
५७ यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ॥ ५८
५८ शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥ ५९
५९ यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम् ।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन् मातृमद्भ्यः ॥ ६०
६० त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
यत्त ऊनं तत्त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ॥ ६१
६१ उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥ ६२
६२ भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥ ६३

इति पृथिवी-सूक्तं समाप्तम् ॥

३३४९ हे भूमि ! जो गन्धर्व (हिंसा के लिए घूमनेवाले), अप्सर (विरुद्ध चलनेवाले), कंजूस-कुतर्की हैं इन सब पिशाच-राक्षसों को हम से अलग कर । ५०

५० जिस पर दुपाये-पक्षी हंस-गरुड़-गिद्ध-कौए आदि आते हैं, आकाशस्थ वायु धूल उड़ाती पेड़ गिराती चलती है; वायु के आने-जाने से आग-लू चलती है । ५१

५१ जिस भूमि पर काले-चमकीले रात-दिन परस्पर मिलते हैं वह वर्षा से लिपटी-ढकी पृथ्वी हमें प्रिय स्थानों में भद्र बुद्धि से युक्त करे । ५२

५२ यह द्यौ-पृथिवी-अन्तरिक्ष-आकाश-अग्नि-सूर्य-जल-सब विद्वान् मुझे मेधा दें । ५३

५३ मैं भूमि पर सहनशील-श्रेष्ठ-जयी, सबका हराने वाला, हर दिशा में शत्रु-हन्ता होऊँ । ५४

५४ हे देवी ! जब पहले तू विद्वानों के कथन से महत्त्व पाती है तब तुझे ऐश्वर्य मिलता है, तू चारों दिशाओं को समर्थ बनाती है । ५५

५५ भूमि पर जो ग्राम-जङ्गल-सभा-संग्राम-समितियाँ हैं इनमें तुझे अच्छा कहें । ५६

५६ जैसे घोड़ा धूल झाड़ता है वैसे यह पृथिवी जब से बनी तब से उन्हें कंपाती- झाड़ती है जो इसका नाश करते हैं, यह मन्द-हृष्ट-आगे जानेवाली, भुवन-रक्षक, वनस्पति-ओषधि-धारक है । ५७

५७ मैं जो देखूँ-कहूं वह मधुर हो; मुझको सब प्यार करें; मैं तेजस्वी-शक्त हूं; अन्य क्रोधी जन का नाश करूँ । ५८

५८ शान्त-सुगन्धित-सुखद-अन्नयुक्त-जलपूर्ण-विस्तृत भूमि मुझे दूध के साथ वाणी बोले । ५९

५९ समुद्र में जल के अन्दर प्रविष्ट जिसे परम त्मा-शिल्पी अन्न से अनुकूल बनाता है जो भोजन-युक्त-पेय अन्दर छिपा रक्खा है वह माता वाले जीवों के भोग में प्रकट हुआ । ६०

६० हे पृथिवी ! उपजाऊ तू जनों की माता के समान प्रसिद्ध इच्छा-पूरक है । तुझ में जो कमी होती है उसे ऋत का पहला जनक प्रजापति पूरी करता है । ६१

६१ हे पृथिवी ! तेरे पास स्थित यक्ष्मा पदार्थ हमारे लिए नीरोग और पीड़ा-रहित हों । हमारी आयु लम्बी हो । हम ज्ञानी बनकर तेरे लिए अपना बलिदान करने वाले हों । ६२

३३६२ हे मातृभूमि ! मुझे कल्याण-बुद्धि से युक्त प्रतिष्ठित कर । सूर्य से अच्छी संगत होकर हे कवि ! तू मुझे शोभा-सम्पत्ति से युक्त कर । ६३

❀ इति पृथिवी-सूक्तं समाप्तम् ❀

अथर्व वेद काण्ड १२ प्रपाठक ६ अनुवाक २ सूक्त २

२३६३ नडमारोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि ।
यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस् तेन त्वं साकमधराङ् परेहि ॥ १

६४ अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च ।
यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युञ्च निरजामसि ॥ २

६५ निरितो मृत्युं निर्ऋतिं निररातिमजामसि ।
यो नो द्वेष्टि तमद्ध्यग्ने अक्रव्याद्यमु द्विष्मस्तमु ते प्रसुवामसि ॥ ३

६६ यद्यग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र इमङ्गोष्ठं प्र विवेशान्योकाः ।
तं माषाज्यङ्कृत्वा प्रहिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन् ॥४

६७ यत् त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते ।
सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस् त्वोद्दीपयामसि ॥ ५

६८ पुनस् त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।
पुनस् त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ ६

६९ यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्ममिन्धां परमे सधस्थे ॥ ७

७० क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ८

७१ क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम् ।
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितॄणां लोकेऽपि भागो अस्तु ॥ ९

७२ क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं प्र हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः ।
मा देवयानैः पुनरागा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥ १०

७३ समिन्धते सङ्कसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति ॥ ११

७४ देवो अग्निः सङ्कसुकः दिवस्पृष्ठान्यारुहत् । मुच्यमानो निरेणसोऽमोगस्माँ अशस्त्याः ॥ १२

७५ अस्मिन्वयं सङ्कसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे । अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥

७६ सङ्कसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः । ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद्दूरमनीनशन् ॥ १४

७७ यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोष्वजाविषु । क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः ॥ १५

७८ अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा । निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः ॥ १६

अनुवाक २, सूक्त २ का विषय— यक्ष्मादि रोग निवारणादि, अग्न्यादि पदार्थविद्या, मृत्यु-निवारण आयुः प्राप्त्यादि, विधवा-विधानादि, अग्नीश्वर-प्रार्थनादि पदार्थ विद्या।

—महर्षिः स्वामी दयानन्द सरस्वती

५५ मन्त्रों का सूक्त २। अग्नि और राजा।

३३६३ (हे आग!) तू नड(नड़े, नरकुल)पर दीप्त हो, तेरा यहाँ दर्शन न हो, यह सीसा(नाग-सिक्का लैड-ग्लम्यम) तेरा भाग है (इसकी भस्म औषध बना)। गौओं-पुरुषों में यक्ष्मा हो उस के साथ नीची हल्की होकर दूर हो [सीस-भस्म यक्ष्मा की औषधि है (वनस्पति- चन्द्रोदय)]। १

६४ पाप-प्रशंसा और पाप करने-बार बार करने से पैदा हुए सभी यक्ष्मा और मृत्यु को हम उस सीसे से यहाँ से निकाल दें। २

६५ हम यहाँ से मौत-कष्ट-कंजूसी निकाल दें, हे कच्चा मांस न खाने वाली आग! जो हमसे द्वेष करता है उस यक्ष्मा को खा, जिस से हम द्वेष करते हैं उसे तेरे पास भेजते हैं। ३

६६ यदि मांस-भक्षी आग या अन्य स्थान का बाघ (रोग) इस गाठ (शरीर) में घुस आये तो माषाज्य (उड़द-घी) से दूर करूँ, वह जल की बिजली में जाये (उनसे दूर हो)। ४

६७ पुरुष के मरने पर क्रुद्ध यदि मन्यु से तुझे छोड़ देते हैं हे आहवनीयाग्नि! वह तेरा अच्छा कार्य है, हम तुझे फिर दीप्त करें। ५

६८ हे आग! आदित्य-रुद्र-वसु-वसु-नेता ब्रह्मा-ब्रह्मणस्पति वेदाचार्य १०० वर्ष की बड़ी आयुके लिए तेरा फिर आधान करें। ६

६९ यदि दूसरे जातवेदस अग्नि को देखता हुआ यह दूसरा मांस-भक्षी अग्नि और डाकू हमारे घर में घुसे तो उसे पितरों के यज्ञ [भोजन, शव-दाह, रक्षक-सङ्गठन] के लिए दूर ले जाऊँ, वह परम स्थान [रसोई-श्मशान-कारागार] में बटलोई गरम करे। ७

७० मांस-भक्षी अग्नि को दूर करूँ, पापी यम [मौत-न्यायाधीश] के राज्य में जाये, वहाँ यह दूसरा जातवेदा [यज्ञकी आग, विद्वान्] जानता हुआ हव्य को ले जाये। ८

७१ इच्छुक मैं वज्र से जनों को निश्चल करने वाली मांस-भक्षी आग [चिता-चिन्ता-डाकू] को नष्ट करूँ, विद्वान् मैं गार्हपत्य [पाकाग्नि, गृहपति के कर्म] से उसे वश में करूँ, उसका भाग पितरों के लोक [श्मशान और गृहाश्रम] में हो। ९

७२ मैं उछलती मांस-भक्षी आग को पितरों के गये यानों से दूर हटाता हूं, वह तू देव-यानों से फिर यहीं न आ; पितरों में बढ़ और जाग। १०

७३ शुद्ध होते हुए, पवित्र-शोधक पुरुष कल्याण के लिए संकसुक (आग-शासक) को दीप्त करते हैं, वह समिद्ध आग मल-पाप-क्रिमि को छुड़ाती और पवित्रता से पवित्र करती है। ११

७४ देव संकसुक आग द्यौ की पीठों पर चढ़ती है, छूटकर निष्पाप वह हमें पाप से बचाती है। १२

७५ हम इस संकसुक आग में पाप दूर करें, शुद्ध यज्ञिय हों, वह हमारी आयु बढ़ाये। १३

७६ वे वे संकसुक-विकसुक(व्यक्ति; वैद्य)-निरन्तर ज्ञानी-उपदेशक समान वेदसे यक्ष्मा दूर नष्ट करें। १४

७७ जो हमारे अश्व-गौएं-गो-बकरी-भेड़ों में जन-सन्तापक मांसभक्षी आग(यक्ष्मा)हो उसे हटायें। १५

७८ तुझ मांस-भक्षी जीवन-नाशक आग यक्ष्मा को अन्य पुरुष-गौ-अश्वों से दूर रक्खें। १६

३३७९ यस्मिन देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत ।
तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह ॥ १७

८० समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः ।
अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ १८

८१ सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वमग्नौ सङ्कुसुके च यत् ।
अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुप बर्हणे ॥ १९

८२ सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपवर्हणे ।
अव्यामसिक्न्यां मृष्ट्वा शुद्धा भवत यज्ञियाः । २०

८३ परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस् त एष इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमीहेमे वीरा बहवो भवन्तु ॥ २१

८४ इमे जीवा वि मृतैरावबृत्रन्नभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ २२

८५ इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस् तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ २३

८६ आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति स्थ ।
तान् वस् त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः सर्वमायुर्नयतु जीवनाय ॥ २४

८७ यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम् ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥ २५

८८ अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवामुत्तरेमाभि वाजान् ॥ २६

८९ उत्तिष्ठता प्रतरता सखायो ऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम् ।
अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभिवाजान् ॥ २७

९० वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धाः भवन्तः शुचयः पावकाः ।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम । २८

९१ उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तो ऽवरान् परेभिः ।
त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन ॥ २९

९२ मृत्योः पदं योपयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आसीना मृत्युं नुदता सधस्थे ऽथ जीवासो विदथमा वदेम ॥ ३०

३३७९ हे अग्नि(विद्वान्-नेता) ! जिसमें विद्वान् तथा साधारण जन अपने को शुद्ध करते हैं उस यज्ञ में शुद्ध होकर घी (हवन)से ईश-स्तुति करता हुआ तू मोद को पा । १७

८० हे आहुति पाये दीप्त अग्नि ! वह तू हमें न छोड़, यहीं चिरकाल सूर्य देखने के लिए सदा चमक ।१८

८१ सिर की वेदना को सीसा-भस्म, नड-आग और रक्षक सूर्य में तथा काली मेढ़ के दूध और सिरहाने के तकिया में धो डालो (दूर करो) । १९

८२ सीसा में मल(यक्ष्मा), तकिया, काली मेढ़, काले धब्बेदार सूर्य में सिर-पीडा को धोकर शुद्ध याज्ञिक बनो । २०

८३ हे मौत ! तू उस पथ पर दूर जा जो तेरा देवयान से भिन्न पथ है । मानो देखती-सुनती हुई तुझ से कहता हूं कि यहाँ ये वीर बहुत हों । २१

८४ ये जीव जीवितों से घिरे हैं, आज हमारी विद्वत्-सभा कल्याण-कारिणी हो, हम नृत्य-हास्य के लिए आगे बढ़ें, सुवीर हम ज्ञान-चर्चा करें । २२

८५ मैं (ईश्वर) जीवों मनुष्यों के लिए (७) मर्यादा बाँधता हूं, इनमें कोई इसके बाहर न जाये कर्मों को करते हुए सौ वर्ष तक जीते हुए पुरुषार्थ से मौत को दूर रखो । २३

८६ जितने हो, एक के पीछे दूसरा प्रशंसनीय बुढ़ापा तक परस्पर यत्न करते हुए आयु-शिखर पर चढ़ो; उत्तम जन्म-दाता, प्रीति-युक्त शिल्पी ईश्वर उन तुम्हें जीने के लिए पूरी आयु तक ले जाय ।२४

८७ जैसे दिन-रात के पीछे दूसरा दिन-रात, ऋतुओं के साथ ऋतुएँ होती हैं, पहले को अगला नहीं छोड़ता ऐसे ही हे विधाता ! इनकी आयु समर्थ बना । २५

८८ पथरीली जीवन-नदी बहती है, हे सखाओ ! वीर बनो; तैर जाओ, जो दुःख-दायी हों उन्हें यहीं त्यागो ; हम नीरोग अन्न लक्ष्य में रख कर पार जाएँ । २६

८९ हे सखाओ ! यहां-तैरो, यह पथरीली नदी बह रही है, यहीं छोड़ दो जो अकल्याणकारी हैं। कल्याणकारी अन्न का लक्ष्य करके हम पार जावें । २७

९० तज के लिए वैश्वदेवी औषधि का सेवन आरम्भ करो; शुद्ध होते हुए पवित्र आग-समान शुद्ध-कर्ता होओ हम सब वीर दुःखदायी चालें हटाते हुए १०० वर्ष हृष्ट रहें । २८

९१ ऋषि मन्त्र-द्रष्टा योगी ऊँचे चढ़ते वायु वाले श्रेष्ठ पथों (प्राणायामों) से नीचे के पथों को पार करते हुए, मौत के पैर हटाकर, ३ गुणित ७ = २१ पदार्थों (देखो मन्त्र १.१.१), २१ प्राणायामों की शक्ति से मौत को दूर धकेलते हैं । २९

३३९२ हे मनुष्यो ! मौत के पैर हटाते हुए, लम्बी आयु-लड़ी को धारण करते हुए आगे बढ़ो सभा में योगासन पर बैठकर हम मौत को धकेलते हुए ज्ञान-चर्चा करें । ३०

३३९३ इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्ने ॥ ३१
९४ व्याकरोमि हविषाहमेतौ ब्रह्मणा व्यहं कल्पयामि ।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥ ३२
९५ यो नो अग्निः पितरो हृत्स्वन्तराविवेशामृतो मर्त्येषु ।
मय्यहं तं परिगृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् ॥ ३३
९६ अपावृत्य गार्हपत्यात्क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा। प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् ॥ ३४
९७ द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या। अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः ॥ ३५
९८ यत्कृषते यद्वनुते यच्च वस्नेन विन्दते। सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः ॥ ३६
९९ अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे। छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद्यं क्रव्यादनुवर्तते। ॥ ३७
३४०० मुहुर्गृध्यैः प्र वदत्यार्तिं मर्त्यो नीत्य। क्रव्याद्यानग्निरन्तिकादनु विद्वान्वितावति ॥ ३८
३४०१ ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः। ब्रह्मैव विद्वानेष्यो यः क्रव्यादं निरादधत् ॥ ३९
२ यद्रिप्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम्। आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः सङ्कसुकाच्च यत् ॥ ४०
३ ता अधरादुदीचीराववृत्रन् प्रजानतीः पथिभिर्देवयानैः ।
पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः ॥ ४१
४ अग्ने अक्रव्यान्निः क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह ॥ ४२
५ इमं क्रव्यादा विवेशायं क्रव्यादमन्वगात्। व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् ॥ ४३
६ अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणामग्निर्गार्हपत्य उभयानन्तरा श्रितः ॥ ४४
७ जीवानामायुः प्रतिर त्वमग्ने पितॄणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ॥ ४५
८ सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि ॥ ४६
९ इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद्दुरितादवद्यात् ।
तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ॥ ४७
१० अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद्दुरितादवद्यात् ।
आ रोहत सवितुर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम ॥ ४८
११ अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत्क्षेम्यस्तिष्ठन्प्रतरणः सुवीरः ।
अनातुरान्त्सुमनसस्तल्प बिभ्रज्ज्योगेव नः पुरुषगन्धिरेधि ॥ ४९
१२ ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा। क्रव्याद्यानग्निरन्तिकादश्व इवानुवपते नडम् ॥ ५०

३३९३ ये नारियाँ विधवा न हों, सुपत्नियाँ अञ्जन, घी से उबटन लगायें। अ.सू-रोग-रहित, सुन्दर रत्न वाली माताएँ घर में आगे चढ़ें। (एकतीस)

९४ मैं ईश्वर इन दो (पितर-साधारण) जनों को हवि से बाँटता हूं और वेद से समर्थ करता हूं। पितरों के लिए अपने धारण-योग्य अन्न, और इन अन्यों को बड़ी आयुवाला पौष्टिक अन्न देता हूं। ३२

९५ हे पितरो ! जो हमारा अमर अग्नि (ईश्वर) हम मर्त्यों में हृदयों में प्रविष्ट है उस देव को मैं अपने में पूर्णतया धारण करूँ, वह हमसे, हम उससे द्वेष न करें। (तैंतीस)

९६ गार्हपत्य से हटकर दक्षिण-ओर शवाग्नि के पास जाओ, पितर-आत्मा-वेदज्ञों- का प्रिय करो। (चौंतीस)

९७ जो मांसभक्षी आग न हटायी तो बड़े पुत्र का दुगना धन लेकर बिना वृत्ति के नष्ट करती है। ३५

९८ यदि वह न हटायी तो जो खेती-दाय-व्यापार-वेतन से मिलता वह सब मर्त्य का नहीं। (छत्तीस)

९९ क्रव्याद् (मांसभक्षी आग, चिन्ता, यक्ष्मा) जिसका पीछा करती है वह अय क्षिय तेज-रहित हो जाता है; उससे अन्न नहीं खाया जाता; वह खेती-गो-धन से वंचित हो जाता है। (सैंतीस)

३४०० क्रव्याद् अग्नि मानो जानती हुई जिसके पास रहती है वह मर्त्य कष्ट पाकर लोभियों से बार बार व्यर्थ बात करता है। (अड़तीस)

१ जब स्त्री का पति मरता है तब गृही पीड़ा से युक्त होते हैं, विद्वान् चतुर्वेदी अन्वेषणीय है जो क्रव्याद् को दूर निकाल दे। [उनचालीस]

२ जो पाप, शान्ति-नाशक बुरा कर्म हम करें या संकसुक आग [चिन्ता-यक्ष्मा] से हो उससे ये आपः [परमात्मा- आप्त और जल-चिकित्सा] मुझे छुड़ायें। ४०

३ वे आपः जानते हुए देव-यानों से नीचे से ऊपर चलते हैं। सुख-वर्धक पर्वत की पीठ पर नयी पुरानी नदियाँ बहती हैं। ४१

४ हे क्रव्याद् से भिन्न अग्नि [परमात्मा-विद्वान्-जठराग्नि]! तू क्रव्याद् को बाहर कर और देव-यज्ञ को ला। ४२

५ इस क्रव्याद् घुसा, यह उसके पीछे चला, इन २ आगों को अलग करके अमङ्गल दूर करूँ। ४३

६ गार्हपत्य आग देवों के अन्दर, मनुष्य-परिधि [रक्षक] दोनों के बीच में है। ४४

७ हे सु गार्हपत्य अग्नि ! तू जीवित की आयु बढ़ा, जो मर गये वे भी पितृ-स्थान [दूसरा जन्म] पायें। यक्ष्मा-शत्रु तपाती हुई तू इस रुग्ण के लिए प्रति उषा कल्याणकारी दशा दे। ४५

८ हे अग्नि ! तू सब शत्रु हराती हुई इनका बल-ऐश्वर्य हममें धारण करा। ४६

९ धारक-पालक इन्द्र [ईश्वर-बिजली-जीवात्मा-सम्राट्] का आश्रय लें, वह तुम्हें निन्दनीय पाप [illegible], इससे आता हुआ हिंसक रोग नष्ट कर, दुष्ट रोग को फेंकता हुआ, रक्षा कर। ४७

१० तुम बैल और नाव (परमात्मा) का आश्रय लो, वह तुमको निन्दनीय पाप-दुःख-कष्ट-रोग से छुड़ायेगा; सविता की इस नाव पर चढ़, हम ६ बड़े साधन से अज्ञान-नदी तैर जाएँ। ४८

[६ साधन शम-दम-उपरति-तितिक्षा-श्रद्धा-समाधान हैं।]

११ [हे ईश्वर !] तू दिनरात रक्षक; सक्रिय है, क्षेम-कारी, स्थिर-तारक-सुवीर-शय्यारूप है; हमें नीरोग-प्रसन्न रखता हुआ सदा तू हमें पुरुषार्थ से सुगन्धित कर। ४९

३४१२ वे दिव्य गुणों और विद्वानों से वंचित हो जाते हैं, पाप के साथ जीते हैं, जिन्हें क्रव्याद् मांसभक्षी अग्नि [चिन्ता-यक्ष्मा] छिन्न भिन्न कर देती है जैसे अश्व नड [नरकुल घास] को। ५०

३४१३ येऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते। ते वा अन्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा ।।५१
१४ प्रेव पिपतिषति मनसा मुहुरावर्तते पुनः।क्रव्याद्यानग्निरन्तिकादनुविद्वान्वितावति।।५२
१५ अविः कृष्णा भागधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः ।
माषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्यमरण्यान्या गह्वरं सचस्व ।। ५३
१६ इषीकां जरतीमिष्ट्वा तिल्पिजं दण्डनं नडम्। तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ।।५४
३४१७ प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्र विद्वान् पन्थां वि ह्याविवेश ।
परामीषामसून् दिदेश दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ।। ५५

अथर्ववेद काण्ड १२ प्रपाठक २७ अनुवाक ३ सूक्त ३

१८ पुमान् पुंसोऽधि तिष्ठ चर्मेहि तत्र ह्वयस्व यतमा प्रिया ते ।
यावन्ता अग्रे प्रथमं समेयथुस् तद् वां वयो यमराज्ये समानम् ।। १
१९ तावद्वां चक्षुस् तति वीर्याणि तावत्तेजस् ततिधा वाजिनानि ।
अग्निः शरीरं सचते यदैधोऽधा पक्वान् मिथुना सं भवाथः ।। २
२० समस्मिल्लोके समु देवयाने सं स्मा समेतं यमराज्येषु ।
पूतौ पवित्रैरुप तद्ध्वयेथां यद्यत् रेतो अधि वां सं बभूव ।। ३
२१ आपस् पुत्रासो अभि सं विशध्वमिमं जीवं जीवधान्याः समेत्य ।
तासां भजध्वममृतं यमाहुर्यमोदनं पचति वां जनित्री ।। ४
२२ यं वां पिता पचति यं च माता रिप्रान्निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः ।
स ओदनः शतधारः स्वर्ग उभे व्याप नभसी महित्वा ।। ५
२३ उभे नभसी उभयांश्च लोकान् ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः ।
तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे तस्मिन् पुत्रैर्जरसि संश्रयेथाम् ।। ६
२४ प्राचीं-प्राचीं प्रदिशमा रभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद्वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम् ।। ७
२५ दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत् ।
तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविदानः पक्वाय शर्म बहुलं नियच्छात् ।। ८
२६ प्रतीचीं दिशामियमिद्वरं यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च ।
तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथामधा पक्वान्मिथुना सम्भवाथः ।। ९
३४२७ उत्तरं राष्ट्रं प्रजया उत्तरावद्दिशामुदीचीं कृणवन्नो अग्रम् ।
पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सम्भवेम ।। १०

३४१३ श्रद्धा-हीन, धन-लोभी जो मांस-भक्षी आग (यक्ष्मा) के साथ रहते हैं वे सदा दूसरों की हाँडी पकाते (पाचक की नौकरी करते) हैं । ५१

१४ वह मन से उड़ना चाहता है किन्तु फिर लौट आता है जिसे जानती हुई क्रव्याद् आग सताती है । ५२

१५ हे क्रव्याद् ! १. पशुओं में काली भेड़, २. सीसा-भस्म, ३. चाँदी-सोना-भस्म, ४. उड़द-पिट्ठी-भोजन, ५. जङ्गल-गुफा ये तेरे भाग (नाशक) कहे जाते हैं, उनका सेवन कर । ५३

१६ इन्द्र (जीव मनुष्य) सूखी मूँज-तिल-उसकी खली-दण्डन-नड इन ५ से हवन करके उसको ईँधन बनाकर यम की अग्नि (यक्ष्मा-शवाग्नि) को निकाल दे । ५४

१७ प्रत्यक्ष स्तुत्य (ईश्वर-सूर्य) के प्रति अपने को सौंप कर, विद्वान् मैं पथ में प्रविष्ट हुआ हूं। उन (दुष्टों) के प्राण दूर कर इन (श्रेष्ठों) को लम्बी आयु से युक्त करता हूं । ५५ । ❀

६० मन्त्रों का अनुवाक-सूक्त ३ । स्वर्गौदन अग्नि । विषय— पुरुषार्थादि; शिल्पाद्यनेक पदार्थ-विद्या, सोमाद्यनेकौषधादि पदार्थ विद्या —महर्षिः स्वामी दयानन्द सरस्वती ।

१८ हे पुरुष ! आ, तू पुरुषों का अधिष्ठाता होकर आसन पर बैठ, वहाँ उसे बुला जो प्रिय पत्नी है, जितनी आयु के, पहले (ब्रह्मचर्य में) आये थे तुम दोनों को वही आयु नियन्ता के राज्य में मान्य हो । १

१९ तुम दोनों की दृष्टि-वीरता-तेज-बल उतने ही रहें, जब शरीर-ईंधन में आग (ब्रह्मचर्य) रमा जाये तब जोड़ा बनो । २

२० इस लोक-देवयान-नियन्ता-राज्य में मिलकर जाओ-आओ । पवित्र कर्मों से शुद्ध तुम उस सन्तान को पास बुला करो जो तुम दोनों के रज-वीर्य से हुई हो । ३

२१ हे आप्त पुत्रो ! जीवों में धन्य बनकर इस जीव-लोक में परस्पर मिलकर प्रवेश करो, उनको भजो जिसे अमृत (वीर्य) कहते हैं, जिस ओदन (वीर्य) को तुम दोनों की माता पकाती है । ४

२२ जिसे पिता-माता पाप और वाणी का मैल छुड़ाने के लिए पक्का करते हैं, वह ओदन सैकड़ों का धारक स्वर्ग है जिसकी महत्ता से दोनों आकाश (भू-द्यौ, गृहस्थ-वानप्रस्थ) व्याप्त हैं । ५

२३ दोनों आकाश-लोक; जो याज्ञिक-विजित सुख, हैं उनमें जो ज्योतिष्मान्-मधुर आगे है उस प्रशंसनीय में बुढ़ापे में पुत्रों के साथ आश्रय लो । ६

२४ हे दम्पती ! पूर्व [प्रगति] की दिशा जाओ, श्रद्धालु यह लोक पाते हैं; जो पका अन्न आग में डाला है उनकी रक्षार्थ परस्पर आश्रय लो । ७

२५ दक्षिण दिशा [वृद्धि] को जाते हुए इन पालक देवयान की ओर लौट आओ । उसमें तुम्हारा नियन्ता वायु ऋतुओं के साथ मिलकर परिपक्वता के लिए बहुत सुख दे । ८

२६ दिशाओं में यह पश्चिम [ह्रास] भी श्रेष्ठ है जिसमें सोम [ईश्वर-चन्द्र-वीर्य] अधिपति-सुखद हैं; उनमें आश्रय लेकर सुकर्म करो, तब पके [ज्ञान-वीर्य] से सम्पन्न होओ । ९

२७ उत्तम राष्ट्र उत्तम पथ से है, उत्तर दिशा [उन्नति] हमें उन्नत करे, पंक्ति छन्द के समान पुरुष ५ इन्द्रिय-शक्ति-सम्पन्न, स्वच्छन्द होता है. हम सबके साथ सब अङ्गों से पूर्ण हों । १०

२८ यह नीचे स्थिर सी पृथिवी विशेष दीप्त है इसके लिए नमः [आदर] है, पुत्रों और मेरे लिए कल्याणी हो, हे सबकी वरणीय अखण्ड देवी ! वह तु हमारे पके ज्ञान की अन्त-पति तक रक्षा कर । ११

३४२८ ध्रुवेयं विराण्नमो अस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु ।
सा नो देव्यदिते विश्ववार इर्य इव गोपा अभि रक्ष पक्वम् ॥ ११
२९ पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्व नः शिवा नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
यमोदनं पचतो देवते इह तं नस्तप उत सत्यं च वेत्तु ॥ १२
३० यद्यत्कृष्णः शकुन एह गत्वा त्सरन् विषक्तं बिल आससाद ।
यद्वा दास्यार्द्रहस्ता समङ्क्त उलूखलं मुसलं शुम्भतापः ॥ १३
३१ अयङ्ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः पूतः पवित्रैरप हन्तु रक्षः ।
आ रोह चर्म महि शर्म यच्छ मा दम्पती पौत्रमघं नि गाताम् ॥ १४
३२ वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचाँ अप बाधमानः ।
स उच्छ्रयातै प्र वदाति वाचं तेन लोकाँ अभि सर्वान्जयेम ॥ १५
३३ सप्त मेधान्पशवः पर्यगृह्णन् य एषां ज्योतिष्माँ उत यश्चकर्श ।
त्रयस्त्रिंशद्देवतास् तान्सचन्ते स नः स्वर्गमभि नेष लोकम् ॥ १६
३४ स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सञ्जायया सह पुत्रैः स्याम ।
गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥ १७
३५ प्र हि पाप्मानमति ताँ अयाम तमो व्यस्य प्र वदासि वल्गु ।
वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिंसीर्मा तण्डुलं वि शरीर्देवयन्तम् ॥ १८
३६ विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ।
वर्षवृद्धमुप यच्छ शूर्पं तुषम्पलावानप तद्विनक्तु ॥ १९
३७ त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्यन्तरिक्षम् ।
अंशून् गृभीत्वान्वारभेथामा प्यायन्तां पुनरायन्तु शूर्पम् ॥ २०
३८ पृथग्रूपाणि बहुधा पशूनामेकरूपो भवसि सं समृद्ध्या ।
एतां त्वचं लोहिनीं तां नुदस्व ग्रावा शुम्भाति मलग इव वस्त्रा ॥ २१
३९ पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि तनूः समानी विकृता त एषा ।
४० यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन तन मा सुस्रोर्ब्रह्मणापि तद्वपामि ॥ २२
४० जनित्रीव प्रति हर्यासि सूनुं सं त्वा दधामि पृथिवीं पृथिव्या ।
उखा कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा यज्ञायुधैराज्येनातिषक्ता ॥ २३
३४४१ अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्तादिन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्वान् ।
वरुणस्त्वा दृंहाद्धरुणे प्रतीच्या उत्तरात्त्वा सोमः सं ददाते ॥ २४

३४२६ पुत्रों को पितावत् तू हमें ले, भूमिपर कल्याणी वायु बहे, २ देव जो ओदन पचाते हैं उसे हमारा तप और सत्य जानें। १२

३० जब जब काला कौआ या दुष्ट बिना रुके घर में आये या गीले हाथवाली दासी ऊखल-मूसल गीला कर दे, या दुष्ट दम्पति को भ्रष्ट करे तो उसे आपः (जल और आप्त) शुद्ध करें। १३

३१ यह बड़े आचार वाला, जीवन-अन्न-धारक, पवित्र व्यवहारों से शुद्ध ग्रावा (पत्थर-ऊखल-उपदेशक-राजा) राक्षसों (क्रिमियों-दुष्टों) का नाश करे। चर्म पर चढ़, बड़ा सुख दे, पति-पत्नी पुत्र-विषयक कष्ट न पायें। १४

३२ राक्षस-मांसभक्षी रोग-कृमि हटाता हुआ, सेवनीय-रक्षक (मूसल-राजा) दिव्य गुण-सहित हमें मिला है, वह उच्च उठे, वाणी बोले, उससे सब लोकों को जीतें। १५

३३ जीव ७ प्रकार का अन्न लेते हैं, उन्हें तैंतीस देव मिलते हैं, इनमें जो ज्योतिष्मान् और प्रकृष्ट है वह विद्वान् हमें सुखी लोक में पहुँचाये। देव ८ वसु-११ रुद्र-१२ आदित्य-इन्द्र-प्रजापति हैं। १६

३४ (हे विद्वान्-राजा!) तू हमें सुखी लोक में ले जा, हम पत्नी-पुत्रों के साथ हों, जिसका हाथ पकड़ूँ वह पत्नी मेरे पीछे चले, कष्ट-कृपणता हमें न मिले। १७

३५ पापी आलस्य-जकड़न को हम छोड़ें, तमः हटाकर मधुर बोल, हे रक्षक! उद्यत (शासक-मूसल) होकर हिंसा न कर, देवों की ओर जाते हुए चावल आदि को नष्ट न कर। १८

३६ यदि तू विश्व-प्रसिद्ध आग-समान होना चाहे तो इस लोक में आ, वर्षों में बढ़े सूप के समान विवेकी के पास जा, भूसी-तिनकों के समान दुष्टों को अलग कर दे। १९

३७ ब्रह्मज्ञ द्यो-पृथिवी-अन्तरिक्ष इन तीन लोकों का ज्ञान पाता है, दोनों पति-पत्नी कण ले कर फिर यत्न करें, वे छँटकर फिर सूप (विवेकी) में आ जायें। २०

३८ प्राणियों के बहुधा अलग रूप होते हैं, समृद्धि से एकरूप होता है, इस रजोगुणी खाल को दूर कर; गुरु उसे शुद्ध करे जैसे धोबी वस्त्र को। २१

३९ पृथिवी की धनी (अङ्गीठी-हाँडी) को मैं पृथिवी पर रखता हूं, दोनों के शरीर समान हैं, हे भूमि, यह तेरा बिगड़ा रूप है, जो जो खरचने-पकाने से जला हो उससे तू मत गिर, उसे मैं वेद-ज्ञान से ठीक करता हूँ। २२

४० हे पृथिवी! जैसे माता पुत्र को वैसे तू मुझे चाहती है, मैं तुझे पृथिवी से मिलाता हूँ; उखा-हांडी यज्ञ के उपकरण (चम्मच-चमचा-आचमनी आदि) और घी से अति टिकायी हुई वेदि पर व्यथित न हो। २३

४१ हे पृथिवी! पकाता अग्नि पूर्व से, इन्द्र (मानसून वायु) दक्षिण से तेरी रक्षा करे, वरुण (जल-चन्द्रमा) पश्चिम से धारणा में दृढ़ कर, और उत्तर से सोम (चुम्बक और सोम आदि औषधियाँ) तुझको दृढ़ता दें। २४

३४४२ पूताः पवित्रैः पवन्ते अभ्राद् दिवं च यन्ति पृथिवीं च लोकान् ।
ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः पात्र आसिक्ताः पर्यग्निरिन्धाम् ॥ २५
४३ आ यन्ति दिवः पृथिवीं सचन्ते भूम्याः सचन्ते अध्यन्तरिक्षम् ।
शुद्धाः सतीस् ता उ शुम्भन्त एव ता नः स्वर्गमभि लोकं नयन्तु ॥ २६
४४ उतेव प्रभ्वीरुत संमितास उत शुक्राः शुचयश्चामृतासः ।
ता ओदनं दंपतिभ्यां प्रशिष्टा आपः शिक्षन्तीः पचता सुनाथाः ॥ २७
४५ संख्याता स्तोकाः पृथिवीं सचन्ते प्राणापानैः संमिता ओषधीभिः
असंख्याता ओप्यमाना सुवर्णाः सर्वं व्यापुः शुचयः शुचित्वम् ॥ २८
४६ उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः फेनमस्यन्ति बहुलांश्च बिन्दून् ।
योषेव दृष्ट्वा पतिमृत्वियायैतैस् तण्डुलैर्भवता समापः ॥ २९
४७ उत्थापय सीदतो बुध्न एनानद्भिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम् ।
अमासि पात्रैरुदकं यदेतन् मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ॥ ३०
४८ प्र यच्छ पर्शुं त्वरया हरौषमहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् ।
यासां सोमः परि राज्यं बभूवामन्युता नो वीरुधो भवन्तु ॥ ३१
४९ नवं बर्हिरोदनाय स्तृणीत प्रियं हृदश्चक्षुषो वल्ग्वस्तु ।
तस्मिन् देवाः सह दैवीर्विशन्त्विमं प्राश्नन्त्वृतुभिर्निषद्य ॥ ३२
५० वनस्पते स्तीर्णमासीद बर्हिरग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः ।
त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्यैना एहाः परि पात्रे ददृश्राम् ॥ ३३
५१ षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात्स्वः पक्वेनाभ्यश्नवातै ।
उपैनञ्जीवान्पितरश्च पुत्रा एतं स्वर्गङ्गमयान्तमग्नेः ॥ ३४
५२ धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या अच्युतं त्वा देवताश्च्यावयन्तु ।
तन्त्वा दम्पती जीवन्तौ जीवपुत्रावुद्वासयातः पर्यग्निधानात् ॥ ३५
५३ सर्वान्त्समागा अभिजित्य लोकान्यावन्तः कामाः समतीतृपस्तान् ।
वि गाहेथामायवनञ्च दर्विरेकस्मिन् पात्रे अध्युद्धरैनम् ॥ ३६
५४ उप स्तृणीहि प्रथय पुरस्ताद् घृतेन पात्रमभि घारयैतत् ।
वाश्रेवोस्रा तरुणं स्तनस्युमिमन्देवासो अभि हिङ्कृणोत ॥ ३७
३४५५ उपास्तरीरकरो लोकमेतमुरुः प्रथतामसमः स्वर्गः ।
तस्मिञ्छ्रयातै महिषः सुपर्णो देवा एनं देवताभ्यः प्र यच्छान् ॥ ३८

अथर्ववेद काण्ड १२ प्रपाठक २७ अनुवाक ३ सूक्त ३

३४४२ जल पवित्र किरणों से शुद्ध हो कर मेघ से द्यौ-पृथिवी और अन्तरिक्ष लोकों को जाते हैं, उन जीवनप्रद, जीवों के लिए धन्य; कुम्भी-पात्र में डाले-रक्खे हुओं को आग पकाये। २५

४३ जल के समान आप्त जन द्यो से पृथिवी और वहाँ से अन्तरिक्ष में एकत्र होते हैं। वे शुद्ध होते हुए ही शोभित होते और पवित्र करते हैं। वे हमें सुखमय लोक को ले जायँ। २६

४४ और वे ही बहुत समर्थ तथा सम्यक् सन्मानित-दीप्त-पवित्र-अमृत-प्रशिष्ट-ऐश्वर्यशाली जल और आप्त जनो! शिक्षा देते हुए तुम पति-पत्नी के लिए ओदन (भात और सामर्थ्य) को परिपक्व करो। २७

४५ समान प्रसिद्ध-गिने-चुने जल-बिन्दु और आप्त-जन पृथिवी पर आते हैं वे प्राण-अपान और ओषधियों से सम्बद्ध होते हैं, किन्तु असंख्य, सुन्दर वर्ण के पवित्र जल-बिन्दु और आप्त यथाविधि फैलते हुए सब पवित्रता फैलाते हैं। २८

४६ जल पात्र में गरम हो कर उबलता-फुदकता, फेन-बूँदें फेंकता है और चावलों के साथ मिल जाता है, जैसे पति को देख कर पत्नी ऋत्वनुकूल होती है। आप्त जन भी विद्वानों से मिलकर रहें। २९

४७ इन नीचे स्थितों को ऊपर उठा, वे आपः के साथ अपने को मिला दें। यह उदक (जल-विद्वान्) पात्रों द्वारा, और इन दिशाओं में स्थित तण्डुल (चावल-साधारण जन) भी नाप (ज्ञान) लिये जायँ। ३०

४८ फरसा-हँसिया पकड़, उषा काल में ले आ, ओषधियों को हानि न पहुँचाते हुए जोड़पर काटें जिनका राजा सोम है वे ओषधियाँ हमें मन्यु लाने वाली न हों। ३१

४९ नया आसन ओदन के लिए बिछाओ जो हृदय को प्यारा, आँखों को सुन्दर लगे, उस पर विद्वान् विदुषियों के साथ घुसें और बैठ कर ऋत्वनुकूल इसे खायें। ३२

५० हे सेवनीय राष्ट्र के विद्वान् गृहपति! तू बिछाये आसन पर बैठ; तेरा सम्मान अग्निष्टोम यज्ञों से विद्वान् करें, मैं भोजन-पात्र पर बैठे इसे और इसके सहयोगियों को वैसे ही देखूँ जैसे शिल्पी वसूली आदि से बनायी सुन्दर वस्तु को देखता है। ३३

५१ ज्ञान-निधि-रक्षक आयु के ६० वें वर्ष में अपने परिपक्व ज्ञान से सुख-भोग की इच्छा करे, इसके माता-पिता-पुत्र आदि इसके पास जियें, हे ईश, इसे अग्नि के अन्त सुख के लोक भेज। ३४

५२ तू राष्ट्र-धर्ता हो कर पृथिवी को धारण कर, अंगिरस तुझे विद्वान् विरत करें, उस तुझे जीवित पुत्र वाले पति-पत्नी अग्न्याधान से छुड़ा दें। ३५

५३ तू सब लोक जीत कर आ; जितनी कामनाएँ हैं उन्हें पूरा कर, तेरे चमचा-करछी (सङ्गठन-सैन्य-बल) विशेष विचरण करें; एक पात्र (बरतन-पद) में इसे रख। ३६

५४ आसन को बिछा, पूर्व की ओर फैला, इस पात्र को घी (प्रेम) से भर। जैसे दुधारी गौ दूध पीने के अभिलाषी छोटे बच्चे को देख कर रम्भाती, हिं-हिं करती है वैसे ही इस नये वीर को देख कर विद्वान् जन हर्ष-सूचक नारे लगायें, साम-गान करें। ३७

३४५५ तू इस लोक को बनाता और कर्मों को फैलाता है, यह अनुपम स्वर्ग (गृहस्थ और राष्ट्र) विशाल रूप में विस्तृत हो, उसमें एक महान् उत्तम पोषक आचार्य आश्रय ले। विद्वान् उसको विद्वानों के लिए सौंप दें। ३८

३४५६. यद्यज्जाया पचति त्वत् परः परः पतिर्वा जाये त्वत् तिरः ।
सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु संपादयन्तौ सह लोकमेकम् ॥ ३९
५७ यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते अस्मत् पुत्राः परि ये सं बभूवुः ।
सर्वांस्तां उप पात्रे ह्वयेथां नाभिं जानानाः शिशवः समायान् ॥ ४०
५८ वसोर्या धारा मधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः ।
सर्वास् ता अव रुन्धे स्वर्गः षष्टयां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् ॥ ४१
५९ निधिं निधिपा अभ्येनमिच्छादनीश्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये ।
अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्गस्त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्त्स्वर्गानरुक्षत् ॥ ४२
६० अग्नी रक्षस् तपतु यद् विदेवं क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।
नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ॥ ४३
६१ आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि ।
शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम् ॥ ४४
६२ इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप ।
आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ग्ध्येष भागो अङ्गिरसो नो अत्र ॥ ४५
६३ सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एतम् ।
मा नो द्यूतेऽव गान्मा समित्यां मा स्मान्यस्मा उत्सृजता पुरा मत् ॥ ४६
६४ अहं पचाम्यहं ददामि ममेदु कर्मन् करुणेऽधि जाया ।
कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रोऽन्वारभेथां वय उत्तरावत् ॥ ४७
६५ न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः समममान एति ।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति ॥ ४८
६६ प्रियं प्रियाणां कृणवाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति ।
धेनुरनड्वान् वयोवय आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु ॥ ४९
६७ समग्नयो विदुरन्यो अन्यं य ओषधीः सचते यश्च सिन्धून् ।
यावन्तो देवा दिव्या३तपन्ति हिरण्यं ज्योतिः पचतो बभूव ॥ ५०
३४६८ एषा त्वचां पुरुषे सं बभूवानग्नाः सर्वे पशवो ये अन्ये ।
क्षत्रेणात्मानं परि धापयाथोऽमोतं वासो मुखमोदनस्य ॥ ५१

३४५६ हे पति! जो जो कुछ पत्नी तुझ से अलग अलग रह कर पकाये (शक्ति बढ़ाये) और हे पत्नी! जो पति तुझ से छिपा कर पकाये खाये उसे तुम दोनों मिला दो, मिल कर बनाओ, यह कार्य तुम दोनों का एक (गृहस्थ-वानप्रस्थ) लोक बनाते हुए साथ में हो। ३९

५७ इस से और मुझसे उत्पन्न जितने पुत्र पृथिवी पर पैदा-जीवित हों उन सब को एक भोजन-पात्र पर बुलाया करो और बच्चे जन्म-बन्धु-केन्द्र-सम्बन्ध को जानते हुए आया करें। ४०

५८ वसु (दूध-जीवात्मा-पृथिवी-धन) की जितनी धाराएँ मधु (शहद-मधुरता-विज्ञान) से भरी घी (प्रेम) से मिश्रित अमृत की केन्द्र हैं उन्हें स्वर्ग (सुखमय ओदन-गृहस्थ-राष्ट्र) धारण करता है, वह निधि का पालक उसे ६० वर्ष में पाने की इच्छा करे। ४१

५९ इस निधि को निधिपा खोजे, जो अन्य चारों ओर हों वे अनधिकारी हों। हमारे द्वारा दिये और रक्षित स्वर्ग तीन काण्डों से (क्रमणीय साधनों, व्यवस्थाओं, बाल-युवा-वृद्धों के लिए तीन क्षेत्रों से, ऋग् यजुः साम तीन प्रकार के मन्त्रों से क्रमशः तीन ज्ञान-कर्म-उपासना काण्डों से; उत्तम-मध्यम-अधम भेद से, तीन ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य वर्णों से, मानसिक-वाचिक-शारीरिक कर्मों से) तीन स्वर्गों (आध्यात्मिक-आधिभौतिक-आधिदैविक, ब्रह्मचर्य अथवा गृहस्थ और वानप्रस्थ-संन्यास) पर चढ़ता है। ४२

६० अग्नि (ईश्वर-ज्ञान-वेद-ब्राह्मण-राजमन्त्री) उस राक्षस (दुष्ट विचार-रोगक्रिमि-दुष्ट) को नष्ट करे जो विद्वानों के विरुद्ध हो। मांस-भक्षी कुविचार-रोग-दुष्ट-शत्रु यहाँ न पहुँच सके, हमारा रक्त न पिये, हम उसे अपने से दूर करें, उसका मार्ग रोक दें, आदित्य ब्रह्मचारी और अग्नि-विद्या के ज्ञाता वैज्ञानिक इसे वश में रक्खें। ४३

६१ आदित्य-अङ्गिराओं के लिए यह घी-मिला शहद (और प्रेम-युक्त ज्ञान) देता हूं। हे पति-पत्नी! तुम दोनों पवित्र हाथों (कर्मों) वाले सुकृती होकर वेदज्ञ की हिंसा न करते हुए इस स्वर्ग को प्राप्त करो। ४४

६२ मैं इस जीवन के उस उत्तम काण्ड को प्राप्त करूँ जिस लोक से परमात्मा मिलता है। तू घी-युक्त मधु सींच, शरीर कान्ति-युक्त कर, हे अङ्गिराओ! यहाँ हमारा यह भाग है। ४५

६३ सत्य-तप के लिए हम इस निधि को विद्वानों के लिए देते हैं. यह द्यूत-समिति और युद्ध में नष्ट न हो, मेरे सामने यह अन्य (शत्रु) के लिए न देना। ४६

६४ मैं पकाता-देता हूं; मेरे ही इस करुण कर्म में पत्नी सम्मिलित हो। लोग कुमार पुत्र के तुल्य हों, हे पति-पत्नी! तुम दोनों उत्तम जीवन बनाये रक्खो। ४७

६५ यहाँ कोई पाप और आचार नहीं है कि जिससे यह मित्रों के साथ मान-रहित हो। यह हमारा पात्र भरपूर रहे, जिसमें पका भोजन पक्का के पास फिर आ जाये। ४८

६६ हम प्रियों का प्रिय करें; जो द्वेष करें वे अन्धकार में जायें। गौ-बैल-अनेक अन्न आते रहें वे पुरुषों पर आयी मौत को पीछे धकेल दें। ४९

६७ वे अग्रणी उन एक दूसरे को जानें जो औषधियों के साथ और जो नदी-समुद्र-मेघों के साथ सम्बद्ध हैं। जितने द्योतित प्राकृतिक देव नक्षत्र-सूर्य द्यौ में तपते हैं उनकी सुनहरी ज्योति पाचक-परिपक्व (दानी) अन्न की हो जाती है। ५०

६८६८ त्वचाओं की यह त्वचा (वस्त्र) पुरुष में है, जो अन्य पशु हैं वे सब नग्न नहीं कहाते। तुम दोनों अपने तन को रक्षार्थ वस्त्र से ढाँको, घर-बुना वस्त्र ओदन से मुख्य है। ५१

३४६९ यदक्षेषु वदा यत् समित्यां यद्वा वदा अनृतं वित्तकाम्या
समानं तन्तुमभि संवसानौ तस्मिन्त्सर्वं शमलं सादयाथः ॥ ५२
७० वर्षं वनुष्वापि गच्छ देवांस्त्वचो धूमं पर्युत्पातयासि ।
विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ॥ ५३
७१ तन्वं स्वर्गो बहुधा वि चक्रे यथा विद आत्मन्नन्यवर्णाम्
अपाजैत् कृष्णां रुशतीं पुनानो या लोहिनी तां ते अग्नौ जुहोमि ॥ ५४
७२ प्राच्यै त्वा दिशेऽग्नयेऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते एतं परि दद्मः
तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो
ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५५
७३ दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते ०[पूर्ववत्] ५६
७४ प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेऽन्नायेषुमते । एतं ० ,, ॥ ५७
७५ उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै । ० ,, ॥ ५८
७६ ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये कल्माषग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः ।,, ५९
३४७७ ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते । ० ,, ॥ ६०

अनुवाक ४ सूक्त ४

वशा-शब्दार्थादि-पदार्थ विद्या (द० स०)

३४७८ ददामीत्येव ब्रूयादनु चैनामभुत्सत ।
वशां ब्रह्मभ्यो याचद्भ्यस्तत्प्रजावदपत्यवत् ॥ १
७९ प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति ।
आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ॥ २
८० कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति ।
बण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम् ॥ ३
८१ विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम् ।
तथा वशायाः संविद्यं दुरदभ्ना ह्युच्यसे ॥ ४
८२ पदोरस्या अधिष्ठानाद् विक्लिन्दुर्नाम विन्दति ।
अनामनात् सं शीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति ॥ ५
८३ यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्चते ।
लक्ष्म कुर्व इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम् ॥ ६

३४६६ हे स्त्री-पुरुषो! तुम धन-कामना से जो असत्य अभियोगों और समितियों में बोलते हो उस म सब मल को, समान तन्तु (ईश्वर-यज्ञ-वस्त्र) का रखने वाले होकर, दूर कर दो। ५२

७० तू सुख-वर्षा की याचना कर, विद्वानों के पास जा, त्वचा से मैल हटा, विश्व में प्रसिद्ध और तेजस्वी होना चाहता हुआ समान घर पाकर इस लोक में गति कर। ५३

७१ सुख-गामी यथार्थ ज्ञानी अपने में शरीर को बहुधा विशिष्ट बनाता है। काला तामसी शरीर जीतता और चमकती सात्विक ज्योतिष्मती प्रज्ञा पाता हुआ मैं लाल रजोगुणी शरीर को ज्ञानाग्नि में भस्म करता हूं। ५५

३४७२-७७(६ मन्त्र) — इस तुझे पूर्व दिशा, अग्नि अधिपति, असित (सूर्य का काले धब्बे वाला भाग) रक्षिता (सेनापति), और किरण-प्राण रूपी इषु पुञ्जेप्यास्त्र)वाले आदित्य के लिए सौंपते हैं। दक्षिण दिशा के लिए, इन्द्र(वायु) अधिपति, तिरछी किरणों के (वायु-मण्डल-वक्र रूपी) रक्षिता, ऋतु-इषु वाले यम(काल) के लिए; पश्चिम के लिए वरुण (जल) अधिपति, पृदाकु(पालक चन्द्र का बरफीला भाग) रूपी रक्षिता, अन्न-इषु वाले के लिए, उत्तर दिशा के लिए, अधिपति सोम(नक्षत्र-मण्डल); स्वज (चिपटने वाले चुम्बक) रक्षिता, बिजली इषु वाली के लिए; नीचे की दिशा में विष्णु (व्यापक धूल वाली पृथिवी) अधिपति, चितकबरी गर्दन वाला भूगर्भ का अग्निमय तत्त्व रक्षिता, औषधि-अन्न रूपी इषु वाली के लिए, और ऊपरि दिशा में बृहस्पति (वाष्पमेघमय आकाश) अधिपति, सफेद कुष्ठ-समान सफेद तारा-मण्डल और बिजली रक्षिता, वर्षा-इषु वाली के लिए तुझे सौंपते हैं तुम हमारे जीवन की रक्षा करो, ईश्वर हमारे प्रारब्ध जीवन को बुढ़ापे तक ले जाए; बुढ़ापा मौत के लिए दे दे; और तब हम फिर कर्म-वश फिर जन्म लें। ५५-६०

[अथर्व वेद ३-२७ मनसा-परिक्रम -मन्त्रों में भी लगभग ऐसा ही वर्णन है।] ❀

काण्ड १२ में सूक्त ३ समाप्त हुआ।

अनुवाक सूक्त ४ वशा

सूक्त ४। वशा (कमनीय-कान्तियुक्त-वशकर्त्री वेदवाणी-भूमि-गौ)

३४७८ वशा (वेद-वाणी, गौ) को माँगने वाले ब्रह्मचारियों से 'देता हूं' यही कहे, और जो इसे अनुकूल जानता है वह अच्छी प्रजा-सन्तान-युक्त होता है। १

७९ जो याचक ऋषि-सन्तानों को देवों की गौ नहीं देना चाहता वह प्रजा के साथ बिकता और पशुओं के साथ नष्ट होता है। २

८० इसके बर कूट-नीति से नष्ट होते; लङ्गडी नीति से वह गड्ढे में दुःख भोगता; लोम-नीति से घर जलते, कानी-नीति (ध्यान न देने) से धन नष्ट होता है। ३

८१ शक्ति के अधिष्ठान से और मल के रुकने से गो-पति को पीलिया मिलता है, वैसा वशा का स्वरूप है कि हे वशा! तू दुरदभ्ना (कठिनता से दबायी जाने वाली) कही जाती है। ४

८२ इसके पैरों के स्थान में छाजन होता, जो मुख से सूँघे तो प्रजा अनजाने नष्ट होती है। ५

३४८३ जो इसके कान छेदता है वह मानो देवों को छेदता है। जो यह मानता है कि मैं तो चिह्न बना रहा हूं वह अपने को छोटा कर लेता है। ६

३४८४ यदस्याः कस्मैचिद् भोगाय बालान् कश्चिद् प्र कृन्तति ।
ततः किशोरा म्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः ॥ ७
८५ यदस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिडत् ।
ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात् ॥ ८
८६ यदस्याः पल्पूलनं शकृद्दासी समस्यति ।
ततोऽपरूपं जायते तस्मादव्येष्यदेनसः ॥ ९
८७ जायमानाभि जायते देवान्त्सब्राह्मणान् वशा ।
तस्माद् ब्रह्मभ्यो देयैषा तदाहुः स्वस्य गोपनम् ॥ १०
८८ य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा ।
ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य एनां नि प्रियायते ॥ ११
८९ य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानाङ्गां न दित्सति ।
आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥ १२
९० यो अस्य स्याद्वशाभोगो अन्यामिच्छेत तर्हि सः ।
हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचितां च न दित्सति ॥ १३
९१ यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा ।
तामेतदच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते ॥ १४
९२. स्वमेतदच्छायन्ति यद्वशा ब्राह्मणा अभि ।
यथैनानन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् ॥ १५
९३. चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती ।
वशां च विद्यान्नारद ब्राह्मणास्तर्ह्येष्याः ॥ १६
९४ य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम् ।
उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः ॥ १७
९५ यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनानुत ।
उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद्वशाम् ॥ १८
९६ दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति ।
नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्त्वा चिकीर्षति ॥ १९
३४९७ देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् ।
तेषां सर्वेषामददद्धेडं न्येति मानुषः ॥ २०

३४८४ जो कोई लाभ के लिए इस के बाल काटता है [बाल की खाल निकालता है] तो उस के किशोर मरते हैं और भेड़िया बच्चों को मारता है। ७

८५ यदि दुष्ट कौआ गोपति की सती गायों का लोम नोचता है तो कुमार मरते हैं और यक्ष्मा रोग अन-जाने पकड़ता है। ८

८६ यदि दासी (प्रजा) इनके काटने वाले जहरीले गोबर को इधर-उधर फैंक दे तो स्थान गन्दा हो जाता है और उस अपयश से वह नहीं छूटता। ९

८७ उत्पन्न होती हुई वशा ब्राह्मण-सहित देवों का लक्ष्य कर प्रकट होती है अतः यह ब्राह्मणों के लिए देय है, इसको धन की रक्षा कहते हैं। १०

८८ जो इस सेवनीया के पास आते हैं उनकी वशा ईश्वर-कृत है। जो इसको अपनी ही प्रिया समझे तो यह ब्रह्म-घातिनी कहाती है। ११

८९ जो देवों की गो को याचक ऋषि-सन्तानों को नहीं देना चाहता वह देवों पर आघात करता और ब्राह्मणों का मन्यु-भाजन होता है। १२

९० जो इस राजा का वशा से निजी लाभ हो तो वह अन्य रीति अपनाए। जो माँगी हुई को नहीं देना चाहता उसे वह न दी गयी मार डालती है। १३

९१ जैसे कोई खजाना धरोहर हो वैसे वशा ब्राह्मणों की है। जिस किसी पर वह होती है वहाँ मनुष्य आते हैं। १४

९२ यदि ब्राह्मण वशा का लक्ष्य कर आते हैं तो अपना धन समझ कर। इस का रोकना ऐसा है कि जैसा इन्हें अन्य अपराध में हानि पहुँचाना। १५

९३ हे नर-सुधारक विद्वान्! निर्दोष वशा तीन वर्षों तक अज्ञात विचरती ही रहे। जब जान ले तब वेद-इच्छुक अन्वेषण करने चाहिए। १६

९४ जो नियम से देव-रक्षित इस निधि को अवशा (बुरी) कहे उस पर दोनों भव-शर्व (प्राण-अपान, प्रधानमन्त्री-सेनापति) घेर कर बाण फैंकते हैं। १७

९५ जो इसके अयन-स्तन नहीं जानता वह यदि वशा को दे सके तो वह इस के लिए दोनों से दूध दुहाती है। १८

९६ जो माँगी गयी इसे देना नहीं चाहता इसके पास यह द्वार तोड़ने वाली, कठिनता से दबायी जानेवाली वशा सोती रहती है। जिसे न देकर कार्य करना चाहता है उसकी कामना पूरी नहीं होती। १९

३४९७ विद्वान् वेदज्ञ को मुख्य बनाकर वशा माँगते हैं। उन सब के लिए न देता हुआ मनुष्य क्रोध-अनादर पाता है। २०

३४९८ हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्यो ऽददद्वशाम् ।
देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते ॥ २१
३४९९ यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् ।
अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥ २२
३५०० य एवं विदुषे ऽदत्त्वाथान्येभ्यो ददद्वशाम् ।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥ २३
३५०१ देवा वशामयाचन् यस्मिन्नग्रे अजायत ।
तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत ॥ २४
२ अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम् ।
ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥ २५
३ अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चते ऽददत् ॥ २६
४ यावदस्या गोपतिर्नोप शृणुयादृचः स्वयम् ।
चरेदस्य तावद् गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् ॥ २७
५ यो अस्या ऋच उपश्रुत्याथ गोष्वचीचरत् ।आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः ॥ २८
६ वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः ।आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥ २९
७ आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति ।अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याञ्चयाय कृणुते मनः ॥ ३०
८ मनसा सङ्कल्पयति तद्देवाँ अपि गच्छति । ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम् ॥ ३१
९ स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः । दानेन राजन्यो वशाया मातुर्हेडं न गच्छति ॥ ३२
१० वशा माता राजन्यस्य तथा संभूतमग्रशः । तस्या आहुरनर्पणं यद्ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ॥ ३३
११ यथाज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत्स्रुचो अग्नये । एवा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्नय आ वृश्चते ऽददत् ॥ ३४
१२ पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोके ऽस्मा उप तिष्ठति ।
सास्मै सर्वान् कामान्वशा प्र ददुषे दुहे ॥ ३५
१३ सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्र ददुषे दुहे ।
अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ॥ ३६
१४ प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा ।
वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम् ॥ ३७
१५ यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वशाम् । अप्यस्य पुत्रान्पौत्रांश्च याचयते बृहस्पतिः ॥ ३८

३४९८ वेदज्ञों के लिए वशा न देता हुआ पशुओं का भी अनादर पाता है यदि मनुष्य विद्वानों का सुरक्षित धन अपना निजी बनाता है २१

९९ यदि अन्य सैकड़ों ब्राह्मण राजा से वशा को माँगें तो देव (विद्वान्) कहें कि ऐसी तो वशा विद्वान् की ही है । २२

३५०० जो ऐसे विद्वान् के लिए न देकर वशा अन्यों के लिए देता है तो उसके लिए देवता-सहित पृथिवी उसके स्थान पर दुर्गम बन जाती है । २३

३५०१ विद्वान् उससे वशा माँगता है जिसमें यह पहले प्रकट होती है । तब इसको नर-शोधक यदि जान ले कि यह दिव्य गुणों के साथ उदय हुई है तो वह राष्ट्र-देवों के साथ उन्नत होता है । २४

२ जो वेदज्ञों-द्वारा माँगी इसे निजी बनाता है उस पुरुष को वशा सन्तान-रहित और कम पशु अन्न वाला कर देती है । २५

३ वेदज्ञ अग्नि-सोम-कामना-मित्र-वरुण की वृद्धि के लिए वशा माँगते हैं, जिसे न देता हुआ उन पर आघात करता है । २६

४ जब तक इसकी ऋचाएँ गोपति स्वयं न सुन ले तब तक वह इनके स्तोताओं में विचरे, सुन कर इसके घर में न रहे । २७

५ जो इसकी ऋचाएँ सुनकर भी इन्द्रियों में विचरता है उसकी आयु और सम्पत्ति को अनादृतता विद्वान् काट देते हैं । २८

६ वशा बहुधा विचरती हुई विद्वानों की सुरक्षित निधि है । (हे वशा), तू रूपों को प्रकट कर जब कि वह अपना स्थान नष्ट करना चाहता है । २९

७ जब वह स्थान नष्ट करना चाहता है तब यह अपने को प्रकट करती है । तभी र वेदज्ञों के लिए याचनार्थ मन करती है । ३०

८ जब वशा मन से सङ्कल्प करती है तब वह विद्वानों के पास भी जाती है, तभी वेदज्ञ उसे माँगने जाते हैं । ३१

९ राजा पितरों के लिए अन्न-दान से, देवताओं के लिए यज्ञ-दान से वशा-माता का अनादर-क्रोध नहीं पाता । ३२

१० वशा राजा की माता है यह आगे से निश्चित है । जो वेदज्ञों को दी जाती है इसे उसका अदान ही कहते हैं । ३३

११ जैसे अग्नि के लिए लिया घी चमची से गिर जाये वैसे ही विद्वानों को अग्निहोत्र के लिए वशा न देता हुआ अपने को अलग कर लेता है । ३४

१२ पुरोडाश रूपी वत्स वाली, सुखदा वशा जो इनके साथ रहती है, वह इस दाता की सब कामनाएँ दुहाती (देती) है । ३५

१३ नियामक-राज्य में वशा दानी की सब कामनाएँ पूरी करती है । और माँगी हुई को न देने वाले के लिए नरक लोक बताते हैं । ३६

१४ सत्य-गर्भ वाली वशा गोपति पर क्रुद्ध होती विचरती है कि मुझे गर्भ-घातिनी मानता हुआ मौत के फन्दों में बाँधा जाय । ३७

३५१५ जो वशा को गर्भ-घातिनी मानता हुआ घर में बड़ा होने देता है इसके पुत्र-पौत्रों को परमात्मा भिखारी बनाता है । ३८

३५१ १ महदेषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि । अथो ह गोपतये वशाददुषे विषदुहे ।। ३९
१ ७ प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते । अथो वशायास्तत्प्रियं यद् देवत्रा हविः स्यात् ।। ४०
१८ या वशा उदकल्पयन् देवा यज्ञादुदेत्य । तासां विलिप्त्यं भीमामुदाकुरुत नारदः ।। ४१
१९ ता देवा अमीमांसन्त वशेया३मवशेति । तामब्रवीन्नारद एषा वशानां वशतमेति ।। ४२
२० कति नु वशा नारद यास् त्वं वेत्थ मनुष्यजाः ।
तास्त्वा पृच्छामि विद्वांसं कस्या नाश्नीयादब्राह्मणः ।। ४३
२१ विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा । तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ।। ४४
२२ नमस्ते अस्तु नारदानुष्ठु विदुषे वशा । कतमासां भीमतमा यामदत्त्वा पराभवेत् ।। ४५
२३ विलिप्ती या बृहस्पतेऽथो सूतवशा वशा । तस्या ० [शेष ४४ के समान] ।। ४६
२४ त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा । ताः प्रयच्छेद् ब्रह्मभ्यः सोऽनाव्रस्कः प्रजापतौ ।। ४७
२५ एतद्वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः । वशां चेदेनं याचेयुर्या भीमाददुषो गृहे ।। ४८
२६ देवा वशां पर्यवदन्न नोऽदादिति हीडिताः । एताभिर्ऋग्भिर्भेदं तस्माद्वै स पराभवत् ।। ४९
२७ उत ऽां भेदो नाददात् वशामिन्द्रेण याचितः । तस्मात्तं देवा आगसोवृश्चन्नहमुत्तरे ।। ५०
२८ ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः । इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आवृश्चन्ते अचित्त्या ।। ५१
२९ ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति । रुद्रस्यास्तां ते हेतिं परियन्त्यचित्त्या ।। ५२
३५३० यदि हुतां यद्यहुताममा च पचते वशाम् ।
देवान्त्सब्राह्मणानृत्वा जिह्मो लोकान्निर्ऋच्छति ।। ५३

सूक्त ५

७ पर्यायों का ७३ मन्त्रों का सूक्त ५, पर्याय १ में ६ मन्त्र । ब्रह्म-गवी (वेदवाणी-गौ)

३५३१ श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तर्ते श्रिता ।। १
३२ सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता ।। २
३३ स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ।। ३
३४ ब्रह्म पदवायं ब्राह्मणोऽधिपतिः ।। ४
३५ तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ।। ५
३६ अप क्रामति सूनृता वीर्यं पुण्या लक्ष्मीः ।। ६

पर्याय २ में ५ मन्त्र

३७ ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक् चेन्द्रियञ्च श्रीश्च धर्मश्च ।। ७
३५३८ ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणञ्च ।। ८

३५१६ स्तोताओं में विचरती हुई यह वेदवाणी भी तप्त होती है और न देने वाले गोपति को विष ही दुहाती है। ३९

१७ यदि वशा वेदज्ञों को दी जाये तो पशुओं का प्रिय होता है और उसे भी यह प्रिय है कि देवों को हवि हो। ४०

१८ विद्वान् यज्ञ से उठ कर जिन वशाओं की कल्पना करते हैं उनमें नर-शोधक भयंकर विलिप्ती (न्यास-सम्बन्धी लेप-रहित वेद-वाणी) को उत्तम मानता है। ४१

१९ विद्वान् उसकी मीमांसा करते हैं कि वह वशा (कमनीया) है या अवशा। उसे नर-शोधक बताये कि यह विलिप्ती वशा (वेदवाणी) वशाओं में सबसे अधिक वशा (कमनीय-सुन्दर) है। ४२

२० हे नर-शोधक, मनुष्यार्थ वशाएँ कितनी हैं जिन्हें तू जानता है? अब्राह्मण किसे न खाये (पढ़े)? यह तुझ ज्ञानी से पूछता हूं। ४३

२१ हे बृहस्पति, विलिप्ती-सूतवशा-वशा ये तीन वशाएँ हैं, सम्पत्ति-इच्छुक उस विलिप्ती को न पढ़े।

२२ हे नर-शोधक। तुझे नमः, वशा अनुष्ठाता विद्वान् के लिए है, इनमें कौन सी सबसे अधिक भयानक है जिसे न देकर पराभव पाता है। ४५

[३५२३ वें मन्त्र का अर्थ २१ के समान है। ४६]

२४- वशा के तीन भेद हैं- विलिप्ती-सूतवशा-वशा. उन्हें ईश्वर में दृढ़ वह वेदज्ञों को दे। (सैंतालीस)

२५ हे ब्राह्मणा! यह तुम्हारी भेंट है याचित यह माने यदि वे इसे माँगें जो अदानीके घरमें भयानक है।

२६ हमें न दो अतः क्रुद्ध विद्वान् वशा से कहें कि इन ऋचाओं से भेद किया अतः वह पराभूत हो।

२७ राजा से याचित भेदी जब वशा न दे तो उसे अपराध से विद्वान् युद्ध में काट दें। ५०

२८ जो परामर्शक वशा न देने को कहें वे दुष्ट अज्ञान के कारण सम्राट् के मन्यु से काटे जायें। ५१

२९ जो गोपति को दूर ले जाकर कहते हैं कि न दे वे अज्ञान के कारण रुद्र-फेंका वज्र पाते हैं। ५२

३०- यदि कुटिल दी, न दी वशा घर में तपाता है तो वह ब्राह्मण-सहित विद्वानों को कष्ट देकर लोक से निकाला जा कर कष्ट भोगता है। (५३)

अनुवाक सूक्त ५ ब्रह्म गवी

विषय- धर्मादेशादि पदार्थविद्या, ब्रह्मचियादि अग्न्यादि, दुष्ट-ताडनादि पदार्थ विद्या (म०द०स०)

पर्याय १। ६ मन्त्र- ३१ श्रम-तप से इश्वर के बनाये तुम वित्त-ऋत पर आश्रित होओ। १

३२ तुम सत्य-श्री-यश से सब प्रकार घिरे रहो। २

३३ तुम अपनी धारण-शक्ति, श्रद्धा से युक्त, दीक्षा से रक्षित; यज्ञ में प्रतिष्ठित हो, लोक निधन है। ३

३४ ईश्वर-वेद पदार्थ-बोधक और उनका ज्ञाता रक्षक है। ४

३५-३६ उस ब्रह्म-गवी को लेने वाले, ब्राह्मण-हिंसक क्षत्रिय को वाणी-वीर्य-लक्ष्मी छोड़ देते हैं। ५-६

पर्याय २। ५ मन्त्र

३७-३८ ओज-तेज-सह-बल-वाणी-इन्द्रिय-श्री-धर्म-ब्रह्म-क्षत्र-राष्ट्र-वैश्य-कान्ति-यश-वर्च-धन सब उस से दूर चले जाते हैं। ७-८

३५३९ आयुश्च रूपञ्च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥ ९
४०. पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं च ऋतं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजाश्च पशवश्च ॥१०
४१. तानि सर्वाण्यपक्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥ ११

पर्याय ३ । १६ मन्त्र

४२. सैषा भीमा ब्रह्मगव्यघविषा साक्षात् कृत्या कूल्बजमावृता ॥ १२
४३ सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः ॥ १३
४४ सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः ॥ १४
४५ सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगव्यादीयमाना मृत्योः पड्वीश आ द्यति ॥ १५
४६ मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ॥ १६
४७ तस्माद् वै ब्राह्मणानाङ्गौर्दुराधर्षा विजानता ॥ १७
४८ वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्वीता ॥ १८
४९ हेतिः शफानुत्खिदन्ती महादेवोऽपेक्षमाणा ॥ १९
५० क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ॥ २०
५१ मृत्युर्हिङ्कृण्वत्युग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥ २१
५२ सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती ॥ २२
५३ मेनिर्दुह्यमाना शीर्षक्तिर्दुग्धा ॥ २३
५४ सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ॥ २४
५५ शरव्या मुखेऽपिनह्यमान ऋतिर्हन्यमाना ॥ २५
५६ अघविषा निपतन्ती तमो निपतिता ॥ २६
५७ अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ॥ २७

पर्याय ४ । ११ मन्त्र

५८ वैरं विकृत्यमाना पौत्राद्यं विभाज्यमाना ॥ २८
५९ देवहेतिर्ह्रियमाणा व्यृद्धिर्हृता ॥ २९
६० पाप्माधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना ॥ ३०
६१ विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता ॥ ३१
६२ अघं पच्यमाना दुःष्वप्न्यं पक्वा ॥ ३२
६३ मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता ॥ ३३
३५६४ असंज्ञा गन्धेन शुगुद्ध्रियमाणाशीविष उद्धृता ॥ ३४

३५३६-४१ आयु-रूप-नाम-कीर्ति-प्राण-अपान-चक्षु-श्रोत्र-दूध-रस-अन्न-अन्न का पचाना-इष्ट (यज्ञ)-पूर्त (परोपकार)-प्रजा-पशु वे सब (चौतीस) पदार्थ ब्रह्म-गवी को छीनने वाले और ब्राह्मण को सताने वाले क्षत्रिय के दूर चले जाते हैं। ९-१५

पर्याय ३ (१२ से २७ तक १६ मन्त्र)

४२ वह यह भयानक ब्रह्मगवी साक्षात् घातक है यदि निन्दित-जनोत्पन्न पर आश्रित हो, प्रतिबद्ध हुई कूल पर टकराये प्रवाह के समान है। १२

४३-५० इसमें सब घोर कर्म और सब मृत्युएँ हैं। दुष्टों के लिए क्रूर कर्म, सब पुरुष-वध हैं। वह हिंसित की जाती हुई ब्रह्मगवी ब्रह्म-घाती वेद-हिंसक को मौत के पंजे में बाँध कर खण्ड-खण्ड कर देती है। वह सैकड़ों का वध करने वाली हिंसक वज्र (तोप) के समान ब्रह्म-घाती की नाशक है। अत एव ब्राह्मणों की गौ छिद्र जानने वाले विज्ञानी के द्वारा भी कठिनता से वश्य है। दौड़ती हुई वह वज्र है और ऊँची उठती हुई वैश्वानर अग्नि है। वह (पापी के) शान्ति-व्यवहारों को नाशक वज्र है, अपेक्षा करती हुई महान् देव है। देखती हुयी छुरे की धार है, शब्द करती हुयी सब ओर गरजती है। १३-२०

५१ वह ब्रह्म-गवी हुंकारती हुयी (दुष्ट की) मौत, पूँछ फटकारती हुयी उग्र देव है। २१

५२ कान (अभ्युदय-निःश्रेयस) सर्वथा हिलाती हुयी वह (दुष्ट की) सब वयो-हानि करने वाली है, बार-बार मूत्र करती हुयी राज-यक्ष्मा है। २२

५३ वह (दुष्ट के लिए) दुही जाती हुयी वज्र, दुही गयी सिर का रोग है। २३

५४ वह ,, [illegible] करती हुयी विनाशक, छुड़ी गयी तलवार युद्ध-कर्त्री है। २४

५५ वह मुख के बाँधे जाते हुए बाण-समान, मारी जाती हुयी कष्ट-रूपा है। २५

५६ वह गिरती हुयी पाप-रूपी विष वाली; गिरी हुयी अन्धकार-रूप है। २६

५७ ब्रह्म-गवी (वेदवाणी रूपी गौ) पीछे चलती हुयी वेद-नाशक के प्राण नष्ट करती है। २७

पर्याय ४, मन्त्र ११

५८ वेद-वाणी काटी जाने पर वैर, और विभक्त की जानेपर पौत्र तक को खानेवाली है। २८

५९-६४ हरण की जाने पर वह देव-अस्त्र और हरी गयी निर्धनता हो जाती है। २९। अधिकृत वह पाप-रूप और नीचे रक्खी कठोरता है। ३०। प्रयास करती वह विष, क्लेश-पड़ी ज्वर है। ३१ पकायी जाती वह पाप, और पकी बुरा स्वप्न है। ३२। अनादर से चलायी जाती वह मूल तक काटने वाली, और पीट कर चलायी गयी क्षय-कारक है। ३३। उसकी गन्ध (नाश) से बेहोशी, और उखाड़ी जाती वह शोक होती, तथा उखाड़ी गयी फन में विष वाले साँप-समान होती है। ३४

३५६५ अभूतिरुप ह्रियमाणा पराभूतिरुपहृता ।। ३५
६६ शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिमिदा पिशिता ।। ३६
६७ अवर्तिरश्यमाना निर्ऋतिरशिता ।। ३७
६८ अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्माच्चामुष्माच्च ।। ३८

पर्याय ५ । ८ मन्त्र

६९ तस्या आहननं कृत्या मेनिराशसनं वलग ऊबध्यम् ।। ३९
७० अस्वगता परिह्णुता ।। ४०
७१ अग्निः क्रव्याद् भूत्वा ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविश्यात्ति ।। ४१
७२ सर्वास्याङ्गा पर्वा मूलानि वृश्चति ।। ४२
७३ छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ।। ४३
७४ विवाहान् ज्ञातीन्त्सर्वानपि क्षापयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना ।। ४४
७५ अवास्तुमेनमस्वगमप्रजसङ्करोत्यपरापरणो भवति क्षीयते ।। ४५
७६ य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गामादत्ते ।। ४६

पर्याय ६ । १५ मन्त्र

७७ क्षिप्रं वै तस्याहनने गृध्राः कुर्वत ऐलवम् ।। ४७
७८ क्षिप्रं वै तस्यादहनं परिनृत्यन्ति केशिनीराघ्नानाः पाणिनोरसि कुर्वाणाः पापमैलवम् ।। ४८
७९ क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलवम् ।। ४९
८० क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति यत्तदासीदिदं नु ता३दिति ।। ५०
८१ छिन्ध्या च्छिन्धि प्रच्छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय ।। ५१
८२ आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ।। ५२
८३ वैश्वदेवी ह्यु१च्यसे कृत्या कूल्बजमावृता ।। ५३
८४ ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः ।। ५४
८५ क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ।। ५५
८६ आ दत्से जिनतां वर्च इष्टं पूर्तं चाशिषः ।। ५६
८७ आदाय जीतं जीताय लोके ऽमुष्मिन् प्र यच्छसि ।। ५७
८८ अघ्न्ये पदवीर्भव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या ।। ५८
८९ मेनिः शरव्या भवाघादघविषा भव ।। ५९
३५९० अघ्न्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ।। ६०

३५६५ छीनी जाती वह वेदवाणी रूपी गौ सम्पत्ति-नाशक, छीनकर पास लायी गयी पराजय है ३५

६६-६८ खण्ड-खण्ड की जाती वह क्रुद्ध-हिंसक, पीसी गयी वह कर्म-नाशक है। खायी जाती वह निर्धनता, खायी गयी वह कष्ट है। खायी गयी वेद-गौ वेद-नाशक को इस लोक और परलोक से उखाड़ फेंकती है। ३६-३८

पर्याय ५। ८ मन्त्र

६९ उस का मारना कृत्या शस्त्र, काटना वज्र; बन्धन वलग (गुप्त शस्त्र) है। ३९

७० चुरायी गयी वह निर्धनता-रूप है। ४०

७१ ब्रह्म-गवी मांस-भक्षी शवाग्नि होकर वेद-हिंसक में घुस कर उसे खाती है। ४१

७२ वह उसके सब अङ्ग-पोरुए-जड़ काट देती है। ४२

७३ यह इसके पिता-माता के बन्धुओं को नष्ट करती है। ४३

७४ क्षत्रिय द्वारा फिर न दी जाती हुई ब्रह्म-गवी (भूमि-गाय) वेद-नाशक के विवाहों, ज्ञाति-सम्बन्धियों को नष्ट कर देती है। ४४

७५-७६ वह इसे घर-हीन, निर्धन-निस्सन्तान करती; वह अन्य-सहाय-रहित, नष्ट हो जाता है जो क्षत्रिय ऐसे विद्वान् ब्राह्मण की गौ ले लेता है। ४५-४६

पर्याय ६। मन्त्र १५

७७ शीघ्र ही उस (क्षत्रिय) के मरने पर गिद्ध कोलाहल करते हैं। ४७

७८ शीघ्र ही उसकी जलती चिता के चारों ओर बिखरे केश वाली स्त्रियाँ पाप-विलाप करती, हाथ से छाती पर आघात करती हुईं पैर पटका करती हैं। ४८

७९ शीघ्र ही उसके घरों में भेड़िए विलास करने लगते हैं। ४९

८० शीघ्र ही इसके सम्बन्ध में पूछते हैं कि जो वह था क्या यही वह है? ५०

८१-८२ हे अंगिरा (ईश्वर-वैज्ञानिक) की शक्ति! तू छीनने वाले वेद-नाशक को काट; सब ओर काट, पूर्णतया काट; मार; मार डाल, नाश कर। ५१-५२

८३ तू वैश्वदेवी कही जाती है, रोकी गयी तू नदी-तट-उद्ध-प्रवाह-समान विनाशक है। ५३

८४-८९ तू दुष्टों को दग्ध-सन्तप्त करती, वृक्ष का वज्र है। तू छुरा-वज्र, मौत होकर दौड़। तू हत्यारों के तेज-यज्ञ-परोपकार-आशाएँ नष्ट कर देती है। तू हिंसक को पकड़ कर दूसरे लोक में इसके हिंसक के लिए सौंप देती है। हे अहिंसनीया! तू वेदज्ञ की प्रशंसनीय प्रतिष्ठा बन। तू वज्र और बाण रूप हो, इसके पाप से इसके लिए विषैली हो। ५४-५९

३५९० हे अहिंसनीया वेद-गौ! तू वेद-हिंसक, अपराधी, देव-हिंसक, अदान-शील के सिर को नष्ट कर। ६०

सूक्त ५, काण्ड १२ पूर्ण हुआ।

३५९१ त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम् ॥ ६१

पर्याय ७ । १२ मन्त्र

३५९२ वृश्च प्रवृश्च संवृश्च दह प्रदह संदह ॥ ६२

९३ ब्रह्मज्यं देव्यघ्न्य आ मूलादनु सं दह ॥ ६३

९४ यथा यात् यमसादनात् पापलोकान् परावतः ॥ ६४

९५ एवा त्वं देव्यघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥ ६५

९६ वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ॥ ६६

९७ प्र स्कन्धान् प्र शिरो जहि ॥ ६७

९८ लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय ॥ ६८

९९ मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह ॥ ६९

३६०० अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि ॥ ७०

३६०१ सर्वास्याङ्गा पर्वाणि विश्रथय ॥ ७१

२ अग्निरेनं क्रव्यात् पृथिव्या नुदतामुदोषतु वायुरन्तरिक्षान्महतो वरिम्णः ॥ ७२

३६०३ सूर्य एनं दिवः प्र णुदतां न्योषतु ॥ ७३

काण्ड १२ में सूक्त ५, और काण्ड १२ समाप्त हुआ । ओ३म्

९१ तेरे कारण मारे-कुचले गये को अग्नि जला डाले । ६१

पर्याय ७ । १२ मन्त्र

९२ तू वेद-हिंसक को काट-चीर-फाड़ और जला-फूँक-भस्म कर दे । ६२

९३-९४ हे न मारी जाने योग्य गौ-देवी ! तू वेद-घाती को जड़ से ऐसा भस्म कर दे जिस प्रकार वह न्यायालय से दण्ड पाकर पाप-युक्त लोकों को जाये । (तिरसठ-चौंसठ)

९५-९७ ऐसे ही तू अहिंसनीय देवी ! अपराधी-देवघाती-अदानी वेद-हिंसक के कन्धों और सिर को सौ जोड़ वाले, तेज, छुरे की धार वाले वज्र से काट दे । (पैंसठ-छियासठ)

३५९८-३६०१ इसके लोम काट, त्वचा उधेड़ । इसके मांस के टुकड़े-टुकड़े कर. इस की नसें काट । इसकी हड्डियाँ तोड़; मज्जा निकाल । इसके सब अङ्ग-जोड़ ढीले कर । ६८-७१ ।

२-३ इस गो-घाती को मांस-भक्षी शव-अग्नि पृथिवी से धकेले-जलाए, वायु बड़े विस्तृत अन्तरिक्ष से धकेले, । सूर्य इसको द्यौ से दूर निकाल दे, तपाये । ७२-७३

अनुवाक ५ समाप्त हुआ ।

सूक्त ५ समाप्त हुआ ।

प्रपाठक २७ पूर्ण हुआ ।

यह काण्ड १२ पूर्ण हुआ ।

ओ३म्

अथर्ववेद कांड १३ सूची

अथर्ववेद, कांड १३

प्रपाठक २८ अनुवाक सूक्त १ ६० मन्त्र

३६०४ उदेहि वाजिन् यो अप्स्वन्तरिदं राष्ट्रं प्रविश सूनृतावत् ।
यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु ॥ १
५ उद्वाज आ गन् यो अप्स्वन्तर्विश आ रोह त्वद्योनयो याः ।
सोमं दधानोऽप ओषधीर्गाश् चतुष्पदो द्विपद आ वेशयेह ॥ २
६ यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीहि शत्रून् ।
आ वो रोहितः शृणवत् सुदानवस् त्रिषप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः ॥ ३
७ रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह गर्भो जनीनां जनुषामुपस्थम् ।
ताभिः संरब्धमन्वविन्दन् षडुर्वीर्गातुं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहाः ॥ ४
८ आ ते राष्ट्रमिह रोहितोऽहार्षीद् व्यास्थन् मृधो अभयं ते अभूत् ।
तस्मै ते द्यावापृथिवी रेवतीभिः कामं दुहाथामिह शक्वरीभिः ॥ ५
९ रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तुं परमेष्ठी ततान ।
तत्र शिश्रियेऽज एकपादो दृंहद् द्यावापृथिवी बलेन ॥ ६
१० रोहितो द्यावापृथिवी अदृंहत् तेन स्व स्तभितं तेन नाकः ।
तेनान्तरिक्षं विमिता रजांसि तेन देवा अमृतमन्वविन्दन् ॥ ७
११ वि रोहितो अमृशद् विश्वरूपं समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च ।
दिवं रूढ्वा महता महिम्ना सं ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन ॥ ८
३६१२ यास् ते रुहः प्ररुहो यास त आरुहो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।

अथर्ववेद काण्ड १३, प्रपाठक २८ अनुवाक-सूक्त १

विषय— रोहित (परमात्मा-सूर्य-राष्ट्रपति)। इन्द्र-युद्धादि० अश्वेश्वर-धारणादि० अग्नीश्वर-
पार्थनादि० 'परमगंत विदुः कवयः सत्ये अन्यः समाहितः। अप्स्वन्यः समिध्यते ब्रह्मोद्धावग्नी ईजाते',
इत्यादि पदार्थविद्या —महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

३६०४ हे बली राष्ट्रपति! उठ, तू आप्तों और (अभिषेकार्थ) जल में है, उत्तम वाणी-युक्त
होकर इस राष्ट्र में घुस। जिस रोहित ने यह विश्व पैदा किया वह तुझे राष्ट्र के लिए पोषक करे। १
५ तू बली होकर आ, उस आप्त प्रजा में अन्दर वह जो तुझ से मिली हो। ऐश्वर्य धारण कर तू
यहाँ जल-औषधि-गौ-चौपाये-दोपायों को सब ओर प्रविष्ट करा। २
३ हे भूमि को माता मानने वाले उग्र सैनिको! सेनापति के साथ तुम शत्रुओं को मारो, तुम्हारा
रोहित सुने कि तुम बड़े घातक; २१ विभागों में, २१ शक्ति वाले, स्वादु भोजन में हृष्ट रहते हो। ३
७ सूर्य-समान राजा उच्च पद पर चढ़ता है, गर्भ-समान वह प्रजा के पास रहता है। उसके द्वारा
मिला राज्य छहों दिशाएँ मानती हैं, मार्ग जानता वह यहाँ राष्ट्र को वश में रखता है। ४
८ रोहित तेरे लिए यहां राष्ट्र लाया है, दुष्टों का नाश कर, तेरा अभय हो; द्यावा-पृथिवी उस
तेरे लिए यहां धन-सम्पन्न शक्तियों से कामनाएँ पूरी करें। ५
९ परम पद पर स्थित रोहित परमात्मा द्यावा-पृथिवी उत्पन्न करता है, वहाँ वायु-सूत्र फैलाता है,
वहाँ एकमात्र अजन्मा वही आश्रय होकर आकर्षण-बल से द्यावा-पृथिवी को दृढ़ रखता है। ६
१० रोहित द्यौ-पृथिवी दृढ़ करता, वही सुखमय लोक-मोक्ष धारण करता; वही अन्तरिक्ष और
लोक नापता है, उससे विद्वान् अमरता पाते हैं। ७
११ रोहित द्यौ पर चढ़ बीज-अंकुर से बड़ी महिमा से विश्व-रूप बनाता है; वह राष्ट्र दूध घी से भरे। ८
३६१२ हे राजन्! जो तेरे रुह-प्ररुह-आरुह (कच्चा-बना-श्रेष्ठ सामान, वायु-यान आदि) हैं जिनसे
तू द्यौ और अन्तरिक्ष को भरपूर करता है इनके ज्ञान-अन्न-जल आदि से बढ़ता हुआ तू रोहित के
प्रजा-राष्ट्र में जागता (सावधान) रह। ९

तासां ब्रह्मणा पयसा वावृधानो विशि राष्ट्रे जागृहि रोहितस्य ॥ ९
३६१३ यास्ते विशस्तपसः संबभूवुर्वत्सं गायत्रीमनु ता इहागुः ।
तास्त्वा विशन्तु मनसा शिवेन संमाता वत्सो अभ्येतु रोहितः ॥ १०
१४ ऊर्ध्वो रोहितो अधि नाके अस्थाद्विश्वा रूपाणि जनयन् युवा कविः ।
तिग्मेनाग्निर्ज्योतिषा वि भाति तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥ ११
१५ सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदा घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः ।
मा मा हासीन्नाथितो नेत्त्वा जहानि गोपोषं च मे वीरपोषं च धेहि ॥ १२
१६ रोहितो यज्ञस्य जनिता मुखं च रोहिताय वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
रोहितं देवा यन्ति सुमनस्यमानाः स मा रोहैः सामित्यै रोहयतु ॥ १३
१७ रोहितो यज्ञं व्यदधाद् विश्वकर्मणे तस्मात् तेजांस्युप मेमान्यागुः ।
वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥ १४
१८ आ त्वा रुरोह बृहत्यूत पंक्तिरा ककुब् वर्चसा जातवेदः ।
आ त्वा रुरोहोष्णिहाक्षरो वषट्कार आ त्वा रुरोह रोहितो रेतसा सह ॥ १५
१९ अयं वस्ते गर्भं पृथिव्या दिवं वस्तेऽयमन्तरिक्षम् ।
अयं ब्रध्नस्य विष्टपि स्वर्लोकान् व्यानशे ॥ १६
२० वाचस्पते पृथिवी नः स्योना स्योना योनिस् तल्पा नः सुशेवा ॥
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यग्निरायुषा वर्चसा दधातु ॥१७
२१ वाचस्पत ऋतवः पञ्च ये नौ वैश्वकर्मणाः परि ये संबभूवुः ।
इहैव° [पूर्ववत्] परि रोहित आयुषा° [पूर्ववत्] ॥ १८
२२ वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः ।
इहैव° [पूर्ववत्] पर्यहमायुषा° [पूर्ववत्] ॥ १९
२३ परि त्वा धात् सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा ।
सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत् ॥ २०
२४ यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित । शुभा यासि रिणन्नपः ॥ २१
२५ अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः ।
तया वाजान् विश्वरूपा जयेम तया विश्वा पृतना अभि ष्याम ॥ २२
३६२६ इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति ।
ताङ्गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयो अप्रमादम् ॥ २३

३६१३ (हे राजन् !) तेरी जो प्रजा तप से समर्थ हो वह सब में बसे प्रिय ईश्वर और गायत्री (वेद-वाणी) के अनुकूल होकर यहाँ तेरे पास कल्याणकारी मन के साथ आये और तू रोहित (तेजस्वी) हो कर वैसे ही उससे मिल जैसे माता और बच्चे मिलते हैं । १०

१४ रोहित ईश्वर उत्कृष्ट होकर मोक्ष में स्थित है, वह सदा युवा, कवि सब रूपों को उत्पन्न करता है । ज्ञान-स्वरूप वह उग्र ज्योति से प्रकाशित होता और तीसरे लोक (मोक्ष) में प्रिय शक्तियाँ और द्यौ लोक में नक्षत्र उत्पन्न करता है । ११

१५ हजारों शक्तियों वाला, सुख-वर्षक, पदार्थ-ज्ञाता, तेजो-युक्त, सोम-धारक, सुवीर, प्रार्थित हे रोहित (ईश्वर-सूर्य-राजा)! तू मुझे न छोड़ और मैं तुझे न छोड़ूं; मुझे इन्द्रियों-वीरों की पुष्टि दे।१२

१६ रोहित यज्ञ का उत्पादक और मुख्य है, उनके लिए वाणी-कान-मन से अपने को सौंपता हूं, देव उसके पास अच्छे मन से पहुँचते हैं; वह मुझे समिति-सदस्यों के साथ ऐश्वर्यों से उन्नत करे । १३

१७ रोहित ने विश्व-कर्मा मनुष्य के लिए यज्ञ रचे, इससे मुझे ये तेज मिले, मैं तेरी केन्द्रीय भुवन की शक्ति के मध्य कहा करूं । १४

१८ हे जातवेद (सर्वज्ञ-व्यापक परमात्मा) ! बृहती-पंक्ति-ककुप्-उष्णिक् छन्द और वषट् तथा वीर्य के साथ रोहित सूर्य ये सब तुझ पर आश्रित हैं । १५

१९ यह परमात्मा भूमि-गर्भ, द्यौ-अन्तरिक्ष में व्यापता, महान् प्राण-सूर्य और आकाश के लोक में व्यापक है । १६

२०-२२ हे वाणी के पति (परमात्मा) ! हमें भूमि-घर-पलंग-५ ऋतुएँ (हेमन्त-शिशिर को एक मानकर) जो सब कर्म कराने वाली हैं; प्रसन्नता-मन; गोष्ठ में गौएँ, घरों में सन्तान सुखद बना । यहीं पर प्राण हमारी मित्रता में हो; हे राजन् ! अग्नि-रोहित (सूर्य)-मैं(परमात्मा) तीनों उत तुझे आयु और तेज से घेरे रहें । १७-१९ [यह अन्तिम कथन तीनों मन्त्रों में समान है । -सम्पादक]

२३ देव सविता-अग्नि-मित्रावरुण सब ओर तेज से तेरी रक्षा करें । सब शत्रुओं का नाश करता हुआ आ, इस राष्ट्र को प्रिय-सत्य-वाणी-सम्पन्न कर । २०

२४ हे रोहित (सूर्य-राजा) ! जिस तुझे चितकबरी अश्व-शक्ति रथ में ले जाती है वह तू शोभित होकर प्रजा-जल को गति देता हुआ जाता है । २१

२५ बढ़ते रोहित (राजा) की बढ़ती हुयी प्रजा अनुकूल नियम वाली होकर प्रेरक-अच्छी ४ वर्णों वाली बड़ी- तेज वाली हो उससे हम सब प्रकार के शत्रु-बल-अन्न-भूमि को जीतें और उसीसे सब शत्रु-सेनाओं को हराएँ । २२

३६२६ बढ़ती हुयी प्रजा के बढ़ते हुए रोहित का यह सभा-सिंहासन है, यह पथ है जिससे विचित्र घोड़ी और नहर जाती है, इसे गौ-भूमि-वेदवाणी के धारक और ज्ञानी निरीक्षक धारण-ऊँचा करते तथा क्रान्त-दर्शी विद्वान् प्रमाद-रहित होकर रक्षा करते हैं । २३

१६२७ सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम् ।
घृतपावा रोहितो भ्राजमानो दिवं देवः पृषतीमा विवेश ॥ २४
२८ यो रोहितो वृषभस् तिग्मशृङ्गः पर्यग्निं परि सूर्यं बभूव ।
यो विष्टभ्नाति पृथिवीं दिवं च तस्माद्देवा अधि सृष्टीः सृजन्ते ॥ २५
२९ रोहितो दिवमारुहन्महतः पर्यर्णवात् । सर्वा रुरोह रोहितो रुहः ॥ २६
३० वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं देवानां धेनुरनपस्पृगेषा ।
इन्द्रः सोमं पिबतु क्षेमो अस्त्वग्निः प्रस्तौतु वि मृधो नुदस्व ॥ २७
३१ समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः ।
अभीषाड् विश्वाषाडग्निः सपत्नान् हन्तु ये मम ॥ २८
३२ हन्त्वेनान् प्रदहत्वरिर्यो नः पृतन्यति । क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान् प्र दहामसि ॥ २९
३३ अवाचीनानव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान् । अधा सपत्नान्मामकानग्नेस्तेजोभिरादिषि ॥ ३०
३४ अग्ने सपत्नानधरान् पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पिपानं बृहस्पते ।
इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः ॥ ३१
३५ उद्यंस् त्वं देव सूर्य सपत्नानव मे जहि । अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥ ३२
३६ वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठो ऽन्तरिक्षम् ।
घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति ॥ ३३
३७ दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह ।
प्रजां चारोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं सं स्पृशस्व ॥ ३४
३८ ये देवा राष्ट्रभृतो ऽभितो यन्ति सूर्यम् ।
तैष्टे रोहितः संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ॥ ३५
३९ उत्त्वो यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति । तिरः समुद्रमति रोचसेऽर्णवम् ॥ ३६
४० रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति संधनाजिति ।
सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥ ३७
४१ यशा यासि प्रदिशो दिशश्च यशाः पशूनामुत चर्षणीनाम् ।
यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थे ऽहं भूयासं सवितेव चारुः ॥ ३८
४२ अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्तानि पश्यसि । इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥
१६४३ देवो देवान् मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे । समानमग्निमिन्धते तं विदुः कवयः परे ॥ ४०

३६२७ सूर्य-समान राजा के झण्डे वाले जीवित घोड़े रथ को सदा सुख से ले जाते हैं, प्रकाश-रक्षक, प्रकाशमान रोहित, सूर्य द्यौ-आकाश-गङ्गा में, और राजा प्रजा में प्रविष्ट रहता है। २४

२८ सुख-वर्षक, तीक्ष्ण-शक्ति जो रोहित ईश्वर अग्नि-सूर्य के सब ओर है, जो द्यौ-भूमि को थामे हुए है ऐसे से प्रेरित देव सृष्टियाँ रचते हैं। २५

२९ रोहित महासमुद्र से आकाश तक अपनी शक्ति दिखता है। रोहित सब ऊँचाइयों पर चढ़ा रहता है। २६

३० हे राजा! दूध-घी से भरी भूमि को नाप, यह देवों की स्पर्श से न हटने वाली गौ है। राजा सोम पिये, कल्याण हो, अगुणी प्रस्ताव करे, तू शत्रुओं को दूर भगा। २७

३१ आग समिधा-घी से बढ़ी, घी की आहुति वाली दीप्त होती है, वैसे ही यह सब ओर विजयी सब शत्रुओं का नाशक अगुणी मेरे शत्रुओं को मारे। २८

३२ वह उन्हें मारे-जला दे जो दुष्ट हम पर चढ़ायी करता है, हम मांस-भक्षी आग से शत्रुओं को जला दें। २९।

३३ हे इन्द्र सेनापति! तू बली भुजाओं वाला होकर नीच वैरियों को नष्ट कर, और मैं अपने घर के शत्रुओं को अग्नि (मन्त्री) के तेजों से वश में करूँ। ३०

३४ हे मन्त्री! तू वैरियों को हमारे नीचे गिरा; हे बड़े सेनापति! लोभी सजातीय को व्यथित कर, हे राजा-मन्त्री-मित्र-न्यायाधीश! शत्रु क्रोध न करते हुए नीचे गिर जाएँ। ३१

३५ हे देव सूर्य और तत्समान सेनापति! ऊपर उठता हुआ तू मेरे वैरियों को मार, इन्हें अश्मा (किरण-पत्थर) से मार, वे नीचे अँधेरे में जाएं। ३२

३६ प्रजा-प्रिय, ज्ञान-वर्षक, तेजो-युक्त राजा अन्तरिक्ष तक चढ़ता है। उस पूज्य प्रिय की प्रेम से स्तुति करते और ब्रह्म को वेद-ज्ञान से बढ़ाते हैं। ३३

३७ हे राजन्! तू द्यौ-पृथिवी-राष्ट्र-धन-प्रजा-अमृत(अन्न)पर चढ़(अधिकार कर) और रोहित सूर्य से शरीर-विस्तार का सम्यक स्पर्श कर। ३४

३८ जो राष्ट्र-धारक विद्वान् सूर्य-समान राजा के सामने जाया करते हैं इनसे मन्त्रणा करता हुआ तेरा राजा प्रसन्न होकर राष्ट्र को धारण करे। ३५

३९ वेद से पवित्र यज्ञ तुझे बड़ा बनाते हैं, मार्ग-गामी घोड़े आगे ले जाते हैं, तू जल-समुद्र के पार तक अति कीर्तिमान् हो जाता है। ३६

४० वसु-गौ-धन-जेता रोहित पर द्यावा-पृथिवी आश्रित हैं, जिसके हजारों नक्षत्र और ७ गृह पुत्र हैं इस सूर्य का केन्द्र मैं बताता हूं कि भुवन के बल में है। ३७

४१ तू यशस्वी होकर दिशा-विदिशाओं में जाता है, मनुष्यों-पशुओं में, अखण्ड पृथिवी पर यशस्वी है। मैं सविता के समान सुन्दर बनूँ। ३८

४२ तू वहाँ रहता यहाँ की जानता, यहाँ रहता सब देखता, लोग द्यौ में प्रकाशित सूर्य देखते हैं। ३९

३६४३ देव होकर तू देवों को चलाता है, समुद्र में अन्दर चलता है, श्रेष्ठ विद्वान् समान अग्नि को प्रदीप्त करते और जानते-पाते हैं। ४०

३६४४ अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्वस्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥
४५ एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद्यष्टापदी नवपदी बभूवुषी ।
सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस् तस्या समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥
४६ आरोहन्द्यामममृतः प्राव मे वचः।उत्त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति
४७ द तत्ते अमर्त्या यत्त आक्रमणं दिवि। यत्ते सधस्थं परमे व्योमन् ॥ ४४
४८ सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽतिपश्यति।सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरारुरोह दिवं महीम्
४९ उर्वीरासन्परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पयत्। तत्रैतावग्नीआधत्त हिमं घ्रंसं च रोहितः।
५० हिमं घ्रंसं चाधाय यूपान्कृत्वा पर्वतान् । वर्षाज्यावग्नीईजाते रोहितस्य स्वर्विदः॥
५१ स्वर्विदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निःसमिध्यते।तस्माद् घ्रंसस्तस्माद्धिमस्तस्माद्यज्ञोऽजायत
५२ ब्रह्मणाग्नी वावृधानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ । ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः।
५३ सत्ये अन्यः समाहितो ऽप्स्वन्यः समिध्यते । ब्रह्म० [पूर्ववत्] ॥ ५०
५४ यं वातः परि शुम्भति यं वेन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः । ब्रह्मे० [पूर्ववत्] ॥
५५ वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणाम् ।
घ्रंसं तदग्निं कृत्वा चकार विश्वमात्मन्वद् वर्षेणाज्येन रोहितः ॥ ५२
५६ वर्षमाज्यं घ्रंसो अग्निर्वेदिर्भूमिरकल्पत। तत्रैतान्पर्वतानग्निर्गीर्भिरूर्ध्वाँ अकल्पयत्॥
५७ गीर्भिरूर्ध्वान्कल्पयित्वा रोहितोभूमिमब्रवीत्।त्वयीदं सर्वंजायतां यद्भूतं यच्चभाव्यम्
५८ स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत ।
तस्माद्ध जज्ञ इदं सर्वं यत् किंचेदं विरोचते रोहितेन ऋषिणाभृतम् ॥
५९ यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायाङ्करवो ऽपरम् ॥ ५६
६० यो माभिच्छायमत्येषि मां चाग्निं चान्तरा । तस्य० [पूर्ववत्] ॥ ५७
६१ यो अद्य देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायति ।
दुष्वप्न्यं तस्मिं छमलं दुरितानि च मृज्महे ॥ ५८
६२ मा प्रगाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः । मान्त स्थुर्नो अरातयः ॥ ५९
३६६३ यो यज्ञस्य प्रसाधनस् तन्तुर्देवेष्वाततः । तमाहुतमशीमहि ॥ ६०

हुई भूमि ऊपर स्थित है।
३६४४ दूर से इधर, इधर से दूर तक वत्प (चन्द्र) को धारण करती
पर ब्रह्म के शब्द से अवर ब्रह्म को, और अवर के शब्द से पर ब्रह्म को बताती वेद-वाणी उन्नत
स्थित, वह कहाँ से आती है? किसी समुद्र (सूर्य-ईश्वर) की ओर दूर जाती है। इस समूह, में
वत्स को कहीं नहीं पैदा करती। श्लेष अलङ्कार है। पहले ९-९-१७में, ऋ १-१६४-१७ में भी है। १४
४५ वह एक पद (सूर्य-ब्रह्म) वाली, दो पद (चेतन-अचेतन, भूत-भविष्य; प्रकृति-जीव वाली, चार
पद (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष, वेद, मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार) वाली, आठ पद (आश्रम-वर्ण-प्रकृति-
सिद्धि अणिमा-महिमा-गरिमा-लघिमा-प्राप्ति-प्राकाम्य-ईशित्व-वशित्व) वाली, नौ पद (शरीर के,
चक्र, मन-बुद्धि, सुख-नाक-कान-आँख के छिद्र) वाली, हजारों अक्षर-अक्षीण शक्तियों वाली१
है, उससे समुद्र (जल-ज्ञान) के सागर निकलते हैं। [पहले ६-१०-२१ और ऋ १-१४-१४२ में है।] ४२
४६ हे द्यौ तक पहुँचे अमर देव! मेरा वचन रख, वेद से पवित्र यज्ञ इस मार्ग में गये तुझे बताते हैं। ४३
४७ हे अमर! मैं सूर्य में जो तेरा साक्षात्कार है और मोक्ष में सह-स्थान है उसे जानूँ। ४४
४८ सूर्य (परमात्मा) द्यौ-पृथिवी-जल के परे देखता है, जगत का अकेला द्रष्टा वह बड़े द्यौ पर चढ़ा है ४५६
४९ बड़ी दिशाएँ परिधियाँ थीं, भूमि वेदि बनायी, वहाँ रोहित शीत-उष्ण रूपी दो अग्नियाँ रखता है। ४
५० शीत-उष्ण आधान कर, पर्वतों को यूप बना कर वर्षा रूपी घी वाली दो अग्नियाँ (चन्द्र-सूर्य
आहवनीय-गार्हपत्य) सुख-प्रद रोहित का यज्ञ किया करती हैं। ४७
५१ सुख-प्रद रोहित की अग्नि ब्रह्म से दीप्त होती है, उससे उष्णता-शीत-यज्ञ उत्पन्न होते हैं। ४९
५२ दोनों अग्नि ब्रह्म से बढ़ती-बढ़ी-आहुत हैं, ब्रह्म-दीप्त अग्निया सुखद रोहित का यज्ञ करती है। ४०
५३ एक (सूर्य) सत्य परमात्मा में, अन्य (चन्द्र) जल-अन्तरिक्ष में दीप्त होता है। ब्रह्म० (पूर्ववत्)। ५
५४ जिसे वायु वेद-पाते इन्द्र (सत्य परमात्मा, निजती) प्रकाशित करते हैं वे ब्रह्म-दीप्त० „। ५
५५ भूमि को वेदि; द्यौ को दक्षिणा और उष्ण सूर्य को अग्नि बनाकर रोहित वर्षा रूप घोड़
विश्व को गति-युक्त करता है। ५२
५६ वर्षा को घी, ताप को आग, भूमि को यज्ञ-वेदि बनाया, वहाँ इन पहाड़ों की अन्दर क
ज्वालामुखी आग ने धड़ाकों के साथ ऊँचा बना दिया। ५६
५७ अपने धड़ाकों से उच्च बना कर रोहित भूमि से बोला— तुझ पर यह सब पैदा हुआ करे जो
हो चुका और जो होगा। ५४
५८ वह यज्ञ पहला हुआ, भविष्य में भी सम्पाद्य बना। उसी से यह सब बना जो कुछ यह चमक
रहा है रोहित ऋषि (परमात्मा और सूर्य) ने धारण किया है। ५५
५९ और जो गो (गाय-वेदवाणी) को पर से ठुकराता और सूर्य (तथा विद्वान्) के सामने मूत्र करता
है उस तेरी जड़ को काटता हूं कि तू फिर छाया [त्रुटि-आश्रय] न कर सके (मर जाये)। ५६।
६० जो तू मेरे और अग्नि [ईश्वर-आचार्य-यज्ञ] के बीच में आकर उसके आश्रय में स्थित मेरा
अपमान करे तो मैं तेरी जड़ को काटता हूं कि फिर त्रुटि न कर सके। ५७
६१ हे देव सूर्य! जो आज तेरे और मेरे बीच में आये तो उसमें दुस्वप्न-पाप-दुर्गुण को हटायें। ५८
६२ हे परमेश्वर! हम पथ से, सोम वाले यज्ञ से, भ्रष्ट न हों, हमारे अन्दर शत्रु न हों। ५९
[ऋ १०-५७-१ में भी है।]
३६६३ जो यज्ञ का साधन-सूत्र विद्वानों में फैला रहता है उस रुद-समर्पित [परमात्मा] को हम
प्राप्त हों। ६०

❀ सूक्त १ समाप्त हुआ। ❀

अथर्ववेद काण्ड१३ प्रपाठक२८, अनुवाक–सूक्त २

३६६४ उदस्य केतवो दिवि शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
आदित्यस्य नृचक्षसो महिव्रतस्य मीढुषः ॥ १
६५ दिशां प्रज्ञानां स्वरयन्तमर्चिषा सुपक्षमाशुं पतयन्तमर्णवे ।
स्तवाम सूर्यं भुवनस्य गोपां यो रश्मिभिर्दिश आ भाति सर्वाः ॥ २
६६ यत् प्राङ् प्रत्यङ् स्वधया यासि शीभं नानारूपे अहनी कर्षि मायया ।
तदादित्य महि तत्ते महि श्रवो यदेको विश्वं परि भूम जायसे ॥ ३
६७ विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः ।
स्रुताद् यमत्त्रिर्दिवमुन्निनाय तं त्वा पश्यन्ति परियान्तमाजिम् ॥ ४
६८ मा त्वा दभन् परियान्तमाजिं स्वस्ति दुर्गाँ अति याहि शीभम् ।
दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीमहोरात्रे विमिमानो यदेषि ॥ ५
६९ स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय येनोभावन्तौ परियासि सद्यः ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥ ६
७० सुखं सूर्य रथमंशुमन्तं स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम् । यं० [पूर्ववत्] ॥ ७
७१ सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त ।
अमोचि शुक्रो रजसः परस्ताद्विधूय देवस्तमो दिवमारुहत् ॥ ८
७२ उत्केतुना बृहता देव आगन्नपावृक् तमोऽभि ज्योतिरश्रैत् ।
दिव्यः सुपर्णः स वीरो व्यख्यददितेः पुत्रो भुवनानि विश्वा ॥ ९
७३ उद्यन् रश्मीना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि ।
उभा समुद्रौ क्रतुना विभासि सर्वांल्लोकान् परिभूर्भ्राजमानः ॥ १०
७४ पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्टे हैरण्यैरन्यं हरितो वहन्ति ॥ ११
७५ दिवि त्वात्त्रिरधारयत् सूर्या मासाय कर्तवे । स एषि सुधृतस्तपन् विश्वा भूतावचाकशत् ॥ १२
७६ उभावन्तौ समर्षसि वत्सः संमातराविव । नन्वेतदितः पुरा ब्रह्म देवा अमी विदुः ॥ १३
७७ यत् समुद्रमनु श्रितं तत् सिषासति सूर्यः । अध्वास्य विततो महान् पूर्वश्चापरश्च यः ॥ १४
७८ तं समाप्नोति जूतिभिस्ततो नाप चिकित्सति । तेनामृतस्य भक्षं देवानां नाव रुन्धते ॥ १५
७९ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १६
३६८० अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥ १७

अनुवाक सूक्त २

विषय— सूर्यश्वरादि, पश्यन् जन्मानि सूर्यश्वरेत्यादि, संबाहुभ्यां भरतीत्यादि, महाँस्ते महतो महि-
मेत्यादि पदार्थविद्या —महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती । देवता सविता रोहित ।
३६६४ मनुष्य-द्रष्टा, महाव्रता, सुख-सिंचक इस आदित्य के पवित्र चमकते झंडे (किरण-ज्ञान)
आकाश में उच्च लहराते हैं। १
६५ दीप्ति से ज्ञान कराने वाली दिशाओं के प्रकाशक; सुन्दर आश्रय-दाता, आकाश में शीघ्र
उड़ते पक्षी-तुल्य, भुवन-रक्षक सूर्य का गुण-वर्णन करें जो किरणों से सब दिशाएँ चमकाता है। २
६६ हे महान् आदित्य! जो तू स्व-शक्ति से पूर्व-पश्चिम शीघ्र जाता(प्रतीत)होता है, माया(प्रज्ञा-प्र-
कृति)ने नाना-रूप दिन-रात बनाता है यह तेरा महा-यश है कि अकेला सब विश्व में प्रकट होता है। ३
६७ विविध नवायक, मेधावी ईश्वर से चुने जिन प्रकाशमान सूर्य को हरी ७ रङ्ग की किरणें
धारण करतीं, अत्ता ईश्वर जिसे द्रव से अलग द्यौ में लाता है उसे सब केन्द्र में चलता देखते हैं। ४
[सात रङ्ग बैंगनी-आसमानी-नीला-हरा-पीला-नारङ्गी-लाल हैं। (अंग्रेजी विबग्योर)]
६८ हे सूर्य! केन्द्र पर सब ओर घूमते तुझे कोई नहीं दबा सकते, कल्याण करता हुआ तू
दुर्गम स्थिति शीघ्र पार करता है, जब द्यो-पृथिवी पर दिन-रात बनाता गति करता है। ५
६९ हे सूर्य! चलने के लिए तेरे रमणीय स्वरूप का सुन्दर अस्तित्व है जिससे तू दोनों अयन[उत्तर-
दक्षिण] तत्काल जाता है; जिस तेरे जल-ग्राहक सैकड़ों या बहुतसो सात रश्मि-अश्व ले जाते हैं। ६
७० हे सूर्य! तू सुखद-तेजोमय-सु-धारक-बली रमणीय स्वरूप को सुख से धारण कर जिसे०। ७
७१ सूर्य सुनहरी-चमकीली-पत्तों वाली बड़ी सात किरणें अपने रमणीय स्वरूप में जोड़ता है।
चमकीला देव वह अन्तरिक्ष के परे अँधेरा हटा कर द्यौ में चढ़ता है। ८
७२ बड़े प्रकाश के साथ सूर्य उदय होता; अंधेरा हटाकर ज्योति का आश्रय लेता है; दिव्य अच्छा
पालक; अदिति (अखण्ड ईश्वर-प्रकृति) का पुत्र, वीर वह सब भुवन प्रकाशित करता है। ९
७३ तू उदय होता हुआ रश्मि फैलाता, सब रूप पुष्ट करता, सब लोक सब ओर से चमकाता हुआ
अपने कर्म से दोनों समुद्रों [अन्तरिक्ष-भूमि, पूर्व-पश्चिम] को प्रकाशित करता है। १०
७४ माया से आगे-पीछे चलते मानो खेलते हुए ये दोनों शिशु [सूर्य-चन्द्र] अन्तरिक्ष में चलते हैं;
तू सब भुवन देखता है; दूसरे [चन्द्र] को सूर्य-किरणें सुनहरी नक्षत्रों के साथ चलाती हैं। ११
७५ हे सूर्य! ईश्वर तुझे मास बनाने को द्यौ में रखता है, सुधृत तपता तू आता, सब जगत देखता है। १२
७६ तू दोनों अन्तों तक जाता है जैसे बच्चा माता-पिता तक, विद्वान् यह पिछले ज्ञान से जानते हैं। १३
७७ जो जल समुद्र में है उसे सूर्य देना चाहता है, इसका महान् मार्ग पूर्व-पश्चिम फैला है। १४
७८ इसे वह वेगों से समाप्त करता, इससे टलता नहीं, अतः देवों का अमर भोजन[प्रकाश]नहीं रुकता।
[आगे के १६-२४ ९ मन्त्र ऋ० के १.५०.१-९ में, ८ मन्त्र, साम पू० ६.१४.७-१४ में हैं।]
७९ उस जगत्-व्यापक सूर्य देव को विश्व के दिखाने के लिए किरणें धारण करती हैं। [सोलह]
यजु ७-४१, ८-४१, ३३-३१, अथर्व २०-४७-१३, साम ३१
३६८० सब के देखनेवाले सूर्य के सामने रात्रियों के साथ नक्षत्र चोरों के समान भाग जाते हैं। १७
आगे २०-४७-१४ में भी है।

३६८१ अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु। भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ १८
८२ तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचन ॥ १९
८३ प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः। प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥२०
८४ येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥ २१
८५ वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः। पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥ २२
८६ सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य। शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥ २३
८७ अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ २४
८८ रोहितो दिवमारुहत् तपसा तपस्वी ।
स योनिमैति स उ जायते पुनः स देवानामधिपतिर्बभूव ॥ २५
८९ यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखो यो विश्वतस्पाणिरुत विश्वतस्पृथः ।
सं बाहुभ्यां भरति सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः ॥ २६
९० एकपाद् द्विपदो भूयो विचक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
द्विपाद्ध षट्पदो भूयो वि चक्रमे त एकपदस् तन्वं समासते ॥ २७
९१ अतन्द्रो यास्यन् हरितो यदास्थाद् द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो विभासि ॥ २८
९२ बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि। महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥ २९
९३ रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचसे अप्स्वन्तः ।
उभा समुद्रौ रुच्या व्यापिथ देवो देवासि महिषः स्वर्जित् ॥ ३०
९४ अर्वाङ् परस्तात् प्रयतो व्यध्व आशुर्विपश्चित् पतयन् पतङ्गः ।
विष्णुर्विचित्तः शवसाधि तिष्ठन् प्र केतुना सहते विश्वमेजत् ॥ ३१
९५ चित्रश् चिकित्वान् महिषः सुपर्ण आरोचयन् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
अहोरात्रे परिसूर्यं वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि ॥ ३२
९६ तिग्मो विभ्राजन् तन्वं शिशानो ऽरङ्गमासः प्रवतो रराणः ।
ज्योतिष्मान् पक्षी महिषो वयोधा विश्वा आस्थात्प्रदिशः कल्पमानः ॥३३
९७ चित्रं देवानामुत्केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस् तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि विश्वा ॥ ३४
३६९८ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश् च ॥ ३५

३६८१ इस सूर्य को प्रज्ञापक किरणें जनों में दीप्यमान अग्निवत् दीखती हैं ।।१८
८२ हे रोचक सूर्य ! अँधेरे से तारने वाला, विश्व-दर्शक, ज्योतिकारी तू विश्व चमकाता है ।१९
[दोनों मन्त्र आगे २०-४७.१५-१६ तथा यजु ८-४० और ३३-३१ भी हैं ।]
८३ तू दैवी-मानुषी प्रजा और विश्व के सामने प्रकाश-रूप दिखाने के लिए उदय होता है । २०
८४-८५ हे पावक-वरुण-दोष-निवारक सूर्य ! तू जिस प्रकाश से प्रगतिशील तथा अन्य जनों को देखता है उसी से रातों के साथ दिन नापता और जन्मे पदार्थ दिखाता हुआ विस्तृत द्यौ-अन्तरिक्ष में विविध रूप दिखाता है । २१-२२
८६ हे द्युति-युक्त सूर्य ! ७ रंगों की किरणें दीप्ति-युक्त विशेष द्रष्टा तुझे स्वरूप में धारण करती हैं । २३
८७ सूर्य अपने रूप में न गिरने देने वाली शोधक ७ किरणें युक्त करता, स्व-युक्त उनसे जाता है । २४
८८ तप से तपस्वी रोहित द्यौ पर चढ़ता है, वह अपने कारण आकाश-गंगा नीहारिका के प्रति जाता और फिर प्रकट होता है; वह अग्नि आदि देवों का अधिपति है । २५
८९ जो विश्व-द्रष्टा और सब ओर मुख- किरण-विस्तार वाला, एक देव (द्योतक) है वह द्यौ-भूमि को परमाणुओं से उत्पन्न करता हुआ (सूर्य और ईश्वर) धारण-आकर्षण से पोषण करता है । २६
ऋ १०-८३-३ और य १७-१९ में भी है ।
९० एक पैर वाली (वायु और ईश्वर) दो पैर (पक्ष) वाले (चन्द्र और द्यावा-भूमि) से अधिक व्यापक है, चन्द्र तीन पैर (लोक) वाले सूर्य को राशि-संक्रमण में पीछे से जा पकड़ता और ६ पैर (पृथिवी-द्यौ-अन्तरिक्ष-औषधि-वनस्पति-प्राणी) वाली आग से अधिक तेज चलता है । ये सब एक-पाद् के आश्रित हैं । [यह आगे ३७३४ पर और ऋ दस-एक सौ सत्रह-८ में भी है ।]
९१ तन्द्रा-रहित जाता सूर्य दिशाओं में रहता, दीप्त होकर दो रूप (दिन-रात) बनाता, है । हे आदित्य ! किरण-झंडा-युक्त, उदय होकर सब लोक जीतता तू खाइयों को भी दीप्त करता है । २८
९२ हे अखंड परमात्मा और सूर्य ! तू सचमुच महान् है; महान् तेरी महिमा महान् है । २९
[यह ऋ० ८-९१-११ , य० ३३-१९, साम २७६, १७८८ में भी है ।]
९३ हे सूर्य ! तू द्यौ-अन्तरिक्ष-भूमि-जल में चमकता, दीप्ति से दोनों समुद्र व्याप्त करता. महान् देव सुखमय-लोक-विजेता है । ३०
९४ पास-दूर-पवित्र-शीघ्रकारी-व्यापक-विचित्त,बल से अधिष्ठाता वह कर्म से जग को जीतता है ।३१
९५ अद्भुत-चेतनापद-बड़ा- पालक वह द्यौ-भूमि-अन्तरिक्ष को चमकाता है । उसके बनाये दिन-रात इसके पराक्रम को बताते हैं । ३२
९६ तीक्ष्ण-देदीप्यमान वह अपना स्वरूप तीव्र करता हुआ, पूरी गति वाली वृद्धि देता हुआ, ज्योतिष्मान्-पक्षी-तुल्य, महान् जीवन-धारक, सब दिशाओं का निर्माता है । ३३
९७. विचित्र, देवों का ध्वज, प्राण-दाता, ज्योतिर्मय, दिशा से निकलता, दिन-निर्माता चमकीला सूर्य प्रकाशों से सब अन्धरका और दुष्परिणाम दूर करता है । ३४
३६९८ देवों का अद्भुत प्राण-दाता दिन-रात-प्राण-उदान-अग्नि का दर्शक सूर्य निकलता है, द्यावा-पृथिवी-अन्तरिक्ष को प्रकाश से भरता है, जंगम-स्थावर का गति-दाता है । ५
[यह आगे २०-१०७-१४, साम पू० ६-१४-३, ऋ० १.११५.१, यजु ७-४२,११-४६ भी है]

३६९९ उच्चा पतन्तमरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस् तरणिं भ्राजमानम् ।
पश्याम त्वा सवितारं यमाहुरजस्रं ज्योतिर्यदविन्ददत्रिः ॥ ३६
३७०० दिवस् पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्या पुत्रं नाथकाम उपयामि भीतः ।
स नः सूर्य प्र तिर दीर्घमायुर्मा रिषाम सुमतौ ते स्याम ॥ ३७
३७०१ सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥ ३८
२ रोहितः कालो अभवद् रोहितोऽग्रे प्रजापतिः। रोहितो यज्ञानां मुखं रोहितः स्वराभरत् ॥ ३९
३ रोहितो लोको अभवद् रोहितोऽत्यतपद् दिवम्। रोहितो रश्मिभिर्भूमिं समुद्रमनु संचरत् ॥ ४०
४ सर्वा दिशः समचरद्रोहितोऽधिपतिर्दिवः । दिवं समुद्रमाद् भूमिं सर्वं भूतं वि रक्षति ॥ ४१
५ आरोहञ्छुक्रो बृहतीरतन्द्रो द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
चित्रश्चिकित्वान् महिषो वातमाया यावतो लोकानभि यद् विभाति ॥ ४२
६ अभ्यन्यदेति पर्यन्यदस्यतेऽहोरात्राभ्यां महिषः कल्पमानः ।
सूर्यं वयं रजसि क्षियन्तं गातुविदं हवामहे नाधमानाः ।
७ पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्षुः परि विश्वं बभूव ।
विश्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥ ४४
८ पर्यस्य महिमा पृथिवीं समुद्रं ज्योतिषा विभ्राजन् परि द्यामन्तरिक्षम् ।
सर्वं संपश्यन० [पूर्ववत्] ॥ ४५
३७०८ अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥ ४६

अथर्ववेद काण्ड १३ प्रपाठक २८, अनुवाक—सूक्त ३

१० य इमे द्यावापृथिवी जजान यो द्रापिं कृत्वा भुवनानि वस्ते । यस्मिन् क्षियन्ति प्र-
दिशः षडुर्वीर्याः पतङ्गो अनु विचाकशीति । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं
ब्राह्मणं जिनाति । उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १
११ यस्माद्वाता ऋतुथा पवन्ते यस्मात् समुद्रा अधि विक्षरन्ति । तस्य० [पूर्ववत्] ॥ २
१२ यो मारयति प्राणयति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विश्वा । तस्य० „ ॥ ३
१३ यः प्राणेन द्यावापृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठरं यः पिपर्ति । तस्य० „ ॥ ४
१४ यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापतिरग्निर्वैश्वानरः सह पङ्क्त्या श्रितः । यः परस्य प्राणं
परमस्य तेज आददे । तस्य० [पूर्ववत्] ॥ ५
३७१५ यस्मिन् षडुर्वीः पञ्च दिशो अधिश्रिताश्चतस्र आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षराः ।
यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत । तस्य० (पूर्ववत्) ॥ ६

३६९९ उच्च उड़ते पक्षी-तुल्य ज्योतिर्मय, सु-पालक, द्यौ के मध्य में प्रकाशमान; नाव के रूप में प्रेरक तुम्ह सूर्य को हम देखें जिसे अनश्वर ज्योति कहते हैं, जिसे ईश्वर धारण करता है। ३६

३७०० द्यौ की पीठ पर दौड़ते, सु-पालक, अदिति (प्रकृति) के पुत्र के पास डरा, ऐश्वर्यच्छुक मैं जाता हूं। हे सूर्य (ईश्वर)! वह तू हमें बड़ी आयु दे; हम नष्ट न हों, तेरी सुमति में रहें। ३७

३७०१ हजार दिन (युग) तक इस आकाश में उड़ते, दुःख-हर्ता इन (सूर्य) के पंख (दिन-रात) फले रहते हैं। वह सब गुड्डों को छाती पर रख कर सब भुवन देखता हुआ स्वकेन्द्र में चलता है। ३८

२ रोहित (सूर्य) काल, पहला प्रजापति, यज्ञों का मुख्य है, वह सुख को धारण करता है। ३६

३ रोहित लोक है, द्यौ को तपाता; किरणों से भूमि-अन्तरिक्ष पर संचार करता है। ४०

४ द्यौ का पति रोहित सब दिशाओं में संचार करता; द्यु-समुद्र-प्राणी सब की रक्षा करता है। ४१

५ प्रकाशमान, तन्द्रा-रहित दीप्त सूर्य दिशाओं में चढ़ता हुआ दो रूप (दिन-रात) बनाता है। विचित्र-गतियुक्त-महान्-वायु में गति करता वह जितने लोक हैं उनके सामने प्रकाशित होता है। ४२

६ दिन-रात बनाते, महान् सूर्य एक भाग के सामने आता, दूसरा छूटा रहता है। अन्तरिक्ष में निवासी, मार्ग-दर्शक सूर्य (ईश्वर) से आशंसा करते हुए हम आह्वान करें। ४३

७-८ पृथिवी-पालक, महान्, प्रार्थी का मार्ग-दर्शक, अबाधित-दृष्टि ईश्वर विश्व के सब ओर है। इसकी ज्योति से प्रकाशित महिमा पृथिवी-समुद्र-द्यौ-अन्तरिक्ष में व्याप्त है। बड़ा कल्याण-कारी; दान-शील, सब विश्व को देखता हुआ मनुष्य इसे सुने जो कि मैं [ईश्वर] कह रहा हूं। ४४-४५

३७०९ गौ के प्रति बछड़े के समान, आती उषा के प्रति अग्नि जनों की समिधा से पहुँचती है। शाखा पर उड़ते पक्षी-तुल्य आकाश पर भानु-रश्मि फैलती हैं। ४६ (ऋ५.११, ५ १५-२४ ता ७३,१७४६)

अनुवाक सूक्त ३

विषय- य ईश्वर आकाशाद्यवतिरित्यादि, भूत-भवद्-भविष्यत्तिरित्यादि, तस्य-पाशानित्यादि प०

३७१० जो ये द्यौ-भूमि उत्पन्न करता, वस्त्र-समान भुवन ओढ़े है; जिसमें ६ विस्तृत दिशाएँ रहती हैं, जिन्हें सूर्य निरन्तर देखता है। उस क्रुद्ध देव (ईश्वर) के प्रति यह अपराध है कि जो ऐसे विद्वान् ब्रह्म-वेत्ता को सताये। हे रोहित [राजन्]! तू ब्रह्म-घाती को कँपा; नष्ट कर, पाशों से बाँध। १

[अन्तिम अंश १ से २५ वें मन्त्र तक सब में समान है अतः पुनः न लिखा जायेगा।]

११ जिससे हवाएँ ऋत्वनुकूल चला करतीं और समुद्र मर्यादा में बहा करते हैं। २

१२ जो मारता-जिलाता, जिससे सब भुवन प्राण धारण करते हैं। ३

१३ जो प्राण से द्यावा-भूमि तृप्त करता, अपान से समुद्र का पेट पालता है। ४

१४ जिसमें सूर्य-वायु-अग्नि अपने सहचारियों के साथ आश्रित हैं, जो सूर्य-द्यौ के प्राण-तेज लेता है। ५

३७१५ जिसमें ६ ग्रह [भूमि-मङ्गल-बुध-गुरु-शुक्र-शनि], ५ दिशाएँ, चार समुद्र, यज्ञ [सृष्टि] के तीन अक्षर [अविनाशी लोक-तत्त्व सत्व-रजस्-तमस्, ऋग्यजुस्साम; अ उ म्] आश्रित हैं; जो द्यौ-भूमि के मध्य में [दुष्टों पर] मानो क्रुद्ध होकर सूर्य रूपी चक्षु से देखता है। ६

३७१६ यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्रह्मणस्पतिरुत यः। भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिः। त०।।७
१७ अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते। तस्य० [पूर्ववत्]।। ८
१८ कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति। त आववृत्रन्त्सदनादृतस्य। त०।।९
१९ तत्ते चन्द्रं कश्यप रोचनावद्यत्संहितं पुष्कलं चित्रभानु। यस्मिन्त्सूर्या आर्पिताः सप्त साकम्। त० १०
२० बृहदेनमनु वस्ते पुरस्ताद्रथन्तरं प्रति गृह्णाति पश्चात्। ज्योतिर्वसाने सदमप्रमादम्। त०।।११
२१ बृहदन्यतः पक्ष आसीद्रथन्तरमन्यतः सबले सध्रीची। यद्रोहितमजनयन्त देवाः। तस्य०।। १२

२२ स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन्।
स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवम्। तस्य० ।।१३

२३ सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम्।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा। तस्य०।। १४

२४ अयं स देवो अप्स्वन्तः सहस्रमूलः पुरुशाको अत्रिः। य इदं विश्वं भुवनं जजान। तस्य० । १५

२५ शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदो देवं दिवि वर्चसा भ्राजमानम्।
यस्योर्ध्वा दिवं तन्वस्तपन्त्यर्वाङ् सुवर्णैः पटरैर्विभाति। तस्य० ।। १६

२६ येनादित्यान्हरितः संवहन्ति येन यज्ञेन बहवो यन्ति प्रजानन्तः। यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति १७

२७ सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः। तस्य०।। १८

२८ अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम्।
ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा। तस्य० ।।१९

२९ सम्यञ्चं तन्तुं प्रदिशोऽनु सर्वा अन्तर्गायत्र्याममृतस्य गर्भे। तस्य०।। २०

३० निम्रुचस्तिस्रो व्युषो ह तिस्रस्त्रीणि रजांसि दिवो अङ्ग तिस्रः।
विद्मा ते अग्ने त्रेधा जनित्रं त्रेधा देवानां जनिमानि विद्म। तस्य०।। २१

३१ वि य और्णोत् पृथिवीं जायमान आ समुद्रमदधादन्तरिक्षे। तस्य०।। २२

३२ त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितोऽर्कः समिद्ध उदरोचथा दिवि।
किमभ्यार्चन् मरुतः पृश्निमातरो यद् रोहितमजनयन्त देवाः। तस्य०।। २३

३३ य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः। त० २४

३४ एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात्।
चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्वरे संपश्यन् पङ्क्तिमुपतिष्ठमानः। तस्य०।। २५

३७३५. कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वत्सोऽजायत।
स ह द्यामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः।। २६

३७१६ जो (प्रलय) में अन्नाद, अन्न-पति, और जो वेद-रक्षक, भुवन-पति है और रहेगा ।७
१७ जो दिन-रातों से नापे गये तीस अङ्गों का तेरहवाँ (अधिक) मान बनाता है । ८
१८ जिसके नियम से सुन्दर पालक सूर्य-किरणें आकर्षक मार्ग से जल लेकर द्यौ तक उड़तीं ; वे वर्षा में पानी के घर (अन्तरिक्ष-मेघ) से फिर लौटती हैं ।९
१९ हे द्रष्टा ! जो तेरा दीप्त चन्द्र और जो गृह-रहित, अद्भुत तरङ्गी सूर्यों के मण्डल हैं। १०
२० इससे बड़ा सूर्य पहले, पृथिवी पश्चाद् वत्सवत्; और ये दोनों सदा प्रमाद-रहित जिस ज्योति को धारण करते हैं ।११
२१ बृहत्-रथन्तर (दोनों साम-गान और सूर्य-पृथिवी) दो पक्ष सबल, साथ चलते हैं, एक ओर से एक, दूसरी ओर से अन्य, जब कि दिव्य शक्तियाँ रोहित को उत्पन्न करती हैं। १२
२२ वह वरणीय ईश्वर सायं अग्नि, प्रातः उदय होता हुआ सूर्य होता है, वह सविता होकर अन्तरिक्ष से जाता, वह बिजली होकर द्यौ के मध्य में तपता है । १३
२३ [यह मन्त्र पहले १०-८-१८ और १३-२-३८ में आ चुका है। यहाँ ३.आध्यात्मिक अर्थ—आनन्द-रूप दुःख-हर्ता व्यापक ईश्वर के दो पक्ष (सृष्टि-प्रलय) हजार दिन (युग) तक फैले रहते हैं, वह सब देवों को अपनी अधीनता में रख कर देखता हुआ सब भुवनों तक जाता है । १४
२४ यह वह देव है जो आपः (नीहारिकाओं-परमाणुओं) के अन्दर हजारों ब्रह्माण्डों का मूल, बड़ा शक्ति-शाली, सदा गतिशील है, जिसने यह सब भुवन बनाया । १५
२५ द्यौ (मूर्धा) में तेज से दीप्यमान देव (ईश्वर-सूर्य) को तीव्रवेगी (मुक्त-लोक) पाते हैं, जिस के मूर्धा को प्रकाश मस्तिष्क को प्रकाशित करते, नीचे हृदय भी सुनहरे प्रकाश से चमकता है । १६
२६ जिसके बल से किरणें आदित्यों को धारण करती हैं, जिस पूज्य के साथ बहुत से मुक्त विद्वान् विचरते हैं, जो एक ज्योति होकर बहुत प्रकार से प्रकाशित होता है । १७
२७ सात शिरस्थ प्राण एक-चक्र रथ-शरीर को जोड़ते हैं, ५ ज्ञानेन्द्रिय-मन-बुद्धि इन ७ से परिणत एक अश्व (भोक्ता जीव) शरीर-रथ ढोता है, तीन बन्धन (सत्-रज-तम) से बँधा यह चक्र ब्रह्माण्ड प्रवाह से अजर-अमर है जहाँ ये सब भुवन स्थित हैं ।१८ [पहले ९-९-२, ऋ १-१६४-२ में भी]
२८ आठ (योगाङ्ग और भूमि आदि प्रकृतियों) से युक्त, देवों का पिता, वेद-जनक उग्र वाहक ईश धारक है। सत्य-तन्तु को ज्ञान से नापता वायु (ईश्वर) सब दिशाओं में रहता है। १९
२९ व्यापक उस सूत्र के सहारे सब दिशाएं प्राण-रक्षक अमर शक्ति के गर्भ में अन्दर हैं। २०
३० हे मनुष्य ! (सूर्य के कर्क-मकर-विषुवती रेखा पर) अस्तकाल-उषा-लोक-द्यौ तीन-तीन हैं। हे अग्नि ! हम तेरे और देवों के तीन जन्म (अग्नि-बिजली-सूर्य का इध्म-मेघ-उद्जन से) जानें। २१
३१ जो उत्पन्न सूर्य भूमि को अँधेरे से हटाता; समुद्र-सहित उसे अन्तरिक्ष में रखता है ।। २२
३२ हे अग्नि! तू कर्मों-प्रज्ञाओं से हितकारी, सूर्य होकर द्यौ में प्रदीप्त है, जब देव रोहित को उत्पन्न करते हैं तो भूमि-माता के मनुष्य (तेरे अतिरिक्त) किसकी अर्चना करें ? । २३
३३ जो आत्मा-बल-दाता, सब देव जिसके शासन के अधीन ,जो इस दुपाए-चौपाए जग का ईश है। २४
३४ [पूर्वार्ध ३६९० में आया है]चार पद वाला ब्रह्म मनुष्यों की पुकार पर पास रहकर कर्म-फल देखता हुआ कार्य करता है । [यह मन्त्र ऋ० १०-११७-८ में भी कुछ भेद से है] । २५
३५ आकर्षण का रक्षक, काली रात(कष्ट) में प्रकट, रात की भक्ति से प्रिय ब्रह्म मूर्धा में चढ़ता और फिर वह रोहित (चढ़ा हुआ परमात्मा) सहस्रार चक्र में चढ़कर साक्षात् होता है । २६

अनुवाक-सूक्त ४

पर्याय १ ३७३६. स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्ठेऽव चाकशत् । १
३७ रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ।। २
३८ स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम् । रश्मिभिः० ।। ३
३९ सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः । ,, ।। ४
४० सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः । ,, ।। ५
४१ तं वत्सा उप तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश । ,, ।। ६
४२ पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति । ,, ।। ७
४३ तस्यैष मारुतो गणः स एति शिक्याकृतः ।। ८
४४ रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ।। ९
४५ तस्येमे नव कोशा विष्टम्भा नवधा हिताः ।। १०
४६ स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।। ११
४७ तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ।। १२
४८ एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ।। १३
पर्याय २ ४९. कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ।। १४
५० य एतं देवमेकवृतं वेद ।। १५
५१ न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते । य एतं० ।। १६
५२ न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते । य एतं० ।। १७
५३ नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते । य एतं० ।। १८
५४ स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न । य एतं ।। १९
५५ तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव । य एतं० ।। २०
५६ सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति । य एतं० ।। २१
प. ३ ५७ ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ।। २२
५८ भूतं च भव्यं च श्रद्धा च रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च ।। २३
५९ य एतं देवमेकवृतं वेद ।। २४
६० स एव मृत्युः सोऽमृतं सोऽभ्वं स रक्षः ।। २५
६१ स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये नमोवाके वषट्कारोऽनु संहितः ।। २६
३७६२-६३ तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते। तस्यामू सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह ।२७-२८

पर्याय४ ३७६४ स वा अह्नो अजायत तस्मादहरजायत । २६
६५ स वै रात्र्या अजायत तस्माद्रात्रिरजायत । ३०
६३ स वा अन्तरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्षमजायत । ३१
३७ स वै वायोरजायत तस्माद्वायुरजायत । ३२
३८ स वै दिवो अजायत तस्माद् द्यौरध्यजायत। ३६
६६ स वै दिग्भ्यो अजायत तस्माद्दिशो अजायन्त। ६४
७० स वै भूमेरजायत तस्माद् भूमिरजायत । ६५
७१ स वा अग्नेरजायत तस्मादग्निरजायत । ३६
७२ स वा अद्भ्यो ऽजायत तस्मादापो जायन्त । ३७
७३ स वा ऋग्भ्यो अजायत तस्मादृचो अजायन्त । ३८
७४ स वै यज्ञादजायत तस्माद्यज्ञो अजायत । ३९
७५ स यज्ञस् तस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस् कृतम् । ४०
७६ स स्तनयति स वि द्योतते स उ अश्मानमस्यति । ४१
७७ पापाय वा भद्राय वा पुरुषायासुराय वा ॥ ४२
७८ यद्वा कृणोष्योषधीर्यद्वा वर्षसि भद्रया यद्वा जन्यमववृधः ॥ ४३
७९ तावाँस् ते मघवन् महिमोपो ते तन्वः शतम् ॥ ४४
८० उपो ते बद्धे बद्धानि यदि वासि न्यर्बुदम् ॥ ४५
प० ५ ८१ भूयानिन्द्रो नमुराद् भूयानिन्द्रासि मृत्युभ्यः । ४६
८२ भूयानरात्याः शच्याः पतिस् त्वमिन्द्रासि विभूः प्रभूरिति त्वोपास्महे वयम् ॥ ७४
८३ नमस् ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।' ४८
८४ अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥४९
८५ अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम् ॥ ५०
८६ अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे वयम् ॥ ५१
प० ६ ८७ उरुः पृथुः सुभूर्भुवः इति त्वोपास्महे वयम् ॥ ५२
८८ प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् ॥ ५३
८९ भवद्वसुरिदद्वसुः संयद्वसुरायद्वसुरिति त्वोपास्महे वयम् ॥ ५४
९० नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥ ५५
३७९१ अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥५६ । ❀ काण्ड १३ समाप्त हुआ । ❀

अनुवाक-सूक्त ४

विषय— सवित्राद्यनेकनामेश्वर इत्यादि० भूतमित्यादि०, धर्मोपदेशोत्पत्त्यादि ईश्वरस्य महाविद्या स्वोपासमहे वयमित्यादि पदार्थ विद्या । —महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती । देवता सविता ईश्वर ।

पर्याय १ ३७३६. द्यौ को पीठ(मूर्धा)में नीचे दीप्ति करता सविता आनन्द-प्रकाश में गति करता है । १

३७ रश्मियों से हृदय-आकाश भरा है, ढका हुआ महेश्वर आता है । २

[यह मन्त्र आगे ६ वें मन्त्र तक सब के आधे आधे भाग में है ।]

३८ यह धाता-विशेष धारक-वायु(गतिशील)-आकाशवद् व्यापक-ऊँचा है । ३

३९ वह न्यायकारी-वरुण-रुद्र-महादेव है । ४

४० वही अग्नि-सूर्य-महा यम है । ५

४१ एक सिर(मुख्य)से युक्त दस बालक (मन-इन्द्रियाँ,-दिशा- प्राण-ग्रह जिसके पास रहते हैं । ६

४२ जब बहिर्मुखी इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हो जातीं हैं तब जो चक्र खिलता है वह चमक जाता है । ७

४३ उसका यह मरुतों-(प्राणों) का समूह है जो छींके में लटका सा गति करता है । ८

४४ [मन्त्र २ के समान है ।] ९

४५ उसके ये नौ कोश(अन्न-प्राण-मन-विज्ञान-आनन्द-द्यौ-भूमि-अन्तरिक्ष, नौ ग्रह, द्वार)थामे हैं ।१०

४६ यह प्रजाओं के लिए विविध रूप में देखता है जो प्राणी है और जो नहीं । ११

४७ यह बल उसे प्राप्त है, वह यह एक, अकेला वर्तमान; एक ही है । १२

४८ ये देव (दिव्य गुण) इस एक में वर्तमान रहते हैं । १३

प० २, ४९ कीर्ति-यश-पराक्रम-पापनाश-ब्रह्मतेज-दूध आदि अन्न और खाने के अन्न हैं । १४

५० (जो उसे मिलते हैं) जो इस सविता को एकमात्र देव जानता है । १५

५१ वह न दूसरा; न तीसरा, न चौथा कहा जाता है । जो० [पूर्ववत्] । १६

५२ वह न पाँचवाँ, न छठा; न सातवाँ कहा जाता है । जो० ,, । १७

५३ वह न आठवाँ; न नवाँ, न दसवाँ कहा जाता है । जो० ,, । १८

५४ वह सब के लाभ के लिए देखता है जो सप्राण है और जो निष्प्राण । जो० १९

५५ उसमें यह बल प्रविष्ट है । वह यह एक अकेला वर्तमान एक ही है । जो० २०

५६ सब देव इस एक में वर्तमान रहते हैं जो इसे एक वर्तमान जानता है । २१

प. ३ ५७-५९ वेद-तप-कीर्ति-यश-ज्ञानदीप्ति-पापनाश-ब्रह्मतेज-अन्न-अन्नाद्य । और भूत-भविष्य-श्रद्धा-रुचि-स्वर्ग और स्वधा इस में होते हैं जो इसे एकवृत जानता है । २२-२४

६० वही मृत्यु, वह अमृत, वह अज अभाव-कर्ता, वह रक्षक है । २५

६१ वह रुद्र, धन-दान में धन-विभाजक, नमः कहने पर कष्ट-नाशक, सदा हितकारी है । २६

६२ उसके शासन को ये सब गतिशील (लोक तारे आदि) मानते हैं । २७

६३ चन्द्रमा-सहित ये सब नक्षत्र उस सविता परमात्मा के वश में हैं । २८

पर्याय ४, ३७६७ वह परमात्मा दिन से ज्ञात होता है, उससे दिन पैदा हुआ । २६
६५ वह निश्चय ही रात से ज्ञात होता है, उस से रात पैदा हुई । [तीस]
६६ वह अन्तरिक्ष से ज्ञात होता है; उससे अन्तरिक्ष पैदा हुआ । [इकतीस]
६७ वह वायु से ज्ञात होता है, उससे वायु पैदा होती है । [बत्तीस]
६८ वह द्यौ से ज्ञात होता है, उससे द्यौ पैदा हुई । (तेंतीस)
६९ वह दिशाओं से ज्ञात होता, उससे दिशाएँ पैदा होतीं । (चौंतीस)
७० वह भूमि से ज्ञात होता, उस से भूमि पैदा होती है । (पैंतीस)
७ वह निश्चय ही अग्नि से ज्ञात होता, उससे अग्नि पैदा हुई । (छत्तीस)
७२ ,, जल से ,, जल ,, हुआ । (सैंतीस)
७३ ;; ऋचाओं से ;, ऋचाएँ ,, हुईं । (अड़तीस)
७४ ,, यज्ञ से ,; यज्ञ हुआ । (उनतालीस)
७५ वह (ओ३म्) यज्ञ है, उसका यज्ञ है, वह यज्ञ का सिर (मुख्य-आरम्भ) किया गया । ४०
७६-७७ वह गरजता, बिजली चमकाता, वही पत्थर (ओले) फेंकता है-
(प्रलय में, क्रमशः) पापी-श्रेष्ठ-असुर पुरुष के लिए । (इकतालीस-बयालीस)
७८ और तू जो औषधियाँ पैदा करता; कल्याण-भावना से बरसता, जन समूह बढ़ाता है । ४३
७९ हे महाधनी सविता ! इतनी तेरी महिमा है और तेरे कार्य-विस्तार सैकड़ों हैं । (चवालीस)
८० चाहे तू न्यर्बुद खरबों, हजार मिलियन, असंख्य) विस्तार वाला है वे तेरे बन्धन-बद्ध हैं । ४५
पर्याय ५, ८१ इन्द्र न मरने वाले [नित्य जीव-प्रकृति] से बड़ा है, हे इन्द्र ! तू मृत्युओं से बड़ा है । ४६
८२ हे इन्द्र ! तू अदानी [धनी] से बड़ा, शक्ति का पति विभु-प्रभु है अतः हम तेरी उपासना करें । ४७
८३ हे द्रष्टा ! तुझे नमः हो, हे द्रष्टा ! मुझे देख । (ईशवचन— देखो, देख, मुझे देखो ।) ४८
८४ खाद्य अन्न-यश-तेज-ब्राह्मण की दीप्ति से (देख) । ४९
[ये दोनों मन्त्र अड़तालीस-उनचास आगे के ५-५४ मन्त्रों के अन्त में भी पढ़े जाते हैं ।]
८५ हे जल-समान शान्त, ज्ञान-स्वरूप, महान्, सहन-शील ! इस प्रकार तेरी उपासना करें । ५०
८६ तुझे व्यापक-आरोचमान-आनन्द-लोक [दर्शनीय]-बल जान कर तेरी हम उपासना करें । ५१
पर्याय ६ । ८७ आच्छादक-व्यापक-अच्छे विद्यमान-अन्तरिक्ष-समान ,, । ५२
८८ तुझे प्रसिद्ध-श्रेष्ठ-सर्वज्ञ-द्रष्टा जान कर हम तेरी भक्ति करें । [तिरपन]
८९ वसु-जनक, वसुओं में ऐश्वर्यप्रद, वसु[धन]-दाता, वसु-गतिप्रद जानकर तेरी भक्ति करें । ५४
९०-९१ [अर्थ ४८-४९ के समान है ।] ५५-५६

यह तेरहवाँ काण्ड पूर्ण हुआ ।

अथर्ववेद काण्ड १४ सूची

प्रपा.	अनुवाक	सूक्त	मन्त्र	ऋषिका	देवता	छन्द	महर्षि दयानन्द-कथित विषय
२९	१	१	६४	सावित्री सूर्या	सोम-सूर्या	अ पं त्रि ज नृ ३	सत्येनोत्तभिता भूमिरित्याद्यनेक रसायनादि-शिल्पादि-गार्हपत्यादि-स्त्रीपुरुषोपदेशादि-भूखादि पदार्थविद्या स्त्रीपुरुषयोः परस्पर-नियम विवाहादीश्वरप्रार्थना-स्त्रीपुरुषयोः धर्मे प्रवृत्त्यधर्मान्निवृत्त्यर्थादि पदार्थ विद्या
	२	२	७५	सावित्री-सूर्या	सूर्या दम्पती	१ के और गा अत्यष्टि अतिशक्वरी	जायापति परस्पर सुनियमोपदेशविद्यादि० प्रजावृद्ध्यर्थ प्रार्थनादि० स्त्रीलक्षणादि० अग्निपरिक्रमणादि० विवाहविद्यादि० पूर्वपु०भावे चतुर्थपतिपर्यन्तविधि विद्यादीश्वरप्रार्थनादि पदार्थ विद्या।

सम्पादक— आचार्य वीरेन्द्र सरस्वती, अध्यक्ष विश्ववेदपरिषदः, सी ८१७ महानगरम्, लक्ष्मणपुरम्

अथर्ववेद कांड १४

प्रपाठक २९ अनुवाक सूक्त १

७१९२ सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥ १
९३ सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥ २
९४. सोमं मन्यते पपिवान् यत्संपिषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः ३ ॥
९५ यत्त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आप्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ४ ॥
९६. आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥ ५
९७. चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यंजनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ॥ ६

३७९८ रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृता ॥ ७

९९ स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगवः ॥ ८

३८०० सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादद‌ात् ॥ ९

३८०१ मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात् सूर्या पतिम् १० ॥

२ ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावैताम् ।
श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश् चराचरः ॥ ११

३ शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत् प्रयती पतिम् ॥ १२

काण्ड १४, प्रपाठक २६. अनुवाक-सूक्त १; मन्त्र ६४ । आत्मा, सोम-सूर्या-विवाह
विषय— सत्येनोत्तभिता भूमिरित्यादि० अनेक समयादि० शिल्पादि० गार्हपत्यादि० स्त्री-पुरुषो-
पदेशादि० प्रजायै [illegible] -पुरुषगो. परस्पर नियम विवाहादि० ईश्वर-प्रार्थना-स्त्रीपुरुष
योर्वर्न प्रवृत्त्यर्थाऽधर्मान्निवृत्त्यर्थादि पदार्थविद्या । —महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

मन्त्र १-१६ ऋ० १०.८५.१-१६ में भी प्रायः समान हैं ।

३७९२ सत्य से भूमि(पृथिवी-मातृशक्ति) थमी है, सूर्य (भानु-मस्तिष्क) से द्यौ(आकाश-पितृ-शक्ति)थमी, ऋत से आदित्य(बारह मास-ब्रह्मचारी) स्थित; द्यौ में सोम(चन्द्र-वीर्य)आश्रित है । १

९३ सोम से आदित्य बली, सोम से पृथिवी पूज्य है । और इन नक्षत्रों के पास चन्द्र स्थित है । अक्षत-वीर्यों की उपस्थेन्द्रिय में वीर्य (और नारी-अक्षत-योनि में रजः) रक्खा गया है । २

९४ जब सोम औषधि पीसते हैं तब उसे पीने वाला मानता है कि मैंने सोम पिया, किन्तु जिस सोम को ब्रह्मज्ञ जानते हैं उसे पृथिवी-भोगी सेवन नहीं करता । ३

९५ हे सोम ! जब तुझे पी लेते हैं उनसे तू फिर बढ़ता है, वायु (और प्राणायाम) सोम के रक्षक हैं, वर्षों का निर्माता चान्द्र मास है । ४

९६ हे सोम ! तू वेदोक्त आच्छादन के कारणों से रक्षित है विद्वानों की सुनता हुआ ठहरता है, पार्थिव तुझे नहीं खाता । ५

९७ जब सूर्या पति के पास जाती तो उसका चेतना तकिया; दृष्टि अंजन, द्यौ-भूमि कोश होते हैं । ६

९८.गाथा-सजी सूर्या की रैभी ऋचा साथ का सम्पत्ति; नाराशंसी ऋचा सहेली; कल्याण ही वस्त्र है । ७

३७९९ सूर्या के स्तोम[वेद-गान] आभूषण-वाद्य-रथ-घुड़िठयाँ, वेद के छन्द कुरीर [कलीरा] ओपश(मुकुट)नामक आभूषण, वर[वरण-कर्ता] दो अश्वी माता-पिता, अग्नि पुरोहित होता है । ८

३८०० जब पति चाहती;सूर्या को सविता मन से देता है तो सोम वधू-इच्छुक, दो अश्वी वर हैं । ९

१ जब सूर्या पति के पास जाती है तो इसका मन रथ, द्यौ छत्त, दो शुक्र'नाड़ियाँ बैल होती हैं । १०

२ तेरे दोनों बैल ऋक्-साम-प्रेरित शान्त; दो वेद-ज्ञान चक्र, द्यौ में पथ चराचर होते हैं । ११

३ पति की ओर जाती सूर्या मनो-रथ पर चढ़ती है, जाते दोनों चक्र प्राणापान पवित्र, व्यान अक्ष १२है

अथर्ववेद काण्ड१४ प्रपाठक२९, अनुवाक–सूक्त१

३८०७ सूर्याया वहतुः प्रागात्सविता यमवासृजत्। मघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु व्युह्यते ॥ १३
५ यमश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
क्वैकं चक्रं वामासीत् क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥ १४
६ यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
विश्वे देवा अनु तद् वामजानन् पुत्रः पितरमवृणीत पूषा ॥ १५
७ द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः । अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्धातय इद विदुः ॥ त१६
८ अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनात्प्रेतो मुञ्चामि नामुतः ॥ १७
९ प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् । यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥ १८
१० प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं ते अस्तु सहसंभलायै ॥ १९
३८११ भगस् त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥ २०

३८०४ सूर्या (उषा–किरण) का वहतु (विवाह, रथ, दहेज) सामने आ गया जिसे सविता ने स्वीकृति दी; मघा [नक्षत्र, माघ मास] में किरणें मन्द पड़तीं, विवाह–वचन, गाय–बैल भेजे जाते; फागुन में विवाह होता है। १३

५ हे अश्विनौ [वर सोम के माता–पिता] ! जब तुम तीन चक्र से सूर्या को वहतु पूछते पहुँचते तब तुम्हारा एक चक्र कहाँ रहता और दान–निर्देश–उपदेश के लिए कहाँ ठहरते हो ? १४

६ हे शुभ के पति [अश्विनौ] ! जब तुम सूर्या के पास वर के गमनीय वधू के घर पहुँचते हो तब सब देव तुम को अनुमति देते हैं; तुम दोनों का पुष्ट पुत्र पिता [ससुर] को वरता है । १५

७ हे सूर्या ! तेरे वे (विवाह–मण्डप के), तथा सूर्य में, दो चक्रों को विद्वान् ऋतु–अनुसार जानते हैं, एक जो परिक्रमा घर में तथा भूमि की होती है उसे तो केवल विशेष सत्यान्वेषी ही जानते हैं ।
[कर्म–उपासना को सब देखते हैं ज्ञान हृदय–गुहा में होता है । मनः–रथ के दो चक्र कान हैं जिन से गुण सुनकर, एक ज्ञान है जिससे विचार कर वधू वरण करती है] । १६

८ हम (कन्यापक्षी) न्यायकारी–सुबन्धु, पति–प्रापक ईश्वर का यज्ञ करते हैं । खरबूजा–ककड़ी–बेर के समान इसे मैं (पिता और वर) यहाँ के बन्धन से छुड़ाता हूं, वहाँ (पति) के से नहीं । १७

९ मैं यहाँ से छुड़ाता हूं वहाँ से नहीं, वहाँ सुबद्ध करता हूं जिससे हे वीर्यवान् इन्द्र (पति) ! यह सुपुत्रा और सु–भगा (ऐश्वर्य–धर्म–यश–श्री–ज्ञान–वैराग्य वाली) सौभाग्यवती हो । १८
[यह और अगला मन्त्र संस्कार में वर वधू–केश–पाश–मोचन करते हुए कहता है ।]

३८१० हे वधू ! मैं तुझे वरुण [ईश्वर–पिता–ब्रह्मचर्य नियम] के उस बन्धन से छुड़ाता हूं जिससे तुझे सुख–दाता सविता [उत्पादक परमात्मा–पिता] ने बाँधा था । सत्य के मेरे घर, सुकर्मियों के समाज में पति–सहित वर्तमान तुझे सुख मिले । १९

२८१२ इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं सं स्पृशस्वाथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥ २१
१३ इहैव स्त मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् । क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥ २२
१४ पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना वि चष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः ॥ २३
१५ नवो नवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो विदधास्यायन् प्र चन्द्रमस् तिरसे दीर्घमायुः ॥ २४
१६ परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो विभजा वसु । कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम् ॥ २५
१७ नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते । एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥ २६
१८ अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया । पतिर्यद्वध्वो वाससः स्वमङ्गमभ्यूर्णुते ॥ २७
१९ आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् । सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति ॥ २८
२० तृष्टमेतत् कटुकमपाष्ठवद् विषवन्नैतदत्तवे । सूर्यां यो ब्रह्मा वेद स इद्वाधूयमर्हति ॥ २९
२१ स इत् तत् स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमङ्गलम् ।
प्रायश्चित्तिं यो अध्येति येन जाया न रिष्यति ॥ ३०
२२ युवं भगं सं भरतं समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु ।
ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारु संभलो वदतु वाचमेताम् ॥ ३१
२३ इहेदसाथ न परो गमाथेमं गावः प्रजया वर्धयाथ ।
शुभं यतीरुस्रियाः सोमवर्चसो विश्वे देवाः क्रन्निह वो मनांसि ॥ ३२
२४ इमं गावः प्रजया सं विशाथायं देवानां न मिनाति भागम् ।
अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वो धाता सविता सुवाति ॥ ३३
२५ अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
सं भगेन समर्यम्णा सं धाता सृजतु वर्चसा ॥ ३४
२६ यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम् । यद् गोष्वश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३५
२७ येन महानघ्न्या जघनमश्विना येन वा सुरा । येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३६
२८ यो अनिध्मो दीदयदप्स्वन्तर्यं विप्रास ईडते अध्वरेषु ।
अपां नपान् मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्यावान् ॥ ३७
३८२९ इदमहं रुशन्तं ग्राभं तनोदूषिमपोहामि ।
यो भद्रो रोचनस् तमुदचामि ॥ ३८

३८११ भग [ऐश्वर्यशाली पति] तुझको यहाँ से हाथ पकड़कर ले जाये, अश्वी ,वर के माता-पिता तुझे रथ ले घर पहुँचायें, हे वशिना ! तू घर पहुँच जिससे घर का पत्नी हो, कर्तव्य-कथन कर । २०

१२ हे वधू ! यहाँ तेरी सन्तान के लिए प्रिय समृद्धि हो, इस घर में तू गार्हपत्य के लिए-जाग, इस पति के साथ शरीर का स्पर्श कर, और बड़ी आयु में प्रशंसनीय होकर ज्ञानोपदेश कर । २१

३ तुम दोनों यहीं रहो, वियुक्त न होओ, पुत्रों-नातियों के साथ खेलते हुए; प्रसन्न और अच्छे घर-वाले होकर सब आयु भोगो । २२

१४ ये दोनों पति-पत्नी बुद्धि के साथ आगे-पीछे के आश्रमों (गृहस्थ-वानप्रस्थ) में विचरते हुए दो शिशु-समान खेलते, समुद्र (गृहस्थ) से पार जायें। एक (पति सूर्यवत्) भुवन देखे; दूसरी (पत्नी चन्द्रवत्) तू ऋतु-धर्म पालन करती हुई नये (सन्तान) रूप में प्रकट होती है । २३

[यह पहले ७-२१-१, १३-२-११ और ऋ १०-७४-१८ में भी है]।

१५ हे चन्द्र वत् पत्नी ! तू नयी-नयी प्रकट होती, दिनों की झण्डी (पहचान, ज्ञापक); उषाओं में पहले आगे आती है, देवों(ईश्वर-अग्नि-सास-ससुर)की भक्ति करती, पति की आयु बढ़ाती है । २४

१६ यह सप्तपदी करके क्रिया-शील पत्नी पति (के घर, हृदय) में प्रवेश करती है; [हे पति !] तू शान्ति-दाहक व्यवहार दूर रख, वेद-ब्रह्मज्ञों के लिए धन बाँट । २५

१७ जब तमो-रजो गुण होता है, पति का नीला शरीर लाल हो जाता है, तब पत्नी-प्रेम प्रकट होता है, इस पत्नी के कुटुम्बी बढ़ते हैं; पति बन्धनों में बँध जाता है । २६

१८ रक्त से अनुरञ्जित उस रजस्वला से पति का चमकता शरीर शोभा-रहित हो जाता है जब वह वधू के वस्त्र -सहवास से अपना अङ्ग ढँकता है । २७

१९ सूर्या-रूप [अच्छे-बुरे] देख, उन्हें ब्रह्मा [वर और वेदज्ञ] शोभित करता-सुधारता है— अच्छे- आशा, विशेष जीवन, प्राप्त का व्यय, कातना-सिलाई । बुरे- ढिठाई, विशेषमाँग, काट-छाँट ।२८

२० यह प्यासकारी-कड़-निस्सार-विषयुक्त-अभक्ष्य है यह जानने वाली सूर्या को जो पति जाने वही विवाह-योग्य होता है । २९

२१ जो प्रायः विज्ञान का अध्ययन करता है जिससे जाया दुःखी नहीं होती वही वेदज्ञ पति सुखदा, उत्तम वस्त्र मंगलकारिणी पत्नी-को घर ले जाता है । ३०

२२ तुम दोनों सत्य व्यवहारों में सत्य बोलते हुए ऐश्वर्य संग्रह करो । हे वेदपति ! इस पत्नी के लिए पति को रुचिकर बना; वह अच्छा होकर इस वाणी को बोले । ३१

२३ हे गौओ ! यहीं रहो, दूर न जाओ, इसे सन्तान से बढ़ाओ । शुभ रीति से चलती तुम दूध रूपी तेज वाली होओ । सब देव यहाँ तुम्हारा मन प्रसन्न करें। ३२

२४ हे गौओ ! इस घर में सन्तान-सहित आओ, यह देवों का भाग नष्ट न करे । एतदर्थ तुम्हें पोषक गृहपति-वायुएँ-पृथिवी-सविता प्रेरित करें । ३३

२५ जिन पथों से मित्र हमारे श्रेष्ठ घर आयें वे निष्कण्टक-सीधे हों । विधाता हमें ऐश्वर्य-स्वामि-भक्तों-तेज से संयुक्त करे । ३४

२६ हे अश्विओ ! जो तेज रथ-धुरा-जल-गौओं में है उससे इस पत्नी की रक्षा करो । ३५

२७ ,, जिससे गौ का अयन, जल, धुरे सिंचित हैं ,, । ३६

२८ जो अग्नि बिना इन्धन आपः (रक्त-वीर्य-जल) में दीप्त होता, विप्र यज्ञों में जिसकी स्तुति करते हैं, वह आपः के न गिरने देने वाला मधुर आपः दे जिनसे जीव वीर्य युक्त बढ़ता है । ३७

३८२९ मैं इस हिंसक शरीर-दूषक काम-रोग-मैल को दूर करूँ जो भद्र-सुन्दर है उसे लूँ । ३८

३८३० आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्त्ववीरघ्नीरुदजन्त्वापः ।
अर्यम्णो अग्निं पर्येतु पूषन् प्रतीक्षन्ते श्वशुरो देवरश्च ॥ ३९
३१ शं ते हिरण्यं शमु सन्त्वापः शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्द्म ।
शं त आपः शतपवित्रा भवन्तु शमु पत्या तन्वं सं स्पृशस्व ॥ ४०
३२ खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो । अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ४१
३३ आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् । पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम् ॥ ४२
३४ यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा । एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य ॥ ४३
३५ सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु । ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः ॥ ४४
३६ या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे या देवीरन्तानभितो ऽददन्त ।
तास्त्वा जरसे सं व्ययन्त्वायुष्मतीदं परि धत्स्व वासः ॥ ४५
३७ जीवं रुदन्ति वि नयन्त्यध्वरं दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समीरिरे मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे ॥ ४६
३८ स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे ।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥ ४७
३९ येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।
तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च ॥ ४८
४० देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु ।
अग्निः सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु ॥ ४९
४१ गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥ ५०
४२ भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् । पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥ ५१
४३ ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः । मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम् ॥ ५२
४४ त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया ॥ ५३
४५ इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा ।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥ ५४
१८४६ बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः शीर्षे केशाँ अकल्पयत् ।
तेनेमामश्विना नारीं पत्ये सं शोभयामसि ॥ ५५

१८३० इस वधू के लिए विद्वान् वैद्य स्नान-योग्य उत्तम जल लायें जो सन्तान-नाशक न हो। अर्यमा की अग्नि की परिक्रमा(लाजा-होम-भाँवरें) कर, हे पुष्ट पति! ससुर-देवर प्रतीक्षा में हैं। ३९

३१ हे वधू! तेरे लिए सोना-जल-मिलन-यज्ञ-जोड़े का आसन-सैकड़ों पवित्र आप्त जन सुखकारी हों, तू कल्याणार्थ पति के साथ अपने शरीर का स्पर्श कर। ४०

३२ हे शत-यज्ञ-कर्मा, ऐश्वर्य-शाली वर! तू अपार-गुणी इस वधू को रथ-अन्न-जोड़े के आनन्द में, रथ-शकट-युग (पालकी) में बिठा कर, शरीर-प्राण-योग में, नागरिक-ग्राम्य-उद्योगी जीवन में, रथ (रमणीय अङ्ग)-प्राण-आँख आदि जोड़े वाली इन्द्रियों में; तीन प्रकार (ज्ञान-कर्म-उपासना; मन-वचन-कर्म) से पवित्र करके सूर्य-किरण-समान त्वचा-वस्त्र-युक्त बना। ४१

३३ हे पत्नी! अच्छे मन-सन्तान-सौभाग्य-धन चाहती तू पत्यनुकूल हो मोक्षार्थ सुख से तय्यार हो। ४२

३४ जैसे वर्षाकारी समुद्र नदियों का राज्य पाता है ऐसे ही तू पति के घर जाकर महारानी बन। ४३

३५ तू ससुरों-देवरों-में, और ननद-सास की सम्राज्ञी (सुशोभित; मनोरजन-कारिणी) हो। ४४

३६ हे आयुष्मती! जो देवियाँ कातती-बुनती-तानतीं-दोनों ओर किनारे देतीं वे तुझे वृद्धावस्था तक वस्त्रों से ढाँपतीं रहें, तू यह वस्त्र पहिन। ४५

३७ वे नर जीवन-भर रोते, यज्ञ को नीचे गिराते, उनके प्राणों की चिन्ता करते, पितरों से उल्टा व्यवहार करते हैं जो यह मानते हैं कि पति-पत्नी के लिए आलिङ्गन में ही आनन्द है। ४६

३८ मैं पृथिवी देवी की गोद में दृढ़ पत्थर सुबद्ध सन्तान के आदर्श रूप में रखता हूं। तू उस पर खड़ी हो, प्रसन्न-तेजस्वी हो, ईश्वर तेरी आयु बड़ी करे। ४७

३९ जिस उद्देश्य से अग्नि (राजा-सूर्य) भूमि का अनुकूल हाथ पकड़ता है उसी उद्देश्य से मैं तेरा हाथ पकड़ता हूं. मेरे साथ सन्तान और धन से दुःखी न हो। ४८

४० देव सविता (प्रेरक पति) तेरा हाथ पकड़े, राजा सोम पति सुसन्तान करे, जातवेदाः अग्नि पति के लिए सौभाग्यवती तुझ पत्नी को प्रशंसनीय जरा तक पहुँचते बनाओ करे। ४९

[ये पाणिग्रहण के ६ मन्त्र ऋ १०.८५.३६ आदि में भी हैं—]

४१ मैं सौभाग्य के लिए तेरा हाथ पकड़ता/ती हूं जिससे तू मेरे साथ वृद्धावस्था तक प्रसन्न रह सके, ऐश्वर्ययुक्त-न्यायकारी-जगत् का उत्पादक-धर्ता परमात्मा और विद्वान् तुझे मेरे लिए देते हैं। ५०

४२ ऐश्वर्यशाली-प्रेरक मैं तेरा हाथ पकड़ता/ती हूं, तू मेरी धर्म से पत्नी, मैं तेरा गृह-पति हूं। ५१

४३ यह मेरी/रा पोष्य हो, मेरे लिए तुझे ईश्वर आचार्य ने दिया है, मुझ पति से सन्तान-युक्त होने वाली! तू सौ वर्ष जी। ५२

४४ ईश्वर और विद्वानों की आज्ञा से बिजली-समान शिल्पी सुख के लिए वस्त्र-आभूषण बनाता उससे ईश्वर, और ऐश्वर्य शाली मैं पति सूर्या-समान इस नारी को सन्तान से युक्त करें। ५३

४५ बिजली-अग्नि, द्यौ-पृथिवी, वायु, प्राण-उदान(आक्सीजन-हाइड्रोजन), भग (उदय-कालीन सूर्य तथा ऐश्वर्य-धर्म-यश-श्री-ज्ञान-वैराग्य); दोनों अश्वी (वैद्य-उपदेशक) -राजा, सभ्य मनुष्य, ईश्वर-वेद; सोम (चन्द्र-औषधि-वीर्य) इस नारी को सन्तान से बढ़ायें। ५४

(इन ५ और आगे के ५७ वें मन्त्र की व्याख्या महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कार-विधि के विवाह संस्कार में की है।)

४६ पहले परमात्मा सूर्या के सिर पर केश बनाता है फिर अश्वी (माता-पिता), हम इस नारी को पति के लिए शोभित करते हैं। ५५

३८४७ इदं तद्रूपं यदवस्त योषा जाया जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।
तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः क इमान् विद्वान् वि चचर्त पाशान् ॥ ५६
४८ अहं विष्यामि मयि रूपमस्या वेददित् पश्यन् मनसा कुलायम् ।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ॥ ५७
४९ प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।
उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु ॥ ५८
५० उद्यच्छध्वमप रक्षो हनाथेमां नारीं सुकृते दधात ।
धाता विपश्चित् पतिमस्यै विवेद भगो राजा पुर एतु प्रजानन् ॥ ५९
५१ भगस्ततक्ष चतुरः पादान् भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि ।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्धान्त्सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥ ६०
५२ सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।
आरोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणु त्वम् ॥ ६१
५३ अभ्रातृघ्नीं वरुणापशुघ्नीं बृहस्पते । इन्द्रापतिघ्नीं पुत्रिणीमास्मभ्यं सवितर्वह ॥ ६२
५४ मा हिंसिष्टं कुमार्यं स्थूणे देवकृते पथि। शालाया देव्या द्वारं स्योनं कृण्मो वधूपथम् ॥६३
३८५५ ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः ।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके विराज ॥ ६४

अनुवाक—सूक्त २

३८५६.तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह। स नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥१
५७.पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा । दीर्घायुरस्या यःपतिर्जीवाति शरदःशतम् ॥२
५८.सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेऽपरः पतिः । तृतीयोऽग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥ ३
५९.सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये । रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥४
६० आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अरंसत ।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्यामशीमहि ॥ ५
६१ सा मन्दसाना मनसा शिवेन रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्यम् ।
सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथिष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥ ६
६२ या ओषधयो या नद्यो यानि क्षेत्राणि या वना ।
तास्त्वा वधु प्रजावतीं पत्ये रक्षन्तु रक्षसः ॥ ७
६३.एमं पन्थामरुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम्।यस्मिन्वीरो न रिष्यत्यन्येषां विन्दते वसु ॥८

३८४७ यह वह रूप है जिसे स्त्री धारण करती है। मैं मन से सत्याचारिणी पत्नी का जिज्ञासु हूं मैं नये मित्रों के साथ तदनुकूल चलूँगा। कौन (प्रजापति ही) ये बन्धन काट सकेगा। ५६

४८ मैं इसे मन का घोंसला और कुल-वृद्धि जानता-देखता हुआ अपने में इसका रूप बाँधता हूं। मैं चुराकर नहीं खाता, मन से भी चोरी छोड़ता हूं; स्वयं शिथिल होता हुआ भी विघ्न रूपी दुर्व्यसनों के बन्धनों को दूर करता रहूं। ५७

४९ हे वधू! मैं तुझे वरुण के पाश से छुड़ाता हूं जिससे सुखद सविता पिता ने तुझे बाँधा था, मैं यहाँ पति के साथ रहने वाली तेरे लिए विशाल दर्शनीय घर और उसका पथ सुगम करता हूं। ५८

५० उद्यम करो; दुष्ट विघ्न-कुकाम को दूर मारो, इन नारी को सुकर्म में लगाओ, मेधावी विधाता परमात्मा-पिता ने इसे पति दिया है, भग राजा पति जानता हुआ आगे चले। ५९

५१ भग (भगवान्) ने चार पाद (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष और चार जानन-रज्जु(ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-संन्यास)रचे। शिल्पी ने इनमें मध्य में नियम-बन्धन भी लगाये; कारीगर ने चार पाये चार पट्टी का पलङ्ग रचा जिसमें मध्य में वान-निवाड़ से बुना। वह हमें सुमंगली हो। ६०

५२ हे सूर्या! तू अच्छे चमकते ढाक के फूल और बेल-बूटों वाले, सब रूप वाले, सुनहरे रङ्ग, अच्छे वरणीय रथ (कार-जहाज-विमान और गृहस्थ-रथ) पर चढ़ तथा उसे पतिकुल के रक्षकों के लिए अमरता का आनन्द-युक्त स्थान बना। ६१

५३ हे श्रेष्ठ-विद्वान्-ऐश्वर्यशाली-उत्पादक वर! तू बहिन-भाई-पशुओं-पति की अहिंसक, एवं पुत्र के उत्पन्न करने वाली वधू को हमारे लिए ला। ६२

५४ हे दो खम्भो (माता-पिता)! देव-पथ में कुमारी को कष्ट न हो, दिव्य शाला-द्वार-वधू-पथ हम सुखद करते हैं। ६३

३८५५ हे वधू! इस नीरोग देव-पुरी में पश्चिम-पूर्व-अन्त-मध्य-सर्वत्र ब्रह्म की चर्चा हो, यहां पहुंच कर तू पति के घर में कल्याण-कारिणी आनन्द-दायिनी होकर राज्य कर। ६४

अनुवाक-सूक्त २

विषय— जायापति-परस्पर-सुनियमोपदेश-विद्यादि०. प्रजा-वृद्ध्यर्थप्रार्थनादि०, स्त्री-लक्षणादि०, अग्नि-परिक्रमणादि०, विवाह-विद्यादि०; पूर्वपूर्वाभावे चतुर्थपतिपर्यन्तविधिविद्यादीश्वरप्रार्थनादि प०

३८५६ हे यज्ञाग्नि-आचार्य! तेरे आगे रथसहित सूर्या को लाते हैं वह सन्तान-सहित हमें, रक्षकों को दे। १

५७ फिर अग्नि पत्नी को आयु-तेज के साथ देती है कि इसका जो पति है वह सौ वर्ष जिये। २

५८ हे सूर्या, सोम की पत्नी, तेरा दूसरा रक्षक गान-रूप, तीसरा अग्नि (विद्या-रजः), चौथा मानव है। ३

५९ इसे सौम्य गुण गान के लिए देता, गान ज्ञान के लिए, ज्ञान मेरे लिए इस और रयि-पुत्र देता है। ४

चारों का नियोग-परक अर्थ— नियोग में क्रमशः चार पति सोम-गन्धर्व-अग्नि-मनुष्य होते हैं(या.स्मृ.)।

६० हे शुभ-रक्षक उषा-सूर्यवत् अश्विओ (माता-पिता)! हमारे हृदयों में कामनाएँ हैं-तुम्हारी सुमति हमें मिले, तुम रक्षक होओ, हम अर्यमा न्यायाधीश के प्रिय हों, और हम घर मिलें। ५

६१ वह हृष्ट पत्नी कल्याणकारी मन से सब वीर-सन्तान-युक्त प्रशंसनीय धन धारण कर, शुभ-रक्षक हे माता पिता, तुम गृहस्थ-तीर्थ को सुगम खान-पान-युक्त, और मार्ग की ठूंठ दुर्मति दूर करो। ६

६२ हे वधू! जो औषधियाँ-नदियाँ-खेत-वन हैं व पति के लिए सन्तान वाली तेरी दुष्टों से रक्षा करें। ७

६३ हम इस पथ पर सरल, कल्याण-वाहन पर चढ़ें जिसमें वीर नष्ट नहीं होता, अन्यों का धन पाता है। ८

६४ इदं सु मे नरः शृणुत ययाशिषा दम्पती वाममश्नुतः । ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीरेषु
वानस्पत्येषु येऽधितस्थुः । स्योनास्ते अस्यै वध्वै भवन्तु मा हिंसिषुर्वहतुमुह्यमानम् ।। ९
६५ ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनाँ अनु । पुनस्तान्यज्ञिया नयन्तु यत आगताः ।। १०
६६ मा विदन्परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती । सुगेन दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ।। ११

६७ सं काशयामि वहतुं ब्रह्मणा गृहैरघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति स्योनं पतिभ्यः सविता तत् कृणोतु ।। १२

६८ शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश ।
तामर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु ।। १३

६९ आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत बीजमस्याम् ।
सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः ।। १४

७० प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति । सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ।। १५
७१ उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुंचत । मा दुष्कृतौ व्येनसावघ्न्यावशुनमारताम् ।। १६

७२ अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः ।
वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना ।। १७

७३ अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ।। १८

७४ उत्तिष्ठेतः किमिच्छन्तीदमागा अहं त्वेडे अभिभूः स्वाद् गृहात् ।
शून्यैषी निर्ऋते याजगन्थोत्तिष्ठाराते प्र पत मेह रंस्थाः ।। १९

७५ यदा गार्हपत्यमसपर्यैत् पूर्वमग्निं वधूरियम् ।
अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु ।। २०

७६ शर्म वर्मैतदा हरास्यै नार्या उपस्तरे । सिनीवालि० [शेष १५ के समान] २१

७७ यं बल्बजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथन ।
तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम् ।। २२

७८ उप स्तृणीहि बल्बजमधि चर्मणि रोहिते ।
तत्रोपविश्य सुप्रजा इममग्निं सपर्यतु ।। २३

७९ आ रोह चर्मोप सीदाग्निमेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा ।
इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै सुज्यैष्ठ्योऽभवत् पुत्रस्त एषः ।। २४

८० वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्नानारूपाः पशवो जायमानाः ।
सुमङ्गल्युप सीदेममग्निं संपत्नी प्रति भूषेह देवान् ।। २५

३८६४ हे नर-नारियो! मेरा यह सुकथन सुनो जिस आशा से पति-पत्नी अच्छी सन्तान पाते हैं, जो गायक, विद्वान् और कार्यशील देवियाँ इन कुर्सियों पर बैठे हैं वे इस वधू के लिए सुखदायी हों, ले जाते हुए वहतु (विवाह-रथ) को हिंसा न होने दें। ६

६५ जो पूज्य जन वधू के चादों के रथ के साथ जनों के पीछे चलते हों उन्हें विवाह के प्रबन्धक वहाँ ले जायें जहाँ से वे आये हों। आये हुओं के रोगों को वैद्य दूर करें। १०

६६ जो विरोधी दम्पती के पास आ बैठें या कष्ट दें, वे न आ सकें न जान सकें। दोनों वर-वधू दुर्गम पथ सरलता से पार करें; शत्रु दूर भाग जायें। ११

६७ मैं (कन्या-पिता) वधू और रथ को ब्रह्मा और घर वालों से सप्रेम मित्र-दृष्टि से सजाता हूँ। पिता पहना हुआ आनन्दप्रद अनेकरूप वस्त्राभूषण पति-रक्षकों को और दे। १२

६८ यह कल्याणी नारी वधू घर में आयी है, विधाता ने इसके लिए यह आश्रम बताया है। न्यायकारी-ऐश्वर्यशाली-प्रजापति पति और दोनों अश्वी (माता-पिता) इसे सन्तति से बढ़ायें। १३

६९ आत्मिक बल-युक्त यह स्त्री आयी है; इसमें नर बीज बोये, यह पति के वीर्य को और वक्ष की नस-नाड़ियों में दूध को धारण करती हुई तुम्हारी सन्तान पैदा करे। १४

७० हे सरस्वती विदुषी! तू विराट प्रकृति है, यहाँ सूर्य-समान प्रतिष्ठित हो। हे अन्नवती! तू सन्तान पैदा कर जो और तू भगवान् और पति की अच्छी बुद्धि में रहे। १५

७१ हे जन-जन ! शान्त प्रजा और नारियो! तुम्हारा शक्ति-तट ऊँचा हो, निन्दित कर्म छोड़ो, हे पति-पत्नी! दोनों अदुष्कर्मी-निष्पाप-अहिंसक बनकर दुःख न पाओ। १६

७२ हे वधू! तू मधुर-दृष्टि, पति की हिंसा न करने वाली, घरवालों की कल्याण-कारिणी, सु-मना, सुखदा-कुशला-सुसेविका-नियमवती, वीर-प्रसू, देवरों की शुभेच्छु हो; हम तेरे द्वारा बढ़ते रहें। १७

७३ तू यहाँ देवरों और पति को न सताने वाली हो, पशुओं की कल्याण-कारिणी-नियमित-सु-तेजा-सन्तान वाली-वीरप्रसू-देवरों के लिए शुभेच्छु-सुखदा तू गार्हपत्य अग्नि का यज्ञ कर। १८

७४ हे पाप-कष्ट रूप शत्रु आपत्ति! यहाँ से उठ, तू क्या चाहती हुई आयी है? तू जो सुना करना चाहती यहाँ आई है, मैं अपने घर से बाहर करता हूं, यहाँ मत रुक। १९

७५ जब यह वधू पहले गार्हपत्य अग्नि-सेवा (हवन) करले तब हे नारी, तू पितृ-पितरों को नमस्कार कर। २०

७६ इस नारी के विस्तर के पास सुखद कवच (आग) ला; हे पत्नी, सन्तान पैदा कर जो पति की सुमति में हो। २१

७७ जिस बल्बज घास को नीचे और उस पर चर्म बिछाते हो उस पर सु-सन्तान वाली कन्या चढ़े जो पति को पा रही है। २२

७८ बल्बज घास बिछा उसपर रोहित मृग के लाल चर्म पर बैठकर सु-सन्तान यह होम करे। २३

७९ हे पत्नी! चर्म आसन पर चढ़; यज्ञ की आग के पास बैठ, यह देव सब क्रिमि मारता है; यहाँ पर इस पति के लिए सन्तान उत्पन्न कर, तेरा यह पुत्र उत्तम बड़ी आयु वाला हो। २४

३८८० इस माता के गर्भ से उत्पन्न नाना रूप सन्तान विविध स्थितियों वाली हों, हे सुमङ्गली! तू यज्ञाग्नि-समीप स्थित हो और पति के साथ विद्वानों-अतिथियों की सेवा किया कर। २५

३८८१. सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शम्भूः ।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ।। २६

८२ स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव ।। २७

८३ सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वा दौर्भाग्यैर्वि परेतन ।। २८

८४ या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि ।
वर्चो न्वस्यै सं दत्ताथास्तं वि परेतन ।। २९

८५ रुक्मप्रस्तरणं वह्यं विश्वा रूपाणि बिभ्रतम् ।
आरोहत् सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम् ।। ३०

८६ आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि ।। ३१

८७ देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस् तनूभिः
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह ।। ३२

८८ उत्तिष्ठेतो विश्वावसो नमसेडामहे त्वा ।
जामिमिच्छ पितृषदं न्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ।। ३३

८९ अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
तास् ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धर्वर्तुना कृणोमि ।। ३४

९० नमो गन्धर्वस्य नमसे नमो भामाय चक्षुषे च कृण्मः ।
विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमोऽभि जाया अप्सरसः परेहि ।। ३५

९१ राया वयं सुमनसः स्यामोदितो गन्धर्वमावीवृताम ।
अगन्त्स देवः परमं सधस्थमगन्म यत्र प्र तिरन्त आयुः ।। ३६

९२ सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः ।
मर्य इव योषामधि रोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ।। ३७

९३ तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः ।। ३८

३८९४ आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परि ष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः ।
प्रजां कृण्वा ... मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु ।। ३९

३८८१ हे सुमंगली, घर वालों को तारने वाली, पति के लिए सुसेविका, ससुर के लिए शान्तिप्रद, सास के लिए सुखदा ! तू इन घरों में प्रवेश कर । २६

८२ तू सास-ससुरों-पति-घरवालों-सब प्रजा के लिए सुखदा हो, उन सबकी पुष्टि के लिए हो । २७

८३ यह उत्तम कल्याण-कारिणी वधू है, एकत्र हो, देखो और सौभाग्य का आशीर्वाद देकर, दौर्भाग्य दूर करो । २८

८४ जो दुष्ट हृदय वाली युवतियाँ या वृद्धाएँ हैं वे सभी इनके लिए आशीर्वाद-तेज देकर घर को वापस जायें । २६

८५ सविता-पुत्री सूर्या सुवर्ण-नक्काशी की गद्दी वाले, विविध रूप वाले रथ में बड़े सौभाग्य के लिए आनन्द पूर्वक चढ़ती है । ३०

८६ हे वधू ! तू प्रसन्न मन हो पलंग पर चढ़; यहाँ पर पति के लिए सन्तान पैदा कर, सूर्य तथा आत्मा की शक्ति एवं रानी के समान अच्छी बोधयुक्त, और भी सावधान होकर आगे ज्योति वाली उषाओं में कर्तव्यों के प्रति जागती रह । ३१

८७ श्रेष्ठ विद्वान् भी पत्नी पाकर तनशरीर से स्वशरीर का स्पर्श करते हैं । हे नारी ! तू सूर्या के समान महिमा से सब गुण-युक्त होकर यहां पति के साथ सन्तान वाली हो । ३२

८८ हे सब धन-सम्पन्न पुरुष ! इस दशा से उठ; हम नम्र हो तेरी प्रशंसा करते हैं । तू पितृ-घर में रहने वाली कर्मशील शोभित कुल-वधू की इच्छा कर, यह सनातन से यह तेरा भाग है । ३३

८९ पृथिवी-सूर्य के मध्य अप्सराओं (किरण-समूह और जल-अन्तरिक्ष की प्राकृतिक शक्तियों) के समान वधू-वर के मध्य कार्य-कुशल रूपयुक्त गायिकाएँ आनन्द मनाती हैं, वे माता वत् हैं; हे गन्धर्व ! इन के सन्मुख जा, तेरा सम्मान हो, तुझे मैं ऋतु-अनुकूल करता हूँ । ३४

९० विद्वान् वर की नम्रता और ईश्वर के लिए सम्मान हो, उसकी अति दीप्तिमान् दृष्टि का हम आदर करें । हे सब धनों के स्वामी ! तेरे लिए ज्ञान के साथ अन्न आदि देते हैं । तू (पत्नी के अतिरिक्त) अप्सराओं से दूर रह । हे ईश्वर ! तू अपनी शक्तियों की ओर जा । ३५

९१ हम ऐश्वर्य से प्रसन्न-मन रहें । गन्धर्व (परमात्मा और वर) को वरण (स्वीकार) करें वह देव परम पद पाये । हम उस गृहस्थ को पहुँचें जहाँ आयु बढ़ा लेते हैं । ३६

९२ हे भावी माता-पिता ! तुम दोनों ऋतु-कर्म के लिए संसर्ग करो, वीर्य-रज से माता-पिता बन जाओ । पत्नी पर पति के समान इस वधू को पलङ्ग तल्प या चर्म पर चढ़ा, सन्तान उत्पन्न कर, धन-ऐश्वर्य पुष्ट कर । ३७

९३ हे पुष्ट पति ! तू उस सब से अधिक कल्याणमयी उस पृथिवी के समान पत्नी को प्रेरित कर जिस में मनुष्य बीज का वपन करते हैं । जो हमारी कामना करती हुयी ऊरू खोल देती है और जिसमें कामना वाले शेप (उपस्थेन्द्रिय का) प्रहार करते हैं । ३८

३८९४ से पति ! पत्नीकी उरु पर आरोहण कर, हाथ का तकिया लगाकर सहारा दे, प्रसन्न-मन होता हुआ जाया का आलिङ्गन कर । यहाँ दोनों प्रसन्न होते हुए सन्तान पैदा करो; सविता (ईश्वर-सूर्य-राजा-पिता) तुम दोनों की आयु को दीर्घ करे ।

[मन्त्र में काम-शास्त्र का विशेष सुगम आसन वर्णित है ।] ३९

३८६५ आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिरहोरात्राभ्यां समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गली पतिलोकमाविशेमं शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ४०
९६ देवैर्दत्तं मनुना साकमेतत वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इद रक्षांसि तल्पानि हन्ति ॥ ४१
९७ यं मे दत्तो ब्रह्मभागं वधूयोर्वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
युवं ब्रह्मणे ऽनुमन्यमानौ बृहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम् ॥ ४२
९८ स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥ ४३
३८९९ नवं वसानः सुरभिः सुवासा उदागां जीव उषसो विभातीः ।
आण्डात् पतत्रीवामुक्षि विश्वस्मादेनसस् परि ॥ ४४
३९०० शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते। आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः॥४५
१. सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च । ये भूतस्य प्रचेतसस् तेभ्य इदम करं नमः ॥ ४६
२. य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आ तृदः ।
संधाता सन्धिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥ ४७
३. अपास्मत् तम उच्छतु नीलं पिशङ्गमुत लोहितं यत् ।
निर्दहनी या पृषातक्यस्मिन् तां स्थाणावध्या सजामि ॥ ४८
४. यावतीः कृत्या उपवासने यावन्तो राज्ञः वरुणस्य पाशाः ।
व्यृद्धयो या असमृद्धयो या अस्मिन् ता स्थाणावधि सादयामि ॥ ४९
५. या मे प्रियतमा तनूः सा मे बिभाय वाससः ।
तस्याग्रे त्वं वनस्पते नीविं कृणुष्व मा वयं रिषाम ॥ ५०
६ ये अन्ता यावतीःसिचो य ओतवो ये च तन्तवः।वासो यत्पत्नीभिरुतंतन्नःस्योनमुपस्पृशात्॥५१
७ उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः । अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा ॥ ५२
८ बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वेदेवा अधारयन् । वर्चो गोषु प्रविष्टं यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥५३
९ " तेजो " " ॥ ५४
१० " भगो गोषु प्रविष्टो यस् " ॥ ५५
११ " यशो गोषु प्रविष्टं यत् " ॥ ५६
१२ " पयो " " ॥ ५७
३९१३ " रसो गोषु प्रविष्टो यस् " ॥ ५८

३८६५ हे वर-वधू! तुम दोनों को प्रजापति ईश्वर सन्तान पैदा कराये, न्यायकारी ईश्वर दिन-रातों से सम्यक् कान्ति दे; हे सुमंगली वधू! तू पति-घर घुसकर उस पर छा जा, हमारे मनुष्यों-पशुओं के लिए कल्याण-कारिणी हो। ४०

९३ मनीषी पिता के साथ दानी-व्यवहारी मनुष्यों के दिये ये वर-वधू के वस्त्र जो पिता चिकित्सक ब्रह्मज्ञ वर के लिए देता है वही शय्या के राक्षसों (रोग-खटमल-कामुकता आदि) को नष्ट करता है। ४१

९७ हे पुरोहित के साथ सम्राट् (उसके प्रतिनिधि)! मुझ वर के लिये जो वर-वधू-वस्त्र आदि वर का भाग दिया गया है तुम दोनों उसकी अनुमति दो। ४२

९८ हे दो जीवो (पति-पत्नी)! सुखी घर से जागकर हँसते-हृष्ट होते हुए, तेज से मुदित उत्तम गौ-पुत्र-घर वाले होकर चमकती उषाओं को पार किया करो। ४३

३८९९ अण्डे से निकले पत्नी के समान नये वस्त्र पहन; सुगन्धित, नये घर वाला मैं चमकती उषाओं में भ्रमणार्थ जाया करूं और सब पाप से छूट जाऊँ। ४४

३९०० उषा में द्यावा-पृथिवी शोभित, पान से सुखद, महाव्रती हैं। दिव्य ७ आपः (प्राण-इन्द्रिय-स्राव-जल) प्रवाहित होते हैं वे हमें कष्ट से छुड़ाएँ। ७ इन्द्रियाँ — २-२ कान-नाक-नेत्र १ मुख, ५ ज्ञानेन्द्रिय-मन, बुद्धि, ७ स्राव — मस्तिष्क-सुषुम्णा-मूत्र-तार-पाचक-ग्लोम-पित्त-रक्त-जलीका। ४५
[देखो अ० ७-११२-१]

३९०१ प्रातः मैं सूर्य-रश्मि-देव-मित्र-वरुण और जो जगत् के ज्ञानी हैं उन्हें यह नमः करूँ। ४६

२ जो ईश्वर-वैद्य सरे न मांस के बिना, और स्कन्धास्थि में छेद किये बिना ही सन्धियों को जोड़ता और टेढ़े अंग ठीक कर देता है उसे भी नमस्कार करूँ। ४७

३ हमसे अज्ञानान्धकार और जो नीला-पीला-लाल (तमः-रजः-मिश्रित दुष्कर्म) है वह दूर हो, मैं जो शरीर में दाहक-बाण-समान पीडा है उसे परमात्मा को सौंप दूँ। ४८

४ उपवास-प्रवास में जो कष्ट हैं, राजा-वरुण के जो पाश हैं, जो दरिद्रता-दुरवस्थाएँ हैं उन्हें मैं शरीर में सहन कर परमात्मा पर सौंप दूँ। ४९

५ हे वन की रक्षक स्वामिनी पत्नि! जो मेरा सर्वाधिक प्यारा शरीर है वह डरता है; अतः वस्त्र का मूल (कपास-रुई) तय्यार कर, हम दुःखी न हों। ५०

६ वस्त्र के जो किनारे, जितनी कोरें आँचल-पल्लू-ताने-बाने हैं; जो देवियाँ बुनें वह हमें सुखद हो शरीर का स्पर्श करे। ५१

७ कामना वाली ये कन्याएँ पिता के घर से पति की ओर जाती हुई दीक्षा लेतीं और मधुर वाणी से आहुति देती हैं। ५२

३९०८-३९१३ बृहस्पति (ईश्वर-आचार्य) से दी गयी विवाह-दीक्षा सब देव-देवियाँ धारण करती हैं। जो वर्च-तेज-भग-यश-पयः (दूध-जल)-रस गौओं (वाणी-इन्द्रिय-किरण-पृथिवी-ज्ञानी-गायों) में प्रविष्ट है उससे इस कन्या को संयुक्त करते हैं। ५३-५८

३६१४ यदीमे केशिनो जना गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वन्तोऽघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ।। ५९
१५ यदीयं दुहिता तव विकेश्यरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्यघम् । अग्नि० [पूर्ववत्] ।। ६०
१६ यज्जामयो यद्युवतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वतीरघम् । अग्नि० ,, ।। ६१
१७ यत्ते प्र·ायां पशुषु यद्वा गृहेषु निष्ठितमघकृद्भिरघङ्कृतम् । अग्नि० ,, ।। ६२
१८ इयं नार्यु प ब्रूते पूलान्यावपन्तिका ।
दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ।। ६३
१९ इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती ।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ।। ६४
२० यदासन्द्यामुपधाने यद्वोपवासने कृतम् ।
विवाहे कृत्यां यां चक्रुरास्नाने तां नि दध्मसि ।। ६५
२१ यद्दुष्कृतं यच्छमलं विवाहे वहतौ च यत् ।
तत् संभलस्य कम्बले मृज्महे दुरितं वयम् ।। ६६
२२ संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ।। ६७
२३ कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः । अपास्याः केश्यं मलमप शीर्षण्यं लिखात् ।। ६८
२४ अङ्गादङ्गाद् वयमस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि ।
तन्मा प्रापत् पृथिवीं मोत देवान् दिवं मा प्रापदुर्वन्तरिक्षम् ।
अपो मा प्रापन् मलमेतदग्ने यमं मा प्रापत् पितॄंश्च सर्वान् ।। ६९
२५ सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम् ।
सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम् ।। ७०
२६ अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ।
ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ।। ७१
२७ जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः । अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ।। ७२
२८ ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमन् । ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ।। ७३
२९ येदं पूर्वागन् रशनायमाना प्रजामस्यै द्रविणं चेह दत्त्वा ।
तां वहन्त्वगतस्यानु पन्थां विराडियं सुप्रजा अत्यजैषीत् ।। ७४
३६३० प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथाऽसो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ।।७५।। काण्ड १४ पूर्ण ।।

३९१४ यदि ये क्लेशी, केशों वाले जन (स्त्रियाँ) रोने से पाप करती हुई तेरे घर में एकत्र होकर रोयें तो अग्नि (अगुणी) और सविता (सूर्य, प्रेरक पिता-पुरोहित) तुझे उस पाप से बचायें । ५९

१५ यदि यह तेरी पुत्री बाल बिखेरे घर में रोने से पाप करती हुई रोए तो० (पूर्ववत्) । ६०

१६ यदि वृद्धाएँ-युवतियाँ तेरे घर में... ,, ,, । ६१

१७ यदि तेरी सन्तान-पशु-घरों में पापियों ने पाप-रोग स्थिर किया हो तो ० ,, । ६२

१८ लाजा-होम में फुल्लियों की आहुति देती यह नारी कहती है कि मेरा पति आयुष्मान् हो, सौ वर्ष तक जिये । ६३

१९ हे इन्द्र [राज-प्रतिनिधि] ! तू यहाँ चकवा-दम्पती के समान इन दोनों को प्रेरणा कर । ६४

२० विवाह मे कुर्सी-गद्दी-खाट-तकिया-वस्त्र आदि में जो गन्दगी हो जाये उसे हम स्नान आदि से दूर कर दें । ६५

२१ विवाह और रथ में जो बुराई-कमी-गन्दगी हो उसे मध्यस्थ के वार्तालाप-जल से दूर करें । ६६

२२ वर के घर में बुरे मल को जल में शुद्ध कर हम यज्ञिय शुद्ध हों, यह हमारी आयु बढ़ाये । ६७

२३ जो यह गौ दाँतों का बनाया कंघा है वह उस वधू के केश-सिर का मैल दूर करे । ६८

२४ हे अग्नि (परमात्मा-आचार्य-वैद्य-यज्ञाग्नि) ! हम वधू का यक्ष्मा अग-अंग से बाहर करें । यह यक्ष्मा पृथिवी-शरीर-देव-इन्द्रियों-द्यौ-मस्तिष्क-बड़े अन्तरिक्ष-उदर-जल-रस-रक्त-वायु-प्राण-सब पितर-ऋतुओं-किरण-वृद्ध और पति-पत्नी के युगल में न पहुंचे । ६९

२५ हे पत्नी ! मैं तुझे पृथिवी के जल-दूध, औषधियों के रस ; प्रजा-धन से बाँधता हूं । ऐसी बँधी और संनद्ध तू यह अन्न-बल प्राप्त कर और मुझे दिया कर । ७०

२६ हे वधू ! मैं ज्ञान-प्राण हूं तू ज्ञानवती वाणी है, मैं साम हूं तू ऋक् है [ऋचा पर चढ़ा साम गाया जाता है ।] मैं द्यौ तू पृथिवी है; वे हम दोनों यहाँ सङ्गत हों ; सन्तान पैदा करें । ७१

२७ हम अविवाहित विवाह, और सु-दानी बनकर सन्तान चाहते हैं । हम प्राण नष्ट न करते हुए अन्न-बल पाने के लिए मिल कर रहें । ७२

२८ जो वृद्ध वधू देखने इस रथ-समीप आयें वे इस पति-सङ्गिनी वधू के लिए सन्तान-सहित सुख का आशीर्वाद दें । ७३

२९ जो पहले ब्रह्मचर्य में रशना (मेखला) पहनती थी वह अब करधनी आभूषण पहने इस घर में आयी है उसे सन्तान-धन का आशीर्वाद देकर; न चले पथ (गृहस्थ) के पीछे चलायें । यह विशेष रमणीय वधू सुसन्तान पाकर जीते । ७४

३९३० हे वधू ! तू सुबोध, जागती हुई सौ वर्ष की बड़ी आयु के लिए ज्ञान पा । पति-गृह और गृह वालों के पास जा जिससे गृह-पत्नी बने, सविता तेरी आयु लम्बी करे । ७५

यह सूक्त-अनुवाक २, प्रपाठक २९, काण्ड १४ पूर्ण हुआ ।

सम्पादक— आचार्य वीरेन्द्र सरस्वती, उपाध्यक्ष: विश्ववेदपरिषद्, सी ८१७ महानगरम्, लक्ष्मणपुरम् ।

अथर्व वेद काण्ड १५ सूची

पृ.पा. अनुवाक — सूक्त मन्त्र ऋषि — देवता छन्द — महर्षि दयानन्द–कथित विषय

३० १ में ७ पर्याय १ ८ अथर्वा व्रात्य गद्यमय जगदुत्पत्त्यादि तदेकमभवत् तत्श्रेष्ठमभवदित्यादि
२ २८ (पूर्ण काण्ड के) धर्मोपदेशादि अलङ्कारादि प्राच्यादि दिशादि लक्ष-
३ ११ णालंकारादि ऋत्वादि देशादि लक्षणादि अन्तर्देशादि भूमि पशु नक्षत्रादि
४ १८ इतिहास पुराण नाराशंसीरित्यादि श्रद्धादि लक्षणादि पदार्थ विद्या ।
५ १६, ६ में २६, ७ में ५ ।

२ में ११ पृ० ८-९ में ३-३, १०-१२ में ११-११, १३ में १४; १४ में २४, १५ में ६, १६ में ७, १७ में १०
१८ में ५ । विषय— सभा–राज–प्रजादि–रक्षण–करणादि इयं वा उ पृथिवी बृह-
स्पतिरग्निरसावादित्यः क्षत्रमित्यादि अग्निहोत्रातिथि-लक्षण व्रात्य-लक्षण
गृहस्थातिथि व्यवहारादि भोजनादि विधानादि मनोऽन्नादादि तस्य व्रात्यस्य
सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः एकैकस्य क्रमेण व्याख्यादि पदार्थविद्या ।

योग २, सूक्त १८, इस काण्ड के २२० और पहले ३९३० सब ४१५० मन्त्र हुए ।

अथर्व वेद काण्ड १५

प्रपाठक ३० अनुवाक १

विषय- जगदुत्पत्त्यादि- तदेकमभवत तत्सत्यमभवदित्यादि धर्मोपदेशादि अलङ्कारादि प्राच्यादि दिशादि लक्षणालंकारादि ऋत्वादि देशादि लक्षणादि अन्तर्देशादि भूमि पशु नक्षत्रादि इतिहास-पुराण नाराशंसीरित्यादि श्रद्धादि लक्षणादि पदार्थ विद्या ।

सूक्त १ । व्रात्य

३६३१ व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत् । १

३२ स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत्प्राजनयत् । २

३३ तदेकमभवत् तल्ललाममभवत् तन्महदभवत् तज्ज्येष्ठमभवत् तद् ब्रह्माभवत्
तत्तपोऽभवत् तत्सत्यमभवत् तेन प्राजायत ॥ ३

सूक्त १ । व्रात्य (व्रतों का स्वामी, व्रातों मनुष्यों का हितकारी परमेश्वर)

३६३१ परमेश्वर प्रलय में गति करता हुआ अपने प्रजापति-स्वरूप को प्रकट करता है । १

३२ वह प्रजापति अपने आश्रय में उत्तम वर्ण (सत-रजः-तमः श्वेत-लाल-काला) रङ्ग की प्रकृति देखता और उसे पैदा करने के लिए उन्मुख करता है । २

३६३३ वह एक तत्त्व-सुन्दर-महत्-ज्येष्ठ-बड़ा-तप-सत्य होता है, उससे ईश्वर प्रजापति होता है ।३

३६३४ सोऽवर्धत स महानभवत् स महादेवोऽभवत् । ४
३५ स देवानामीशां पर्यैत् स ईशानोऽभवत् । ५
३६ स एकव्रात्योऽभवत् स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः । ६
३७ नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् । ७
३८ नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन द्विषन्तं विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति ।८

सूक्त २ । अध्यात्म व्रात्य

३९ स उदतिष्ठत स प्राचीं दिशमनुव्यचलत् । १
४० तं बृहच्च रथन्तरं चादित्याश्च विश्वे च देवा अनुव्यचलन् । २
४१ बृहते च वै स रथन्तराय चादित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्य आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुप वदति ।
४२ बृहतश्च वै स रथन्तरस्य चादित्यानां च विश्वेषां च देवानां प्रियं धाम भवति । तस्य प्राच्यां दिशि । ४
४३ श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः । ५
४४ भूतञ्च भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम् । ६
४५ मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः । ७
४६ कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद । ८
४७ स उदतिष्ठत् स दक्षिणां दिशमनुव्यचलत् । ९
४८ तं यज्ञायज्ञियं वामदेव्यञ्च यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन् । १०
४९ यज्ञायज्ञियाय च वै स वामदेव्याय च यज्ञाय च यजमानाय च पशुभ्यश्चा वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुप वदति । ११
५० यज्ञायज्ञियस्य च वै स वामदेव्यस्य च यज्ञस्य च यजमानस्य च पशूनाञ्च प्रियं धाम भवति । तस्य दक्षिणायां दिशि । १२
५१ उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञानं० [शेष ५ के समान] । १३
५२ अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो विपथम् । मातरि० [शेष ७-८ वत] । १४
५३ स उदतिष्ठत् स प्रतीचीं दिशमनुव्यचलत् । १५
५४ तं वैरूपं च वैराजं चापश्च वरुणश्च राजानुव्यचलन् । १६
३६५५ वैरूपाय च वै स वैराजाय चाद्भ्यश्च वरुणाय च राज्ञ आ० [शेष ३ के समान] १७

३६३४ वह आगे बढ़ता; वह महान् होता, वह महान् देव होता है। ४
३५ वह देवों का ईशत्व सब ओर से पाता है, वह ईशान होता है। ५
३६ वह एक व्रात्य परमेश्वर हुआ, वह धनुष (सामर्थ्य) लेता है, वही इन्द्र-धनुष है। ६
३७ इस सतरंगी धनुष का भीतर (पेट, मध्य) नीली किरण, तमः; और पीठ (अन्तिम) लाल किरण रजः है। ७
३८ नीलो (अल्ट्रा-वायलेट) से ही यह अप्रिय शत्रु को ढँकता है; लाल (इन्फ्रा-रेड) से द्वेषी को बींधता है- यह ब्रह्म-वादी वैज्ञानिक बताते हैं। ८

सूक्त २। व्रात्य (व्रती संन्यासी)

३९ वह उठता है। वह पूर्व दिशा की ओर चलता है। १
४० उसके पीछे बृहत्-रथन्तर सामगान-आदित्य और सब विद्वान् चलते हैं। २
४१ जो ऐसे विद्वान् व्रात्य की निन्दा करता है वह बृहत्-रथन्तर-आदित्यों-सब देवों से अपने को वञ्चित कर लेता है। ३
४२ वह निश्चय ही बृहत्-रथन्तर साम-आदित्यों-सब देवों का प्रिय हो जाता है जो उसे पाता है। पूर्व दिशा में उसकी--। ४
४३ श्रद्धा पत्नी, मित्र (सूर्य-नखा) साम-गायक; विज्ञान वस्त्र, दिन पगड़ी, रात काले केश, दो हरित (मनोहारी सूर्य-चन्द्र, धारण-आकर्षण गुण) दो कुण्डल, कलियाँ-तारे मणियाँ होती हैं। ५
४४ उसके भूत-भविष्य काल दो रक्षक; मन विविध-पथ-गामी (रथ) के समान हो जाता है। ६
४५ अन्तरिक्ष की धनंजय वायु और प्राण दो रथ-वाहक घोड़े, हवा सारथि, श्वास-प्रश्वास चाबुक कोड़ा के समान होते हैं। ७ [अन्य ५ दिशाओं में भी १२-१२ सहायक आगे बताये हैं।]
४६ कीर्ति-यश इसके आगे चलते हैं। ये उसे भी मिलते हैं जो ऐसा जानता-करता है। ८
४७ वह उठता और दक्षिण दिशा की ओर चलता है। ९
४८ इसके पीछे यज्ञायज्ञिय-वामदेव्य साम-यज्ञ-यजमान-पशु चलते हैं। १०
४९ यज्ञायज्ञिय-वामदेव्य-यज्ञ-यजमान-पशुओं से वह रहित होता है जो ऐसे व्रात्य को बुरा कहता है। ११
५० ,, का अन्य प्रेम-पात्र होता है। उसकी दक्षिण दिशा में-१२
५१ उषा पत्नी, मन्त्र गायक, विज्ञान वस्त्र० (शेष मन्त्र ५ के समान)। १३
५२ अमावास्या-पौर्णमासी उसके दोनों ओर दो रक्षक होते हैं, मन रथ० (शेष मन्त्र ७-८ के तुल्य)। १४
३६५३-३९५८ वह उठता और पश्चिम दिशा की ओर चलता है। उसके पीछे चलते हैं— वैरूप-वैराज साम-जल-राजा वरुण (चन्द्रमा)। जो ऐसे विद्वान् व्रात्य से विवाद करता है वह ,, से अपने को अलग कर लेता है, जो विवाद नहीं करता वह ,, का प्यारा होता है। पश्चिम में उसके अन्न पत्नी, हास्य गायक० (शेष मन्त्र ५ के समान), दिन-रात दो रक्षक० (शेष मन्त्र ७-८ के समान)। १५-२०।

३६५६ वैरूपस्य च वै स वैराजस्य चापां च वरुणस्य च राज्ञः प्रियं धाम भवति ।
तस्य प्रतीच्यां दिशि । १८
५७ इरा पुंश्चली हसो मागधो विज्ञानं० [आगे ५ के समान] । १९
५८ अहश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो० [आगे ७-८ के समान]। २०
५९ स उदतिष्ठत् स उदीचीं दिशमनु व्यचलत् । २१
६० तं श्यैतञ्च नौधसं च सप्तर्षयश्च सोमश्च राजा‌न् व्यचलन् । २२
६१ श्यैताय च वै स नौधसाय च सप्तर्षिभ्यश्च राज्ञ आ वृ० [आगे ३ के समान] २३ ।।
६२ श्यैतस्य च वै स नौधसस्य च सप्तर्षीणां च सोमस्य च राज्ञः प्रियं धाम भवति।
तस्योदीच्यां दिशि । २४
६३ विद्युत् पुंश्चली स्तनयित्नुः मागधो वि० [आगे ५ के समान] ।। २५
६४ श्रुतञ्च विश्रुतञ्च परिष्कन्दौ मनो विपथम् । २६
६५-६६ [७-८ के समान ।] २७-२८

सूक्त ३ । व्रात्य

६७ स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत् तं देवा अब्रुवन् व्रात्य किं नु तिष्ठसीति । १
६८ सोऽब्रवीदासन्दीं मे संभरन्त्विति ।२
६९ तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन् । ३
७० तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ । ४
७१ बृहच्च रथन्तरं चानूच्ये आस्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च तिरश्च्ये । ५
७२ ऋचः प्राञ्चस् तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः । ६
७३ वेद आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम् । ७
७४ सामासाद उद्गीथोऽपश्रयः । ८
७५ तामासन्दीं व्रात्य आरोहत् । ९
७६ तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन्त्सङ्कल्पाः प्रहाय्या विश्वानि भूतान्युपसदः । १०
७७ विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो भवन्ति य एवं वेद । ११

सूक्त ४ व्रात्य

७८ तस्मै प्राच्या दिशः । १
७९ वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् बृहच्च रथन्तरं चानुष्ठातारौ । २
३६८० वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो बृहच्च रथन्तरं चानुतिष्ठतो य एवं वेद। ३

३६५६-३६६६ वह व्राती उठता, है, उत्तर दिशा की ओर चलता है । उसके पीछे चलते हैं—
श्वैत्य-नौधस दो साम-७ ऋषि-राजा सोम चुम्बक शक्ति। जो ऐसे विद्वान् व्रात्य की निन्दा करताहै वह
" इन से अपने को अलग कर लेता है, अनिन्दक
" इनका प्रिय पात्र होता है। उसकी उत्तर दिशा में
बिजली (आरोरा बोरिआलिस) साथिन, मेघ गर्जा गायक,(शेष मन्त्र ५ के समान), श्रुत-विश्रुत रक्षक,
(शेष ७-८ के समान)। २१-२८

वृात्य की सेनापति के रूप में चारों दिशाओं की प्रदक्षिणा

सम्मिलित । दिशा	१ पूर्व	२ दक्षिण	३ पश्चिम	४ उत्तर
१ अनुगामी	बृहत्-रथन्तर साम	यज्ञायज्ञिय-वामदेव्य साम	वैरूप-वैराज साम	श्यैत-नौधस साम
	आदित्य, विश्वे देवाः	यजमान, पशु	आपः, वरुण	सप्तर्षि, सोम
२ पुँश्चली (पत्नी)	श्रद्धा	उषा	इरा	विद्युत्
३ मागध (गायक)	मित्र (सूर्य)	मन्त्र	हास	स्तनयित्नु
४ परिष्कन्द(दो साथी)	भूत-भविष्य	अमावास्या-पौर्णमासी	दिन-रात	श्रुत-विश्रुत

आगे बताये ९ सब दिशाओं में उसके साथ रहते हैं—
५वास-विज्ञान; ६ उष्णीष-अहः; ७ केश-रात्रि; ८ दो प्रवर्त (कुण्डल)-हरित, ९ मणि-कल्मलि,
१० विपथ(रथ)-मन, ११ विपथवाह(घाड़े)-मातरिश्वा, पवमान, १२ सारथि-वात, १३ पुताद-रेश्मा।

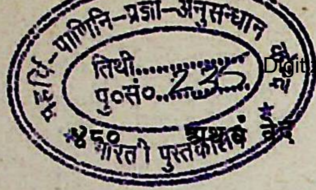
८ साम-नामों के अनेक अर्थ—
१ बृहत्— ज्येष्ठता-द्यौ-स्वर्ग-प्राण-क्षत्र-मन-दिन। २ रथन्तर— पृथिवी-वाणी-ब्रह्मवर्चस-ऋग्वेद-अपान-देवरथ-अन्न-अग्नि-प्रजनन-परोक्ष। ३ यज्ञायज्ञिय— पशु-अन्नाद्य। ४ वामदेव्य— पिता-आत्मा-शान्ति-भेषज-प्रजनन-प्राजापत्य प्राण-पशु-यजमानलोक-अमृतलोक-स्वर्ग-अन्तरिक्ष। ५ वैरूप-वाणी-पशु-दिशाएँ। ६ वैराज— प्रजापति। ७ श्यैत —पशु। नौधस— ब्रह्म वर्चस।

सूक्त ३। व्रात्य का आसन

६७ वह वर्ष भर चलता है, इससे देव कहते हैं, हे व्रात्य! क्यों नहीं रुकते? १
६८ वह कहता है- मेरे लिए आसन्दी (आराम कुर्सी शय्या) लाओ। २
६९ वे इस के लिए आसन्दी लाते हैं। ३
७० उनके ग्रीष्म-वसन्त दो और शरद्-वर्षा दो (सब चार पाए) होते हैं। ४
७१ बृहद्-रथन्तर दो लम्बी और यज्ञायज्ञिय-वामदेव्य दो चौड़ी पट्टियाँ होती हैं। ५
७२-७३ ऋचाएँ ताने के, यजु बाने के तन्तु, साम बिछौना, अथर्व मसनद तकिया होता है। ६-७
७४-७५ साम-गान गद्दी, ओ३म् का गान पीठिका होती है। उस आसन्दी पर व्रात्य चढ़ता है। ८-९
७६ देवजन इसके सब ओर रक्षक; संकल्प दूत, सब प्राणी-अप्राणी समीप-वर्ती होते हैं। १०
७७ ये सब उसके भी पास रहते हैं जो ऐसा जानता-करता है। ११

सूक्त ४। व्रात्य

७८-७९ उसके पूर्व दिशा से वसन्त के दो मास, रक्षक, बृहद्-रथन्तर अनुष्ठाता होते हैं। १-२
३९८० ये ही उसके भी रक्षक-अनुष्ठाता होते हैं जो ऐसा जानता-करता है। ३



३९८१ तस्मै दक्षिणाया दिशः । ४
८२ ग्रैष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानुष्ठातारौ । ५
८३ ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद । ६
८४ तस्मै प्रतीच्याः दिशः । ७
८५ वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वैरूपञ्च वैराजं चानुष्ठातारौ । ८
८६ वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो वैरूपं च वैराजं चानुतिष्ठतो य एवं वेद ।९
८७ तस्मा उदीच्याः दिशः । १०
८८ शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वञ् श्यैतं च नौधसं चानुष्ठातारौ । ११
८९ शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं च नौधसं चानुतिष्ठतो य एवं वेद । १२
९० तस्मै ध्रुवाया दिशः । १३
९१ हैमनौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ । १४
९२ हैमनावेनं मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो भूमिश्चाग्निश्चानुतिष्ठतो य एवं वेद ।१५
९३ तस्मा ऊर्ध्वाया दिशः । १६
९४ शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ । १७
९५ शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो द्यौश्चादित्यश्चानुतिष्ठतो य एवं वेद ।१८

सूक्त ५ व्रात्य

९६ तस्मै प्राच्या दिशो अन्तर्देशाद् भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् । १
९७ भव एनमिष्वासः प्राच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानुतिष्ठति । नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ २
९८ नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद । ३
३९९९ तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशाच्छर्वमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् । ४
४००० शर्व एनमिष्वासः दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानुतिष्ठति(शेष २-३ वत्) ५
४००१ तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशात् पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् । ६
२ पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानुतिष्ठति[शेष २-३केसमान]७
३ तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशादुग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् । ८
४.उग्र एनमिष्वास उदीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानुतिष्ठति [शेष २-३के समान]९
५ तस्मै ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशाद् रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् । १०

३६८१-८३ उसके लिए दक्षिण दिशा से गरमी के दो मास (ज्येष्ठ-आषाढ) रक्षक, यज्ञायज्ञिय-वामदेव्य अनुष्ठाता होते हैं। ये उसे जानने वाले के भी रक्षक-अनुष्ठाता हो जाते हैं। ४-६

८४-८६ उसके लिए पश्चिम दिशा से वर्षा के दो मास (श्रावण-भाद्रपद) रक्षक और वैरूप-वैराज अनुष्ठाता होते हैं और ऐसे ज्ञाता के भी... । ७-९

८७-८९ उत्तर दिशा से शरद् के दो मास (आश्विन-कार्तिक) रक्षक और श्यैत-नौधस साम अनुष्ठाता होते हैं। ये ऐसे ज्ञाता के भी... । १०-१२

९०-९२ नीचे की दिशा से हेमन्त के दो मास (मार्गशीर्ष-पौष) रक्षक और भूमि-अग्नि अनुष्ठाता किये जाते हैं ये ऐसे ज्ञाता के भी रक्षक-अनुष्ठाता होते हैं। १३-१५

९३-९५ इसके लिए ऊपरी दिशा से शिशिर के दो मास (मांघ-फाल्गुन) रक्षक, और द्यौ-आदित्य अनुष्ठाता होते हैं। ये ऐसे ज्ञाता के भी रक्षक-अनुष्ठाता हो जाते हैं। १६-१८

सूक्त ५ व्रात्य

९६ उस के लिए पूर्व दिशा के अन्दर के देश (आग्नेय) से भव (नामक शक्ति) को इष्वास (बाण फेँकने वाला) अनुष्ठाता किया गया। १

९७-९८ वहाँ से वह भव इस व्रात्य के अनुकूल चलता है। न इसे शर्व, न भव, न ईशान, (कष्ट देते)। जो ऐसा जानता है उसके पशुओं और समान-जातियों की वे हिंसा नहीं करते। २-३

३९९९ उसके लिए दक्षिण दिशा के अन्तर्देश (नैर्ऋत्य) से शर्व नामक इष्वास (क्षेप्यास्त्र फेँकने वाली शक्ति) को अनुष्ठाता बनाया गया। ४

४०००. शर्व वहाँ से इसके अनुकूल रहता है। न इसे० (शेष २-३ मन्त्र के समान) । ५

४००१-२ इस के लिए पश्चिम दिशा के अन्तर्देश (वायव्य) से पशुपति (वरुण-शक्ति) नामक इष्वास को अनुष्ठाता किया गया। वह इस व्रती के पीछे रहता है। (शेष २-३ के समान)। ६-७

३-४ उसके लिए उत्तर दिशा के अन्तर्देश (ईशान) से उग्र देव (सोम-चुम्बक) को इष्वास अनुष्ठाता बनाया गया। वह वहाँ से उस के पीछे खड़ा होता है। (शेष २-३ के समान)। ८-९

४००५-६ उस के लिए ध्रुवा दिशा के अन्तर्देश (भू-गर्भ) से रुद्र [विष्णु-अग्नि] को इष्वास अनुष्ठाता बनाया गया। वह वहाँ से इसके अनुकूल रहता है। [शेष २-३ के समान] । १०-११

[राजा के भी भव-शर्व-पशुपति-उग्रदेव-रुद्र-महादेव-ईशान सेनापति क्षेप्यास्त्र-क्षेपक हों।]

४००६ रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानुतिष्ठति [शेष २-३वत्] ११
७ तस्मा ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशान्महादेवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् । १२
८ महादेव एनमिष्वास ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानुतिष्ठति [शेष २-३ वत] ।१३
९ तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्य ईशानमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् । १४
१०-११ ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्यो० [शेष मन्त्र २-३ के समान] ।१५-१६

सूक्त ६ । व्रात्य

१२ स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत् । १
१३ तं भूमिश्चाग्निश् चौषधयश्च वनस्पतयश् च वानस्पत्याश् च वीरुधश् चानु व्यचलन् । २
१४. भूमेश्च वै सोऽग्नेश्चौषधीनां च वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद । ३
१५. स ऊर्ध्वां दिशमनु व्यचलत् । ४
१६. तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानु व्यचलन् । ५
१७. ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च नक्षत्राणां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद । ६
१८ स उत्तमां दिशमनु व्यचलत् । ७
१९ तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानु व्यचलन् । ८
२० ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद । ९
२१ स बृहतीं दिशमनु व्यचलत् । १०
२२ तमितिहासश्च पुराणञ्च गाथाश् च नाराशंसीश चानु व्यचलन् । ११
२३ इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद । १२
२४ स परमां दिशमनु व्यचलत् । १३
२५. तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्च चानुव्यचलन् ।१४
२६ आहवनीयस्य च वै स गार्हपत्यस्य च दक्षिणाग्नेश् च यज्ञस्य च यजमानस्य च पशूनाञ्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद । १५
२७ सोऽनादिष्टां दिशमनु व्यचलत् । १६
४०२८. तमृतवश्चार्तवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे चानुव्यचलन् ।१७

४००७—८ इस व्रात्य के लिए उपरि – दिशा के अन्तर्देश अन्तरिक्ष में महादेव नामक शक्ति (बृहस्पति) को इष्वास-अनुष्ठाता बनाते हैं वह इसके पीछे रहता है (शेष २-३ के समान)। १२-१३
६-११ उसके लिए सब अन्तर्देशों से ईशान को इष्वास-अनुष्ठाता बनाते हैं, वह इसके अनुकूल चलता है (शेष मन्त्र २-३ के समान)। १४-१६

सूक्त ६ । व्रात्य (संन्यासी) का सर्वत्र विचरण

१२ वह ध्रुवा नीचे की दिशा में चलता है । १
१३ भूमि —आग–औषिधयाँ–वनस्पतियाँ–वानस्पत्य–लताएँ उस के अनुकूल चलतीं हैं । २
१४ ,, लताओं का वह प्रिय स्थान होता जो ऐसा जानता। ३
१५ वह उपरि दिशा की ओर चलता है । ४
१६ ऋत–सत्य–सूर्य–चन्द्र–नक्षत्र उसके पीछे चलते हैं। ५
१७ ,, का वह प्रिय धाम हो जाता है जो ऐसा जानता–करता है । ६
१८ वह सर्व–श्रेष्ठ दिशा को चलता है। ७
१९ ऋचाएँ–साम–यजु–अथर्व वेद उसके पीछे चलते हैं । ८
२० ,, का वह प्रिय धाम होता है जो ऐसा जानता है। ९
२१ वह बृहती दिशा की ओर चलता है । १०
२२ नित्य इतिहास–पुराण(प्रकृति)–गाथा गान–नाराशंसी ऋचाएँ पीछे चलती हैं । ११
२३ ,, का वह प्यारा घर है जो ऐसा जानता है। १२
२४ वह परम दिशा को चलता है। १३
२५ आहवनीय–गार्हपत्य–दक्षिण अग्नि–यज्ञ–यजमान–पशु इसके पीछे चलते हैं। १४
२६ ,, का वह प्रिय धाम है जो ऐसा जानता है। १५
२७ वह अनिर्दिष्ट दिशा की ओर बढ़ता है । १६
२८ ऋतुएँ-ऋतुओं के पदार्थ–लोक–लोकवासी–मास–अर्धमास और दिन–रात पीछे चलते हैं। १७
४०२९ ,, का वह प्रिय धाम होता है जो ऐसा जानता है । १८

४०२६. ऋतूनां च वै स आर्तवानां च लोकानां च लौक्यानां च मासानां चार्ध-
मासानां चाहोरात्रयोश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद । १८

३० सोऽनावृत्ता दिशमनुव्यचलत् ततो नावर्त्स्यन्नमन्यत । १९

३१ तं दितिश्चादितिश्चेडा चेन्द्राणी चानुव्यचलन् । २०

३२ दितेश्च वै सोऽदितेश्चेडायाश्चेन्द्राण्याश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद । २१

३३ स दिशोऽनुव्यचलत् तं विराडनुव्यचलत् सर्वे च देवाः सर्वाश्च देवताः । २२

३४ विराजश्च वै स सर्वेषां च देवानां सर्वासां च देवतानां प्रियं धाम भवति य एवं वेद । २३

३५ स सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् । २४

३६ तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चानुव्यचलन् । २५

३७. प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पितामहस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद । २६

सूक्त ७ । अध्यात्म व्रात्य

३८ स महिमा सद्रुर्भूत्वान्तं पृथिव्या अगच्छत् स समुद्रोऽभवत् । १

३९. तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चापश्च श्रद्धा च वर्षं भूत्वानुव्यवर्तयन्त । २

४० ऐनमापो गच्छन्ति ऐनं श्रद्धा गच्छत्यैनं वर्षं गच्छति य एवं वेद । ३

४१ तं श्रद्धा च यज्ञश्च लोकश्चान्नं चान्नाद्यं च भूत्वाभिपर्यावर्तन्त । ४

४०४२ ऐनं श्रद्धा गच्छत्यैनं यज्ञो गच्छत्यैनं लोको गच्छति एनमन्नं गच्छति
एनमन्नाद्यं गच्छति य एवं वेद । ५

अनुवाक २

सूक्त ८ । व्रात्य— ०४३ सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत १

४४ स विशः सबन्धूनन्नमन्नाद्यमभ्युदतिष्ठत् । २

४५ विशां च वै स सबन्धूनां चान्नस्य चान्नाद्यस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद । ३

सूक्त ९— ४६ स विशोऽनु व्यचलत् । १

४७ तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलन् । २

४८ सभायाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद । ३

सूक्त १०— ४९ तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहानागच्छेत् । १

५० श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत्तथा क्षत्राय नावृश्चते तथा राष्ट्राय नावृश्चते । २

५१ अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां ते अब्रूतां कं प्रविशावेति । ३

५२ अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्रविशत्विन्द्रं क्षत्रं तथा वा इति । ४

४०५३ अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम् । ५

४०३० वह अनावृत्ति (मोक्ष) मार्ग की ओर चलता है। वहा से न लौटेगा ऐसा मानता है। १६
३१ दिति (खण्डित पृथिवी)–अदिति (प्रकृति)–इडा–इन्द्र-शक्ति पीछे चलती हैं। २०
३२ " का प्रिय धाम होता जो ऐसा जानता। २१
३३ वह दिशाओं को लक्ष्य कर बढ़ता, विराट्-सब देव-देवियाँ पीछे चलतीं हैं। २२
३४ जो ऐसा जानता वह इन सब का प्यारा धाम बन जाता है। २३

३५-३७ वह सब अन्दर के देशों में विचरता है। प्रजापति–परमेष्ठी (सम्राट्) –पिता–पितामह (बड़े-बूढ़े) पीछे चलते हैं। जो ऐसा जानता वह इनका प्रिय पात्र होता है। २४-२६

सूक्त ७ । व्रात्य

३८ वह शीघ्र महिमायुक्त बनकर पृथिवी (शरीर) के अन्त (सिर) तक पहुँचता; योगमुद्रा-सहित होता है। १
३९ प्रजापति–परमेष्ठी–पिता–पितामह–आपः और श्रद्धा वर्षा होकर उसके अनुकूल वर्तते हैं। २
४० जो ऐसा जानता–करता है उसे आपः (आप्त सुकर्म, ईश्वर) –श्रद्धा–वर्षा प्राप्त होती हैं। ३
४१ उसे श्रद्धा–यज्ञ–लोक–अन्न–अन्नाद्य (अन्य खाद्य) सब ओर मिला करते हैं। ४
४२ इसे भी " " जो ऐसा जानता है। ५

अनुवाक २

विषय— सभा–राज–प्रजादि–रक्षण–करणादि इयं वा उ पृथिवी बृहस्पतिरग्निरसावादित्यः क्षत्रमित्यादि अग्निहो –अतिथि–लक्षण व्रात्य–लक्षण गृहस्थातिथि व्यवहारादि भोजनादि विधानादि मनोऽन्नादादि तस्य व्रात्यस्य सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः एकैकस्य क्रमेण व्याख्यादि पदार्थ विद्या।

सूक्त ८ । व्रात्य (व्रती राजा)

४३ वह प्रजा–रञ्जन करता, दीप्ति-युक्त होता है; अतः राजन्य बनता है। १
४४ वह बन्धुओं–सहित प्रजा–अन्न–अन्नाद्य के लिए उत्थान–प्रयत्न करता है। २
४५ " का प्रिय धाम होता है जो ऐसा जानता–करता है। ३

सूक्त ९ । व्रात्य (राजन्य क्षत्रिय)

४६-४८ वह प्रजा के अनुकूल चलता है। उसके पीछे सभा–समिति–सेना–सुरा (सुन्दर राज्यलक्ष्मी-जल–विभाग) चलते हैं। जो ऐसा जानता है वह इनका प्रिय धाम होता है। १-३

सूक्त १० । व्रात्य अतिथि

४९ यदि ऐसा विद्वान् व्रात्य अतिथि जिस राजा के घर वालों के पास आये तो— । १
इसे अपने से श्रेष्ठ माने; वैसा करने पर वह क्षात्र–राष्ट्र–धर्म से स्वयं को वंचित नहीं करता। २
५० वे कहते हैं कि हम किसमें प्रवेश करें ? ३
५१ निश्चय ही इससे ब्रह्म–क्षत्र–उपदेश प्रकट होते हैं। वे कहते हैं कि हम किसमें प्रवेश करें ? ३
यह वचन कहे। ४
५२ अत बृहस्पति में ही ब्रह्म (ज्ञान), और इन्द्र में क्षात्र धर्म प्रविष्ट हों, यह वचन कहे। ४
४०५३ " हुए। ५

४०५४ इयं वा उ पृथिवी बृहस्पतिर्द्यौरेवेन्द्रः । ६
५५ अयं वा उ अग्निर्ब्रह्मासावादित्यः क्षत्रम् । ७
५६-५७. ऐनं ब्रह्म गच्छति ब्रह्मवर्चसी भवति । ८ । यः पृथिवीं बृहस्पतिमग्निं ब्रह्म वेद । ९
५८-५९ ऐनमिन्द्रियं गच्छतीन्द्रियवान् भवति । १० । य आदित्यं क्षत्रं दिवमिन्द्रं वेद । ११

सूक्त ११ । व्रात्य अतिथि

६० तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् । १
६१ स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयात् व्रात्य क्वावात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति । २
६२ यदेनमाह व्रात्य क्वावात्सीरिति पथ एव तेन देवयानानवरुन्धे । ३
६३ यदेनमाह व्रात्योदकमित्यप एव तेनावरुन्धे । ४
६४ यदेनमाह व्रात्य तर्पयन्त्विति प्राणमेव तेन वर्षीयांसङ्कुरुते । ५
६५ यदेनमाह व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्त्विति प्रियमेव तेनावरुन्धे । ६
६६ ऐनं प्रियङ्गच्छति प्रियः प्रियस्य भवति य एवं वेद । ७
६७ यदेनमाह व्रात्य यथा ते वशस् तथास्त्विति वशमेव तेनावरुन्धे । ८
६८ ऐनं वशो गच्छति वशी वशिनां भवति य एवं वेद । ९
६९ यदेनमाह व्रात्य यथा ते निकामस् तथास्त्विति निकाममेव तेनावरुन्धे । १०
७० ऐनं निकामो गच्छति निकामे निकामस्य भवति य एवं वेद । ११

सूक्त १२ । व्रात्य अतिथि

७१ तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य उद्धृतेष्वग्निष्वधिश्रितेऽग्निहोत्रेऽतिथिर्गृहानागच्छेत् । १
७२ स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्यातिसृज होष्यामीति । २
७३ स चातिसृजेज्जुहुयान् न चातिसृजेन् न जुहुयात् । ३
७४ स य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति । ४
७५ प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम् । ५
७६ न देवेष्वा वृश्चते हुतमस्य भवति । ६
७७ पर्यस्यास्मिँल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति । ७
७८ अथ य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति । ८
७९ न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् । ९
८० आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति । १०
४०८१ नास्यास्मिँल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति । ११

४०५४ निश्चय ही यह पृथिवी बृहस्पति (बड़ी रक्षक) और द्यौ ही इन्द्र है । ६
५५ यह अग्नि निश्चय ही ब्रह्म (बड़ी) और यह आदित्य क्षत्र है । ७
५६-५७ जो पृथिवी को बृहस्पति, अग्नि को ब्रह्म जानता वह ब्रह्म को पाता, ब्रह्मवर्चस्वी होता है। ८-९
५८-५९ जो आदित्य को क्षत्र, और द्यौ को इन्द्र जानता है वह इन्द्र-शक्ति को पाता और इन्द्र-शक्ति-युक्त हो जाता है । १०-११

सूक्त ११ । व्रात्य अतिथि

६० अतः जिसके घरों में ऐसा विद्वान् व्रात्य अतिथि आ जाये तो— । १
६१ स्वयं उठकर इसके पास जाकर कहे— १- हे व्रात्य ! कहाँ रहे ? २- जल (लीजिए) । ३- ये (भोजन आपको) तृप्त करें । ४- जैसा आपको प्रिय, ५- इच्छा, ६- कामना हो, वैसा हो । २
६२ जो इससे कहता है कि हे व्रात्य! कहाँ रहे ?, इससे वह देवयान-मार्गों को ही प्रस्तुत करता है । ३
६३ ,, जल लीजिए, ,, जल ,, । ४
६४ ,, आपको तृप्त करें, ,, प्राण-जीवन को बढ़ा ,, । ५
६५ ,, आप का प्रिय हो, ,, प्यारी वस्तु को ही देता है । ६
६६ जो ऐसा जानता-करता उसे प्यारी वस्तु मिल जाती और प्यारे का प्यारा बन जाता है । ७
६७-७० जो इससे कहता है कि हे व्रात्य ! जैसी आपकी इच्छा और विशेष कामना हो वैसा हो, इनसे वह उसकी इच्छा-विशेष कामना की ही पूर्ति करता है। जो ऐसा जानता-करता है वह इच्छा-विशेष कामना को पूरी करता है, अधिकारियों का अधिकारी होता, और कामना की पूर्ति में यत्नवान् हो जाता है । ८-११

सूक्त १२ । व्रात्य अतिथि

७१-७२ तो जिसके घरों में ऐसा विद्वान् व्रात्य वेदि पर अग्नियों के ले आने और अग्निहोत्र के रख देने पर आये तो स्वयं उठकर पास जाकर बोले- व्रात्य ! अनुमति दें, मैं यज्ञ करूँगा । -२
७३ और यदि अनुमति दे तो करे, न दे, तो न करे । ३
७४-७७ जो ऐसे विद्वान् व्रात्य से अनुमत यज्ञ करता, वह पितृ-यान और देव-यान मार्ग को जानता; विद्वानों में अपने को दोषी नहीं पाता, उसका यज्ञ हो जाता, उस का स्थान इस लोक में सदा और शेष बना रहता है । ४-७
४०७८-८१ और जो ऐसे विद्वान् व्रात्य से अननुमत यज्ञ करता है, वह पितृ-यान देव-यान पथों को नहीं जानता; वह विद्वानों से अपने को अलग कर लेता है; इस लोक में उसका स्थान शेष नहीं बचता । ८-११

सूक्त १३ । व्रात्य अतिथि

४०८२ तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति । १
८३ ये पृथिव्यां पुण्या लोकास् तानेव तेनावरुन्धे । २
८४ तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति । ३
८५ येऽन्तरिक्षे पुण्या लोकास् तानेव तेनाव रुन्धे । ४
८६ तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्यस् तृतीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति । ५
८७ ये दिवि पुण्या लोकास् तानेव तेनाव रुन्धे । ६
८८ तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्यश् चतुर्थीं रात्रिमतिथिर्गृहे वसति । ७
८९ ये पुण्यानां पुण्या लोकास् तानेव तेनाव रुन्धे । ८
९० तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽपरिमिता रात्रीरतिथिर्गृहे वसति । ९
९१ य एवापरिमिताः पुण्या लोकास् तानेव तेनाव रुन्धे १०
९२ अथ यस्याव्रात्यो व्रात्यब्रुवो नाम बिभ्रत्यतिथिर्गृहानागच्छेत् । ११
९३ कर्षेदेनं न चैनङ्कर्षेत् । १२
९४ अस्यै देवताया उदकं याचामीमां देवतां वासय इमामिमां देवतांपरि वेवे-ष्मीत्येनम्परि वेविष्यात् । १३
९५ तस्यामेवास्य तद्देवतायां हुतम् भवति य एवं वेद । १४

सूक्त १४ । व्रात्य

९६ स यत् प्राचीं दिशमनु व्यचलन्मारुतं शर्धो भूत्वानुव्यचलन्मन अन्नादङ्कृत्वा । १
९७ मनसान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद । २
९८ स यद्दक्षिणां दिशमनुव्यचलदिन्द्रो भूत्वानुव्यचलद् बलमन्नादङ्कृत्वा । ३
४०९९ बलेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद । ४
४१०० स यत्प्रतीचीं दिशमनुव्यचलद् वरुणो राजा भूत्वानुव्यचलदपोऽन्नादीः कृत्वा । ५
४१०१ अद्भिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद । ६
२ स यदुदीचीं दिशमनु व्यचलत् सोमो राजा भूत्वानुव्यचलत् सप्तर्षिभिर्हुत आहुतिमन्नादीङ्कृत्वा । ७
३ आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद । ८
४१०४ स यद्ध्रुवां दिशमनुव्यचलद् विष्णुर्भूत्वानुव्यचलत् विराजमन्नादीं कृत्वा । ९

सूक्त १३ । व्रात्य अतिथि

४०८२-८३ ऐसा विद्वान् व्रात्य अतिथि जिसके घर में यदि—

एक रात रहता है तो उससे वह जो पृथिवी पर पुण्य दर्शनीय पदार्थ हैं उन्हें पाता है। १-२

८४-८५ दो	,,	अन्तरिक्ष पर	,,	। ३-४
८६-८७ तीन	,,	द्यौ पर	,,	। ५-६
८८-८९ चार	,,	पुण्यों के पुण्य लोक	,,	। ७-८
९०-९१ अपरिमित	,,	अपरिमित ;,	,,	। ९-१०

९२-९३ तथा जो व्रात्य न होकर अपने को व्रात्य बताने वाला केवल नामधारी अतिथि घर-वालों के पास आ जाये तो इसे बाहर खींचे (कष्ट दे)। और न भी खींचे (कष्ट दे)। ११-१२

९४ मैं इस देवता (अतिथि) के लिए जल चाहता हूं, निवास देता हूं; भोजन देता हूं यह समझ कर उसे जल-निवास-भोजन दे दे [शेष ३ नहीं]। १३

९५ जो ऐसा जानता करता है उसका दिया पदार्थ उसी देवता में दी गयी आहुति रूप होता है। १४

सूक्त १४ । व्रात्य [प्राण-अग्निहोत्र का करने वाला]

९६ वह जो पूर्व दिशा को चलता है तो वायु-बल होकर मन को अन्न-भक्षक बना कर चलता है। १

९७ जो ऐसा जानता-करता है वह अन्न-भक्षक मन से अन्न को खाता है। २

९८ वह जो दक्षिण दिशा को चलता है तो इन्द्र होकर बल को अन्न-भक्षक बना कर चलता है। ३

९९ जो ऐसा जानता-करता है वह अन्न-भक्षक बल से अन्न को खाता है। ४

४१०० वह जो पश्चिम दिशा को चलता है तो राजा-वरुण बनकर जल को अन्न-भक्षक करके चलता है।५

१ जो ऐसा जानता है वह अन्न-भक्षक जल से अन्न को खाता है। ६

२ वह यदि उत्तर दिशा को चलता है तो राजा सोम होकर ७ ऋषियों (तारागण और शरीरस्थ ज्ञानेन्द्रिय ५-मन-बुद्धि) से दी गयी आहुति (शक्ति) को अन्न-भक्षक बना कर चलता है। ७

३ जो इस प्रकार जानता है वह अन्न-भक्षक आहुति से अन्न को खाता है। ८

४१०४ वह यदि नीचे की दिशा के अनुकूल चलता है तो विष्णु (पार्थिव धूलि-सूर्य-यज्ञ) होकर विराट् (प्रकृति) को अन्न-भक्षक बना कर चलता है। ९

४१०५ विराजान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद । १०

६ स यत् पशूननुव्यचलद् रुद्रो भूत्वानुव्यचलदोषधीरन्नादीः कृत्वा । ११

७ ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद । १२

८ स यत् पितॄननुव्यचलद् यमो राजा भूत्वानुव्यचलत् स्वधाकारमन्नादङ्कृत्वा । १३

९ स्वधाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद । १४

१० स यन्मनुष्याननु व्यचलदग्निर्भूत्वानुव्यचलत् स्वाहाकारमन्नादङ्कृत्वा । १५

११ स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद । १६

१२ स यदूर्ध्वां दिशमनुव्यचलद् बृहस्पतिर्भूत्वानुव्यचलद् वषट्कारमन्नादङ्कृत्वा । १७

१३ वषट्कारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद । १८

१४ स यद्देवाननु व्यचलदीशानो भूत्वानुव्यचलन् मन्युमन्नादं कृत्वा । १९

१५ मन्युनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद । २०

१६ स यत् प्रजा अनुव्यचलत् प्रजापतिर्भूत्वानुव्यचलत् प्राणमन्नादं कृत्वा । २१

१७ प्राणेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद । २२

१८ स यत् सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् परमेष्ठी भूत्वानुव्यचलद् ब्रह्मान्नादं कृत्वा । २३

१९ ब्रह्मणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद । २४

सूक्त १५ व्रात्य

४१२० तस्य व्रात्यस्य । १

२१ सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः । २

२२ तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमः प्राणः ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः । ३

२३ ,, ,, द्वितीयः ,, प्रौढो नामासौ स आदित्यः । ४

२४ ,, ,, तृतीयः ,, अभ्यूढो ,, चन्द्रमाः । ५

२५ ,, ,, चतुर्थः , विभूर्नामायं स पवमानः । ६

२६ ,, ,, पञ्चमः ,, योनिर्नाम ता इमा आपः । ७

२७ ,, ,, षष्ठः ,, प्रियो नाम त इमे पशवः । ८

२८ ,, ,, सप्तमः ,, अपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः । ९

सूक्त १६ । व्रात्य

२९ तस्य व्रात्यस्य । यो अस्य प्रथमो अपानः सा पौर्णमासी । १

४१३० ,, ,, द्वितीयो ,, अष्टका । २

४१०५ जो ऐसा जानता-करता है वह अन्न-भक्षिका विशेष दीप्ति के द्वारा अन्न खाता है। १०

६ वह यदि पशुओं को लक्ष्य करके चलता है तो रुद्र (वैद्य-प्राण) होकर औषधियों (प्राणायाम) को अन्न-भक्षक बनाकर पीछे चलता है। ११

७. जो ऐसा जानता-करता है वह अन्न-भक्षक औषधियों के साथ अन्न खाता है। १२

८ वह जब पितरों (माता-पितादि और ऋतुओं) को लक्ष्य करके चलता है तब संयमी सूर्य-समान होकर स्वधा (जीवन-शक्ति) को अन्न-भक्षक बना कर उसके अनुकूल चलता है। १३

९ जो ऐसा जानता है वह अन्न-भक्षक स्वधाकार के द्वारा अन्न का खाता है। १४

१० वह जब मनुष्यों के पीछे चलता है तो अग्नि होकर स्वाहाकार को अन्न-भक्षक करके चलता है। १५

११ जो ऐसा जानता है वह अन्न-भक्षक स्वाहाकार से अन्न को खाता है। १६

१२-१३ वह जब ऊपरि दिशा को लक्ष्य कर चलता है तो बृहस्पति (आचार्य) होकर वषट्कार (दान और पाप-नाशक कर्म) को अन्न-भक्षक बनाकर चलता है। जो ऐसा जानता-करता है वह अन्न-भक्षक वषट्कार के द्वारा अन्न खाता है। १७-१८

१४-१५ वह जब विद्वानों के अनुकूल चलता है शासक होकर मन्यु का अन्न-भक्षक बना कर चलता है। जो इस प्रकार जानता है वह अन्न-भक्षी मन्यु-द्वारा अन्न को खाता है। १९-२०

१६-१७ जब वह प्रजा (वीर्य) को लक्ष्य कर चलता है तो प्रजापति होकर प्राण को अन्न-भक्षी बनाकर चलता है। यह जानने वाला प्राण से अन्न को खाता है। २१-२२

१८-१९ जब वह व्रात्य सब अंगों को चलाता है तो परमेष्ठी सम्राट् होकर ब्रह्म (वेद) को अन्नाद बनाकर चलता है। इसका ज्ञाता अन्नाद वेद से अन्न को खाता है। २३-२४

सूक्त १५ । व्रात्य

२०-२१ उस व्रात्य ईश्वर के ७ प्राण ७ अपान ७ व्यान के समान शक्तियाँ हैं। १-२

२२ उस व्रात्य का। जो इनका पहला प्राण ऊर्ध्व नाम है वह यह अग्नि है। ३

२३	"	दूसरा	प्रौढ	"	आदित्य। ४
२४	"	तीसरा	अभ्यूढ	"	चन्द्रमा। ५
२५	"	चौथा	विभूः	"	वायु। ६
२६	"	पाँचवाँ	* योनि	"	जल। ७
२७	"	षष्ठ	प्रिय	"	पशु। ८
२८	"	सप्तम	अपरिमित	"	प्रजा। ९

सूक्त १६ । व्रात्य

२९ उस व्रात्य का। जो इसका पहला अपान है वह पौर्णमासी है। १

४१३०	"	दूसरा	"	अष्टका (अष्टमी इष्टि) है। २

---

* यु मिश्रणामिश्रणयोः धातु से बने योनि शब्द का अर्थ मिलाने-अलग करने वाला है। जल दोनों काम करने से योनि है।

४१३१ तस्य व्रात्यस्य । यो अस्य तृतीयो अपानः सा अमावास्या । ३
३२ ,, चतुर्थो ,, श्रद्धा । ४
३३ ,, पञ्चमो ,, दीक्षा । ५
३४ ,, षष्ठो ,, स यज्ञः । ६
३५ ,, सप्तमो ,, ता इमा दक्षिणाः । ७

सूक्त १७ । व्रात्य के ७ व्यान

३६ तस्य व्रात्यस्य । यो अस्य प्रथमो व्यानः सेयं भूमिः । १
३७ ,, द्वितीयो ,, तदन्तरिक्षम् । २
३८ ,, तृतीयो ,, सा द्यौः । ३
३९ ,, चतुर्थो ,, तानि नक्षत्राणि । ४
४० ,, पञ्चमो ,, ऋतवः । ५
४१ ,, षष्ठो ,, त आर्तवाः । ६
४२ ,, सप्तमो ,, स संवत्सरः । ७
४३ तस्य व्रात्यस्य। समानमर्थं परियन्ति देवाः संवत्सरं वा एतदृतवोनु परियन्ति व्रात्यंच।८
४४ ,, यदादित्यमभि संविशन्ति अमावास्या चैव तत् पौर्ण मासी च । ९
४५ ,, । ऐकं तदेषाममृतत् वमित्याहुतिरेव । १०

सूक्त १८ । व्रात्य

४६ तस्य व्रात्यस्य । १
४७ यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित् यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः । २
४८ योस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सो अग्निर्योस्य सव् यः कर्णोयं स पवमानः । ३
४९ अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले संवत्सरः शिरः । ४
४१५० अह्ना प्रत्यङ् व्रात्यो रात्र्या प्राङ् नमो व्रात् याय । ॥ ५

यह सूक्त १८, अनुवाक २, प्रपाठक १०, और काण्ड १५ पूर्ण समाप्त हुआ।

४।३१ उस व्रात्य का। जो इसका तीसरा अपान (दोष-नाशक बल) है वह अमावास्या इष्टि है। ३

३२	,,	चौथा	,,	श्रद्धा	।४
३३	,,	पाँचवाँ	,,	दीक्षा	।५
३४	;;	छठा	;;	यज्ञ	।६
३५	,,	सातवाँ	,,	ये दक्षिणाएँ हैं	।७

सूक्त १७। व्रात्य

३६ उस व्रात्य का। जो इसका पहला व्यान है वह यह भूमि है। १

३७	,,	द्वितीय	,,	अन्तरिक्ष	।२
३८	,,	तीसरा	,,	द्यौ	।३
३९	,,	चौथा	,,	नक्षत्र	।४
४०	,,	पाँचवाँ	,,	ऋतुएँ	।५
४१	;;	छठा	;;	आर्तव (मास)	।६
४२	,,	सातवाँ	,,	संवत्सर	।७

४३ देव समान-उद्देश्य का लक्ष्य कर उस व्रात्य की परिक्रमा करते हैं जैसे ऋतुएँ संवत्सर की। ८

४४ जब वे किरणें आदित्य में प्रविष्ट होती हैं तो अमावास्या और पौर्णमासी को हो। ९

४५ उस व्रात्य का एक ही प्रयोजन इन का अमरपन है; यह आहुति ही है। १०

सूक्त १८। व्रात्य के अङ्गों का रूपकालंकार।

४६-४७ उस व्रात्य का। जो दक्षिणचक्षु है वह आदित्य; और वाम चक्षु चन्द्रमा है। १-२

४८ ,, कान अग्नि और वाम वायु है। ३

४९ ,, के दिन-रात दो नासिका-छिद्र, दिति-अदिति (सृष्टि-प्रलय, उत्तरायण-दक्षिणायन) सिर के दो कपाल; और संवत्सर सिर है। ४

४।५० दिन में व्रात्य पश्चिम और रात में सामने पूर्व में स्थित रहता है। उस व्रात्य के लिए नमस्कार हो। ५

यह सूक्त १८, अनुवाक २, प्रपाठक ३० और काण्ड १५ पूर्ण समाप्त हुआ।

अनुवादक— आचार्य वीरेन्द्र सरस्वती, अध्यक्ष विश्ववेदपरिषद्, सी ८१७ महानगरम्, लक्ष्मणपुरम्।

अथर्ववेद कांड १६ सूची

प्रपा.	अनुवाक	सूक्त	मन्त्र	ऋषि	देवता	छन्द स्वर	महर्षि दयानन्द के अनुसार विषय
३१	१	१	१३	अथर्वा	प्रजापति	गद्य	अतिसृष्टो अपां वृषभ इत्यादि कल्याणेच्छाकरणादि
		२-३	६,६	,,	ब्रह्म,वाक्,आदित्य		मूर्धाहं रयीणां समानानां भूयासमिति प्रार्थना प०
		४	७	,,	,,		
	२	५	१०	यम	दुःस्वप्न-नाशन		विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य
		६	११	,,	,,		करणः इत्यादि दुष्ट-स्वप्न-निवारणादि-प्रार्थना
		७-८-९	१२-३३-४	,,	;;		सर्वेभ्यः पाशेभ्यो मा मोचि इत्यादि पदार्थ विद्या।
योग १	२	९	१०३				पहले के ४१५० मिलाकर पूर्ण योग ४२५३

अथर्ववेद काण्ड १६

प्रपाठक ३१ अनुवाक १

विषय— अतिसृष्टो अपां वृषभः इत्यादि कल्याणेच्छा करणादि मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानाना भूयासमिति प्रार्थना पदार्थ विद्या ।

सूक्त १ । प्रजापति

४१५१ अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः । १

५२ रुजन परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् । २

५३ म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस् तनूदूषिः । ३

५४ इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि । ७

५५ तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । ५

४१५१ जल-वर्षक सूर्य, और दिव्य अग्नियाँ रची गयीं । पानी-रक्त-वीर्य के वर्षक रोग हैजा-दस्त-रक्तस्राव-स्वप्नदोष और कामी छोड़े, मादक नशीली अग्नियाँ(रोग और नशे)भी छोड़ दिये ।१ २

५२ (रोग)शरीर को तोड़ता, सब ओर सन्तप्त करता, मारता और नाश करता हुआ आता है । २ ३

५३ मादक आगें चंचल करनेवाली, धन-नाशक; खोदने वाली, दाहक, आत्मा-शरीर-दूषक हैं । ३

५४ इसे मैं छोड़ दूं, इससे न चिपटूं । ४

४.५५ अतः उसे हम छोड़ते हैं जो हमसे द्वेष करता और जिससे हम द्वेष करते हैं । ५

४१५६ अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि । ६
५७ योऽस्वग्निरति तं सृजामि म्रोकं खनिं तनूदूषिम् । ७
५८ यो व आपो ऽग्निराविवेश स एष यद् वो घोरं तदेतत् । ८
५९ इन्द्रस्य च इन्द्रियेणाभिषिञ्चेत् ॥ ९
६० अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् । १०
६१ प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुष्वप्न्यं वहन्तु । ११
६२ शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे । १२
६३ शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे मयि क्षत्रं वर्च आ धत्त देवीः । १३

सूक्त २ । वाक्

६४ निर्दुरर्मण्यः ऊर्जा मधुमती वाक् । १
६५-६६ मधुमती स्थ मधुमतीं वाचमुदेयम् । २ । उपहूतो मे गोप उपहूतो गोपीथः । ३
६७ सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् । ४
६८ सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः । ५
६९ ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय । ६

सूक्त ३ । प्रजापति

७० मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् । १
७१ रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम् । २
७२ उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां धर्ता च मा धरुणश्च मा हासिष्टाम् । ३
७३ विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टामार्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम् ।४
७४ बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः । ५
७५ असन्तापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा । ६

सूक्त ४ । प्रजापति

७६ नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् । १
७७ स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा । २
७८ मा मां प्राणो हासीन्मो अपानो विहाय परा गात् । ३
७९ सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद्यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ।४
८० प्राणापानौ मा मा हासिष्टं मा जने प्र मेषि । ५
८१ स्वस्त्यद्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय । ६
४१८२ शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ७।

४१५६ (हे वीर्य !) तू सब आप: में अग्र है, तुम्हें हृदय-समुद्र की ओर भेजता हूं। ६
५७ जो आप : (जल-रस-रक्त-वीर्य) में मन-चंचल-कारी, खोदनेवाली, शरीर-दूषक अग्नि है उसे छोड़ता-हटाता हूं । ७
५८ हे आप : ! तुम में जो आग घुस गयी है वह तुम्हें अशुभ-भयानक है । ८
५९ उसे इन्द्र (आत्मा) की इन्द्रिय-शक्ति से सींचे (शान्त करे)। ९
६० पाप-रहित शुद्ध नीरोग आप: (जल और आप्त जन) हमसे पाप-रोग हटायें। १०
६१ वे हमसे पाप और बुरे स्वप्नों को बहा (हटा) दें । ११
६२ हे आप: ! मुझको कल्याण-कारी दृष्टि से देखो; अपने कल्याणकारी शरीर (धारा और हाथों) से मेरी त्वचा का स्पर्श करो। (जल-हस्त-स्पर्श--चिकित्सा की जाये)। १२
६३ हम आप: (जल-रस-रक्त-वीर्य) में स्थित कल्याणकारी अग्नियों का आह्वान करें, हे दिव्य शक्तियो ! मुझ में क्षात्र-बल, तेज और दिव्य गुणों को धारण कराओ। १३

सूक्त २ । वाणी

६४ दुष्ट अमेणियाँ (भोजन, प्रवृत्ति, चक्ष-रोग) दूर हों, अन्न-जल से वाणी मधुर हो । १
६५ (हे आप: !) तुम मधु वाली हो, मैं मधुर वाणी बोला करूँ । २
६६ मैं वाणी-रक्षक (वैद्य-आचार्य) और परमेश्वर को पास में आह्वान करूँ। ३
६७ मेरे कान अच्छी-भद्र वाणी सुनने वाले हों, मैं भद्र प्रशंसा को सुनूँ । ४
६८ उत्तम-सूक्ष्म श्रवण-शक्ति, वेद-शास्त्र; सुपर्ण(सूर्य-गरुड़)की सी अचूक ज्योति मुझे न छोड़ें । ५
६९ हे ईश्वर ! तू ऋषियों का बिछौना है ,उस दिव्य बिछौने के लिए नमस्कार हो। अन्य अर्थ- इन्द्रियों का आसन मन है उसका हम आदर करें। तीसरा अर्थ- दृष्टियों का विस्तारक पत्थर (चश्मा-टेलेस्कोप-माइक्रास्कोप) है, उसका ठीक प्रयोग हो । ६

सूक्त ३ । प्रजापति

७० मैं ऐश्वर्यों का और समानों का शिरोमणि बनूं । १
७१ रोग-नाशक बल-ज्ञान-शिरोमणिपन-विशेष पोषक बस मुझको न छोड़ें । २
७२ अन्न-अग्नि-पात्र-चमचा, धारक (ईश्वर) -कोश-धारित गुण मुझे न छोड़ें । ३
७३ बादल-बिजली, मल-मूत्र-त्याग-शक्ति, विमोच-सरस वाणी, वायु-दान-प्राण मुझे न त्यागें । ४
७४ बड़ा रक्षक स्वामी मेरी आत्मा, मनुष्यों को ज्ञान-दाता प्रसिद्ध ईश्वर हृदय को प्रिय हो । ५
७५ मेरा हृदय सन्ताप-रहित, गति विस्तृत, विविप हो ,मैं गुणों से समुद्र-समान बनूं । ६

सूक्त ४ । प्रजापति

७६ मैं ऐश्वर्यों और समान जनों का केन्द्र बनूं । १
७७ हे परमेश्वर ! आप सर्वव्यापक, जगदुत्पादक, और मर्त्यों में अमर हैं । २
७८ मुझको प्राण न छोड़े, अपान मुझे छोड़कर अलग न जाये । ३
७९ सूर्य दिन से; अग्नि पृथिवी से, वायु अन्तरिक्ष; राजा मनुष्यों से, विद्या कष्टों से बचायें । ४
८० प्राण-अपान मुझे न त्यागें; न मैं जनता में मेरा नाश न हो । ५
८१ उषाएं-रातें आप: संसार-गण सदा हमें कल्याण-कारी हों । ६
४१८२ इन्द्रियाँ-गोएं बलवती हों , पशु मेरे पास सदा रहें; मित्र-वरुण प्राणापान अग्नि बल दें। ७

अनुवाक २

सूक्त ५। स्वप्न

४१८३ विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । १

८४-८५.अन्तकोऽसिमृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा संविद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात्पाहि । २-३

८६ विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । [शेष २-३के तुल्य] ४

८७ „ अभूत्याः „ । „ ५

८८ „ निर्भूत्याः „ । „ ६

८९ „ पराभूत्याः „ । „ ७

९०-९२ „ देवजामीनां „ । „ ८-१०

सूक्त ६। प्रजापति दुस्वप्न-नाशन

९३ अजैष्माद्यासनामाद्याभूमानागसो वयम् । १

९४ उषो यस्माद् दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु । २

९५ द्विषते तत् परा वह शपते तत् परा वह । ३

९६ यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तस्मा एनद् गमयामः । ४

९७ उषा देवी वाचा संविदाना वाग्देव्युषसा संविदाना । ५

९८ उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदाना वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदानः । ६

९९ तेऽमुष्मै परा वहन्त्वरायान् दुर्णाम्नः सदान्वाः । ७

४२०० कुम्भीकाः दूषीकाः पीयकान् । ८

४२०१ जाग्रद्दुष्वप्न्यं स्वप्ने दुष्वप्न्यम् । ९

२ अनागमिष्यतो वरानवित्तेः सङ्कल्पानमुच्या द्रुहः पाशान् । १०

३ तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु वध्रिर्यथासद्विथुरो न साधुः । ११

सूक्त ७। प्रजापति दुस्वप्न-नाशन

४ तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि निर्भूत्यैनम् विध्यामि पराभूत्यैनं विध्यामि
ग्राह्यैनम् विध्यामि तमसैनम् विध्यामि । १

५ देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभि प्रेष्यामि । २

६ वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि । ३

७ एवानेवाव सा गरत् । ४

४२०८ योऽस्मान्द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु । ५

अनुवाक २

विषय— विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करण इत्यादि दुष्ट-स्वप्न-निवारणादि प्रार्थना, सर्वेभ्यः पाशेभ्यो मा मोचि इत्यादि पदार्थविद्या। (महर्षि दयानन्द सरस्वती)

सूक्त ५। प्रजापति दुस्वप्न-नाशन

४१८३ हे स्वप्न ! हम तेरी उत्पत्ति को जानें, तू १-ग्राही (निगृह-चिन्ता-कब्ज-गठिया) का पुत्र (परिणाम), और यम (संयम-मृत्यु) का कर्म है। १

८४-८५ तू अन्त करने वाली मौत है। हे सुस्वप्न ! तुझे हम जानें, हमें दुस्वप्न से बचा। २-३

[टि. ये तीन मन्त्र आगे ४-६ के साथ पुनः आये हैं, केवल ग्राही के स्थान पर कारण बदला है।]

८६ तू २- निर्ऋति (अगति-कष्ट-आपत्ति) का पुत्र है (शेष १-३ के समान है)। ४

८७ तू ३- अभूति (धन-त्याग-दरिद्रता) ,, ,, । ५

८८ तू ४- निर्भूति (सम्पत्ति-नाश) ,, ,, । ६

८९ तू ५- पराभूति (विषय-पराजय-अपमान) ,, ,, । ७

९०-९२ तू ६- देव-मनो-वृत्तियों और देव-बन्धु असुरों ,, ,, । ८

[पैप्पलाद-संहिता १७-२४ में स्वप्न को अभूति-पाप-वरुण-वरुणानी-साम-रात्रि-गन्धर्व-अप्सरा-का पुत्र बताया है।]

सूक्त ६। स्वप्न

९३ हम सदा जीतें, सदा शक्ति-संचय करें, सदा निष्पाप हों। १

९४ हे उषा ! जिस दुस्वप्न से हम डरें वह दूर हो। २

९५ उसे द्वेषी और शापी के लिए दूर ले जा। ३

९६ जिस से हम द्वेष करते और जो हम से द्वेष करता है उसे यह स्वप्न भेज दें। ४

९७-९९ जो दिव्य उषा वेद-वाणी से और दिव्य वाणी उषा से, उपस्पति सूर्य-ईश्वर वाचस्पति उपासक-आचार्य से सङ्गत हों वे इस के लिए कंजूसी-दुर्वचन-सदा रोना-चिल्लाना दूर करें। ५-७

४२००-४२०१ वे बुरी भयानक-दूषक-हिंसक जागते-सोते के दुस्वप्नों को हटायें। ८-९

२ वे अपूर्ण इच्छाओं, धन-नाश के संकल्पों और द्रोह के पाशों को हटायें। १०

३ हे परमेश्वर ! प्राकृतिक शक्तियाँ उस को यह दुस्वप्न दें जिससे वह दुष्ट व्यथित व्यर्थ हो जाये। ११

सूक्त ७। प्रजापति। दुस्वप्न-नाशन

४ अतः मैं (परमेश्वर) इस दुष्ट को अभूति-निर्भूति-पराभूति-ग्राही-तमः से बाँधता हूं। १

५ इसे मैं देवों की घोर-क्रूर आज्ञाओं से सन्मार्ग के लिए प्रेरित करता हूं। २

६ इसे मैं वैश्वानर (सब नर-हितकारी राजा) की दो दाढ़ों (पुलिस-सेना) के मध्य रखता हूं। ३

७ इस या अन्य व्यवस्था से वह इसे निगल जाये। ४

४२०८ जो हमसे या जिससे हम द्वेष करें उसकी आत्मा अपने से ही द्वेष करे। ५

४२०६ निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद् भजाम । ६

१० सुयामंश्चाक्षुष । ७ ॥ ११ । इदमहमामुष्यायणेऽमुष्याः पुत्रो दुष्वप्न्यं मृजे । ८

१२ यददो अदो अभ्यगच्छन् यद् दोषा यत् पूर्वां रात्रिम् । ९

१३-१४ यज्जाग्रद् यत्सुप्तो यद्दिवा यन्नक्तम् ।१०। यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये ११

१५-१६ तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि।१२।स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु ।१३

सूक्त ८ प्रजापति । दुःस्वप्न-नाशन

१७ जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । १

१८ तस्मादमुं निर्भजामो ऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्र मसौ यः । २

१९ स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि । ३

२० तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि । ४

२१ जित... [मन्त्र १-२ के समान] । स निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि तस्येदं ...। ५

२२ जित... [शेष १-२ वत्] सोभूत्याः पाशान्मा मोचि... [शेष ४ वत्] पादयामि । ६

२३	,,	,,	स निर्भूत्याः	,,	। ७
२४	,,	,,	पराभूत्याः	,,	। ८
२५	,,	,,	देवजामीनाम्	,,	। ९
२६	,,	,,	बृहस्पतेः	,,	। १०
२७	,,	,,	प्रजापतेः	,,	। ११
२८	,,	,,	ऋषीणां	,,	। १२
२९	,,	,,	आर्षेयाणां	,,	। १३
३०	,,	,,	सोऽङ्गिरसां	,,	। १४
३१	,,	,,	स आङ्गिरसानां	,,	। १५
३२	,,	,,	सोऽथर्वणां	,,	। १६
३३	,,	,,	स आथर्वणां	,,	। १७
३४	,,	,,	वनस्पतीनां	,,	। १८
३५	,,	,,	वानस्पत्यानां	,,	। १९
३६	,,	,,	ऋतूनां	,,	। २०
३७	,,	,,	आर्तवानां	,,	। २१
३८	,,	,,	मासानां	,,	। २२

,,

४२०९ हम द्वेषी को द्यौ-पृथिवी-अन्तरिक्ष से अलग (बन्दी) कर दें । ६

१०-११ हे नियन्ता द्रष्टा(ईश्वर)! मैं(न्यायाधीश) अमुक गोत्र-पिता-माता के पुत्र का दुस्वप्न शुद्ध करूँ।

१२-१४ जो बुरा स्वप्न उस-उस समय, रात-प्रात: से पहले रात में आते, जो जागते-सोते-दिन-रात-दिन-दिन पाता हूं उससे इसे छुड़ाता हूं। ७-११

१५-१६ हे रोगी ! उन सपने को मार, उनसे हृष्ट हो, उनकी पुष्ठ-भूमियों को नष्ट कर। वह न जिये, निष्प्राण हो जाये। १२-१३

सूक्त ८। दुस्वप्न-नाशन

१७ ये १० पदार्थ हमारे हों— १- जीत; २- विकास, ३- ऋत, ४-तेज; ५- ब्रह्म (वेदज्ञान-अन्न)' ६- स्व: (सुख-प्रकाश), ७- यज्ञ, ८- पशु; ९- पूजा; १०- वीर। [यह संकल्प है।]

१८ अत: उस (बुरे सपने, दुष्ट)को हटायें जो अमुक गोत्र-पुरुष-स्त्री का पुत्र है। २

१९ वह १- ग्राही (जकड़न-चिन्ता) के पाश (फन्दे) से न छूटे। ३

२० उसके इन दीप्ति-तेज-प्राण-आयु को मैं घेर लूँ; इस नीच-गति वाले को पैरों-तले कर दूँ। ४

[ये १-४ मन्त्र आगे २६ मन्त्रों के साथ समान हैं केवल मन्त्र ३ का पाश-नाम भिन्न है जो २७ हैं।]

२१-३८ वह २- निर्ऋति (कष्ट-आपत्ति) ३- अभूति (धन-अभाव) ४- निर्भूति (धन-नाश) ५- पराभूति(पराजय-अपमान)६- देवजामि (देव-स्त्री-सैनिका-असुर-मूर्ख) ७- बृहस्पति (बड़े सेनापति) ८- प्रजापति (राजा) ९- ऋषियों १०- आर्षेयों (उनके विधानों) ११- अङ्गिराओं(वैद्यों) १२ आङ्गिरसों (दवाइयों) १३- अथर्वाओं (मनो-चिकित्सकों) १४ आथर्वणों (अथर्व-प्रयोगों) १५ वनस्पति (बिना फूल के शाक १६- वानस्पत्य (फूल वाले शाक-फल) १७- ऋतु १८- आर्तव (उन के अंश और समूह) और १९- मासों के पाशों से न छूटे। ५-२२

४२३९ जित०[शेष १-२ वत] सोऽर्धमासानां पाशान्मा मोचि० [शेष ४ के समान] पादयामि । २३
४० ;; ,, सोऽहोरात्रयोः ,, । २४
४१ ,, ,, सोऽह्नोः संयतोः ,, । २५
४२ ,, ,, द्यावापृथिव्योः ,, । २६
४३ ,, ,, इन्द्राग्न्योः ,, । २७
४४ ,, ,, मित्रावरुणयोः ,, । २८
४५ ,, ,, राज्ञो वरुणस्य ,, । २९
४६-४९ ,, ,, स मृत्योः पड्वीशात् ,, ॥ ३०-३३

सूक्त ९ । प्रजापति दुस्वप्न-नाशन

५० जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः । १
५१ तदग्निराह तदु सोम आह पूषा मा धात् सुकृतस्य लोके । २
५२ अगन्म स्वः स्वरगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म । ३
४२५३ वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान् भूयासं वसु मयि धेहि । ४

यह सूक्त, ९, अनुवाक २, प्रपाठक ३१ और काण्ड १६ पूर्ण समाप्त हुआ ।

—०—

४२३६ जित... (शेष १-३ के समान) । वह अर्ध-मासों के पाश से न छूटे। (शेष ४ के समान)। २३

४०	;;	मिले हुए दिन-रातों	"	। २४
४१	;;	दिन-रात	"	। २५
४२	;;	द्यावा-पृथिवी	"	। २६
४३	"	इन्द्र-अग्नि	;;	। २७
४४	"	मित्र-वरुण	"	। २८
४५	"	राजा वरुण(ईश्वर)	"	। २९
४६-४९	"	मौत की बेड़ी	"	। ३०-३३

सूक्त ९ । प्रजापति । मन्त्रोक्त अनेक देवता (विषय)

५० जीत हमारी, फल हमारा हो, शत्रु की सब सेनाओं पर अधिकार करूँ । १ (अ. १०-५-३६)

५१ अग्नि-सोम यही बताते हैं । पोषक (परमेश्वर) मुझे सुकर्मियों के लोक में रक्खे । २

५२ हम सुख-आनन्द पायें ; हम सूर्य की ज्योति से सङ्गत हों । ३

४२५३ मेरा यज्ञ अधिक सम्पत्ति-शाली होने के लिए धन-सम्पन्न हो, मैं धन की कामना करूँ, धनवान् होऊँ । हे परमेश्वर ! मुझ में धन धारण कराइये । ४

आचार्य वीरेन्द्र सरस्वती, अध्यक्ष शिक्षा वेद परिषद्, कृत अनुवाद में

यह सूक्त ९, अनुवाक २, प्रपाठक ३१ और काण्ड १६ पूर्ण समाप्त हुआ ।

—※—

अथर्व वेद कांड १७ सूची

प्रपा.	अनुवाक	सूक्त	मन्त्र	ऋषि	देवता	छन्द
३२	१	१	३०	ब्रह्मा	आदित्य	जगती अतिजगती अत्यष्टि अतिबृहती शक्वरी कृति प्रकृति बृहती अनुष्टुप् त्रिष्टुप्

अथर्व वेद काण्ड १७

प्रपाठक ३२ अनुवाक-सूक्त १

विषय— विषासहि सहमानम् इत्यादि प्रार्थनादि ईश्वरविद्या, सुत्राय मा धेहि इतीश्वरप्रार्थनादि, विष्णो ईश्वर-स्तुति, त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः इत्यादि, विराजे नमः स्वराजे नमः इत्यादि ईश्वर-स्तुतिः । (म० द० स०)

४२५४. विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् । सहमानं सहोजितं स्वर्जितङ्गोजितं संधनाजितम् । ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् ॥ १

४२५४ विशेष दमनकारी; सहनशील; अतिबली, शक्तिशाली; सदा तृप्त, सब बलों के जेता, सुख और द्यौ के विजयी, भूमि-वाणी आदि के जेता, सब धनों के विजयी, स्तुत्य-प्रसिद्ध इन्द्र (परमेश्वर-सूर्य-विद्युत्-राजा) का मैं आह्वान करूँ जिससे १. आयुष्मान् बनूँ । १

४२५५ विषा... [शेष १ के समान] इन्द्रं प्रियो देवानाम् भूयासम् ।। २
५६ ,, प्रियः प्रजानां ॥ ३
५७ ,, प्रियः पशूनां ॥ ४
५८ ,, प्रियः समानानां ॥ ५
५९ उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि । द्विषंश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधम् । तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ६
६० उदिहि...[शेष ६ के समान] यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिङ्कृधि तवेद्०।७
६१ मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्वन्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र । हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम । तवेद्० [शेष ६ के समान] ॥ ८
६२ त्वं न इन्द्र म ते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभिः । तवेद्० ,, ॥ ९
६३ त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव । आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये तवेद्० ।। १०
४२६४ त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहूतस् त्वमिन्द्र ।
त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद्० ॥ ११

४२५५-५८ विशेष...जिससे मन्त्र १ के समान) मैं २-५ देव-प्रजा-पशु-स्वजमानों का प्रिय बनूँ । २-५
५९ हे सूर्य(ईश्वर-राजा) ! उदय हो, उदय हो, ज्योति से मेरे सामने उदय हो । द्वेषी दुष्ट मेरे वश में हो, मैं उस के वश में नहीं । [आगे का अंश यहाँ से अगले १४ मन्त्रों में मन्त्र १९ तक है—] हे विष्णु (व्यापक परमेश्वर) ! तेरे ही बहुविध पराक्रम हैं । तू हमें सब रूपों वाले पशुओं और विश्व-दर्शक इन्द्रियों से पूर्ण तथा पालन कर और उत्तम धारक शक्ति तथा परम रक्षक स्थान में और निज स्वरूप मोक्ष में रख । ६ [इतना अर्थ मन्त्र १९ तक में पाठक जान लें ।]
६० हे सूर्य...जिन्हें मैं देखता या नहीं देखता इन पर मुझे सुमति कर । ७
६१ यहाँ भूमि-अन्तरिक्ष-जल-शरीर में जो पाश डालने वाले हैं वे तुझे नहीं दबा सकते । तू अशस्ति(कामक्रोधादि)छुड़ा, इस द्यौ[सहस्रार चक्र]पर चढ़, हमें सुखी कर, हम तेरी सुमति में हों । ८
६२ हे इन्द्र ! तू हमारे बड़े सौभाग्य के लिए अदम्य प्रकाशों से हमारी सब ओर रक्षा कर । ९
६३ हे इन्द्र ! तू कल्याणमयी रक्षाओं से हमें सुखद हो, प्रिय तेज वाला तू द्या के तीन भागों [सूर्य क्रान्तिवृत्तों, परमेश्वर हृदय-आज्ञा-सहस्रार चक्रों]पर स्तुत्य सोम-पानार्थ कल्याणकारी हो ।१०
६४ हे इन्द्र ! तू विश्व-जयी-सर्वज्ञ-बहुत नामों से पुकारा जाने वाला है; यह उत्तम वेद-ज्ञान हमें दे; हमें सुखी कर, हम तेरी सुमति में रहें । ११
४२६५ हे इन्द्र ! तू द्यौ-पृथिवी पर अदम्य है, अन्तरिक्ष में वे वैज्ञानिक तेरी महिमा नहीं जान पाते, अदम्य वेदज्ञान से बढ़ता हुआ तू द्या में रहकर सुख दे । १२

४२६५ अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न ते आपुर्महिमानमन्तरिक्षे ।
अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षञ्छर्म यच्छ तवेद्० ॥ १२
६६ या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि ।
ययेन्द्र तन्वान्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा शर्म यच्छ तवेद्० ॥ १३
६७ त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं निषेदुरृषयो नाधमानास् तवेद्० ॥ १४
६८ त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद्० ॥ १५
६९ त्वं रक्षसे प्रदिशस् चतस्रस् त्वं शोचिषा नभसी वि भासि ।
त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस् तवेद्० ॥ १६
७० पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वाङशस्तिमेषि सुदिने वाधमानस्तवेद्० ॥ १७
७१ त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः।तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतः॥१८
७२ असति सत्प्रतिष्ठितं सति भूतंप्रतिष्ठितम्।भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवे०१९
७३ शुक्रोऽसि भ्राजोसि । स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् ॥ २०
७४. रुचिरसि रोचोसि । स यथा त्वं रुच्या रोचोस्येवाहम् पशुभिश्च ब्राह्मण-
वर्चसेन च रुचिषीय ॥ २१
७५ उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः । विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥ २२
७६. अस्तंयते नमोस्तमेष्यते नमोस्तमिताय नमः।... ;, ॥ २३
७७ उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह।सपत्नान्मह्यं रन्धयन्मा चाहं द्विषते रधं तवे०॥२
७८ आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्राति पारय ॥ २५
७९ सूर्य नावमारुक्षः , । रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्राति पारय ॥ २६
८० प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश् चरेयम् ॥ २७
८१ परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय ॥ २८
८२ ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेहं सलिलेन वाचः ॥ २९
८३ अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान् ।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ॥ ३०

यह प्रपाठक ३२, अनुवाक-सूक्त १, काण्ड १७ पूर्ण समाप्त हुआ ।

४२६६ हे इन्द्र (परमेश्वर और सूर्य) ! जो तेरा विस्तार और उपकार जल-पृथिवी-अग्नि के अन्दर, सुखद वायु में है, जिससे तू अन्तरिक्ष में व्यापक है उस से हमें सुखद दे। १३
६७ हे इन्द्र ! तुझे ज्ञान से बढ़ाते हुए मन्त्र-द्रष्टा गुण-वर्णन करते हुए यज्ञ में बैठते हैं । १४
६८ तू विस्तृत हजारों धाराओं वाले ज्ञानमय-सुखद स्रोत (वेद) में व्यापक है । १५
६९ तू चारों दिशाओं का रक्षक है, प्रकाश से द्यु-भूमि में चमकता, इन सब भुवनों में व्यापक, ज्ञाता होकर सत्य के पथ पर चलता है। १६
७० तू पाँच (दिशाओं और मङ्गल-बुध-बृहस्पति-शुक्र-शनि ग्रहों के) साथ उधर, और एक (दिशा-पृथिवी ग्रह) के साथ इधर तपता है, बुराई को बाधा पहुँचाता सुदिन में उदय होता है। १७
७१ तू इन्द्र-महेन्द्र-आलोक-प्रजापति है, तेरे लिए यज्ञ किया जाता, होता आहुति देते हैं। १८
७२ असत् (अव्यक्त प्रकृति) में सत् जगत् सत् में भूत; भूत भव्य में, भव्य भूत में प्रतिष्ठित है। १९
७३ तू पवित्र-दीप्तिमान् है । वह तू जैसे तेज से तेजस्वी है वैसे मैं तेज से तेजस्वी होऊँ । २०
७४ तू दीप्ति-ज्योति-कान्ति से युक्त है; वैसे ही मैं बनूँ । २१
७५ उदय का यत्न करते, उदय होते, उदित, विराट्-स्वराट्-सम्राट् के लिए नमस्कार (आदर) हो । २२
७६ अस्त होने का यत्न करते; अस्त होते; अस्त हुए, विराट्-स्वराट्-सम्राट् के लिए नमः हो । २३
७७ यह आदित्य समस्त तप के साथ उदय होता है, वह मेरे शत्रु वश में करे; मैं शत्रु-वश न होऊँ । २४
७८ हे आदित्य ! तू मेरी सौ चप्पू वाली नाव (सौ वर्ष आयु वाले शरीर) पर कल्याण के लिए चढ़ (प्रकाशित हो), तूने दिन से मुझे पार किया; रात से भी पार कर। २५
७९ हे सूर्य ! मेरे कल्याण के लिए सौ अरित्र वाली नाव पर चढ़, रात से तो मुझको पार किया अब दिन से भी शीघ्र पार कर । २६
८० प्रजापति के वेद-कवच और सूर्य की ज्योति-तेज से ढका हुआ मैं प्रशंसनीय आयु वाला, वीर-कार्य-सम्पन्न, विविध-ज्ञान-गति-युक्त, दीर्घायु-सुकर्मी होकर विचरूँ । २७
८१ ब्रह्म-कवच और कश्यप (पश्यक-द्रष्टा परमेश्वर-सूर्य) की ज्योति-तेज से मैं सब ओर घिरा हुआ हूं, मेरे वध के लिए जो दैवी-मानुषी बाण (बाढ़-भूकम्प-रोगादि) छोड़े गये हैं वे मुझ तक न पहुँचें । २८
८२ मैं सत्य और सब ऋतुओं-भूत-भव्य द्वारा रक्षित हूं, पाप और मौत मुझे न आयें, उन्हें मैं वेद-वाणी के जल से अन्तर्हित करता हूं । २९
४२८३ रक्षक अग्नि (परमेश्वर-यज्ञाग्नि-अग्रणी-आचार्य) मुझे सब ओर से बचाये, उदय होता हुआ सूर्य मौत के फन्दों को हटाये, अन्धकार हटाते जाती उषाएँ, स्थिर पर्वत, हजारों प्राण मुझ में यत्न करते रहें । ३०

यह अनुवाक-सूक्त १ और पूरा काण्ड १७ समाप्त हुआ ।

—❀—

अथर्व वेद कांड १८ सूची

प्रपा.	अनुवाक	सूक्त	मन्त्र	ऋषि	देवता	छन्द
३३	१	१	६१	अथर्वा	१-३६ यम-यमी मन्त्रोक्त	त्रिष्टुप् विराट् पंक्ति
	२	२	६०	,,	यम अग्नि जातवेदाः पितरः	
३४	३	३	७३	,,	नारी यम इन्द्र अग्नि आपः	
	४	४	८६	,,	यम प्रजापति अग्नि पितरः चन्द्रमा	
योग २	४	४	२८३	४२८४ से ४५६६ तक		

अथर्व वेद काण्ड १८

प्रपाठक ३३ अनुवाक-सूक्त १

म० द० स० के अनुसार विषय— ओचित्सखायमित्यादि सखित्व-विद्या; प्रश्नादि पदार्थ विद्या, अग्नीश्वर-स्तुत्यादि, सरस्वती-लक्षणादि; विद्या-पितृ-लक्षणादि; यमादि श्रद्धादि पदार्थ विद्या ।

सूक्त १ । यम-यमी । मन्त्रोक्त

४२८४ ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥ १

४२८५ न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥ २
८६ उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य ।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस् तन्वमा विविश्याः ॥ ३
८७ न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनमृतं वदन्तो अनृतं रपेम ।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नौ नाभिः परमञ्जामि तन्नौ ॥ ४
८८ गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस् त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥ ५
८९ को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥ ६
९० को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥ ७
९१ यमस्य मा यम्यङ्काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ॥ ८
९२ न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥ ९
९३ रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विवृहादजामि ॥ १०
९४ आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥ ११
९५ किं भ्रातासद् यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निरृर्तिर्निगच्छात् ।
काममूता बह्वेतद्रपामि तन्वा मे तन्वं सं पिपृग्धि ॥ १२
९६ न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वा सं पपृच्याम् ।
अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥ १३
४२९७ न वा उ ते तनूं तन्वा सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय ॥ १४

६१ मन्त्रों का सूक्त १। यम-यमी आदि।

सूक्त के १८ मन्त्र ऋ० १०.१०.-१४ में भी हैं। वहाँ आध्यात्मिक-भौतिक अर्थ है, यहाँ दैविक। अनेक अर्थ --आध्यात्मिक- आत्मा-प्रकृति, अव्यक्त-व्यक्त।

मौतिक— पुरुष-स्त्री, पति-पत्नी, भाई-बहिन, ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी, राजा-रानी। यम-यमी को पति-पत्नी के रूप में मानने पर नियोग-परक अर्थ भी है।

दैविक-वैज्ञानिक— सूर्य-पृथिवी, दिन-रात [निरुक्त में यास्क], अग्नि-पृथिवी, प्राण-रयि, वीर्य-रज, उत्तरायण-दक्षिणायन, शुक्ल-कृष्ण पक्ष।

यह संवाद-शैली में वेद-काव्य की अमूल्य निधि है। यह कोई इतिहास नहीं। यम-यमी व्यक्ति-नाम नहीं। यहाँ अनुप्रास-श्लेष-रूपक-अतिशयोक्ति-श्लेष अलंकार हैं।

४२८४ यमी— मैं [रात-पृथिवी] तुझ सखा [दिन-सूर्य] को सखित्व से प्राप्त करूं; विधाता तू बड़ा समुद्र अन्तरिक्ष तैर चुका, भूमि पर पूरा ध्यान देकर पिता को न गिराने वाला तेज धारण कर। १

८५ यम— तेरा सखा मैं [दिन-सूर्य] यह मित्रता नहीं चाहता; क्योंकि समान-लक्षणा तू विषम है, बड़े असुर [प्राण-शक्ति] परमेश्वर के वीर महान् पुत्र दिव [द्यौ के धारक] पृथ्वी को देख रहे हैं। २

८६ यमी— वे अमर नियम यह भी चाहते हैं कि प्रत्येक मर्त्य की सन्तान हो। तेरा मन मेरे मन में हो जाये, जन्म-दाता पति बनकर मेरे शरीर पर अधिकार कर। ३

८७ यम— जो पहले नहीं किया उसे अब कैसे करें? सत्य बोलते हुए असत्य कैसे बोलें? भूमि-धारक मैं और योषा तू दोनों अन्तरिक्ष में, दोनों का एक ही जन्म-दाता, अतः सगा सम्बन्ध है। ४

८८ यमी— गर्भ में तो उत्पादक-शिल्पी-पिता देव विश्व-रूप परमेश्वर ने पति-पत्नी बनाया, इसके व्रत कोई नहीं टालते; हम दोनों का यह सम्बन्ध पृथिवी-द्यौ जानते हैं। ५

८९ यम— प्रजापति सदा सत्य के धुरे में कर्म-प्रधान, प्रकाश-युक्त, संशय-रहित वेद-वाणी रूपी बैलों को जोड़ता है जो मुख-निकले, हृदय में लगने वाले, कल्याणी बाण हैं जो इन्हें धारण कर लेता है वही जीवित रहता है। ६

९० यमी— इस सृष्टि का पहला दिन कः [कौन-प्रजापति] ही जानता-देखता-बताता है? जो मित्र-वरुण का तेज बड़ा है तब विज्ञान के द्वारा मनुष्यों को कैसे बताया जा सकता है? ७

९१ यमी— मुझ यमी को यम के प्रति कामना आयी कि समान स्थान पर साथ सोएं; जैसे स्त्री पति के लिए वैसे यम के लिए सौंप दूं, रथ के दो पहियों के समान दोनों उद्यम करें। ८

९२ यम— ये देवों के सिपाही जो यहाँ घूमते हैं; न ठहरते न आँखें मीचते हैं। हे सुगति वाली तू मुझ से अन्य के साथ शीघ्र जा और उसके सहित रथ-चक्र-समान उद्यम कर। ९

९३ यमी— इसके लिए परमेश्वर रात-दिनों से निर्देश करे, सूर्य की आँख बार बार देखती है, द्यौ-पृथिवी के जोड़े समान-बन्धु होकर अलग हैं, क्या तद्वत् यमी यम से अलग रहे? १०

९४ यम— आगे वे युग आयेंगे जब स्त्रियाँ अनुचित करेंगी, तू सुख-वर्षक [चन्द्र] के लिए बाहु फैला, मुझ से अन्य पति को चाह। ११

९५ यमी— वह भ्राता क्या जिसके होते बहिन अनाथ हो; वह बहिन क्या जिसे कष्ट मिले? काम से बंधी मैं यह बहुत बोल रही हूं, अपने शरीर से मेरे शरीर का सम्पर्क कर। १२

९६ यम— हे यमी! मैं यहाँ तेरा नाथ नहीं हूं, तेरा शरीर स्वशरीर से नहीं जोड़ सकता, मुझसे अन्य के साथ हृष्ट हो, हे सुभगे! तेरा भ्राता यह नहीं चाहता। १३

४२९७ यम— मैं तेरा शरीर स्वशरीर से नहीं मिलाऊंगा, बहिन से सम्पर्क-कर्ता को पापी बताते हैं, यह मेरे मन-हृदय के प्रतिकूल है कि भ्राता बहिन के शयन पर सोये। १४

४२९८ बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम ।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजातै लिबुजेव वृक्षम् ॥ १५
९९ अन्यमू षु यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजातं लिबुजेव वृक्षम् ।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् ॥ १६

पर्याय २ । पितर

४३०० त्रीणि च्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम् ।
आपो वात ओषधयस् तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि ॥ १७
४०३१ वृषा वृष्णे दुदुहे दोह आ दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजति यज्ञियाँ ऋतून् ॥ १८
२ रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु नो मनः ।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति ॥ १९
३ सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ॥ २०
४ अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषिरः श्येनो अध्वरे ।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ॥ २१
४३०५ सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यो वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः ॥ २२

४२९८ यमी— हे यम ! खेद है कि तू दुर्बल है, हम तेरा मन और हृदय नहीं पाते; निश्चय ही
जुते घोड़े की कक्ष्य और पेड़ पर लिपटी बेल के समान अन्य कोई तुझ से लिपटेगी । १५
९९ यम— हे यमी ! तू दूर रेह, दूसरा तुझ से वृक्ष से बेल के समान लिपटे । उसके मन की तू
और तेरे मन को वह इच्छा करे तब तू सुखद सहानुभूति प्रकट कर । १६ । (प्रकरण समाप्त)
पर्याय २ — ४३०० विद्वान् तीन छन्द-यत्न करते हैं जो नाना रूप, दर्शनीय इन्द्रियों, विश्व-
दर्शक जीव के लिए विशेष यत्न करते हैं — जल-वायु-ओषधि (अन्न), वे इस भुवन में अर्पित हैं । १७
४३०१ वर्षक—अदम्य-महान् सूर्य अखण्डित द्यौ से जल बरसाता है । वरुण परमेश्वर प्रज्ञा-कर्म
से विश्व को जानता है, यज्ञ-कर्ता वह ऋतुओं से यज्ञ करता है । १८
२ उपदिष्ट वाणी प्रिय पत्नी-समान, नाद-कर्ता के नाद (वेद) में हमारा मन लगाये, अखण्ड ईश्वर
जो बड़ा पोषक प्रथम उपदेशक है हमें इष्ट में रक्खे । १९
३ वही शब्द वाली सद्गा उषा मानवों की कल्याण-कारिणी है जब वे ईश-प्राप्त्यर्थ उद्यत होते हैं । २
है और तब इच्छुक ज्ञानी योग-यज्ञ में उस विभु-द्रष्टा को अपनी ओर आकृष्ट करता है । २१
४ और जब आर्य उस अविद्या-क्षयकारी परमात्मा का वरण करते हैं उन्हें बुद्धि मिलती
४३०५ हे अग्नि (परमात्मन्)! आप सदा रमणीय हैं, जैसे पुष्टि के लिए खाद्य, मानव की आहुतियों
से अहिंसक हैं, प्रशंसनीय आप मेधावी का समर्पण शीघ्र स्वीकार कर बहुत धनों सहित मिलते हैं । २२

५३०६ उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस् तविष्यते असुरो वेपते मती ॥ २३
७ यस् ते अग्ने सुमतिं मर्तो अख्यत् सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान् भूषति ॥ द्यून् २४
८ श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥ २५
९ यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद्विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ॥ २६
१० अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ २७
११ प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ॥ २८
१२ द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन्त् सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् ॥ २९
१३ देवो देवान् परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ॥ ३०
१४ अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद्देवा असुनीतिमायन् मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥ ३१
१५ स्वावृग् देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी ।
विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥ ३२
१६ किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद ।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ॥ ३३
१७ दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥ ३४
१८ यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्यक्तून् परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ॥ ३५
१९ यस्मिन् देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये न वयमस्य विद्म ।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥ ३६

४३०६ हे अग्रणी! दाता और सूर्य के समान तू माता-पिता को उन्नत कर, यह यज्ञ कर्ता हृदय-मन से तुझे चाहता है, यह वाहक विशेष बोलता है; राष्ट्र-यज्ञ बढ़ता है, दुष्ट दुर्मति के कारण काँपता है। २३

७ हे बल के प्रेरक नेता! जो मानव तेरी सुमति का कहता है वह अति प्रसिद्ध हो जाता है। अन्न-धारी वह अश्वों द्वारा ले जाया गया शोभित-बली होकर दिनों को शोभित करता है। २४

८ हे नेता! सभा-सदन में हमारी बात सुन, पुरुषार्थ से शीघ्र गति-युक्त रथ जोड़; देव-रक्षक भूमि-द्यौ हमारे अनुकूल बना, यहाँ विद्वानों से दूर न हो। २५ (ऋ० १०-११-९; १०-१२-९)

९ हे राष्ट्र-यज्ञ-कर्ता, शक्ति-धारक नेता! सङ्गठन करता हुआ तू विद्वानों में जो यह सुन्दर समिति बनाता और रत्न बाँटता है तो हमारा वह रत्नों का भाग स्वीकार कर। २६

१० नेता उषासे पहले उठे, ज्ञाता दिनान्त तक यत्न करे, सूर्यवत् उषा-किरणोंके पीछे द्यौ-भूमिमें व्यस्त रहे।

११.प्रति ,, ,, प्रति २७-२

१२ द्यौ-पृथिवी के समान राजा-प्रजा पहले नियम-सत्यवाणी से प्रसिद्ध होते हैं जब राजा मानवोंको यज्ञ के लिए प्रेरित करता है और अपने प्राण को गति देता हुआ सामने स्थित होता है। २९

१३ विद्वान् राजा सत्य से विद्वानों को घेर कर पहले ज्ञानी होकर हमें अन्न-ज्ञान दे, शत्रु को कँपाने वाली ध्वजा-युक्त; तेज में सूर्य-सम, हृष्ट-दानी, वाणी से नित्य यज्ञ करने वाला हो। ३०

१४ हे द्यौ-भूमि के समान घी-स्नेह-जल आदि के दाता पिता-माता! मैं कर्मों की वृद्धि के लिए तुम दोनों को पूजूं, मेरी बात सुनो, दिन में जब विद्वान् प्राण-नीति बतायें तब तुम यहाँ मधुरता से हमें उनकी शिक्षा दिया करो। ३१

१५ जब मानव परमेश्वर की वेद-वाणी और अमरता पाकर पृथिवी को धारण करते हैं तब वे सब विद्वान् उस काम का पालन करते हैं; तभी वेदवाणी-गौ दिव्य घी-जल (ज्ञान) दुहाती है। ३२

१६ राजा (ईश्वर-शासक) हमें क्यों पकड़े? हम उसका नियम कब तोड़ दें यह कौन जानता है? हम मित्र हैं, चन्द्र-समान वह विद्वानों को हृष्ट करता है, धर्ममार्गियों का मन्त्र-प्रमान बल है। ३३

१७ यहाँ अमर नियन्ता परमेश्वर का ओ३म् नाम लेना कठिन हो जाता है जब कि समानलक्षणा चिति शक्ति विषम-रूपा हो जाती है। जो मन [ईश्वर-मित्र-आचार्य] का मनन-सुमनन करता है, हे महान् अग्नि तू! उसकी सदा रक्षा कर। ३४

१८ जिस परमेश्वर में देव (दिव्य शक्तियाँ और विद्वान्) हृष्ट होते, जिस अज्ञानान्धकार-नाशक के आश्रय में अपने को धारण करते हैं, जिन ने सूर्य में ज्योति और चन्द्र में तारे आश्रित किये उसी की अर्चा-परिचर्या वे लगातार किया करते हैं। ३५

४३१९ जिस सर्वज्ञ छिपे परमेश्वर में योगी विचरते हैं उसका विधान हम नहीं जान पाते; यहाँ मित्र-माता-पिता हमें वरणीय परमेश्वर के प्रति निष्पाप बनायें और कहें। ३६

४३२० सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे । स्तुष ऊ षु नृतमाय धृष्णवे ।। ३७
२१ शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा । मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ।। ३८
२२ स्तेगो न क्षामत्येषि पृथिवीं मही नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
मित्रो नो अत्र वरुणो युज्यमानो अग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ।। ३९
२३ स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यमस्मत् ते नि वपन्तु सेन्यम् ।। ४०

पर्याय ३ । सरस्वती

२४ सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ।। ४१
२५ सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ।। ४२
२६ सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ।। ४३

पर्याय ४ । यम–पितर

२७ उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास् ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ।। ४४
२८ आहं पितॄन् सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस् त इहागमिष्ठाः ।। ४५
२९ इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये अपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु ।। ४६
३० मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवांस् ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ।। ४७
३१ स्वादुष् किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ।। ४८
३२ परेयिवांसं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं सङ्गमनञ्जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ।। ४९
४३ ३ यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेता एना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः ।। ५०

४३२० हे सखाओ ! हम वज्र-धारी, साहसी, सर्वश्रेष्ठ नेता के लिए स्तवन हेतु ज्ञान-अन्न दें ।३७
२१ हे शूर ! तू बल से प्रसिद्ध, दुष्ट-नाश से वृत्रहा है, धनी से त धनी से अधिक देता है । ३८
२२ निसृत पृथिवी पर हिरन के समान, तू विचर, यहाँ बड़ी भूमि पर हमें अच्छी हवाएँ चलें
मित्र-वरुण(प्राण-उदान, हाइड्रोजन-आक्सीजन) मिलकर वन में अग्नि के समान प्रकाश फैलायें ।३९
२३ तू नीचे के घर में स्थित भयंकर पापी-हन्ता, जनों के प्रसिद्ध उग्र राजा के गुण कहा कर ।
हे रुद्र ! स्तुत तू स्तोता को सुख दे, तेरी सेना हमसे अन्य (दुष्ट) का नाश करे । ४०

पर्याय ३

२४ देव बनने के इच्छुक सरस्वती(विद्या)का यज्ञ के फैलाये जाने पर वेदवाणी का आह्वान करते
उसे सुकर्मी बुलाते हैं, सरस्वती (परमेश्वर-वेद-विद्या) दानी को अभिलषित पदार्थ देती है । ४१
[ये ३ मन्त्र ४१-४३ आगे १८.४.४५-४७ और ऋ० १०.१७.७-९ में भी हैं ।]
२५ पालक पितर वेदि के दक्षिण में बैठकर यज्ञ करते हुए वेद-वाणी बोलते हैं । हे पितृजनो!
इस बड़े आसन पर बैठकर हृष्ट होओ । हे ईश्वर-वेदवाणी ! तू हमें नीरोग अच्छा-अन्न दे, ४२
२६ हे सरस्वती ! जो तू पितरों के साथ मन्त्रों और अन्नों से हृष्ट करती हुई रमणीय यज्ञ में आती
है वह तू यहाँ यजमान के लिए हजारों मूल्य का स्तुत्य भाग, ऐश्वर्य-पोषण दे । ४३ ८

पर्याय ४

[मन्त्र ४४-४६ ऋ० १०.१५.१-३, य० १९-४९, ५६, ६८ में, ४४ वां निरुक्त ११.१८ में भी हैं ।]
२७ कनिष्ठ पितर(पिता की कोटि के), बड़े(प्रपितामह की कोटि), मध्यम पितामह कोटि के) सौम्य
हमें उपदेश दें; जो प्रज्ञा पा चुके, शत्रु-रहित, सत्यज्ञ हैं वे आह्वानों में हमारी रक्षा करें ।
सूर्य-रश्मियाँ भी पितर हैं, वे सायं-प्रातः-मध्याह्न की अवर-पर-मध्यम किरणें हमारी रक्षा करें ।४४
२८ मैं सुविज्ञ ज्ञान-प्रद उन पितरों (पालकों-किरणों)और विष्णु (परमेश्वर-सूर्य-यज्ञ) के पतन-
पातन-रहित विक्रम- पराक्रम-नियम जानूँ जो बर्हिषद (आकाश-आसनस्थ), अपनी धारक शक्ति
से उत्पन्न अन्न सेवन करते हैं वे यहाँ आयें । ४५
२९ पितरों (पालक-सैनिक-किरण समूह) को सदा यज्ञ-आदर-अन्न हो जो बड़े या परवर्ती हैं,
पूर्व-पश्चिम से आते, जो पार्थिव लोक और निश्चय ही सु-अन्तरिक्ष की दिशाओं में स्थित हैं । ४६
३० मातली (अग्नि) कव्यों (पृथिवी के पदार्थों) से; माता (परमेश्वर) में लीन योगी कवि
(परमेश्वर) के उपदेशों से उनके भक्तों के साथ बढ़ता-बढ़ाता है । यम (जीव -काल) अङ्गिरों
(अङ्ग-रस प्राणों और सूर्य-रश्मियों) से, संयमी योगी प्राणायामों से, स्व-शिष्य-रहित बढ़ता है ।
बृहस्पति(ऊर्ध्व-प्राण, वर्षाधिपति) ऋक्वों (विविध वाणियों) से; आचार्य मन्त्रों से, शिष्यों-सहित
बढ़ता-बढ़ाता है । जिन्हें विद्वान् बढ़ाते, जो विद्वानों को बढ़ाते वे पितर यज्ञों में हमारी रक्षा करें । ४७
ऋ० १०-१४-३
३१ यह सोम निश्चय स्वादिष्ठ-मधुर-तीव्र-रसीला है; इसके पीने वाले इन्द्र को युद्धों में कोई
नहीं हरा सकता । ४८ ऋ० ६-४७-१
३२ दूर लोकों तक पहुँचे; बहुतों की पथ-दर्शक, जनों के सङ्गठक, सूर्य-सम्बन्धित राजा यम
(परमेश्वर-काल-शासक) को हवि (क्रमशः भक्ति-सदुपयोग सत्कार) से परिचर्या करो । ४९
४३३३ यम हमें पहले गति देता है; यह मार्ग छोड़ने का नहीं । जहाँ हमारे श्रेष्ठ पितर (पालक-
पूर्वजन-सूर्य-रश्मि-समूह) जाते हैं वहीं उनसे उत्पन्न हम इन हितकर पथों पर चलें ।(१०.१४-१)५०

४।३४ बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शन्तमेनाधा नः शं योररपो दधात ॥ ५१
३५ आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभि गृणन्तु विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केनचिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥ ५२
३६ त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति तेनेदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥ ५३
३७ प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
उभा राजानौ स्वधया मदन्तौ यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥ ५४
३८ अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥ ५५

पर्याय ५। पितर

३९. उशन्तस्त्वेधीमह्युशन्तः समिधीमहि । उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ५६
४०. द्युमन्तस्त्वेधीमहि द्युमन्तः समिधीमहि । द्युमान् द्युमत आवह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ५७
४१ अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ५८
४२ अङ्गिरोभिर्यज्ञियैरा गहीह यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् बर्हिष्या निषद्य ॥ ५९
४३ इमं यम प्रस्तरमा हि रोहाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषो मादयस्व ॥ ६०
४४. इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्ठान्यारुहन् । प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययुः ॥ ६१

यह काण्ड १८ प्रपाठक ३३ में अनुवाक-सूक्त १ पूर्ण समाप्त हुआ ।

अनुवाक- सूक्त २

पर्याय १

४५. यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरङ्कृतः ॥ १
४६. यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत । इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥ २
४७ यमाय घृतवत्पयो राज्ञे हविर्जुहोतन । स नो जीवेष्वा यमेद्दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥ ३

पर्याय २

४८ मैनमग्ने वि दहो माभि शूशुचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात् पितॄँरुप ॥ ४

४'३४ हे आसनस्थ पितरो ! रक्षार्थ पास रहो; जो तुम्हारे हव्य बनायें, उन्हें सेवन करो। वे रक्षा-कल्याणार्थ आयें और हमारी पाप-रहित शान्ति, रोग-शमन, भय-निवारण करें। ५१

३५ हे पितरो ! आप घुटने टेक कर दक्षिण में बैठ कर हमारा हव्य लें, उपदेश करें, यदि हम पुरुष होने के कारण आपके प्रति अपराध करें तो भी आप हमारी हिंसा न करें। ५२

[ये दो मन्त्र ऋ० १०.१५.४, ६ और य० १६-५५, ६२ में भी हैं।]

३६ अनुदित सूर्य पुत्री उषा का विवाह करता है इससे यह सब भुवन ठीक चलता है। यम (काल, दिन-रात) की माता (उषा) के जाते जाते महान् सूर्य की पत्नी (रात) नष्ट हो जाती है। ५३

ऋ १०-१७-१०, निरुक्त ११-११

३७ जा, तू नागरिक यानों से जा; जिससे तेरे पहले पितर (अगले आश्रम में) गये हैं। वहाँ दोनों राजाओं (अध्यक्ष) यम-वरुण (नियन्ता-वरणकर्ता आचार्य) को अपनी धारक शक्ति से हृष्ट देख, प्र ति के साथ हृष्ट जीवात्मा-परमेश्वर के भी दर्शन करेगा। ५४ ऋ १०-१४-७।

३८ हे पितर जन ! यहाँ से अलग होओ, जाओ, फैलो, इसके लिए यह स्थान नियत है। यम [आचार्य-काल] इसके लिए दिन-जल-रातों से व्यक्त विश्राम देता है। ५५ [१०-१४-९]

पर्याय ५

३६ हे अग्नि, सकाम हम तुझे दीप्त-प्रदीप्त करते हैं; सकाम तू सकाम पितर हवि खाने को बुला। ५६

१०.१६.१२, यजु १६.७०

४० तेजस्वी हम तुझे बढ़ायें-दीप्त करें, हे तेजस्वी, तू हवि खाने के लिए तेजस्वी पितर ला। ५७

४१ हमारे पितर (रक्षक जन और ग्रीष्म आदि ६ ऋतुओं की किरणें) हैं; हम उन सङ्गति-योग्यों की सुमति और भद्र बोध-प्रसन्नता में रहें— अङ्गिरस(अंग-ज्ञाता), नवग्व (नये ज्ञान-दाता), अथर्वा (अहिंसक-अथर्ववेदज्ञ अ तरायो), भृगु (परिपक्व); सोम्य और यज्ञकर्ता। ५८

ऋ १०.१४,५-६; यजु १६-५०; निरुक्त ११-१९, भाष्य-भूमिका, यम-पितृ-परिचय।

४२ हे यम [काल-संयमी] ! यहाँ अंगिरा-यज्ञियों के साथ आ, विविध रूप वालों के साथ हृष्ट हो और तृप्त कर, मैं इस आसन पर स्थित होकर विवस्वान् (ईश्वर-सूर्य-विज्ञानी) को बुलाऊँ जो तेरा पिता (रक्षक) है। ५६

४३ हे यम [आचार्य-काल] ! तू अंगिरा-पितरों के साथ अनुकूल होकर इस आसन पर चढ़, कवि-प्रोक्त मन्त्र तुझे प्रेरित करें, हे राजा ! तू हवि से हृष्ट हो और कर। ६०

४४ यहाँ से ये आंगिरस [प्राण-वैज्ञानिक] ऊपर द्यो के पीठों [चक्रों] पर चढ़ते हैं, पृथिवी-चक्र-विजेता यथायोग्य द्यौ [सहस्रार चक्र-आकाश] तक पहुँचते हैं। ६१ [अनुवाक-सूक्त १ पूर्ण]

अनुवाक-सूक्त— २

विषय— यमाय...हविरित्यादि, छन्द इत्यादि, भद्र-सोम-ऋतादि-शीतादि, मृत्युर्यमस्यासीद् व इत्यादि, यमो परोऽवरो विवस्वानित्यादि, मरणानन्तरगतिः, पितृ स्वधादि, आयुर्विश्वायुस्त्वेत्यादि प० पर्याय १— ४५ यम के लिए सोम शुद्ध होता, हवि की जाती, अलंकृत अग्नि-दूत यज्ञ यम को जाता है। १ ४६ यम के लिए मधुरतम हवि दो और चल दो। यह नमः द्रष्टा-पूर्ण-श्रेष्ठ पथ-प्रदर्शकों को है। २ ४७ राजा यम के लिए घी वाले दूध-हवि की आहुति दो; वह हमें जीवों में जीने को दीर्घायु दे। ३

पर्याय २— ४३४८ हे अग्नि [आचार्य]! इसको दुःखी-शोकयुक्त न कर, इसके शरीर-खाल को न उधेड़। हे जातवेद ! जब इसे पक्का करले तो पितरों [पालकों-किरणों] के पास भेज दे। ४

४९ यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेमनं परि दत्तात् पितृभ्यः।
यदो गच्छात्यसुनीतिमेतामथ देवानां वशनीर्भवाति ॥ ५
५० त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद्‌बृहत्। त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आर्पिता॥ ६

पर्याय ३ पितर

५१ सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥ ७
५२ अजो भागस् तपसस् तं तपस्व तं ते शोचिस् तपतु तं ते अर्चिः।
यास् ते शिवास् तन्वो जातवेदस् ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥ ८
५३ यास् ते शुचयो रंहयो जातवेदो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम्।
अजं यन्तमनु ताः समृण्वतामथेतराभिः शिवतमाभिः शृतं कृधि ॥ ९
५४ अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस् त आहुतश् चरति स्वधावान्।
आयुर्वसान उप यातु शेषः सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥ १०

पर्याय ४

५५ अति द्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।
अधा पितॄन्त्सुविदत्राँ अपीहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥ ११
५६ यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिषदी नृचक्षसा।
ताभ्यां राजन् परि धेह्येनं स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेहि ॥ १२
५७ उरूणसावसुतृपावुदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥ १३

पर्याय ५

५८ सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते। येभ्यो मधु प्रधावति ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १४
५९ ये चित्पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः। ऋषीन्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् १५
६० तपसा येऽनाधृष्यास् तपसा ये स्वर्ययुः।
तपो ये चक्रिरे महस् ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १६
६१ ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः। ये वा सहस्रदक्षिणास् ,, ॥ १७
६२ सहस्रनीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम्। ऋषीन्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥ १८

पर्याय ६

६३ स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी। यच्छास्मै शर्म सप्रथाः ॥ १९
४३६४ असंबाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व। स्वधा याश्चकृषे जीवन् तास् ते सन्तु मधुश्चुतः ॥ २०

४३४९ आचार्य शिक्षा देकर शिष्य को पितरों को वापस करदे; यह प्रज्ञा-प्राण-शक्ति पाकर इन्द्रिय-शोकहर्ता हो। अग्नि शव भस्म कर किरणों तक पहुँचा दे, यह भूमि आदि देवों की वश्य हो जाये। ५

५० एक ही बड़ा ब्रह्म तीन साधनों (जल-वायु-सूर्य) से ६ उर्वियों (दिशाओं) को पवित्र करता है। यम में त्रिष्टुप्-गायत्री सब छन्द अर्पित हैं। ६ [ऋ १०-१४-१६]

पर्याय ३— ५१ हे जीव, अगले जन्म में तू दिव्य दृष्टि से सूर्य, आत्मा से वायु, धर्मों से द्यु-पृथिवी, या जल, यदि वहाँ तेरा हित हो, या शरीरों से ओषधियों में स्थित हो। ७

५२ हे परमेश्वर ! इसका जो अजन्मा भाग आत्मा है उसे तप से तपा, उसे तेरी ज्योति-ज्वाला तपाये, तेरे जो कल्याणकारी साधन हैं उनसे इसे सुकर्मियों के लोक भेज। ८ [१०.१६.१-४]

५३ हे ईश्वर ! तेरी जो पवित्र शक्तियाँ हैं जिनसे जो-सम्बन्धित को पुण्य करता है वे मोक्ष को जाते हुए जीव से संयुक्त हों, और अन्य को दूसरी शिवतम प्रवृत्तियों से परिपक्व कर। ९

५४ हे अग्नि परमेश्वर ! जो जीव मुक्त होकर स्व-धारक शक्ति से चलता है उसे फिर पितरों के पास भेज; वह शेष रहनेवाला जीव जन्म लेने जाये; तेजस्वी होकर शरीरसे युक्त हो।१०[१०.१६.५]

पर्याय ४

[मन्त्र ११-१३ कुछ भेद से ऋ १०-१४ में हैं—]

५५ सुपथ द्वारा दो कुत्ते (दिन-रात, तमो-रजो गुण) पार कर, जो सरमा [उषा और लक्ष्मी] के मानो पुत्र, चार आँख [पहर और दिशाओं] वाले, चित-कबरे [लाल-काले] हैं। तब सुविज्ञ पितरों [पालकों और किरणों] से मिल जो यम [काल और ईश्वर] के साथ हृष्ट रहते हैं। ११

५६ हे यम ! जो तेरे दो कुत्ते रक्षक, चार आँख वाले, पथ में बैठे, नरों पर चक्षु गड़ाये हुए हैं, उन से इसे घेर, इसके लिए कल्याण-नीरोगता दे। १२

५७ यम के बड़ी नाक वाले [कुटिल], प्राण लेकर तृप्त, महाबली दो दूत जनों के पीछे चलते हैं हमें सूर्य देखने के लिए यहाँ सदा सुखद प्राण-प्रज्ञा-बल दें। १३

पर्याय ५

आगे के ५ मन्त्र १४-१८ ऋ १०.१५४.१-५ में भी हैं—

५८ कुछ को सोम पवित्र करता है, कुछ घी की उपासना करते हैं, जिनके लिए मधु बहता है उन्हों के पास जा। १४

५९ हे यम, जो श्रेष्ठ, सत्य-ज्ञाता, सत्याचरणी, सत्य-वर्धक द्रष्टा, तप से पैदा तपस्वी हैं उनसे भी मिल।१५

६० जो तपसे अपराजेय, सुख पाते, महा-तप करते हैं तू उनके पास भी जा। १६

६१ जो शूर युद्ध करते, उनमें शरीर त्यागते हैं, और जो हजारों की दक्षिणा-दाता हैं „ ॥ १७

६२ हे यम ! हजारों के नेता, कवि, जो सूर्य-रक्षक-द्रष्टा-तपस्वी, तप-उत्पन्न हैं, „ ॥ १८

पर्याय ६

६३— हे पृथिवी, तू इन पूजा-जन के लिए सुखद, काँटे-रीछ आदि हिंसक-रहित, निवास-योग्य, विस्तार-युक्त घर दे। १९ [ऋ १-२२-१५, यजु ३५-२१ निरुक्त ९-३२ में भी है।]

४३६४ हे मनुष्य ! तू पृथिवी के भीड़-बाधा-रहित फैले स्थान पर घर बना, जीते हुए जो अन्न उत्पन्न करे वे तेरे लिए मधुरता-दायक हों। २०

६३६५ ह्वयामि ते मनसा मन इहेमान् गृहाँ उप जुजुषाण एहि ।
सङ्गच्छस्व पितृभिः सं यमेन स्योनास् त्वा वाता उपवान्तु शग्माः ॥ २१
६६ उत्त्वा वहन्तु मरुत उदवाहा उदप्रुतः । अजेन कृण्वन्तः शीतं वर्षेणोक्षन्तु बालिति ॥ २२
६७ उदह्वमायुरायुषे क्रत्वे दक्षाय जीवसे । स्वान्गच्छतु ते मनो अधा पितॄँरुप द्रव ॥२३
६८ मा ते मनो मासोर्माङ्गानां मा रसस्य ते । मा ते हास्त तन्वः किं चनेह ॥ २४
६९ मा त्वा वृक्षः संबाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही । लोकं पितृषु वित्त्वैधस्व यमराजसु ॥२५
७० यत् ते अङ्गमतिहितं पराचैरपानः प्राणो य उ वा ते परेतः ।
तत् ते सङ्गत्य पितरः सनीडा घासद् घासं पुनरावेशयन्तु ॥ २६
७१ अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस् तं निर्वहत परि ग्रामादितः ।
मृत्युर्यमस्यासीद्दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयांचकार ॥ २७

पर्याय ७

७२ ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अहुतादश् चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टानस्मात् प्र धमाति यज्ञात् ॥ २८
७३ सं विशन्त्विह पितरः स्वा नः स्योनङ्कृण्वन्तः प्रतिरन्त आयुः ।
तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणा ज्योग जीवन्तः शरदः पुरूचीः ॥२९
७४ याँ ते धेनुं निपृणामि यमु ते क्षीर ओदनम् । तेना जनस्यासो भर्ता योऽत्रासदजीवनः ॥३०
७५ अश्वावती प्र तर या सुशेवार्क्षकं वा प्रतरं नवीयः ।
यस् त्वा जघान वध्यः सो अस्तु मा सो अन्यद्विदत भागधेयम् ॥ ३१
७६ यमः परोऽवरो विवस्वान् ततः परं नाति पश्यामि किंचन ।
यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वाततान ॥ ३२
७७ अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद् यत् तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥ ३३

पर्याय ८

७८ ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः । सर्वांस्तानग्न आवह पितॄन्हविषे अत्तवे ।३४
७९ ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
त्वं तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितञ्जुषन्ताम् ॥ ३५
८० शं तप माति तपो अग्ने मा तन्वं तपः । वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यद्धरः ॥ ३६
४६८१ ददाम्यस्मा अवसानमेतद् य एष आगन् मम चेदभूदिह ।
यमश् चिकित्वान् प्रत्येतदाह ममैष राय उप तिष्ठतामिह ॥ ३७

४३६५ यहाँ तेरा मन मनन-शक्ति से जगाता हूं, इन घरों का प्रीति से सेवन करता हुआ आ, पितर-यम से सङ्गत हो, तेरे लिए सुख-शान्ति-प्रद हवाएँ चलें। २१

६६ जल-वाही, जल-भरी हवाएँ तुझे उन्नत करें, बीज से वृद्धि करती वे वर्षा-जल से झाल-झाल ध्वनि करती सींचें। २२

६७ मैं तेरी आयु सौ वर्ष-कर्म-दक्षता-जीवन के लिए बताता हूं; तेरा मन अपनों में लगे और फिर पितरों (वनस्थ-संन्यस्तों) के पास जा। २३

६८ यहाँ तेरा मन और प्राण-प्रज्ञा-अंग-रस-शरीर का कुछ भी न छूटे। २४

६९ तुझे वृक्ष-बड़ी दिव्य पृथिवी कुछ बाधा न पहुँचायें, यम-राजा के पितरों में स्थान पाकर बढ़। २५

७० जो तेरा अंग इन्द्रियों के साथ छिनकर नहीं रहे, अपान-प्राण बिगड़ जायें तो समानाश्रमी पितर उसे ठीक कर घास से घास के समान फिर जोड़ दें। २

७१ यदि जीवित इसे रोकें तो गाँव के घरों से दूर ले जाओ, मौत चेताने वाली यम-दूत है जो प्राणों को सूर्य-किरणों के पास भेजती है। २७

पर्याय ७

७२ जो दस्यु (डाकू और रोग-क्रिमि) पितरों में प्रविष्ट, बन्धु-समान मुख वाले किन्तु बिना होम किये भक्षक, छोटे-बड़े शरीर-धारी घूमते हैं उन्हें अग्नि इस यज्ञ से निकाल दे। २८

७३ हमारे अपने पितर यहाँ प्रवेश पायें, सुख देकर आयु दें। हवि से सङ्गत हम बहुत वर्षों तक उनकी सेवा कर सकें। २९

७४ जो गौ और दूध में सात तुझे देता हूं उससे उस मनुष्य का पालक बन जो यहाँ निर्धन हो। ३०

७५ तू सुखद अश्व-शक्ति के या नवीन गति से रीछ आदि के दुःखद मार्ग पार कर; जो तुझे मारे वह वध्य हो, वह अन्य किसी सम्पत्ति का भाग न पाये। ३१

७६ यम (काल-परमेश्वर) बड़ा, सूर्य छोटा है, उससे आगे मैं कुछ नहीं देखता यम में मेरा यज्ञ स्थित है, सूर्य केवल पृथिवियों तक फैला है। ३२

७७ परमेश्वरीय नियम अमृता उषा को मर्त्यों से छिपाकर उसके समान प्रभा सूर्य के लिए दे दे है। उषा ने गर्भ धारण कर दो अश्वी (दिन-रात) दिये और रात में सरण्यू बनकर दो मिथुन (सूर्य-चन्द्र) दिये। ३३

पर्याय ८

७८ जो पितर [किरणें] भूमि में घुसी, जल में फैली, आग में दीप्त, वायु में हितकारी हैं उन्हें अग्नि! तू हवि के लिए ला। हे अग्रणी! हवि खाने के लिए उन सब पितरों को बुला जो खनिज में निपुण, खेती में कुशल, विदग्ध, उत्तम हितकर्ता हों। ३४

[यह और अगला मन्त्र ऋ० १०.१५.१४-१३ और यजु० १९-६०; ६७ में भी हैं। यहाँ दैविक अर्थ-]

७९ जो किरणें बिजली-रहित और उनसे भिन्न हैं द्यौ के मध्य स्वशक्ति से चमकती हैं, हे विद्वान् उन्हें यदि तू जानता है तो वे अन्न वाले खेती-यज्ञ को पहुंचें। ३५

८० हे अग्नि! कल्याणकारी होकर तप, अति न तप, शरीर न तपा, तेरी आग वनों में हो जो तेज है वह पृथिवी पर हो। ३६

४६८१ ज्ञानी यम [परमेश्वर-काल-आचार्य] कहता है कि जो यहाँ आता और मेरा बन जाता, है उसके लिए मैं यह ज्ञान-विश्राम-निवास देता हूं, वह यहाँ मेरे ऐश्वर्य में रहे। [३७]

पर्याय ९

४३८२ इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै। शते शरत्सु नो पुरा ॥ ३८

८३ प्रेमां " ॥ ३९
८४ अपेमां " ॥ ४०
८५ वीमां " ॥ ४१
८६ निरिमां " ॥ ४२
८७ उदिमां " ॥ ४३
८८ समिमां " ॥ ४४
८९ अमासि मात्रां स्वरगामायुष्मान्भूयासम्। " ॥ ४५
९०.प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय।अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितॄन्गच्छ॥४६

१० पर्याय

९१ ये अग्रवः शशमानाः परेयुर्हित्वा द्वेषांस्यनपत्यवन्तः।
ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठे अधि दीध्यानाः ॥ ४७
९२उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा।तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते॥४८
९३ ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम्।
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम ॥ ४९
९४.इदमिद्वा उ नापरं दिवि पश्यसि सूर्यम्।माता पुत्रं यथा सिचाऽभ्येनं भूम ऊर्णुहि॥ ५०
९५.इदमिद्वा उ नापरं जरस्यन्यदितोऽपरम्।जाया पतिमिव वससाऽभ्येनं भूमऊर्णुहि॥५१
९६अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया।जीवेषु भद्रं तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि ५२
९७ अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं देवेभ्यो रत्नं दधथुर्वि लोकम्।
उप प्रेष्यन्तं पूषणं यो वहात्यञ्जोयानैः पथिभिस् तत्र गच्छतम् ॥ ५३
९८ पूषा त्वेतश् च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥ ५४
४३९९ आयुर्विश्वायुः परि पातु त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात्।
यत्रासते सुकृतो यत्र त ईयुस् तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥ ५५
४४०० इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे।
ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश् चाव गच्छतात् ॥ ५६
४४०१ एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन्नपैतदूह यदिहाबिभः पुरा।
इष्टापूर्तमनु सं क्राम विद्वान् यत्र ते दत्तं बहुधा वि बन्धुषु ॥ ५७
४४०२ अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व स प्रोर्णुष्व मेदसा पीवसा च।
नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग् विधक्षन् परीङ्खयातै ॥ ५८

पर्याय ९

४३८२ यह आयु-मात्रा सौ शरदों (वर्षों) में नापते हैं, इस से पहले नहीं, ताकि कोई कम न नापे। ३८
८३ प्रकर्ष से ,, । ३९
८४ अपमंशय ,, । ४०
८५ विशेषता से ,, । ४१
८६ निःसंशय ,, । ४२
८७ उत्कर्ष से ,, । ४३
८८ सम्यक ,, । ४४
८९ मैं आयु-मात्रा नापूँ, सुख पाऊ ,, । ४५

९० हे जीव ! तेरा प्राण-अपान-व्यान-आयु-चक्षु सूर्य देखने के लिए हो; तू इधर-उधर न जाने पथ से यम-राजा वाले पितरों (पालकों-किरणों) के पास जा। ४६

पर्याय १०

९१ जो आगे बढ़ने वाले, खरगोश के समान तेज चाल वाले: बिना सन्तान, द्वेषों को छोड़ कर संसार से परे चले गये, वे द्यौ (मूर्धा) पहुँच कर नाक (सहस्रार चक्र) की पीठ पर ध्यान करते हुए, आलोकमय परमेश्वर को पाते हैं। ४७

९२ जल वाली द्यौ(मूर्धा-कोष्ठ) निचली, पीलु फल-समान नक्षत्र वाली मध्यम द्यौ (आज्ञा-चक्र फीनियल ग्रन्थि), तीसरी प्रद्यौ (सहस्रार चक्र-नीहारिका) है जिसमें पितर[किरण-मुक्त] रहते हैं। ४८

९३ जो हमारे पिता के पितर-पितामह बड़े अन्तरिक्ष में प्रविष्ट हुए हैं, जो पृथिवी-द्यो में रहते हैं उन पितरों के लिए नमस्कार से भक्ति करें। ४९

९४ यही निश्चित है अन्य नहीं, द्यौ में सूर्य देख, हे भूमि, तू आँचल से ढाँक, जैसे माता पुत्र को। ५०
९५ ,, बुढ़ापे में; वस्त्र ,, पत्नी पति को। ५१

९६ मैं तुझे पृथिवी माता के भद्र वस्त्र से ढकता हूं। जीवितों में भद्र मुझ में, और जो पितरों में स्व-धारक शक्ति है यह तुझ में हो। ५२

९७ हे पथ-निर्माता अग्नि-सोम[जल], [पिता-माता, पति-पत्नी]! तुम विद्वानों के लिए सुख-रत्न-निवास का विधान करो; जो पोपक परमेश्वर इच्छुक योगी को अपने पास ले जाता है वहाँ सत्य के मार्गों से जाओ। ५३

९८ पोषक-सर्वज्ञ; प्राणी-अविनाशक, भुवन-रक्षक परमात्मा तुझे यहाँ से आगे हटाये। वह अग्नि (अग्रणी) तुझे इन सुविज्ञ विद्वान् पितरों के लिए दे दे। ५४

९९ तेरी आयु, और पूषा [परमात्मा-सूर्य] श्रेष्ठ पथ पर सामने से रक्षा करें, जहाँ सुकर्मी रहें-जाये वहाँ परमात्म-देव तुझको रक्खे। ५५

४४०० मैं प्राण पाने, पालन के लिए इन माता-पिता को नियत करता हूं, उनके द्वारा संयमी के घर और समितियों में जा। ५६

१ यह वस्त्र तेरे लिए है, जो पहले मिला वह छोड़, यज्ञ-परोपकार को जानता हुआ आगे बढ़ जहाँ अनाथों और बन्धुओं में विशेष दान-कार्य हो सके। ५७

४४०२ वेद-वाणियों के साथ परमेश्वर का कवच पहिन, ज्ञान-वृद्धि से पुष्ट हो; ऐसा न हो कि साहसी-हरणकर्ता-निर्भय काल रूपी अग्नि तुझे सब तरफ से घेर ले। ५८

४४०३ दण्डं हस्तादाददानो गतासोः सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वा मृधो अभिमातीर्जयेम ॥ ५९
४ धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।
समागृभाय वसु भूरि पुष्टमर्वाङ् त्वमेह्युप जीवलोकम् ॥ ६०

यह काण्ड १८ का प्रपाठक ३३, सूक्त २, अनुवाक २, पूर्ण समाप्त हुआ।

प्रपाठक ३४ अनुवाक-सूक्त ३

विषय— विधवापत्काल–निर्णयादि अन्त्येष्टि–विधानादि सुकर्माणि इत्यादि चितायां होमविधानादि सुरभीणि हवनानि कार्याणि परजन्मलोकादि मृत्यु–निवारणादि पुनर्जन्मादि दाहविधान० चितायां शतधारेत्यादि विधान विद्या —महर्षि दयानन्द सरस्वती सूक्त ३ पर्याय १

५ इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम् ।
धर्मं पुराणमनु पालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणञ्चेह धेहि ॥ १
६ उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकङ्गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥ २
७ अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परि णीयमानाम् ।
अन्धेन यत्तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम् ॥ ३
८ प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकं देवानां पन्थामनु सञ्चरन्ती ,
अयं ते गोपतिस् तञ्जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोहयैनम्, ॥ ४

पर्याय २

९ उप द्यामुप वेतसमवत्तरो नदीनाम । अग्ने पित्तमपामसि ॥ ५
१० यं त्वमग्ने समदहस् तमु निर्वापया पुनः ।
क्याम्बूरत्र रोहतु शाण्डदूर्वा व्यल्कशा ॥ ६
११ इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
संवेशने तन्वा चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे ॥ ७
१२ उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे ।
तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः ॥ ८
१३ प्र च्यवस्व तन्वं सं भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।
मनो निविष्टमनु संविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ॥ ९
१४ वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन ।
चक्षुषे मां प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु ॥ १०

४४०३ मरे और मरे-समान राजा के हाथ से दण्ड, श्रवण-अधिकार, तेज-बल के साथ, लेकर तू यहाँ रह; और हम सुवीर सब अभिमानी दुष्ट-सेनाओं को जीतें। ५९

४ मरे या मरे-समान राजा के हाथ से, क्षत्र-वर्च-बल-सहित, धनुष लेता हुआ तू बहुत पुष्ट कोश लेकर सजीव प्रजा के सामने आ। ६०

अनुवाक-सूक्त ३

पर्याय १

५ हे मनुष्य! मरे के पास की यह नारी पुनः पति-लोक चाहती, पुराना धर्म पालती हुयी, तुझे मिल रही है उस के लिए यहाँ सन्तान और धन दे। १

६ हे नारी! तू इस मरे पति को छोड़कर उठ, जीवित लोक की ओर आ, इस हाथ पकड़ने वाले तेरे पोषक पति की यह सन्तान सुखी रहे। २

७ मैं इस जीवित युवति को मरों से अलग ले जायी जाती पुनर्विवाहित देखूँ, जो घने शोकान्धकार से घिरी हो उसे शव-यात्रा में आगे से हटाकर पीछे वापस ले आऊँ। ३

८ हे अहिंसनीय (विधवा)! तू जीवित समाज को जानती, विद्वानों के पद पर चलती हुयी यह तेरा गौ-रक्षक नया पति है उसे पा, इसे स्वर्गलोक [गृहस्थ] में चढ़ा। ४

पर्याय २

९ हे अग्नि, तू द्यौ-वेंत(लकड़ी)-नदीय-प्रवाहों में उपस्थित, जल का पित्त [तेज] है। ५

१० हे अग्नि, जिसे तू जलाती उसको फिर बोने-योग्य कर। यहाँ काई-जल, बन-दूब घास उगे। ६

११ यह तेरा एक स्थूल शरीर, दूसरा सूक्ष्म है, तीसरी ज्योति के साथ मोक्ष पा; उसके बाद फिर जन्म लेकर घर में शरीर से शोभायमान, उच्च समाज मे विद्वानों का प्रिय होकर बढ़। ७

१२ उठ, आगे बढ़, दौड़, जल-युक्त घर में स्थान बना, वहाँ पितरों से मिलता हुआ सोम (दूध) और अन्नों से हृष्ट हो। ८

१३ आगे बढ़, शरीर पुष्ट कर, तेरे अङ्ग और शरीर न बिगड़ें, जहाँ मन लगे वहाँ काम कर; भूमि से जहाँ प्रेम हो वहाँ जा। ९

४४१४ सौम्य पितर-देव मुझे तेज-मधु-घी से दीप्त करें; दिव्य दृष्टि के लिए वे मुझको आगे बढ़ाते पार कराते हुए स्तुति के लिए बुढ़ापे तक बढ़ायें। १०

४४१५ वर्चसा मा समनक्त्वग्निर् मेधा मे विष्णुर्न्यनक्त्वासन् ।
रयिं मे विश्वे नि यच्छन्तु देवाः स्योना मापः पवनैः पुनन्तु ॥ ११
१६ मित्रावरुणा परि मामधातामादित्या मा स्वरवो वर्धयन्तु ।
वर्चो म इन्द्रो न्यनक्तु हस्तयोर्जरदष्टिं मा सविता कृणोतु ॥ १२

पर्याय ३

१७ यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम् ।
वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥ १३
१८ परा यात पितर आ च यातायं वो यज्ञो मधुना समक्तः ।
दत्तो अस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥ १४
१९ कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः ।
विश्वामित्रोऽयञ्जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः ॥ १५
२० विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव ।
शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुसंशासः पितरो मृडता नः ॥ १६
२१ कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतरं नवीयः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेनाध स्याम सुरभयो गृहेषु ॥ १७
२२ अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते ॥ १८
२३ यद्वो मुद्रं पितरः सोम्यं च तेनो सचध्वं स्वयशसो हि भूत ।
ते अर्वाणः कवय आ शृणोत सुविदत्रा विदथे हूयमानाः ॥ १९
२४ ये अत्रयो अङ्गिरसो नवग्वा इष्टावन्तो रातिषाचो दधानाः ।
दक्षिणावन्तः सुकृतो य उ स्थासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥ २०
२५ अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशशानाः ।
शुचीदयन् दीध्यत उक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥ २१
२६ सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं वावृधन्त इन्द्रमुर्वीं गव्यां परिषदं नो अक्रन् ॥ २२
४४२७ आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यत् देवानां जनिमान्त्युग्रः ।
मर्तासश्चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥ २३

४४।५ अग्नि मुझे वर्च से युक्त करे, विष्णु (यज्ञ-परमेश्वर) मेरे मुख में मेधा-युक्त वाणी प्रकट करे, सब देव मुझे ऐश्वर्य दें, वायु के साथ जल मुझे पवित्र करें। ११

१६ मित्र-वरुण (प्राणोदान, हाइड्रोजन-आक्सीजन) मुझको पुष्टि-वस्त्र पहिनायें, अच्छी गतिवाले आदित्य (१२ मास, आदित्य ब्रह्मचारी) मुझको बढ़ायें; इन्द्र (सम्राट्-विद्युत्) मुझे हाथों में बल दे, सविता (परमेश्वर-सूर्य) मुझे वृद्धावस्था तक पहुंचाये। १२

पर्याय ३— १७ जो मर्त्यों को पहले मारता, इस लोक में पहले आता, जनों के सङ्ग चलने वाले सूर्य-पुत्र उस राजा यम (काल) को यज्ञ से उपयोगी बनाओ। १३

१८ हे पितरो! दूर जाओ-आ जाओ; तुम्हारा पितृयज्ञ मधु से युक्त हो, तुम हमें यहाँ धन दो; और हमें सब वीर-ऐश्वर्य दो। १४

१९ ये ऋषि (गुणी और प्राण) हमारी रक्षा करें— १ कण्व [मेधावी, नेत्र प्राण], २ कक्षीवान् [प्रकाश में कटि-बद्ध, दाँतों कड़ों का] ३ पुरुमीढ [बहुत वीर्य-सेचक, मूत्रादि-निष्कासक प्राण] ४ अगस्त्य [विघ्न-पर्वत-छेदक, मेरुदण्ड-स्तम्भक] ५ श्यावाश्व [ज्ञान-व्याप्त, इन्द्रियों से गतिशील, नीली-लाल नाड़ियों का] ६ सोभरि [क्लेश-हारी; फेफड़ों का] ७ अर्चनाना [अर्चना में गतिवाला, मस्तिष्क का] ८ विश्वामित्र [सब का मित्र, कानों का] ९ जमदग्नि [दिव्य-दृष्टि, चक्षुओं का] १०. अत्रि [तीन ताप-रहित, वाणी-युक्त, जीभ-मुख का] ११ कश्यप [पश्यक-द्रष्टा, कूर्म-नाभि का] १२ वामदेव [उत्तम व्यवहारी, परमात्म-सौन्दर्योपासक, वाम भाग हृदय का प्राण]। १५

२० हे विश्वामित्र, जमदग्नि, १३ वसिष्ठ [अत्यन्त श्रेष्ठ, सुखप्रापक विद्वान्, वाणी का प्राण], १४. भरद्वाज [विज्ञान-अन्न-बल-धारक, मन-चित्त] १५ गोतम [स्तुतिकर्ता, विद्यामिलापी, व्यान,] वामदेव, मुद्गल पितरो! जो अत्रि अन्नों से नाश रोक देता है वैसे हमारी रक्षा करो। १६

२१ प्रजापति परमात्मा रूपी लूप में अपने को शुद्ध करते हुए उपासक पाप-मल दूर कर अति नयी आयु धारण करते हैं, हम सन्तान-धन से तृप्त होकर घरों में सुगन्धित यशस्वी हों। १७

२२ सोने-समान शुद्ध-पवित्र उपासक पवित्रता-अञ्जन लगाते, विविध व्यञ्जन सेवन करते, सत्सङ्ग करते, कर्म मधुरता से करते; उसका मीठा फल चखते हैं। इन क्रियाओं में वे हृदय-सिन्धु के उच्छ्वास में अचानक प्रकट हुए आनन्द-सिंचक पशु [द्रष्टा परमात्मा] को जान लेते हैं। १८

यह मन्त्र ऋ० ९-८६-४१ में और साम वेद में दो बार संख्या ५६४ और १६१४ में भी है।

२३ हे पितरो! जो तुम्हारा प्रसन्न-सौम्य स्वभाव है उससे हमें सींचो और यशस्वी बनो। हमारी ओर आने वाले, गोष्ठियों में निमन्त्रित सुविज्ञ वे यज्ञ में हमारी प्रार्थना सुनें। १९

२४ जो त्रिविध ताप-रहित, प्राण-विद्या-वेत्ता, नगर-विद्या-ज्ञाता; याज्ञिक, क्रिया-द्वारा-शोधक, दक्षिणा-योग्य, सुकर्मी हों वे इस यज्ञ में पहुंच कर हृष्ट हुआ करें। २०

२५ हे अग्रणी! जैसे हमारे श्रेष्ठ पितर सत्य का आश्रय लेकर पवित्र होते हैं वैसे ही सभी ध्यानी वेदोपदेशक भूमि को हवन के लिए खोदते हुए ज्ञान के आवरण हटायें। २१

२६ जैसे सोना-लौह आग से शुद्ध करते हैं वैसे ही सुकर्मी-सुरुचि-प्रीति-युक्त विद्वान् ईश्वर की कामना करते हुए जीवन को यज्ञाग्नि से शुद्ध कर आत्म-शक्ति बढ़ा महापरिषद् चलाते हैं। २२

४४२७ जैसे ग्वाला घास के मैदान में पशुओं को देखता है वैसे ही उग्र ईश्वर देवों के जीवन देखता है। मेघ-बिजली को जगत्-स्वामी के समान मनुष्य भी आयु-वृद्धि के लिए बिजली आदि पैदा करें। २३

४४२८ अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ २४
पर्याय ४ २९ इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २५
३० धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिशः... [शेष २५ के समान] ॥ २६
३१ अदितिर्मादित्यैः प्रतीच्या दिशः... „ ॥ २७
३२ सोमो मा विश्वैर्देवैरुदीच्या दिशः ... „ ॥ २८
३३ धर्ता ह त्वा धरुणो धारयाता ऊर्ध्वं भानुं सविता द्यामिवोपरि । „ ॥ २९
पर्याय ५, ३४ प्राच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहु... „ ॥ ३०
३५ दक्षिणायां „ „ ॥ ३१
३६ प्रतीच्यां „ „ ॥ ३२
३७ उदीच्यां „ „ ॥ ३३
३८ ध्रुवायां „ „ ॥ ३४
३९ ऊर्ध्वायां „ „ ॥ ३५
पर्याय ६, ४० धर्तासि धरुणोऽसि वंसगोऽसि ॥ ३६
४१ उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि ॥ ३७
४२ इतश्च मामुतश्चावतां यमे इव यतमाने यदैतम् ।
प्र वां भरन् मानुषा देवयन्तो आ सीदतां स्वमु लोकं विदाने ॥ ३८
४३ स्वासस्थे भवतमिन्दवे नो युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः ।
वि श्लोक एति पथ्येव सूरिः शृण्वन्तु विश्वे अमृतास एतत् ॥ ३९
४४ त्रीणि पदानि रुपो अन्वरोहच्चतुष्पदीमन्वैतद् व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिमीते अर्कमृतस्य नाभावभि सं पुनाति ॥ ४०
४५ देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै किममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषिः प्रियां यमस्तन्वमा रिरेच ॥ ४१
पर्याय ७— ४६ त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वा ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥ ४२
४७ आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥ ४३
४४४८ अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः सदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥ ४४

४४२८ हे परमेश्वर ! हम कर्म करें, सत्य फैलाएँ, सुकर्मी हों, चमकती उषाएँ फलें; वह सब भद्र हो जिसकी रक्षा विद्वान् किया करते हैं, हम उत्तम वीर होकर सभा में बढ़कर बोलें। २४

पर्याय ४

२६ मरुतों (प्राणों) वाला इन्द्र (सूर्य) पूर्व दिशा से मेरी रक्षा करे, जैसे ईश्वरीय बल-पराक्रम से गिरी पृथिवी अपने ऊपर प्रकाश रखती है। हम लोक-रक्षकों, पथ-प्रदर्शकों का सङ्गति-सत्कार करें जो यहाँ विद्वानों-मध्य यज्ञ-शेष के भागी दान-गृहीता हैं। २५ [अन्तिमांश आगे ३६ तक में भी]

३० धाता (परमेश्वर और बिजली) मुझे पृथिवी की दक्षिण दिशा से बचाये[शेष २५ के समान] २६

३१ अदिति माता पृथिवी मुझको सायं-किरणों द्वारा पश्चिम ,, । २७

३२ सोम चन्द्रमा और चुम्बक मुझे सब देवों द्वारा उत्तर ,, । २८

३३ सब का धारक सर्वाधार सविता परमात्मा तुझको ऊपरि भानु-द्यौ-समान ,, । २६

पर्याय ५

३४-३६ [हे मनुष्य !] तेरी जीवन-समाप्ति से पहले तक मैं तुझे अपनी धारक शक्ति और अन्न में पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर-नीचे-ऊपरि सभी दिशाओं में धारण करता हूं। हे परमात्मा! मैं जीवन तक तुझको सभी दिशाओं में अपनी आत्मा में धारण करूँ। (शेष २५ के समान)। ३०-३५

पर्याय ६

४० (हे परमात्मा और सूर्य !) तू धर्ता-सर्वाधार-आदरणीय-गति-सुख-प्रापक-सेवनीय है। ३६

४१ तू भूमि को जल-मधुरता-वायु से पूर्ण करने वाला है। ३७

४२ (हे द्यावा-पृथिवी !) तुम जुड़वाँ के समान यत्न करतो जब गतिशील हो तो यहाँ-वहाँ से मेरी रक्षा करो, देव बनने के इच्छुक मानव तुम्हें भरदें, अपना लोक जानती स्थित रहो। ३८

४३ तुम यज्ञ के लिए उत्तम सम्पन्नकर्ता बनो; मैं तुम्हारे लिए नमः-सहित उत्तम मन्त्र प्रयुक्त करूँ जो विद्वान् के समान पथ पर चलता है, यह सब अमर आत्माएं सुनें। ३६

४४ विमोहित उपासक तीन पद अ-उ-म् पर चढ़ता है, इस धृत से ब्रह्म की चौथी अमात्र अवस्था तक पहुंचता; ओम् अक्षर से उसे जानता; सत्य के केन्द्र में पवित्र होता है। ४०

पैंतालीस— परमात्मा ने देवों के लिए सुखद मौत स्वीकार की तब क्या प्रजा के लिए अमृत नहीं? वह द्रष्टा बड़े पति नियन्ता सृष्टि-यज्ञ फैलाता; प्रिय तनु योगी को मुक्त करता है। (इकतालीस)

पर्याय ७

छियालीस— हे अग्नि ! स्तुत तू हव्य सुगन्धित कर ले जाता और सूर्य-किरणों को ये देता है। वे उनको ले कर फैलाती हैं; हे दिव्य ! तू वे दिये हव्य ले। (ब्यालीस) ऋ १०-१५-१२, य १६-६६

सैंतालीस— उषाओं के पास में स्थित पितर-किरणें दानी मनुष्य के लिए रयि, पुत्रों के लिए धन दें जिन से वे यहाँ बल धारण कर सकें। (तितालीस)

अड़तालीस— अग्निष्वात्त अग्नि-विद्या-ज्ञाता; अग्निहोत्र करके ही खानेवाले उत्तम नीतिज्ञ पितर यहाँ आयें, स्थान-स्थान पर बैठें, यज्ञ में दी हवियाँ खायें और हमें सब वीरयुक्त धन दें। (चवालीस)

उनंचास— इन यज्ञों प्रिय निधियों में बुलाये हमारे सोम-सम्पादक पितर आयें, हमारी बात सुनें, उपदेश दें, हमारी रक्षा करें। (पैंतालीस)

पचास— जो हमारे पिता के श्रेष्ठ पितर-पितामह ऐश्वर्य-रक्षा करते हैं उन शुभैषियी जन-सहित रमा हुआ यम (आचार्य) इच्छानुसार हवियाँ खाये। (छियालीस)

४४४९ उपहूता नः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु।
ता आ गमन्तु य इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु ते ऽवन्त्वस्मान् ॥ ४५
५० ये नः पितुः पितरो ये पितामहा अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ४६
५१ ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः सत्यैः कविभिर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ॥ ४७
५२ ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेण।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् परैः पूर्वैर्ऋ... [पूर्ववत्] ,, ॥ ४८
पर्याय ८— ५३ उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम्।
ऊर्णम्रदाः पृथिवी दक्षिणावत एषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ॥ ४९
५४ उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपसर्पणा।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ५०
५५ उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम्।
ते गृहासो घृतश्चुतः स्योना विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥ ५१
५६ उत् ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम्।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु ॥ ५२
५७ इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम्।
अयं यश्चमसो देवपानस् तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ताम् ॥ ५३
५८ अथर्वा पूर्णं चमसं यमिन्द्रायाबिभर्वाजिनीवते।
तस्मिन् कृणोति सुकृतस्य भक्षं तस्मिन्निन्दुः पवते विश्वदानीम् ॥ ५४
५९ यत् ते कृष्णः शकुन आ तुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः।
अग्निष्टद्विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आ विवेश ॥ ५५
६०. पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकंपयः। अपां पयसो यत्पयस्तेन मा सह शुम्भतु ॥ ५६
पर्याय ९— ६१.इमा नारीरविधवा सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम्।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ ५७
६२ सङ्गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन्।
हित्वावद्यं पुनरस्तमेहि सङ्गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥ ५८
४४६३ ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आ विविशुरुर्वन्तरिक्षम्
तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्वः कल्पयाति ॥ ५९

अथर्व वेद १८-३-४७

४४५१ हे यज्ञ की आग और अगणी ! तू इन किरणों और सच्चे तपो-निष्ठ देव-वन्दिन व हजारों कवि-ऋषियों के साथ आ जो देवों में प्रयत्नशील, यज्ञ-वेत्ता, मन्त्रों से स्तोमों में ढले हैं। ४७

५२ जो सत्य, हवि-भक्षक-रक्षक, इन्द्र-देवों (सूर्य-बिजली, और सम्राट्-विद्वानों) आदि के साथ रमणीय रथ-स्थान में शीघ्र गति-शील हैं उन सायं-प्रातः किरणों तथा ऋषियों के साथ आ। ४८

पर्याय ८

५३ तू बहुत विस्तृत-सुखद इन माता-भूमि में पहुंच, यह उन के तुल्य कोमल होकर कर्म-फला धारी तेरे सामने सुपथ पर पालन करे। ४९

५४ हे पृथिवी, तू उन्नत हो, बाधा न पहुँचा, इस के लिए अच्छी भेंट वाली, सञ्चार-योग्य बन जैसे माता पुत्र को आँचल से ढंकती है वैसे ही तू सब ओर से आश्रय दे। ५०

५५ उन्नत पृथिवी सुस्थित हो, इसपर हजारों बने घर आश्रित हों, वे घी भरे सदा सुखद और शोषित वर्ग के लिए यहाँ रक्षक हों। ५१

५६ मैं तेरे लिए यह पृथिवी ऊपर उठाकर प्रकट करता हूं, यह गर्भ कोश और लकड़ी की कुटी बनाता हुआ मैं चोट न खाऊँ। इस उन्नत पृथिवी को किरणें धारण करती हैं; सूर्य गर्भ कोश बनाता है। ५२

५७ हे अग्नि, तू यह चमस न बिगाड़, यह देवों-सोमियों को प्रिय है; यह जो देवों के पान का साधन है उससे अमर देव हृष्ट हों। ५३

५८ अथर्वा ईश्वर ने विज्ञानी जीव के लिए जो पूर्ण चमस (मस्तिष्क) दिया है उसमें वह सुकर्म का फल भोगता है, उसमें अमृत-रस सदा बहता है। ५४

५९ जो तुझे कृष्ण शकुनि (काक-श्वान-बाज-चील- या हिंसक पशु काटे तो सर्व-रोग-भक्षी आग (जठराग्नि, सूर्य, चींटी) और सोम (जल-प्राणादि-सान्त्वना-ईश्वर) दवा हो जो वेद-वर्णित है। ५५

६० औषधियाँ दूधवाली; मेरा रस-रक्त-दूध सार वाला हो, वर्षा-जल का जो सार है उसके साथ वैद्य-ईश्वर मुझे शुद्ध-शोभायमान करे। ५६

पर्याय ९

६१ ये नारियाँ विधवा न बनकर कान्तिवर्धक अञ्जन-घी से युक्त रहें। अश्रुरहित, नीरोग, सुन्दर रत्न वाली माताएँ घर में आगे बढ़ी-चढ़ी रहें। ५७

६२ हे जीवात्मा ! तू पितरों (पालक प्राणों; माता-पितादि) से, यम (संयम-आचार्य-काल) से इष्टा-पूर्तों (यज्ञ-परोपकार) के साथ परम रक्षा-स्थान (परमात्मा) में सङ्गत हो और निन्दित कुमार्ग छोड़कर फिर घर आ, उत्तम वर्चस्वी बनकर नये शरीर से सङ्गत हो। ५८

४४६३ जो हमारे पिता के पितर-पितामह हों, जो बड़े अन्तरिक्ष में प्रविष्ट हुआ करते हैं, उन हमारों के लिए स्वयँ प्रकाशमान, प्राणों का नेता परमात्मा सदा उनके कर्म-कामनानुसार शरीरों को बनाता और सामर्थ्य देता है। ५९

४४६४ शं ते नीहारो भवतु शं ते प्रुष्वाव शीयताम् । शीतिके शीतिकावति
ह्लादिके ह्लादिकावति । मण्डूक्यप्सु शं भुव इमं स्वग्निं शमय ॥ ६०
६५ विवस्वान्नो अभयङ्कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः ।
इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन् मय्यस्तु पुष्टम् ॥ ६१
६६ विवस्वान् नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु ।
इमान् रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो मो ष्वेषामसवो यमं गुः ॥ ६२
६७ यो दध्रे अन्तरिक्षे न मह्ना पितॄणां कविः प्रमतिर्मतीनाम् ।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥ ६३
६८ आ रोहत दिवमुत्तमामृषयो मा बिभीतन ।
सोमपाः सोमपायिन इदं वः क्रियते हविरगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ६४
६९ प्र केतुना बृहता भात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ ६५
७० नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ ६६
७१ इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ ६७

पर्याय १०

७२ अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥ ६८
७३ यास् ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास् ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस् तास ते यमो राजानु मन्यताम् ॥ ६९
७४ पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस् त्वयि ।
यथा यमस्य सादन आसातै विदथा वदन् ॥ ७०
७५ आ रभस्व जातवेदस् तेजस्वद्धरो अस्तु ते ।
शरीरमस्य सं दहाथैनं धेहि सुकृतामु लोके ॥ ७१
७६ ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ॥ ७२
४४७७ एतदा रोह वय उन्मृजानः स्वा इह बृहदु दीदयन्ते ।
अभि प्रेहि मध्यतो माप हास्थाः पितॄणां लोकं प्रथमो यो अत्र ॥ ७३

४४६४ तेरे लिए कुहरा शान्तिप्रद हो, वर्षा-जल शान्ति से नीचे गिरे, हे शीतल दूब घास वाली; आह्लादक कमलिनी वाली (भूमि-वापी-प्रजा) ! तू ताल में मेढ़की वत् सुख पा; आग शान्त कर । ६०

६५ विवस्वान् परमेश्वर हमें निर्भय करे जो सुरक्षक, शीघ्र फल-दाता, जीवन-दाता है, यहाँ ये वीर बहुत हों, मुझ पर गौ-अश्व-युक्त पुष्ट धन हो । ६१

६६ विवस्वान् सूर्य हमें अमरता दे, मौत दूर जाए, हमें अमरता मिले; वह इन पुरुषों की बुढ़ापे तक रक्षा करे, इनके प्राण मौत तक सुगमता से न जायें । ६२

६७ जो अन्तरिक्ष में हमें स्व-महिमा से धारण किये है वह पितरों-कवि-नीतिमानों में सर्वाधिक मतिमान् है । हे सबके मित्रो ! हवियों से उसकी अर्चा करो, वह नियन्ता हमें जीवनार्थ पुष्ट रक्खे । ६३

६८ हे ऋषियो ! तुम उत्तम द्यौ (आकाश-वसुन्धरा चक्र) पर चढ़ो, डरो मत । तुम सोम पीने वाले सोम-रक्षक हो, यह हवि तुम्हारे लिए की जाती है; हम उत्तम ज्योति पायें । ६४

६९ अग्नि (सूर्य) बड़े रश्मि-मण्डल से चमकता है, वृषभ वह द्यावा-पृथिवी पर गरजता है, द्यौ के अन्त से हम तक पहुंचता है, जल के समीप मेघ-मण्डल में यह महान् बिजली-रूप बढ़ता है । ६५

७० द्यौ में उपस्थित, सुरश्मि, सुनहरा किरण रूपी पंखवाले, जल के दूत, काल के मूल में गति-कर्ता शक्ति-शाली सूर्य का हृदय से चाहते हुए नम साक्षात् करते हैं । ६६

७१ हे इन्द्र (परमात्मा-सूर्य-विद्युत्-वायु-राजन्) ! हमें क्रतु (कर्म-प्रज्ञा) दीजिए जैसे पिता पुत्रों के लिए देता है, हे बहुत बार पुकारा गया ! तू हमें इस अज्ञान-रात में, गन्तव्य मार्ग में शिक्षा दे कि हम जीव जीते हुए ज्योति पा लें । ६७

[यह मन्त्र ३ वेदों मे ५ बार आया है — आगे २०-७९-१, ऋ. ७-३२-२६, साम २५९, १४५६ ।]

पर्याय १०

७२ (हे मनुष्य !) विद्वान् तेरे लिए जो ज्ञान रूपी पुए-भरे घड़े (ग्रन्थ) और प्राकृतिक देव गर्भकोष (सत्त्व) रखें वे वे स्वयं धारक शक्ति-मधुरता-स्नेह-युक्त हों । ६८ (आगे क्रमांक ४५०२ पर भी है)

७३ मैं तेरे लिए जो शक्तिवाले तिल-मिले धाना (भुने जौ-चावल-चना-परवल-चिउड़े-खीलें-सत्तू) देता हूं वे अधिक और शक्ति-वर्धक हों, उन्हें राजा यम (आचार्य-वैद्य) तुझे अनुमत करें । ६९

७४ हे वन (रश्मि-समूह) के पति सूर्य ! जो यह (हव्य) तुझे दिया है उसे फिर लौटा दे जिससे काल के घर में यज्ञ को बताता हुआ यह वर्तमान रहे । ७०

७५ हे अग्नि ! तू आरम्भ कर, तेरा हरण तेज दीप्त हो, इस हव्य का शरीर जला और इसका भाग सुकर्मियों के लोक में रख । ७१

७६ हे सूर्य ! जो तेरी पूर्व-अपर पितर (किरणें) दूर गयी हैं उनसे वर्षा द्वारा सींचनी हुई शत-धारा वाली जल की नहर आये । ७२

४४७७ हे सूर्य ! तू यह यज्ञ-धूम ऊपर शुद्ध करता हुआ अन्तरिक्ष में चढ़ा; इसमें तेरी अपनी ही किरणें दीप्त हुई हैं । इसे आगे बढ़ा, बीच में न छोड़, इसे रश्मियों के लोक में ले जा जो यहाँ प्रथम मेघ-मण्डल के रूप में है । ७३

—*—

अनुवाक-सूक्त ४

विषय— आरोहत जनित्रीमित्यादि०, पुनर्जन्मादिविधानमित्यादि०, ईश्वरप्रार्थना०, मृतसुखार्थादि०, गमनागमनादि-मृतस्येत्यादि०, अपूपादिसंस्कृतहविविधानादि०, चितायामनेकविध-होमविधानादि०; सरस्वती विधानादि-पदार्थविद्या। — महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

४४७८,आरोहत जनित्रीं जातवेदसः पितृयाणैः सं व आ रोहयामि ।
अवाड्ढव्येषितो हव्यवाह ईजानं युक्ताः सुकृतां धत्त लोके ।।१

७९ देवा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति हविः पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि ।
तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम् ।। २

८० ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति ।
तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति तृतीये नाके अधि विश्रयस्व ।।३

८१ त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः ।
स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा इषमूर्जं यजमानाय दुह्राम् ।। ४

८२ जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं ध्रुवा दाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम् ।
प्रतीमां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गाः कामङ्कामं यजमानाय दुह्राम् ।। ५

८३ ध्रुव आरोह पृथिवीं विश्वभोजसमन्तरिक्षमुपभृदा क्रमस्व ।
जुहु द्यां गच्छ यजमानेन साकं स्रुवेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः सर्वा धुक्ष्वाहृणीयमानः ।। ६

८४ तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति ।
अत्रादधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ।। ७

८५ अङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निरादित्यानामयनं गार्हपत्यो दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्निः ।
महिमानमग्नेर्विहितस्य ब्रह्मणा समङ्गः सर्व उप याहि शग्मः ।। ८

८६ पूर्वो अग्निष्ट्वा तपतु शं पुरस्ताच्छं पश्चात्तपतु गार्हपत्यः ।
दक्षिणाग्निष्टे तपतु शर्म वर्मोत्तरतो मध्यतो अन्तरिक्षात् दिशोदिशो अग्ने परिपाहि घोरात् ९

८७ यूयमग्ने शतमाभिस् तनूभिरीजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
अश्वा भूत्वा पृष्टिवाहो वहाथ यत्र देवैः सधमादं मदन्ति ।। १०

८८ शमग्ने पश्चात्तप शं पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमधरात् तपैनम् ।
एकस् त्रेधा विहितो जातवेदः सम्यगेनं धेहि सुकृतामु लोके ।। ११

पर्याय २ ४४८९ शमग्नयः समिद्धा आ रभन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ।। १२

अनुवाक-सूक्त ४

पर्याय १

४४७८ हे ज्ञानियो ! तुम जन्मदात्री (सृष्टि-पृथिवी- या) पर चढ़ो, मैं तुम्हें पितृ-यानों से सम्यक् चढ़ाता हूं। हव्य-वाहक (अग्नि) ने तुम्हारे हव्य चाहते हुए पाये; हे योगियो ! तुम याज्ञिक को सुकर्मियों के लोक में रक्खो । १

७९ विद्वान् और ऋतुएँ यज्ञ और हवि-पुरोडाश-चमचे-यज्ञ-उपकरण बनाते हैं; उनके बताये देव-यान पथों से जा, जिनसे याज्ञिक स्वर्ग लोक (सुख) पाते हैं । २

८० हे मनुष्य ! तू सत्य का श्रेष्ठ पथ देख जिससे योगी-सुकर्मी जाते हैं । उन मार्गों से स्वर्ग (सुख) पा जहाँ आदित्य ब्रह्मचारी मधुर ज्ञान पाते हैं, दुःख-सुख से परे तीसरे आनन्द में पहुँच । ३

८१ उक्त तीन प्रकार के जीव और मेघ-निर्माता दो (वायु-आदित्य) ताप-रहित आनन्दमय ईश्वर के स्पर्श में आश्रित हैं, अमृत से युक्त स्वर्ग लोक यजमान के लिए ज्ञान-अन्न-ऊर्जा दें । ४

८२ यज्ञ की तीन चम्मचें जुहू-उपभृत्-ध्रुवा क्रमशः द्यौ-अन्तरिक्ष-पृथिवी के समान हैं । ये ३ दीप्तियों से युक्त स्वर्ग लोक यजमान् के लिए प्रत्येक कामना पूर्ण करते हैं । ५

८३ हे ध्रुवा ! तू विश्व को भोजन-दात्री पृथिवी पर चढ़ जा, हे उपभृत ! तू अन्तरिक्ष की ओर पग बढ़ा, हे जुहू ! तू यजमान के साथ द्यौ को जा, स्रुवा रूपी जुहू के वत्स से आप्यायित सब दिशाओं को तू निस्संकोच दुह (इन में भोग्य पदार्थ ले) । ६

८४ मनुष्य तीर्थों (नावों) के समान उन तारने वाले कर्मों से दूर तक के बड़े भू-भाग और कार्य पार कर जाते हैं अतः याज्ञिक-सुकर्मी जिस मार्ग से जाते और दिशा-प्राणियों को समर्थ बनाते हैं उसी से याज्ञिक को आलोक देते हैं । ७

८५ प्राणों का स्थान-मार्ग आहवनीय अग्नि (सूर्य), आदित्यों का गार्हपत्य (वीर्य-पृथिवी), गति-शील शरीर-उष्माओं और दक्षिणा-दाताओं का दक्षिणाग्नि (अन्तरिक्ष-वायु-बिजली) है । अग्नि-युक्त-अङ्ग शान्त-सुखी होकर ब्रह्म-विहित अग्नि की महिमा समझकर भक्ति कर । [प्राण आहवनीय, वीर्य गार्हपत्य, जठर में अन्न-पाचक दक्षिणाग्नि का ठीक प्रयोग करना चाहिए ।]८

८६ तुझे पहली आग (आहवनीय-सूर्य-प्राण) सामने से, गार्हपत्य (वीर्य-पृथिवी) पीछे से शान्ति के साथ तपाये, दक्षिण आग तुझे उत्तर-मध्य-अन्तरिक्ष से सुखद कवच बने, हे आग ! तू प्रत्येक दिशा से इसे भयानक कष्ट से बचा । ९

८७ हे अग्नि ! तुम कल्याणकारी दीप्तियों से याज्ञिक का पृष्ठवाही अश्व बनकर ऐसे सुखमय स्थान पर ले जाओ जहाँ देव-सहित पारस्परिक आनन्द में व्यस्त रहा जाता है । १०

८८ हे आग ! तू इसे पीछे-सामने-बाएँ-नीचे से कल्याण के लिए तपा, एक ही तू तीन प्रकार का बनकर इसे सुकर्मियों के स्थान में सम्यक् रख । ११

पर्याय २

४४८९ हे घरों में विद्यमान तीन अग्नियो ! पूर्वोक्त तुम प्राजापत्य यज्ञ आरम्भ करो, यहाँ गृहस्थ को परिपक्व करती हुई निन्दा का पात्र न बनाओ । १२

४४९०. यज्ञ एति विततः कल्पमान ईजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
तमग्नयः सर्वहुतं जुषन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः। शृतङ्कृण्वन्त इह मावचिक्षिपन्॥ १३
९१ ईजानश्चितमारुक्षदग्निं नाकस्य पृष्ठाद्दिवमुत्पतिष्यन् ।
तस्मै प्रभाति नभसो ज्योतषीमान्त्स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः ।। १४
९२ अग्निर्होताध्वर्युष्टे बृहस्पतिरिन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस् ते अस्तु ।
हुतोऽयं संस्थितो यज्ञ एति यत्र पूर्वमयनं हुतानाम् ।। १५

पर्याय ३

९३ अपूपवान्क्षीरवाँश्चरुरेह सीदतु। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ॥ १६
९४ ,, दधिवांश ;, ॥ १७
९५ ,, द्रप्सवांश ,, ॥ १८
९६ ,, घृतवांश ;; ॥ १९
९७ ,, मांसवांश ,, ॥ २०
९८ ,, अन्नवांश ,, ॥ २१
९९ ;; मधुमांश ,, ॥ २२
४५०० ,, रसवांश ,, ॥ २३
१ ,, अपवांश ,, ॥ २४
२ अपूपापिहितान्... [शेष पहले आये संख्या ४४७२ (पृष्ठ ५३२) के समान] ॥ २५
३ यास् ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास् ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस् तास् ते यमो राजानु मन्यताम् । २६
४ अक्षितिं भूयसीम् ।। २७

पर्याय ४

५ द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ।। २८
६ शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस् ते अभि चक्षते रयिम् ।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सर्वदा ते दुह्रते दक्षिणां सप्तमातरम् ॥ २९
७ कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलमिडां धेनुं मधुमतीं स्वस्तये ।
ऊर्जं मदन्तीमदितिं जनेष्वग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ।। ३०
८ एतत् ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे। तत् त्वं यमस्य राज्ये वसानस् तार्प्यं चर ॥ ३१
९ धाना धेनुरभवत् वत्सो अस्यास् तिलोऽभवत्। तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुपजीवति ॥ ३२
४५१० एतास् ते असौ धेनवः कामदुघा भवन्तु ।
एनीः श्येनीः सरूपा विरूपास् तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु त्वात्र ।। ३३

४४६०. समर्थ होता हुआ यज्ञ याज्ञिक को सुखमय लोक पहुँचाता है। उस सर्व-त्यागी प्राजापत्य यज्ञ को जातवेदस अग्नियाँ सेवन करें, परिपक्व करती हुई इसे अस्त-व्यस्त न करें। १३

६१ याज्ञिक चिता की आग पर जलता हुआ मोक्ष के स्पर्श से द्यौ की ओर जाता है, उस सुकर्मी के लिए आकाश का ज्योतिष्मान् देवयान स्वर्ग-पथ प्रभासित हो जाता है। १४

६२ तेरे यज्ञ का होता अग्नि, अध्वर्यु बृहस्पति (वायु), दक्षिण की ओर ब्रह्मा इन्द्र (बिजली) है यह हुत-संस्थित यज्ञ वहाँ जाता है जहाँ पहले गये हुओं का गमन हुआ। १५

पर्याय ३

४४६३-४५०१ यहाँ पुत्रों के साथ दूध-दही-लस्सी-घी-फलगूदा-अन्न-शहद-रस-पानी वाला चरु बना रहे। हम तुम लोकोपकारी-पथ-प्रदर्शकों की सङ्गति करें जो यहाँ देवों के हुत-भागी हों। १६-२४

शरीर-रचना-यज्ञ में अपूप सछिद्र-जाल वाला गर्भकोश है जिसमें ९ कोष हैं। यज्ञ-नाटक में चरु-रूप में दिखाये जाते हैं क्रमशः वीर्य-श्लेष्मा-रक्तबिन्दु-मज्जा-मांस-हड्डी-मेद-रस-प्राण हैं। २४

२ [पहले क्रमांक ४४७२ पर १८-३-६८ में (पृष्ठ ५३२ पर) आ चुका है।] प्राकृतिक देव जो छिद्र-सहित गर्भ कोश तुझे धारण कराते हैं वे मेद-हड्डी-मज्जा से युक्त हों। २५

३ जो तेरी धमनियाँ तिल-समान छोटे गर्भ-कोष-सहित शक्ति-शाली देता हूं वे अंकुरित बहुत ताने-बाने के समान हों; राजा काल इनको अनुमति दे। २ [यह आगे संख्या ४३ पर भी है। २६

३ जीवन-सम्पत्ति अक्षय-बहुत रहे। २७

पर्याय ४

५ द्रप्स (दर्प-युक्त मोह-पूर्ण जीवात्मा) पृथ्वी-द्यौ के अनुसार इस ओर दूसरी योनि में आता है समान योनि में जाते हुए मनुष्य को मैं ७ सुषुम्णा-चक्र और ७ छन्दामयी वेद शाखियाँ देता हूं।

६ नरों की दर्शक इन्द्रियाँ शत धारा वाले ज्ञान को, तेज वाले चित, पुष्टि-कारक रूप तरङ्ग को बताती हैं जो पालते, सदा शक्ति देते हैं, वो ७ माता (धातु) वाली दक्षिणा (काया) का दुहती हैं। २८

७ हे ज्ञानी! तू परम रक्षा में कल्याण के लिए जनों में बल-दायक अनन्य मधुरता-युक्त इडा (वेद-वाणी-गौ) की हिंसा न कर। इसका चार थन का कोश-कलश दुहते हैं और चार बिल वाले हृदय-कलश से आनन्द-रस को दुहते हैं। ३०

८ देव सविता (परमात्मा-सूर्य-राजा) भरण-पोषण के लिए तुझे निवास-वस्त्र-शरीर देता है अतः तू इस के राज्य में रहता हुआ तृप्ति-कारक अन्न खा। ३१

९ धारण-कर्त्री नाडी गौ-समान, इसके वत्स-समान तिल (ग्रन्थि) हुई। काल के राज्य में बसे अक्षय रखकर मनुष्य जीवित रहता है। ३२

४५१० ये तेरी धेनुएं (नाड़ियाँ) रूपी गौएँ कामना के अनुसार फल दुहाने (देने) वाली हों। ये यहाँ अरुण रङ्ग की वात-नाड़ियाँ, सफेद कफ-नाड़ियाँ, लाल रक्त-वाहिनी धमनियाँ और विष रूप नीली शिराएँ सब प्रकार की गौ रूपी नाड़ियाँ वत्स रूपी ग्रन्थि-सहित तेरे पास ठीक रहें। ३३

४८११ एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस् ते ।
तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः ॥ ३४
१२ वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रं शतधारमुत्सम् ।
स बिभर्ति पितरं पितामहान् प्रपितामहान् बिभर्ति पिन्वमानः ॥ ३५
१३ सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे ।
ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधाभिः ॥ ३६

पर्याय ५

१४ इदङ्कसाम्बु चयनेन चितं तत् सजाता अव पश्यतेत ।
मर्त्यो ऽयममृतत्वमेति तस्मै गृहान् कृणुत यावत्सबन्धु ॥ ३७
१५ इहैवैधि धनसनिरिहचित्त इहक्रतुः । इहैधि वीर्यवत्तरो वयोधा अपराहतः ॥ ३८
१६ पुत्रं पौत्रमभि तर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः ।
स्वधां पितृभ्यो अमृतं दुहाना आपो देवीरुभयांस्तर्पयन्तु ॥ ३९
१७ आपो अग्निं प्र हिणुत पितॄँरुपेमं यज्ञं पितरो मे जुषन्ताम् ।
आसीनामूर्जमुप ये सचन्ते ते नो रयिं सर्ववीरं नि यच्छान् ॥ ४०
१८. समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम् । स वेद निहितान्निधीन् पितॄन् परावतो गतान् ॥ ४१
१९. यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते । ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥ ४२
२० यास्ते... [पूर्वागत ४५०३] ॥ ४३
२१ इदं पूर्वमपरं नियानं येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
पुरोगवा ये अभिशाचो अस्य ते त्वा वहन्ति सुकृतामु लोकम् ॥ ४४
२२-२४ सरस्वतीं देवयन्तो०, सरस्वतीं पितरो०, सरस्वति० [पहले ४३२४-२६] ४५-४७

पर्याय ६

२५ पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि देवो नो धाता प्र तिरात्यायुः ।
परापरैता वसुविद् वो अस्त्वधा मृताः पितृषु सं भवन्तु ॥ ४८
२६ आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां यद् वामभिभा अत्रोचुः ।
अस्मादेतमघ्न्यौ तद् वशीयो दातुः पितृष्विहभोजनौ मम ॥ ४९
२७ एयमगन् दक्षिणा भद्रतो नो अनेन दत्ता सुदुघा वयोधाः ।
यौवने जीवानुप पृञ्चती जरा पितृभ्य उप संपराणयादिमान् ॥ ५०
२८ इदं पितृभ्यः प्र भरामि बर्हिर्जीवं देवेभ्यः उत्तरं स्तृणामि ।
तदारोह पुरुष मेध्यो भवन् प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ॥ ५१

४५११ तेरी ये अरुण-सफेद-नीली-गनी-लाल नाड़ी रूपी गौएँ तिज्ञ(गृन्थि) रूपी वत्सों वाली सदा अविचल रह कर बल दुहाने वाली हों। ३४

१२ मैं इस हजारों की पालक; सैकड़ां धारा वाली रोम-कूप रूपी हवि वैश्वानर में देता हूं, वह सिंचित-प्रसन्न होकर पिता-पितामहों-प्रपितामहों को धारण करती है। ३५

१३ सूर्य-किरणें और माता-पिता उस जीव के पास हो जाते हैं जो सहस्र-धार, शत-धार, शक्ति का भण्डार; आकाश की पीठ पर विचरने वाला, रस-गृहीता, अकुटिल-अजिनाशी है। ३६

पर्याय ५

१४ यह कानार-जल चयन से एकत्र है, सम्बन्धी आकर देखा करें। यह मनुष्य मुक्ति लक्ष्य वाला है, जितने सबन्धु हैं सब उसके लिए घर-आश्रम बनायें। ३७

१५ तू यहीं धन-भागी हो, बढ़, यहाँ चित्त लगा, कर्म कर, बली-आशुधारी-अपराजित बढ़। ८

१६ पुत्र-पौत्र का तृप्ति-कारक यह मधुर जल पितरों के लिए अन्त-मोच देकर दोनोंको तृप्त करे। ३६

१७ जल अग्नि-प्राणों को बढ़ाये, मेरे पितर इस यज्ञ का सेवन करें, जो संगृहीत अन्न सेवन करते हैं वे हमें सब वीरों वाला धन दें। ४०

१८ जो अमर भक्ति-हवि-वाहक स्नेह-प्रिय परमात्म-अग्नि को सम्यक् दीप्त करता है वह छिपी निधियौं, दूर गये पितरों को जानता है। ४१

१९ मैं तुझे जो मट्ठा-भात-फल-गूदा देता हूं वे सभी शक्तिवाले-मधुर-घी-युक्त हों। ४२

२० [पहले क्रमांक ४५०३ में पृष्ठ ५३७ पर आचुका है।]

२१ यह पहला-अगला मार्ग है जिससे श्रेष्ठ पितर जाते हैं,ज नेता-यक्ता है वे तुझे सुकर्मी-लोक लेजायें।

२२-२४[पहले ७-[illegible]८-१-३ क्रमांक ४३२४-२६ मे पृष्ठ ५१५ आचुके हैं, ऋ १०.१७.७-९ में भी हैं]

पर्याय ६

२५ तेरी पृथ्वी की काया पृथ्वी में प्रवेश करता हूं, धाता देव परमात्मा हमारी आयु बढ़ाता है, दूर से दूर पहुंचा वह तुम्हें धन-दाता हो और पितरों में मरे हुए फिर जन्म लें। ४८

२६ पति-पत्नी उस पाप को छोड़ दें, हटा दें जिसे यहाँ आचार्य बताते हैं, अतः मौत से बच कर अभीष्ट मार्ग पर आओ, पितरों में मुझ दाता के यहाँ-पालक बनो। ४९

२७ हमें परमात्मा से कल्याण के लिए यह दक्षिणा (काया) मिली है, यह उत्तम फल वाली, आयु-धारक है; यौवन में जीवितों को मिला बुढ़ापा इन्हें पितरों के लिए सौंप देता है। ५०

२८ मैं परमात्मा इस जीव के लिए किरणों से मेघ-उदक (शरीर-बीज) देता हूं, फिर देवों के पास भेजतता हूं। मैं गृहस्थ पितरों के लिए कुशासन, विद्वानों के लिए उत्तम आसन लाता-बिछाता हूं। हे पुरुष ! तू यज्ञ-योग्य होता हुआ उस पर चढ़, तेरे पितर तुझे आया हुआ जान लें। ५१

४५२८ एदं बर्हिरसदो मेध्यो ऽभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ।
यथापरु तन्वं सं भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ।। ५२

३० पर्णो राजापिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन् ।
आयुर्जीवेभ्यो विदधद्दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।। ५३

३१. ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्मान्नानामाधिपत्यं जगाम ।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ।। ५४

३२. यथा यमाय हर्म्यमवपन् पञ्च मानवाः । एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूरयोऽसत ।। ५५

३३.इदं हिरण्यं बिभृहि यत्ते पिताबिभः पुरा । स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृड्ढि दक्षिणम् ।।५६

३४.ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः।तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती ५७

३५ वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूरो अह्नां प्रतरीतोषसो दिवः ।
प्राणः सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन् मनीषया ।। ५८

३६.त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षञ्छुक्र आततः। सूरो नहि द्युता त्वङ्कृपा पावक रोचसे ।।५९

३७ प्र वा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरः ।
मर्य इव योषाः समर्षसे सोमः कलशे शतयामना पथा ।। ६०

पर्याय ७

३३८. अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूषत । अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ।।६१

३९ आ यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः ।
आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ।। ६२

४० परा यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः ।
अधा मासि पुनरा यात नो गृहान् हविरत्तुं सुप्रजसः सुवीराः ।। ६३

४१ यद्वो अग्निरजहादेकमङ्गं पितृलोकङ्गमयं जातवेदाः ।
तद्व एतत् पुनराप्याययामि साङ्गाः स्वर्गे पितरो मादयध्वम् ।। ६४

४२ अभूद् दूतः प्रहितो जातवेदाः सायं न्यह्न उपवन्द्यो नृभिः ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ।। ६५

४३. असौ हा इह ते मनः ककुत्सलमिव जामयः । अभ्येनं भूम ऊर्णुहि ।। ६६

४४ शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि ।। ६७

४५ येऽस्माकं पितरस् तेषां बर्हिरसि ।। ६८

४६ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ।। ६९

४५२९ यह जीव इस बीज को पाकर गर्भ-योग्य हो जाता है, पिता आदि तुझे दूर से आया हुआ समझते हैं; पौरुषों-अनुसार शरीर धारण कर। मैं तेरे अंग ब्रह्म-शक्ति से बनाता हूं। ५२

३० पर्ण-सोम (तेजपात) चरुओं का ढक्कन (मिश्रण) है, इस से हमें ऊर्जा-बल-साहस-ओज मिलते हैं। यह जीवों के लिए सौ वर्ष की दीर्घायु देता है। ५३

३१ इसका रस, जिसने इसे पैदा किया, पत्थर के समान दृढ़कारी, अन्नों का अधिपति है सबके मित्र होकर हवियों के साथ उसकी अर्चा करो, वह नियामक अधिक जीवन दे। ५४

३२ जैसे ५ मानव(ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-निषाद) आचार्य के लिए घर बनाते, बीज बोते हैं ऐसे ही मैं घर बनाऊं, बीज वपन करूं जिससे मेरी बहुत सन्तानें हों। ५५

३३ तू यह सोना और सुनहरी बीज ले जो पहले तेरे पिता ने लिया था। तू स्वर्गीय पिता के कुशल हाथ को यशस्वी कर। ५६

३४ जो उत्साही-निरुत्साही-नवदीक्षित याज्ञिक हैं उनके लिए जल की नहर मधुर धारा वाली, सींचती हुई जल की नहर बहे। ५७

३५ विचारों का वर्धक परमात्मा वैसे ही गति देता है जैसे सूर्य द्यौ से दिनों-उषाओं का प्रेरक है। प्राण मन की इच्छा से जीव के हृदय में प्रविष्ट होकर रक्त-नाड़ियोंके कलश कंपाता है। ५८

३६ तेरा वीर्य दीप्त ज्वाला-समान मस्तिष्क में स्थित होकर शरीर में व्याप्त होता है। उसकी द्युति से पवित्र! तू दीप्ति से सूर्य-समान दीप्त होता है। ५९

३७ चन्द्र-समान परमात्मा जीव के कल्याणार्थ प्रयत्न करता है जैसे सखा सखा की प्रतिज्ञा को भंग नहीं करता। स्त्रियों से संयुक्त मनुष्यवत् रक्त सैकड़ों नाड़ियों से हृदय में जाता है। ६० पर्याय ७- ३८ प्राण रक्त से तृप्त रहते, प्रिय अङ्गों को चलाते हैं। स्वयं दीप्त, विशेष गतिशील उन युवा स्तुत्य प्राणों की याचना करे। ६१

३९ हे शान्त पितरो! तुम दुर्गम पथों से पितृ-निमित्त यानों द्वारा आओ, हमारे लिए आयु और प्रजा का उपदेश देते हुए ऐश्वर्य के पोषणों से संपन्न करो। ६२

४० हे शान्त पितरो! दुर्गम पथों से नगर-यानों द्वारा दूर जाओ, एक मास में फिर हमारे घर सुप्रजा-सुवीर तुम हवि खाने आया करो। (तिरसठ)

४१ हे प्राणो! जो अग्नि तुमको तुम्हारे स्थान (शरीर) में भेजती हुई एक भी अङ्ग छोड़ दे तो मैं तुम्हारा वह अंग फिर पूर्ण करदूं, तुम सुखमय दशा में हृष्ट रहो। (चौंसठ)

४२ हितकर जठराग्नि अन्न-रस-वाहक है; यह, और यज्ञाग्नि-ईश्वर नरों से सायं-प्रातः वन्दनीय है, तू प्राणों के लिए रस पहुंचाती है जिसे वे खाते हैं, हे अग्नि देव! तू पवित्र हवि खा। (पैंसठ)

४३ जैसे स्त्रियाँ जलवत् शान्त कुलपति के पास रहती हैं वैसे तेरा मन यहाँ रहे। हे भूमि के बने शरीर! तू इस हृदय को ढांके रह। (छयासठ)

४४ प्राणों के सदन दर्शनीय स्थान(गुदा-उपस्थ-नाभि-हृदय-कण्ठ-भ्रकुटी-ब्रह्मरन्ध्र)और विद्वानों के स्थान शोभित हों, तुझे उसमें रखता हूं। (सड़सठ)

४५ जो हमारे पितर हैं उनका तू आश्रय है। (अड़सठ)

४५४६ हे वरुण(दोष-निवारक, वरणीय)आदित्य ईश्वर! तू हमारे उत्तम-मध्यम-अधम(कारण-सूक्ष्म-स्थूल-शरीरों के) फन्दे ढीले कर; और हम तेरे व्रत में निरपराध होकर अदिति(मोक्ष)पावें। ६९ पहले७.८३.३, ऋ१-२४-१५ य १२.१२ महर्षि-व्याख्यात, साम ५८९ है, पाश मन-इन्द्रिय-शरीर के हैं।

४५४७ प्रास्मत्पाशान्वरुण मुञ्च सर्वान् यैः समामे बध्यते यैर्व्यामे।
अधा जीवेम शरदं शतानि त्वया राजन्गुपिता रक्षमाणाः ॥ ७०

पर्याय ८

४८ अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥ ७१

४९ सोमाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७२

५० पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः ॥ ७३

५१ यमाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७४

पर्याय ९

५२ एतत्ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७५

५३ एतत्ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७६

५४ एतत्ते तत स्वधा ॥ ७७

५५ स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः ॥ ७८

५६ स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः ॥ ७९

५७ स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः ॥ ८०

पर्याय १०

५८ नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरो रसाय ॥ ८१

५९ नमो वः पितरो भामाय नमो वः पितरो मन्यवे ॥ ८२

६० नमो वः पितरो यद् घोरं तस्मै नमो वः पितरो यत्क्रूरं तस्मै । ८३

६१ नमो वः पितरो यच्छिवं तस्मै नमो वः पितरो यत्स्योनं तस्मै । ८४

६२ नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः । ८५

६३ येऽत्र पितरः पितरो येऽत्र यूयं स्थ युष्मांस्तेऽनु यूयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्थ ।८६

६४ य इह पितरो जीवा इह वयं स्मः। अस्मांस्तेऽनु वूतं तेषां श्रेष्ठा भूयास्म ॥ ८७

पर्याय ११

६५.आ त्वाग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् । यद् घ सा ते पनीयसी
समिद्दीदयति द्यवि । इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ८८

४५६६ चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ८९

यह काण्ड १८ समाप्त हुआ ।

अथर्व वेद १८-४-७०

४५४७ हे राजन् वरुण ! हम से वे सभी बन्धन दूर कर जिनसे जीव सम-विषम सूत्र (गर्भ) में बँधता है । फिर आपसे रक्षित हम रक्ष्यमाण होकर सौ वर्ष जियें । ७०

पर्याय ८

४८ मेधा के वाहन विद्वान् और अन्न-धारक -जठराग्नि के लिए स्वयं-धारक अन्न हो । ७१
४९ पिता वाले सौम्य शिशु और प्राणों के लिए स्वधा ,, । ७२
५० सोम वाले पितर [प्राणों] और शिशु-जनक माता-पिता के लिए ,, । ७३
५१ प्राण-युक्त संयमी जीवन-काल और आचार्य के लिए ,, । ७४

पर्याय ९

५२-५४ हे प्रपितामह, पितामह, और पिता ! यह स्वधा (अन्न) तुम्हारे लिए और जो तुम्हारे पीछे हैं उनके लिए है । ७५-७७

५५-५७ पृथिवी (तप) में स्थित, अन्तरिक्षस्थ [प्राणायामी-हृदयध्यानी और द्यौ [सहस्रार-चक्र] में स्थित योगी तथा स्थल-जल-नभ के सेनापति एवं यात्री पितरों के लिये आदर-अन्न हो । ७८-८०

पर्याय १०

५८ हे पितरो ! तुम्हारे ऊर्जा-रस के पाने के लिए नमः [आदर और अन्न] हो । ८१
५९ ,, दीप्ति-मन्यु ,, । ८२
६० ,, हनन-छेदन बल ;; । ८३
६१ ,, कल्याण-सुख ,, । ८४
६२ हे पितरो ! आप के लिये आदर और अन्न हो । ८५
६३ ,, जो यहाँ पितर हैं और जो यहाँ आप हैं, वे आप के अनुकूल और आप उनमें श्रेष्ठ हों । ८६

६४ यहाँ जो जीवित पितर हैं और जो हम जीवित हैं; हमारे वे अनुकूल हों और हम उनमें श्रेष्ठ हों । ८७

पर्याय ११

६५ हे देव अग्नि [परमेश्वर-यज्ञाग्नि] ! अजर -द्युतिमान् तुझे हम प्रदीप्त करें जिसे तेरी द्यौ में प्रशंसनीय प्रदीप्ति [सूर्य] दीप्त हो रही है । तू स्तोताओं के लिये ज्ञान-अन्न-बल से भरपूर कर दे । ८८

४५९६ चन्द्रमा अन्तरिक्ष में पक्षी के समान आकाश में, और मन हृदय तथा द्यौ [मूर्धा] में दौड़ता है । सुनहरी चमक वाली बिजलियाँ तुम्हारे मन की गति तक नहीं पहुँचतीं । हे द्यावा-पृथिवी के जनो ! मेरी इस बात को जानो । ८९ [ऋ १-१०५-१, य ३३-९०, साम ४१७ में भी है।]

आचार्य वीरेन्द्र सरस्वती के अथर्ववेदानुवाद में सूक्त-
अनुवाक ४, प्रपाठक ३४ और काण्ड १८ पूर्ण हुआ।

—※—

अथर्ववेद कांड १९ सूची

प्रपा० अनुवाक सूक्त मन्त्र ऋषि देवता छन्द विषय

३५ १ १ ३ ब्रह्मा प्रजापति बृहती पंक्ति सं सं स्रवन्तु नद्य इत्यादि, जग-
२ ५ सिन्धुद्वीप आपः अनुष्टुप् दीश्वरप्रार्थनादि ईश्वरादभययाचनादि,
३-४ ४-४ अथर्वाङ्गिराः अग्नि बृ. त्रिष्टुप् सहस्रबाहुः पुरुष इत्यादि, खगोलविद्या,
५ ५ ;; इन्द्र ,, योगक्षेम-विचारादि, शान्ता द्यौरित्यादि,
६ १६ नारायण पुरुष अनुष्टुप् पापक्षमाकरणादि, सर्वशान्त्यर्थी प्रार्थनेश्वरप्रा०
७-८-९ ५-७-१४ गार्ग्यो वशिष्ठ नक्षत्राग्निसविताब्रह्मणस्पतिर्विश्वेदेवाः त्रि ज अ पंगा।
२ १०-११ १०-६ ;; विश्वेदेवाः त्रिष्टुप् शं न इन्द्राग्नी इत्यादि, ऋतज्ञा इत्यादि,
१२-१३ १-११ अप्रतिरथ,, उषा इन्द्र ,, पं घर्मादि; धनुर्वेदादि, विजयार्थेश्वरस्त. वि-
१४-१५ १-६ अथर्वा द्यावा० ,, ,, ,, बृज प्रार्थनादि, अभयं नः करत्वन्तरिक्षमित्यादि
१६ २ ,, सवितादि अ अतिशक्वरी स मा रक्षत्वित्यादि; सर्वदिक्षु रक्षार्थेश्वर-
१७-१८ १०-१० ,, अग्निवाय्वादि त्रि अ ब प्रार्थनादि; मृत्योः सकाशाद्रक्षार्थ प्रार्थनास्त. ती
१९-२० ११-४ ,, मित्रवाय्वादि बृ पं ,, ईश्वरस्येत्यादि पदार्थ विद्या।
१ २१ १ ब्रह्मा वाक् साम्नी बृहती गायत्रीत्यादि०, स्वाहादि०, ब्रह्मणस्पति-
२२ २१ अंगिरा मन्त्रोक्त ,, उ पंगा ज त्रि अ रित्यादि०, य एनदित्यादि

२३,२४ ३०,८ अथर्वा प्रजापति, ब्रह्मणस्पति ,, पदार्थ विद्या ।
२५,२६ १,४ गोपथ ,, वाजी, अग्नि, हिरण्य अ त्रि पं
४ २७ १५ भृग्वंगिराः प्रजापति अनु त्रि पं अतिशक्वरी गोभिष्ट्वा पात्वृषभः इत्यादि,
२८,२९,३० १०,६,५ ब्रह्मा दर्भमणि ,, उष्णिक् ये देवा इत्यादि; शत्रूणामित्यादि,
३१,३२,३३ १४,१०,५ सविता,भृगु औदुम्बर,दर्भमणि अ त्रि जहि मे द्विषत इत्यादि, पुष्टि-
कामाय वेधसादि,पुष्टया वनस्पतिरित्यादि, औषध इत्यादि,शूद्राय चार्यायेति,ओजो देवानामित्यादि प०
५ ३४,३५ १०,५ अंगिराः; जंगिड अनु पं त्रि जांगिडोऽसि जांगिडेत्यादि, जहि रक्षांसि०,
३६ ६ ब्रह्मा शतवार ,, परि मा दिव इत्यादि; यक्ष्मादि-निवारणादि,
३७,३८ ४,३ अथर्वा गुल्गुलु पं बृ उ जीवला नाम ते मातेति; ततः कुष्ठोऽजायतेत्यादि,
३९,४० १०,४ भृग्वङ्गिराः; ब्रह्मा कुष्ठ बृहस्पति विश्वेदेवाः अ मा नो मेधां मा नो दीक्षां
४१-४३ १-४-८ ,, ऋषि ब्रह्म त्रि पं ज ,, गा मा नो हिंसिष्टं यत्तपः
४४-४५ १०-१० भृगु आञ्जन मणि ,, बृ ,, इत्यादि पदार्थ विद्या ।
६ ४६ ७ प्रजापति अस्तृत मणि ,, श प्रजापतिष्ट्वा बध्नादित्यादि;
४७-५० ६-६-१०-७ गोपथ रात्रि बृ अतिज ,, ज ,, ग भद्रे पारमशीमहि इत्यादि;
५१-५२ २-५ ब्रह्मा आत्मा सविता काम उ त्रि बृ पं ,, घृताचीत्यादि; रात्रिः शिवमित्यादि;
५३-५४ १०-५ भृगु काल अतिश ,, ये ते राज्यनड्वाह इत्यादि, कामस्तदग्रे समव-
र्त्ततेत्यादि कामविद्यादिः पूर्णः कुंभोऽधि काल आहित इत्यादीश्वरः कालः; कालो ब्रह्मेत्यादि पदा०
७ ५५-५७ ६-६-५ भृगु यम अग्नि स्वप्न आत्मा त्रि पं बृ अनु अष्टि ज रात्रिं रात्रिमप्रयातमित्यादि,
५८-६० ६-३-२ ब्रह्मा यज्ञ अग्नि वाक् परमात्मा ,, अग्निस्तुत्यादि, अहरहर्बलिमाहरन्तेत्यादि,
६१-६३ १-१-१ ,, आत्मा ब्रह्म ब्रह्मणस्पति बृ अ स्वप्नादि संवत्सरेत्यादि यज्ञमित्यादि उत शूद्र
६४-६६ ४-१-१ ,, अग्नि जातवेदाः सूर्य वज्र अ उ ज । उतार्ये इत्यादि उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते आयुर्वर्धये-
६७-६९ ८-१-४ प्रजापति ,, आपः ;; । त्यादि, प्रार्थना, सर्वमायुर्जीव्यासं पदार्थविद्या
७०-७२ १-१-१ भृग्वङ्गिराः इन्द्र ,, गायत्री वेद-माता परमात्माअतिज त्रि —महर्षि दयानन्द

योग १ ७ ७२ ४५३ । ४५३ में पिछले ४५६६ मिलाकर अबतकों का योग ५०१९ हुआ ।

अथर्ववेद काण्ड १९

प्रपाठक ३५ अनुवाक १ सूक्त १

सूक्त १। यज्ञ, चन्द्रमा

४५६७ सं सं स्रवन्तु नद्यः सं वाताः सं पतत्रिणः ।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ १
६८ इमं होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत । यज्ञ० [पूर्ववत्] ॥ २
६९ रूपंरूपं वयोवयः संरभ्यैनं परि ष्वजे ।
यज्ञमिमं चतस्रः प्रदिशो वर्धयन्तु संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ ३

सूक्त २। आपः

७० शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः ।
शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः ॥ १
७१ शं त आपो धन्वन्याः शं ते सन्त्वनूप्याः ।
शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः ॥ २
७२ अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः ।
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ॥ ३

अथर्व वेद काण्ड १९

प्रपाठक ३५ अनुवाक १

विषय— सं सं स्रवन्तु नद्य इत्यादि०, अधीश्वर-प्रार्थनादि, ईश्वरादभय-याचनादि०, सहस्र-बाहुः पुरुषः इत्यादि०, खगोलविद्यादि०, योगक्षेम-विचारादि०, शान्ता द्यौरित्यादि०, पापक्षमा-करणादि०, सर्वशान्त्यर्था प्रार्थनेश्वरादि० पदार्थविद्या । —महर्षि दयानन्द सरस्वती ।

सूक्त १, राष्ट्रयज्ञ

४५६७ नदियाँ-जलपोत-पक्षी-वायुयान अच्छे प्रकार चलें, हे वेद-वाणियो ! इस राष्ट्र-यज्ञ को बढ़ाओ। मैं संस्राव्य हवि [घी-दूध] से यज्ञ करूँ। १

६८ हे होम-कर्ता और चालू-धन वालो ! इस यज्ञ की रक्षा करो। हे वेद-वाणियो० (पूर्ववत्)। २

६९ मैं इस यज्ञ को विभिन्न रूप-आयु वालों को मिलाकर अपनाता हूं; इसे चारों दिशायें बढ़ायें, मैं कर-प्राप्य धन से आदान-प्रदान करूँ। ३

सूक्त २ । आपः

७० तेरे लिए बरफीले, कुओं के, बहते हुए और वर्षा के जल कल्याणकारी हों। १

७१ मरु-भूमि के, कच्छ दलदल के, खानों के और घड़ों से भरकर लाये जल कल्याणमय हों। २

४५७२ बिना कुदाल के, खोदते हुए विशेष प्रवाही, गहरे झरनों के, वैद्यों के भी बड़े वैद्य जल को हम अच्छा कहते हैं। ३

४५७३ अपामह दिव्यानामपो स्त्रोतस्यानाम् ।
अपामह प्रणेजने ऽश्वा भवथ वाजिनः ॥ ४
७४ ता अपः शिवा अपो ऽयक्ष्मङ्करणीरपः ।
यथैव तृप्यते मयस् तास् त आदत्त भेषजीः ॥ ५

सूक्त ३

७५ दिवस् पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद् वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्यः ।
यत्र यत्र विभृतो जातवेदास् तत स्तुतो जुषमाणो न एहि ॥ १
७६ यस् ते अप्सु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः ।
अग्ने सर्वास् तन्वः सं रभस्व ताभिर्न एहि द्रविणोदा अजस्रः ॥ २
७७ यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गो या ते तनूः पितृष्वा विवेश ।
पुष्टिर्या ते मनुष्येषु पप्रथे ऽग्ने तया रयिमस्मासु धेहि ॥ ३
७८ श्रुत्कर्णाय कवये वद्याय वचोभिर्वाकैरुप यामि रातिम् ।
यतो भयमभयं तन्नो अस्त्वव देवानां यज हेडो अग्ने ॥ ४

सूक्त ४

७९ यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः ।
तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतु हव्यमग्निरग्नये स्वाहा ॥ १
८० आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥ २
८१ आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि ।
अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सुहवो भव ॥ ३
८२ बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः प्रति जानातु वाचमेताम् ।
यस्य देवा देवताः संबभूवुः स सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वस्मान् ॥ ४

सूक्त ५

८३ इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उप स्तुतश्चिदर्वाक् ॥ १

सूक्त ६

४५८४ सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १

४५७३ (हे मनुष्यो !) तुम दिव्य (वर्षा के), स्रोतों के जल के प्रयोग से शुद्ध-पुष्ट होकर अश्वों के समान बलवान् और वेगवान् हो जाओ। ४

७४ वे जल कल्याणकारी, यक्ष्मा के न होने देनेवाले और निवारक हैं। जैसे वृक्ष के लिए सुख होता है वैसे ही अपने लिए उन जल रूपी औषधियों को ग्रहण करो । ५

सूक्त ३, अग्नि(भौतिक और परमात्मा)

७५ जातवेदा (पैदा हुओं में वर्त्तमान अग्नि) द्यौ-पृथिवी-अन्तरिक्ष-औषधियों तक जहाँ-जहाँ विशेष विचरता, धारित है वहाँ-वहाँ स्तुत और सेवमान वह हमें प्राप्त हो । १

७६ हे अग्नि ! जो तेरी महिमा जल-वन-औषधि-प्राण-अन्तरिक्ष में है उन सब विस्तारों का लाभ हमें दे; उन के साथ हे धन-दाता ! तू हमें सदा प्राप्त हो । २

७७ हे अग्नि ! जो तेरी महिमा विद्वानों में सुख-भोग है; जो तेरा विस्तार पितरों में है, जो पोषण मनुष्यों में फैला है उससे हम में धन-सम्पत्ति धारण करा । ३

७८ हे अग्नि ! प्रार्थना सुनने वाले, कवि, जानने-पाने योग्य तेरी उपासना अपने वचनों और वेद-वाक्यों से करके मैं यह वर-दान माँगता हूं कि जहाँ से भय हो वहाँ हमें अभय हो और देवों का क्रोध यज्ञ से दूर कर । ४

सूक्त ४। अग्नि

७९ अचल जातवेदा परमात्मा ने सृष्टि-यज्ञ में जो पहली आहुति दी और जो-जो हव्य बाद में किये, उनके समान मैं पहले यह आहुति,हे परमात्मा ! तेरे लिए देता हूं। तू उनसे उच्च हो। यह अग्नि वह हव्य स्वीकार करे, उसके लिए सुवचन हो । १

८० मैं उत्तम ग्राह्य दिव्य आकूति (संकल्प-शक्ति) सामने रखता हूं, चित्त की माता वह हमें सरलता से प्राप्त हो। जो आशा करूँ वह पूर्ण हो, मैं मन में प्रविष्ट इसे प्राप्त करूँ । २

८१ हे बड़ रक्षक स्वामी ! तू हमें आकूति के साथ मिल, पास रह, हमें भग दे, और सुगम हो । ३ [ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञान-वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥ समग्र ऐश्वर्य-धर्म-यश-श्री-ज्ञान-वैराग्य इन ६ गुणों का नाम भग है ।]

८२ बड़ा रक्षक स्वामी, अंगों का रस परमात्मा मेरी इस आकूति और प्रार्थना को स्वीकार करे। जिस से देव (इन्द्रियाँ) देवता (दिव्यगुणी) और सुमार्ग-गामी हो जाती हैं वह कामना और परमात्मा हमें सदा प्राप्त रहें । ४

एक मन्त्र का सूक्त ५ । इन्द्र

८३ इन्द्र (परमेश्वर-सूर्य-बिजली-सम्राट्) जगत्, मनुष्यों का और जो कुछ पृथिवी पर विविध रूप हैं उसका राजा है। अतः दानी के लिए धन देता है, और स्तुति पाये हुए के समान वह हमारी ओर धन प्रेरित करता है । १

सूक्त ६ । पुरुष सूक्त

[यह कुछ भेद से ऋ. १०-९०, यजु. ३१ में, साम वेद में ६१७ और आगे भी है ।]

[यह पुरुष (संसार रूपी पुरी में शयन करने वाला परमेश्वर)

४५८४ हजारों बाहु (शक्ति) वाला पुरुष (संसार रूपी पुरी में शयन करने वाला परमेश्वर) हजारों आँखों-पैरों की; शक्ति वाला है । वह भूमि को सब ओर से घेर कर दसों दिशाओं में सर्वत्र (और दस अंगुल हृदय में भी) व्यापक है। १

४५८५ त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः ।
तथा व्यक्रामद् विश्वङशन नशने अनु ॥ २

८६ तावन्तो अस्य महिमानस् ततो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३

८७ पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह ॥ ४

८८ यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्यते ॥? ५

८९ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यो ऽभवत् ।
मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ ६

९० चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥ ७

९१ नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥ ८

९२ विराडग्रे समभवत् विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥ ९

९३ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ १०

९४ तं यज्ञं प्रावृषा प्रोक्षन् पुरुषञ्जातमग्रशः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥ ११

९५ तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥ १२

९६ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ १३

९७ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ १४

४५९८ सप्तास्यासन् परिधयस् त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद् यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ १५

४५८५ परमात्मा तीन पादों से द्यौ में प्रादुर्भूत है, इसका एक पाद यहाँ बार-बार प्रकट होता है और वह चेतन-अचेतन जगत् पर सर्वत्र विक्रम किये हुए है। २

८६ उतने सब इसकी महिमा हैं, और पुरुष उन से बड़ा है। सब भूत इसके एक पाद हैं, इसके तीन पाद द्यौ में अमरता (मोक्ष) हैं। ३

८७ पुरुष ही यह सब है जो हुआ और होने वाला है। और वही अमरता का स्वामी है जो अन्य (शरीर-जीवात्मा) के साथ, उसकी सहायता से होती है। ४

८८ जो पुरुष को विशेष रीति से धारण करते हैं वे उसकी कितने प्रकार से विशेष कल्पना करते हैं ? इसका मुख और बाहें क्या हैं ? और जाँघें-पैर क्या कहे जाते हैं ? ५

८९ ब्राह्मण इसका मुख [मुख्य] है, क्षत्रिय बाहें हुई; जो वैश्य है वह इसका मध्य है शूद्र पैरों (प्रतिष्ठा-आधार) से उत्पन्न हुआ। ६

९० चन्द्रमा मन से, सूर्य चक्षु से, मुख से इन्द्र (बिजली)-आग, प्राण से वायु उत्पन्न हुए। ७

९१ नाभि से अन्तरिक्ष, सिर से द्यौ हुआ। पैरों से भूमि, कान से दिशा-लोकों की कल्पना की। ८

९२ आगे (पहले) विराट् (विशेष दीप्त अण्ड, सुनहरी हिरण्य-गर्भ, नेबुला) हुआ। विराट् का अधिष्ठाता पुरुष परमात्मा था। विराट् उत्पन्न होकर अत्यन्त खण्डों में बंट गया। विस्फोट (बिग बैंग) हुआ। पीछे भूमि और अन्य लोक (तथा अमैथुनी शरीरों) को परमात्मा ने उत्पन्न किया। ६

९३ जिस पुरुष रूपी हवि से देवों ने सृष्टि-यज्ञ का विस्तार किया इसका घी वसन्त ऋतु ग्रीष्म और हवि शरद् ऋतु थी। १०

९४ पहले उत्पन्न उस पुरुष-यज्ञ को वर्षा से सींचा। उससे जो देव-साध्य-वसु हैं वे यज्ञ करते हैं।११

९५ उससे अश्व और जो कोई दोनों ओर ऊपर-नीचे दाँतों वाले गदहा आदि पहले पैदा हुए, गाय-बैल भेड़-बकरी (एक ओर दाँत वाले) भी उसी से उत्पन्न हुए। १२

९६ उस सर्व-स्वीकार्य पूज्य परमात्मा से सर्व-स्वीकार्य ऋग्वेद-साम-अथर्व यजु उत्पन्न हुए।१३

९७ उस सर्व-हुत यज्ञ से दही-घी आदि पैदा हुए। उसने उन वायु के पक्षी-वन्य-ग्राम्य पशु रचे।१४

४४९८ विद्वानों ने जिस यज्ञ का विस्तार करते हुए ब्रह्म पुरुष को हृदय में बाँधा इसकी ५ परिधियाँ (गायत्री-उष्णिक् अनुष्टुप्-बृहती-पंक्ति-त्रिष्टुप्-जगती ७ छन्द) और २१ समिधायें कीं। प्रकृति-महत्-अहंकार- ५ सूक्ष्म भूत (तन्मात्राएँ)- ५ स्थूल भूत (पृथिवी-जल-अग्नि-वायु-आकाश) ५ ज्ञानेन्द्रियाँ- ३ गुण (सत्व-रजस्-तमस्) २१ समिधाएँ हैं। (महर्षि दयानन्द सरस्वती) १५

४५९९ मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः।
राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ।। १६

सूक्त ७। नक्षत्र

४६०० चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि।
तुमिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ।। १
४६०१ सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ।। २
२ पुण्यम्पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ।। ३
३ अन्नम्पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ।। ४
४ आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ।। ५

सूक्त ८। नक्षत्र

५ यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ।।१
६ अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे।
योगम्प्रपद्ये क्षेमञ्च क्षेमम्प्रपद्ये योगञ्च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ।। २
७ स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु।
सुहवमग्ने स्वस्त्यमर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ।। ३
८ अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम्। सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान् परा तान्सवितःसुव। ४
९ अपपापं परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम्।
शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम् ।। ५
१०इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते।
सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि ।। ६
११ स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ।। ७

सूक्त ९

१२ शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम्।शा
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः। ८

४५९९ पुरुष से उत्पन्न प्रकाशमान बड़े सौर-मण्डल के सिर के समान सूर्य की ७ किरणें, ७० सप्तक,४९० किरणें चन्द्र की हो जाती हैं। सिर की ७० या ४९० रश्मियाँ चित्त की हो जाती हैं। १९

सूक्त ७। नक्षत्र

४६०० चित्रों की आकृति वाले नक्षत्र द्यौ में चमकने वाले, टेढ़े चलने वाले, भुवन में वेगयुक्त हैं। शीघ्र प्रवक्ता से सुमति का इच्छुक मैं वाणियों से अनेक दिन द्यौ को भेंट करता हूं। १

४६०१ हे अग्नि(ईश्वर-विद्वान्)! १ कृत्तिका २ रोहिणी सुन्दर यज्ञवाली,३ मृगशिरा कल्याणमय, ४ आर्द्रा शान्ति-दायक; ५ पुनर्वसू प्रिय; ६ पुष्य सुन्दर; ७ आश्लेषा प्रभा-युक्त, ८ मघा नक्षत्र मेरे आने-जाने के अनुकूल हों। २

२ ९-१० पूर्वा-उत्तर फल्गुनी, ११ हस्त पवित्र कर्ता, १२ चित्रा कल्याण-कारिणी, १३ स्वाति सुखदा, १४ विशाखा अभीष्टदा; १५ अनुराधा उत्तम यज्ञ वाली, १६ ज्येष्ठा और १७ मूल नक्षत्र का काल रोग-रहित हो। ३

३ मुझे १८ पूर्वा अषाढा अन्न, १९ देवी उत्तरा अषाढा बल, २० अभिजित् पुण्य दें। २१-२२ श्रवणा-श्रविष्ठा (धनिष्ठा) मेरा सुपोषण करें। ४

४ मेरे लिए २३ शतभिषा, २४-२५ दोनों प्रोष्ठपदा [पूर्वा-उत्तरा भाद्रपदा] २६ रेवती, २७ अश्विनी और २८ भरणी नक्षत्र ऐश्वर्य दें। ५

सूक्त ८। नक्षत्र

५ जो नक्षत्र द्यौ-अन्तरिक्ष-सागर-भूमि-पहाड़ पर जाने से दिखायी दें, जिन्हें समर्थ करता हुआ चन्द्रमा चलता है ये सब मुझे कल्याणकारी हों। १

६ मुझे कल्याणकारी शान्तिप्रद २८ नक्षत्र और पदार्थ (१० इन्द्रिय-१० प्राण-मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार-विद्या-स्वभाव-शरीर-बल) सहयोगी हों, योग को सिद्ध करें। मैं योग और क्षेम को प्राप्त करूँ। दिन-रात के लिए नमः [आदर] हो। २

७ मुझे सुन्दर प्रातः-सायं-दिन-पशु-पक्षी कल्याणकारी हों। हे परमेश्वर! यज्ञ सुन्दर हो मुझ अमर जीवात्मा की समृद्धि करता हुआ तू मुझे बार-बार साक्षात् हो। ३

८ हे सविता (परमेश्वर-सूर्य)! तू देर तक रहने वाली खाँसी-प्रदेशव्यापी खाँसी-नजला-जुकाम-छींकों और प्रलाप वाले शीतज्वर-प्रतिश्याय [इन्फ्लुएँन्जा] सबसे मेरे कोषों को रिक्तकर उन रोगों को दूर कर। ४

९ हम पापी छींक-खाँसी रोग को दूर करें, पवित्र छींक लाने वाला भोजन खायें। हे पापी रोग तेरी रोगी नाक को शिवा औषधि [आँवला-हरड़-हलदी] और वैद्य नीरोग करें। ५

१० हे वेद-पति [परमेश्वर-वैद्य]! जो ये हैजा के कीटाणु हवा में फैलते हैं उन्हें तू मेरे लिए अनुकूल करके कल्याण-कारी कर। ६

११ हमारा अस्तित्व उत्तम हो; हमें अभय हो, और दिन-रात के लिए अन्न हो। ७

सूक्त ९ शान्ति

४६१२ यह द्यौ-पृथिवी-यह फैला अन्तरिक्ष शान्त हो। उत्तम जल वाली नदियाँ और औषधियाँ शान्ति-दायक हों। १

४६१३ शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तन्नो अस्तु कृताकृतम् ।
शान्तम्भूतञ्च भव्यञ्च सर्वमेव शमस्तु नः ॥ २

१४ इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता ।
ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ॥ ३

१५ इदं यत परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम ।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥ ४

१६ इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनः–षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि ।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥ ५

१७ शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ॥६

१८ शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वाञ्च्छमन्तकः ।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ॥ ७

१९ शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतञ्च यत् ।
शङ्गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यतीः ॥ ८

२० नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः ।
शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥ ९

२१ शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा ।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥ १०

२२ शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः ।
शन्नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ॥ ११

२३ ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदा सप्त ऋषयोऽग्नयः ।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु ।
विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ॥ १२

२४ यानि कानिचिच्छान्तानि लोके सप्त ऋषयो विदुः ।
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु ॥ १३

४६२५ पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः
शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः ।
ताभिः शान्तिभिः सर्वशान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं
तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः ॥१४

४६१३ हमारे कर्मों के पूर्वरूप विचार, किया न किया शुभ-अशुभ कर्म, भूत-भविष्यद्-वर्तमान सभी शान्त हों । २

१४ यह जो जीवात्म-स्थ वेद-प्रशंसित दिव्य वाणी है जिसी से घोर कर्म किया उसीसे हमें शान्ति हो । ३

१५ ,, तुम स्त्री-पुरुषों का मन है ,, । ४

१६ ,, छठे मन-सहित ५ इन्द्रियाँ हैं ,, । ५

१७ मित्र, वरुण [पाप-निवारक, वरण-योग्य], व्यापक, प्रजापति, इन्द्र, बृहस्पति अर्यमा [न्यायकारी परमेश्वर-बिजली-न्यायाधीश] हमें शान्ति-दायक हों । ६ [कुछ भेद से ऋ १.९०.९, य. ३६.९ में भी]

१८ मित्र-वरुण (दिन-रात, प्राण-उदान, हाइड्रोजन-आक्सीजन), सूर्य-मृत्यु, पृथिवी-अन्तरिक्ष के उत्पात, द्यौ में चलने वाले ग्रह [पृथिवी आदि ८ ग्रह] हमें शान्ति-दायक हों । ७

१९ काँपती हुई भूमि; उल्काएँ-बिजली और जो उन से चोट खाया देश है, रक्त-मिले और लौह-युक्त दूध वाली गौएँ, नीचे धँसती भूमि हमें शान्ति-युक्त हों । ८

२० उल्काओं से नष्ट हुए नक्षत्र; कम क्षात्र-शक्ति, बिजली के अस्त्र, अभिचार-कृत्या [विरुद्ध आचरण-हिंसक क्रियायें], गाड़े हुए बम, सैनिक घेरे, आग्नेयास्त्रों की ज्वालाएँ, हमारे देश के उपद्रव शान्त हों । ९

२१ चन्द्रमा के ग्रहण, राहु [चन्द्र-छाया] के साथ सूर्य-ग्रहण, धूमकेतु [पुच्छल तारे] से होने वाली मौत और तीक्ष्ण तेज वाले रुद्र [बिजली-युक्त वायु-तरङ्गें और शरीरस्थ प्राण आदि ११] शान्त हों । १०

२२ रुद्र ११-वसु ८-आदित्य १२, और रुद्र-वसु-आदित्य ब्रह्मचारी-अग्नियाँ ३, महर्षि-देव [अग्नि-वायु-आदित्य-अङ्गिरा], देव [प्राकृतिक शक्तियाँ और विद्वान्], आचार्य और परमेश्वर हमें शान्ति दें । [यज्ञ की ३ आहवनीय-गार्हपत्य-दक्षिण अग्नियाँ; जठराग्नि-शरीराग्नि भी हैं] । ११

२३ ब्रह्म-प्रजापति-धाता परमेश्वर, लोक-वेद-७ ऋषि [आकाश और शरीरके आँख-कान-नाक-मुख-त्वचा-मन-बुद्धि], इनकी अग्नि [ज्योतियाँ] हैं, उनसे मेरा स्वस्ति-मार्ग किया गया, जीवात्मा-ब्रह्मा [चतुर्वेदी] मुझे सुख दें । सब देव [प्राकृतिक और विद्वान्] मुझे सुख दें । १२

२४ लोक में सात छन्दों की वेद-वाणी के द्रष्टा जिन किन्हीं शान्त कर्मों को जानते हैं वे सब मेरे लिए कल्याणकारी हों; मुझे शान्ति और अभय हो । १३

४६२५ पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्यौ-जल-औषधियाँ-वनस्पतियाँ-विश्वेदेवाः [सब प्राकृतिक शक्तियाँ] सब विद्वान् मुझे शान्ति दें, शान्तियों से शान्ति शान्ति-रूप में रहे, उन शान्तियों, सब शान्तियों से मैं और हम शम को प्राप्त हों । जो यहाँ घोर-क्रूर कर्म-पाप हों वे सब शान्त-कल्याणकारी होने, हमारे लिए सब ही शं हो । १४ अनुवाक १, सूक्त ९ समाप्त हुआ ।

अथर्व वेद काण्ड १९ अनुवाक २ सूक्त १०-११

विषय—शं न इन्द्राग्नी इत्यादि०, ऋतज्ञा इत्यादि०; धर्मादि०, धनुर्वेदादि०, विजयार्थेशरणार-स्तुति-प्रार्थनादि०, अभयं नः करत्यन्तरिक्षमित्यादि०, स मा रक्षत्वित्यादि०, सर्व-दिक्षु रक्षार्थेश्वर-प्रार्थनादि०, मृत्योः सकाशाद् रक्षार्थ प्रार्थना-स्तुती ईश्वरस्येत्यादि पदार्थविद्या। —म.द.स.

४६२६ शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ॥ १
२७ शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु॥ २
२८ शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु॥ ३
२९ शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम्।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः॥ ४
३० शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः॥ ५
३१ शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु॥ ६
३२ शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शन्नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः।
शन्नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शन्नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः॥ ७
३३ शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः॥ ८
३४ शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शन्नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः॥ ९
३५ शन्नो देवः सविता त्रायमाणः शन्नो भवन्तूषसो विभातीः।
शन्नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शन्नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः॥ १०
११सूक्त- ३६ शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शन्नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः।
शन्न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शन्नो भवन्तु पितरो हवेषु॥ १
३७ शंनो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शन्नो दिव्याः पार्थिवाः शन्नो अप्याः॥ २
४६३८ शन्नो अज एकपाद् देवो अस्तु शमहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः।
शन्नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा॥ ३

अनुवाक २

सूक्त १० । बहु-दैवत्यम् । ऋ ७.३५ में भी कुछ भेद से है

४६२५ हव्य-दाता इन्द्र [परमेश्वर-विद्युत्] और अग्नि-जल-चन्द्र-औषधि-सूर्य-वायु हमें अन्न-बल की प्राप्ति में अपनी रक्षाओं से रोग-शमन और सुख के लिए कल्याणकारी और शान्ति-दायक हों । १

२७ हमें भग (ऐश्वर्य, उदय से पूर्व का सूर्य) ; प्रशंसा-आकाश-धन-सत्य यम-नियम-उपदेश-बहुत प्रसिद्ध न्यायाधीश सुखदायक हों । २

२८ धारक-पोषक-स्थापक परमात्मा, अतिपूज्य-गतिशील पृथिवी अन्नों से हमें सुख दे; बड़ी रुद्-शक्ति अन्तरिक्ष-मेघ, आदरणीय विद्वान्, उनको दिये गये उत्तम निमन्त्रण हमें शान्ति दें । ३

२६ ज्योति रूपा प्राण-दाता अग्नि, दिन-रात, प्राण-उदान, सूर्य-चन्द्र, अच्छे कर्मवालों के उत्तम कर्म और सदा गतिशील वायु सुख-शान्ति-दायक हों । ४

३० द्यौ-पृथिवी पूर्व-हूति [उषा-उपासना] में, अन्तरिक्ष हमारी दृष्टि के लिए, औषधियाँ वृक्ष विजयी लोक-पति हमें शान्ति-दायक हों । ५

३१ वसुओं के साथ देव इन्द्र (बिजली), आदित्यों के साथ प्रशंसनीय जल, रुद्रों के साथ रुद्र [परमात्मा-वैद्य], और ३ प्रकार के ब्रह्मचारियों के साथ ३ प्रकार के आचार्य हमें शान्ति दें । त्वष्टा परमात्मा वेद-वाणियों से की गयी हमारी प्रार्थना को यहाँ सुनें । ६

३२ सोम[औषधि-जल-चन्द्र]-ब्रह्म-अन्न-मेघ-विद्वान्-सिल-बटने-यूरेनियम-यज्ञ-यज्ञों के विज्ञान प्रेरणाएँ-वेदि हये सुख-शान्ति-दायक हों । ७

३३ हमें दूर तक दिखाने वाला सूर्य सुखद उदित हो, चारों दिशाएँ शान्तिप्रद हों, स्थिर पर्वत नदी-सागर-जल हमें सुखद हों । ८

३४ अदिति (परमात्मा-वेदमाता-पृथिवी) नियमों द्वारा, अच्छे विचार के मनुष्य और दीप्त मानसून वायु, सूर्य-भूमि-जल—अन्तरिक्ष-लोकत्रयी और वायु हमें कल्याणकारी हो । ६

३५ रक्षक देव सविता [परमात्मा-सूर्य], जगमगाती उषाएँ, प्रजाओं के लिए मेघ, क्षेत्र का पति किसान हमें सुख-शान्ति-दायक हों । १०

सूक्त ११

३६ सत्य के रक्षक विद्वान्; घोड़े-गौएँ; मेधावी कुशल कारीगर, यज्ञ-आह्वानों में पितर हमें कल्याणकारी हों । १

३७ विश्व-विख्यात विद्वान्, बुद्धियों के साथ विद्या, मित्रता आदि; दानी, दिव्य-पार्थिव-जलीय पदार्थ हमें शान्ति-दायक हों । २

४६३८ एक-गति देव अज [अजन्मा परमात्मा] और कम किरणवाला अज [गति-शील सूर्य], अन्तरिक्षस्थ मेघ, समुद्र, जल का नाती विद्युत् [जल के पुत्र मेघ का पुत्र], जल पिलाने वाली बिजली पानी में न गिरने देने वाला, पार लगाने वाला जहाज, देव-रक्षितभूमि हमें कल्याणकारी सुख-शान्ति-दायक हों । ३

४६३९ आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तामिदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥ ४
४० ये देवानामृत्विजो यज्ञियासो मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५
४१ तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥ ६

सूक्त १२। उषा

४२ उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १

सूक्त १३। इन्द्र

४३ इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्णू ।
तौ योक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां स्वर्यत् ॥ १
४४ आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥ २
४५ संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुनायोध्येन दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥ ३
४६ स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ४
४७ बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिषत्वा सहोजिज् जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोविदन् ॥ ५
४८ इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥ ६
४९ अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदाय उग्रः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयोध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥ ७
५० बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जञ्छत्रून् प्र मृणन्नमित्रानस्माकमेध्यविता तनूनाम् ॥ ८
४६५१ इन्द्र एषां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ ९

४६३९ आदित्य-रुद्र-वसु नामक ब्रह्मचारी इन किये जाते हुए प्रशंसनीय-वेद का सेवन करें। दिव्य-पृथिवी वासी वेद-वाणी के विद्वान् और जो याज्ञिक हैं वे हमारी बात सुनें। ४

४० जो विद्वानों में ऋतुयाजी, याज्ञिक-मन के यज्ञ-कर्ता, अमर-सत्य जानने वाले हैं वे हमें सदा महाप्रशंसनीय ज्ञान दें। (हे विद्वानों!) तुम कल्याणों से सदा हमारी रक्षा करो। ५

४१ हे मित्र-वरुण-अग्नि! हमारे लिए वह सुख और यह कष्ट-रहित जीवन मिले। गंभीरता और प्रतिष्ठा को हम पायें, उत्तम दशा पाने के लिए द्यौ-ज्योति ईश्वर को नमः हो। ६

१२ उषा

४२ उषा-प्रज्ञा अपनी उत्तम उत्पत्ति से अपनी बहिन रात का अंधेरा और व्यवहार हटा देती है, इससे हम देव-हितकारी बल पायें और उत्तम वीर होकर सौ वर्ष तक हृष्ट रहें। १

सूक्त १३ इन्द्र

४३ इन्द्र (सेनापति) की ये दृढ़-शक्तिशाली-विचित्र बाहें शस्त्र-वर्षा करती हुई युद्ध में पार लगाती हैं; उन्हें मैं राष्ट्रपति अवसर आने पर प्रयुक्त करूँ जिनसे असुरों (दुष्टों) का जो सुख है वह जीता जाता है। १

४४ शीघ्रकारी, साँड के समान भयंकर, गहरी चोट करने वाला, शत्रु-सेनाओं में हलचल मचाने-ललकारने वाला, सावधान, अद्वितीय वीर इन्द्र एकसाथ सैकड़ों सेनाएँ जीत लेता है। २

४५ हे योद्धा-नेताओं! शत्रु को ललकारने वाले; सावधान-विजयी-अजेय-अटल-दृढ़-शस्त्रधारी-बली इन्द्र के साथ तुम जीतो, आक्रमण सहन करो।

४६ वश में करने वाला वह इन्द्र शस्त्र-धारियों के साथ शत्रुओं से भिड़ता, उन्हें जीतता है। यह सोम ओषधि पीता है; बाहु-बली, उग्र शस्त्र वाला, हितकारी-सेनाओं द्वारा जीतता है। ४

४७ हे सेनापति! तू बल का ज्ञाता-अनुभवी-वीर-बली-अन्नवाला-सहनशील-उग्र-शूर-ससैनिक-बल से विजयी पृथिवी को जानते हुए विजयी रथ पर बैठा कर। ५

४८ हे मित्रो! ग्राम-भूमि-जयी-वज्रबाहु-युद्धजयी, ओज से संहारक इस उग्रवीर के पीछे हर्ष से तैयार हो। ६

४९ शत्रु-किलों को बल से नष्ट करता हुआ इन पर दया-रहित, दाय से वंचित-कर्ता, अखण्ड-सैकड़ों प्रकार मन्यु-कर्ता अटल, प्रहार-सहनशील; अजेय इन्द्र युद्धों में मारी सेनाएँ बचाये। ७

५० हे बड़े सेनापति! राक्षस-नाशक तू रथ से शत्रुओं को दूर खदेड़ता हुआ इन्हें नष्ट कर, इन्हें तोड़ता और मारता हुआ तू हमारे जीवनों का रक्षक हो। ८

४६५१ इन्द्र इन मरुत् सैनिकों का नेता है; बृहस्पति दाहिनी ओर हो, यज्ञ [सङ्कठन], सोम (प्रेरक) आगे चले, शत्रुओं को कुचलती चलती विजयी दिव्य सेनाओं के मध्य मरुत् चलें। ९

४६५२ इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम्
महामनसां भुवनच्यवानाङ्घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ १०
५३ अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मान् देवासोऽवता हवेषु ॥ ११

सूक्त १४ ।

५४ इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम् ।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ॥ १

सूक्त १५ ।

५५ यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयङ्कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्विद्विषो विमृधो जहि ॥१
५६ इन्द्रं वयमनूराधं हवामहेऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा ।
मा नः सेना अररुषीरुप गुर्विषूचीरिन्द्र द्रुहो विनाशय ॥ २
५७ इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः ।
स रक्षिता चरमतः स मध्यतः स पश्चात्स पुरस्तान्नो अस्तु ॥ ३
५८ उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उपक्षयेम शरणा बृहन्ता ॥ ४
५९ अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ ५
६० अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रम्भवन्तु ॥ ६

सूक्त १६ ।

६१ असपत्नम्पुरस्तात् पश्चान्नो अभयङ्कृतम् ।
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥ १
६२ दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः । इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनाव
भितः शर्म यच्छताम् । तिरश्चीनध्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥ २

सूक्त १७ ।

४६६३ अग्निर्मा पातु वसुभिः पुरस्तात् तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परिददे स्वाहा ॥ १
४६६४-६५ वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्या दिशःपातु० । २। सोमो मा रुद्रैर्दक्षिणाया दिशःपातु।

४६५२ बली इन्द्र-राजा वरुण-आदित्यों-मरुतों का उग्र बल और महा-मनस्वी, भुवन को कँपाने वाले जीतते हुए देवों (विजिगीषु सैनिकों) का जय-घोष उठे। १०

५३ ध्वजों के सङ्घर्ष में हमारा सेनापति, हमारे जो शस्त्रास्त्र हैं वे जीतें; हमारे वीर सैनिक उत्कृष्ट हों, हे विजयेच्छु सैनिको! शत्रु की ललकार में हमारी रक्षा करो। ११

सूक्त १४। द्यावा-पृथिवी

५४ यह अच्छा कल्याण हो कि मैं लड़ाई की समाप्ति पर पहुँचूँ, द्यौ-पृथिवी मेरे लिए कल्याणकारी हों। दिशाएँ मेरे लिए शत्रुओं से रहित हों। हे वैरी, हम तेरे साथ द्वेष न करें, हमें अभय हो। १

सूक्त १५

५५ हे सेनापति! जहाँ से हम डरें वहाँ से हमें अभय कर। हे धनी! हमें शक्ति दे; हम तेरे हैं, तू रक्षाओं के द्वारा द्वेष और संग्रामों को दूर कर। १

५६ हम अनुकूल सिद्धि करने वाले सेनापति को सादर बुलायें और प्रजा-पशुओं से समृद्ध हों। लालची शत्रु-सेनाएँ हम तक न पहुँचें। हे सेनापति! तू फँसे हुए द्रोहियों का विनाश कर। २

५७ इन्द्र रक्षक, दुष्ट-घातक है, बहुत विस्तारक वरणीय-श्रेष्ठ है। वह हमारा चरम सीमा-मध्य-पीछे-सामने से रक्षिता हो। ३

५८ हे इन्द्र! विद्वान् तू हमें महान् लोक-स्वर्गीय ज्योति-अभय-कल्याण की ओर ले जाता है। हम श्रेष्ठ तेरी उग्र बाहों के महान् आश्रय में निवास करें। ४

५९ अन्तरिक्ष और ये दोनों द्यौ-पृथिवी हमें अभय करें। पश्चिम-पूर्व-उत्तर-दक्षिण से हमें अभय हो। ५

६० हमें मित्र-अमित्र-ज्ञात-परोक्ष-जो सामने हो उससे अभय हो। हमें रात-दिन अभय हो। सब दिशाएँ मेरी मित्र हों।

सूक्त १६

६१ सविता-शचीपति (परमेश्वर; सूर्य-बिजली, राजा-मन्त्री) मुझे पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण से वैरी-रहित और अभय करें। १

६२ द्यौ से आदित्य, भूमि से अग्नियाँ; पूर्व से इन्द्र-अग्नि मेरी रक्षा करें, अश्वी (सूर्य-चन्द्रमा, दिन-रात) सब ओर से सुख दें। अहिंसनीय-नित्य वेद-वाणी और परमेश्वर शुभ कर्मों के संचय-कर्ताओं की रक्षा करे, सत्य-कर्मा ऋषि सब ओर से मेरा कवच (रक्षक) हो। २

सूक्त १७

६६६३-६५ वसुओं के साथ अग्नि पूर्व दिशा से, इसी से अन्तरिक्ष द्वारा वायु, रुद्रों के साथ सोम दक्षिण दिशा से मेरी रक्षा करे। उसमें मैं विचरूं और आश्रय लूँ; उस पुर को मैं पाऊँ। वह मुझे बचाये, उसके लिए मैं अपने को भेंट करता हूं। यह सुवचन है। १-३

['उसमें' से लेकर 'है' तक का अन्तिम अंश आगे मन्त्र १० तक सब में एक-समान है।]

४६६६ वरुणो मादित्यैरेतस्या दिशः पातु ० ॥ ४
६७ सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशः पातु ० ॥ ५
६८ आपो मौषधीमतीरेतस्या दिशः पान्तु तासु क्रमे तासु श्रये तां पुरं प्रैमि।
ता मा रक्षन्तु ता मा गोपायन्तु ताभ्य आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ६
६९ विश्वकर्मा मा सप्तऋषिभिरुदीच्या दिशः पातु० ॥७
७० इन्द्रो मा मरुत्वानेतस्या दिशः पातु ०॥ ८
७१ प्रजापतिर्मा प्रजननवान्त्सह प्रतिष्ठाया ध्रुवाया दिशः पातु ० ॥ ९
७२ बृहस्पतिर्मा विश्वैर्देवैरूर्ध्वाया दिशः पातु ० ॥ १०

सूक्त १८।

७३ अग्निं ते वसुवन्तम् ऋच्छन्तु। ये माघायवः प्राच्या दिशोऽभि दासात्				॥ १
७४ वायुं तेऽन्तरिक्षवन्तम्	,,	एतस्या	,,	॥ २
७५ सोमं ते रुद्रवन्तम्	,,	दक्षिणाया	,,	॥ ३
७६ वरुणं त आदित्यवन्तम्	,,	एतस्या	,,	॥ ४
७७ सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तम्	,,	प्रतीच्या	,,	॥ ५
७८ अपस्त ओषधीमतीर्	,,	एतस्या	,,	॥ ६
७९ विश्वकर्माणन्ते सप्तऋषिवन्तं	,,	उदीच्या	,,	॥ ७
८० इन्द्रं ते मरुत्वन्तम्	,,	एतस्या	,,	॥ ८
८१ प्रजापतिं ते प्रजननवन्तं	,,	ध्रुवाया	,,	॥ ९
८२ बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तो	,,	ऊर्ध्वाया	,,	॥ १०

सूक्त १९

८३ मित्रः पृथिव्या उदक्रामत्तां पुरं प्रणयामि वः। तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु १

८४ वायुरन्तरिक्षेण	,,	॥ २
८५ सूर्यो दिवा	,,	॥ ३
८६ चन्द्रमा नक्षत्रैः	,,	॥ ४
८७ सोम ओषधीभिः	,,	॥ ५
८८ यज्ञो दक्षिणाभिः	,,	॥ ६
८९ समुद्रो नदीभिः	,,	॥ ७
९० ब्रह्म ब्रह्मचारिभिः	,,	॥ ८
९१ इन्द्रो वीर्येण	,,	॥ ९
९२ देवा अमृतेन	,,	॥ १०
९३ प्रजापतिः प्रजाभिः	,,	॥ ११

४६६६-७२ मुझे आदित्यां (सूर्य-किरणों) के साथ वरुण (जल) इसी दिशा से, द्यो-पृथिवी के साथ सूर्य पश्चिम दिशा से, औषधि-सहित जल इसी दिशा से, ७ ऋषि-सहित विश्वकर्मा (चुम्बक) उत्तर दिशा से, मरुतां (मानसून हवाओं-सहित बिजली-मेघ इसी दिशा से, प्रजनन (उत्पादन)-वाला वही प्रजापति (यज्ञ-राजा-प्रभु) पृथिवी को नावे की दिशा से, सब देवों के साथ बृहस्पति (आकाश) ऊपर की दिशा से बचाये। उनमें मैं विचरूँ, आश्रय लूँ। उस पुर (परमेश्वर) तक पहुँचूँ। वह मुझे बचाये मेरी रक्षा करे। मैं अपने को उनके जिर सौंपता हूं यह सुगचन है। ४-१०

सूक्त १८

७३-८२ जो पापी मुझे नष्ट करना चाहें तो पूर्व दिशा से न्याय-दण्ड के लिए वसु-युक्त अग्नि को प्राप्त हों; इसी दिशा में अन्तरिक्ष वाली वायु को; वे दक्षिण दिशा में रुद्रों वाले सोम को और इसी दिशा में आदित्य-सहित वरुण को. वे पश्चिम में द्यो-पृथिवी वाले सूर्य को और इसी दिशा में औषधि वाले जल को; उत्तर दिशा में सप्तर्षि वाले विश्वकर्मा को और इसी में मरुतों वाले इन्द्र को. जो नीचे की ओर से मेरा नाश करें व प्रजननकर्ता प्रजापति को प्राप्त हों और जो पापेच्छुक हत्यारे ऊपर की दिशा (वायु-यान) से मेरा नाश करना चाहते हों वे सब देवों के साथी बृहस्पति (परमात्मा) को (दण्ड के लिए) प्राप्त हों। १-१०

सूक्त १६

४६८३-६३ मित्र (अग्नि-आक्सीजन) पृथिवी के द्वारा आगे बढ़ता है। मैं तुम्हें इस ब्रह्म-पुरी को ले जाता हूं। उसमें पूर्णतया सब ओर से प्रवेश करो। वह तुम्हें सुख और कवच दे। वायु अन्तरिक्ष से, सूर्य द्यौ से, चन्द्रमा नक्षत्रों से; सोम औषधियों से; यज्ञ दक्षिणाओं से, समुद्र नदियों से, ब्रह्म ब्रह्मचारियों से, इन्द्र वीर्य से, देव अमृत से, प्रजापति प्रजाओं से उन्नत पद पाता है। १-११

सूक्त २०

४६९४ अप न्यधुः पौरुषेयं वधं यमिन्द्राग्नी धाता सविता बृहस्पतिः ।
सोमो राजा वरुणो अश्विना यमः पूषास्मान् परि पातु मृत्योः ॥ १

९५ यानि चकार भुवनस्य यस्पतिः प्रजापतिर्मातरिश्वा प्रजाभ्यः
प्रदिशो यानि वसते दिशश्च तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु ॥ २

९६ यत् ते तनूष्वनह्यन्त देवा द्युराजयो देहिनः ।
इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान् पातु विश्वतः ॥ ३

९७ वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः ।
वर्म मे विश्वे देवाः क्रन् मा मा प्राप्त् प्रतीचिका ॥ ४

अनुवाक ३

सूक्त २१। छन्द

९८ गायत्र्युष्णिगनुष्टुब् बृहती पङ्क्ति त्रिष्टुब् जगत्यै ॥ १

सूक्त २२

४६९९-४७०० आङ्गिरसानामाद्यैः पञ्चानुवाकैः स्वाहा ॥ १ ॥ षष्ठाय स्वाहा ॥ २
४७०१-३ सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा ॥ नीलनखेभ्यः स्वाहा ॥ हरितेभ्यः स्वाहा ॥ ३-५ ९३
४-७क्षुद्रेभ्यःस्वाहा । पर्यायिकेभ्यः ,, । प्रथमेभ्य:शंखेभ्यः ,, । द्वितीयेभ्यः शंखेभ्यस्वाहा ६-
८-११तृतीयेभ्यःशंखेभ्यःस्वाहा।उपोत्तमेभ्यःस्वाहा।उत्तमेभ्यःस्वाहा। उत्तरेभ्यःस्वाहा '१०१
१२-१५ ऋषिभ्यः स्वाहा । शिखिभ्यः स्वाहा । गणेभ्यः स्वाहा । महागणेभ्यः ,, १४-१७
१६-१८ सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यःस्वाहा। पृथक्सहस्राभ्यांस्वाहा। ब्रह्मणेस्वाहा ।१८-२०
१९ ब्रह्मज्येष्ठा सम्भृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुङ्कः ॥ २१

सूक्त २३

२०-२२ आथर्वणानां चतुर्ऋचेभ्यः स्वाहा ॥ पञ्चर्चेभ्यः स्वाहा । षड्ऋचेभ्यः स्वाहा ॥ १-३
२३-२६ सप्तर्चेभ्यः स्वाहा । अष्टर्चेभ्यः स्वाहा । नवर्चेभ्यः स्वाहा । दशर्चेभ्यः ,, ॥ ४-१
२७-३० एकादशर्चेभ्यः,, । द्वादशर्चेभ्यः ,, । त्रयोदशर्चेभ्यः ,, । चतुर्दशर्चेभ्यः ,, ॥ ८-११
३१-३४ पञ्चदशर्चेभ्यः ,, । षोडशर्चेभ्यः ,, ।सप्तदशर्चेभ्यः ,, । अष्टादशर्चेभ्यः ,, ॥१२-१
३५-३९एकोनविंशतिः ,, ।विंशतिः ,, । महत्काण्डाय ,, । तृचेभ्यः स्वाहा। एकर्चेभ्यः ,, १६-
४०-४४ क्षुद्रेभ्यः ,, । एकानृचेभ्यः ,, । रोहितेभ्यः ,, । सूर्याभ्यां ,, । व्रात्याभ्यां ,, ॥ २१-२५
४६४५-४९ प्राजापत्याभ्यां ,, । विषासह्यै ,, । मङ्गलिकेभ्यः ,, । ब्रह्मणे ,, । ब्रह्म० । २६-३०

सूक्त २०

४६६४ जिन इन्द्राग्नि-विधाता-सविता-बृहस्पति-सोम-राजा-वरुण-अश्वी-यम-पूषा ने पुरुष के वधको हटा दिया है वे हमें मृत्यु से बचायें। १

६५ भुवन के पति, आकाश में व्यापक प्रजापति ने प्रजाओं के लिए जो रक्षा-उपाय किये हैं और दिशा-प्रदिशाओं में रक्खा है वे मेरे लिए बहुत कवच हों। २

६६ ज्ञान-दीप्त देहधारी देव तेरे अङ्गों पर जो कवच बाँधते हैं जिन्हें इन्द्र (सेनापति और बिजली) बनाते हैं वह हमें सब ओर से बचाये। ३

४६६७ मेरे लिए द्यौ-पृथिवी-दिन-सूर्य-सब देव कवच को बनाते हैं जिससे मुझ को प्रतिकूल परिस्थिति न प्राप्त हो। ४

अनुवाक ३

विषय— गायत्रीत्यादि०, स्वाहादि०, ब्रह्मणस्पतिरित्यादि०, व एनदित्यादि पदार्थविद्या (म० द० स०)

सूक्त २१। छन्द

६८ गायत्री-उष्णिक्-अनुष्टुप्-बृहती-पंक्ति-त्रिष्टुप्-जगती इन ७ के लिए (४-४ अक्षर बढ़ाओ)। १

सूक्त २२। ४६६९ से ४७१८ तक। २० मन्त्र

६९ शरीर के अङ्ग-अङ्गों और उनके रसों (औषधियों) को बताने वाले आदि के ५ अनुवाकों ६ स्वाहा (सुवचन-आहुति-सत्य क्रिया) हो। छठे (मन) के स्वास्थ्य के लिए स्वाहा। ७ वें अहंकारो ८ वीं बुद्धि के स्वास्थ्य के लिए आहुति हो। नीले नखवाले, हरित(पाण्डु-पीलिया-कामला)वाले, रोगियों के लिए, छोटे कीटाणुओं, पारी के रोगों के निवारणार्थ आहुति हो। तीन प्रकार के शंखों की भस्म औषधि है— १- पीला सुनहरी, २- बड़ा सफेद समुद्र का, ३- नदी का छोटा घोंघा। तीन पाशों के लिए स्वाहा (अच्छा त्याग) हो— १- उपोत्तम (मध्यम सूक्ष्म शरीर मन) २- उत्तम (कारण शरीर आत्मा-बुद्धि का) ३- उत्तर (अधम स्थूल शरीर का) ये तीन बन्धन हैं। केवल शरीर में भी तीन पाश हैं— १- मस्तिष्क का, २- मध्य नाभि तक, ३- नाभि से ,,नीचे। ऋषियों के लिए सुवचन, ज्वाला वाली अग्नियों को आहुति और शिखाधारियों को सुवचन ह व्यक्ति-शरीर और समाज के गण-महागण और सब प्राणाचार्य विद्वानों के गणों के लिए अन्न अच्छा अन्नादि का दान हो। अलग-अलग हजारों के लिए अन्न-दान और सुवचन हो। ब्रह्म (ईश्वर-वेद-अथर्व वेद) के लिए सुवचन हो। [आगे भी संख्या ४७४८ पर है।] १-२० १९ एकत्र शक्तियों में ब्रह्म ज्येष्ठ है, इस ने द्यौ का सब ओर विस्तार किया। भूतों में वह प्रथम शक्ति है, इसके साथ स्पर्धा कौन कर सकता है? २१ (आगामी संख्या ३० भी।)

सूक्त २३

४७२०-४९ अचल ईश्वर के अथर्व वेद के ४ ऋचा वाले, ५ वाले, ६-७-८-९-१०-११-१२-१३-१४-१५-१६-१७-१८ ऋचा वाले सूक्त, और १९-२० काण्ड तथा महाकाण्ड २० के लिए सुवचन हो। ३ मन्त्रों के (१७१), चूद्र (२ के ४६), १ के (७५), एकानृच (आधे) [संख्या ४६६८), रोहित (काण्ड १३), सूर्या (काण्ड १४ के २), व्रात्य (काण्ड १५ के २ अनुवाक), प्राजापत्य (काण्ड १६ के २ अनुवाक), विषासहि से आरम्भ (काण्ड १७); मङ्गलिक (काण्ड १८) और शेष सुवचन हों। १-३० [मन्त्र ४७४८-४९ पहले क्रमांक ४७१८-१९ पर आ चुके हैं, अर्थ वहीं पर देखिये। २९-३०

२४ उषा

४७५० येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन् ।
तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन ॥ १
५१ परीममिन्द्रमायुषे महे क्षत्राय धत्तन । यथैनं जरसे नयां ज्योक् क्षत्रे ऽधि जागरत् ॥ २
५२ परीमं सोममायुषे महे श्रोत्राय " श्रोत्रे " ॥ ३
५३ परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतद् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥ ४
५४ जरां सु गच्छ परि धत्स्व वासो भवा गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।
शतञ्च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुप सं व्ययस्व ॥ ५
५५ परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्वापीनामभि शस्तिपा उ ।
शतञ्च जीव शरदः पुरूचीर्वसूनि चारुर्वि भजासि जीवन् ॥ ६
५६ योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७
५७ हिरण्यवर्णो अजरः सुवीरो जरामृत्युः प्रजया सं विशस्व ।
तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ॥ ८

सूक्त २५

५८ अश्रान्तस्य त्वा मनसा युनज्मि प्रथमस्य च । उत्कूलमुद्वहो भवोदुह्य प्रतिधावतात् ॥ १

सूक्त २६ ।

५९ अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यममृतं दध्रे अधि मर्त्येषु ।
य एनद् वेद स इदेनमर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति ॥ १
६० यद्धिरण्यं सूर्येण सुवर्णं प्रजावन्तो मनवः पूर्व ईषिरे ।
तत्त्वा चन्द्रं वर्चसा सं सृजत्यायुष्मान् भवति यो बिभर्ति ॥ २
६१ आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च । यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनाँ अनु ॥ ३
६२ यद् वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः ।
इन्द्रो यद् वृत्रहा वेद तत्त आयुष्यं भुवत् तत्ते वर्चस्यं भुवत् ॥ ४

अनुवाक ४

सूक्त २७

४७६३ गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः ।
वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः ॥ १
६४ सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः । माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु ॥ २

सूक्त २४ । सम्राट् का पोषण

४७५० जैसे प्राकृत देव सूर्य को धारण करते हैं वैसे ही हे वेद-पालक! तू इसे राष्ट्र के हेतु धारण कर ।१

५१ इस इन्द्र (राजा) को आयु-अन्न-क्षात्र बल के हेतु धारण करो जैसे मैं इसे वृद्धावस्था तक ले जाऊँ और यह क्षात्र-बल में सदा जागता रहे । २

५२ इस सोम (प्रेरक) को आयु-अन्न-वेद के हेतु धारण करो इससे वह सदा वेद-प्रचार में सावधान हो । ३

५३ इसे राज-वस्त्र पहनाओ। इसका धारण-पोषण करो। इसकी बुढ़ापे की मौत तक लंबी आयु करो । इस सोम के पहनने को पुरोहित वस्त्र दे । ४

५४ हे राजन्! प्रशंसा-युक्त जरा तक पहुँच। राज-वस्त्र पहिन । और पशुओं का पालक बन। नाना कार्यों में व्याप्त जीवन के सौ वर्ष जी। और ऐश्वर्य का पोषण पा । ५

५५ कल्याण के लिए राज-वस्त्र पहिन, और खेती-वाटिकाओं का रक्षक बन। व्यस्त सौ वर्ष जी, जीता हुआ तू धनों को अच्छा बाँट । ६

५६ हे सखाओ! हम रक्षार्थ प्रत्येक योग-योजनाओं और अन्न-बल-कार्यों में बली-वृद्धिकारी इन्द्र [ईश्वर-बिजली-राजा] की याद करें । ७

५७ सोने के समान तेजस्वी-रूप; युवा-अच्छा वीर, बुढ़ापे पर मरने वाला तू प्रजा के साथ मिल कर रह, यह मन्त्री-सेनापति; मित्र-राजन्य-मन्त्री उनसे कहा करें । ८

सूक्त २५ ।

५८ हे राजन्! मैं अथक परिश्रमी-प्रथम तुझे मन्त्री के साथ संयुक्त करता हूं। तू उन्नति के उच्च तट तक ले जाने वाला हो, उच्च ले जाकर और अधिक दौड़ [उन्नति कर] । १

सूक्त २६ । सोना (वीर्य)

५९ तप-अग्नि से उत्पन्न जो हिरण्य [हितकर-रमणीय सोना-वीर्य] मनुष्यों में अमरता को देता है उसे जो जानता-पाता है वही इसके योग्य होता है, जो धारण करता है वह बुढ़ापे पर मरने वाला होता है । १

६० सूर्य के समान उत्तम रूप वाले जिस सोना-वीर्य को श्रेष्ठ सन्तानेच्छुक मनस्वी चाहते हैं उसका धारक आयुष्मान् होता है । २

वह आह्लादकारी तत्त्व तुझे तेज से युक्त करता है, जिससे तू जनों में चमके । ३

६१ आयु-तेज-ओज-बल के लिए तुझे हिरण्य के तेज से युक्त करता हूं

६२ जिस सोना-वीर्य को राजा वरुण-देव बृहस्पति-वृत्रनाशक इन्द्र जानता है वह तेरे लिए आयु-तेज-वर्धक हो । ४

सूक्त ६ और अनुवाक ३ समाप्त हुआ ।

अनुवाक ४ सूक्त २७

विषय— गोभिष्टवा पात्वृषभ इत्यादि; ये देवा इत्यादि; शत्रूणामित्यादि। जहि मे द्विषत इत्यादि, पुष्टिकामाय त्रेत्रसादि; पुष्टचो वनस्पतिरित्यादि; औषध इत्यादि; शूबाय चार्यायेति, ओजो इत्यादि प०

६३ ऋषभ गौओं से [श्रेष्ठ ईश्वर वेद-वाणियों से, बैल गौओं से], आनन्द-वर्षक मन इन्द्रियों से, वायु [प्राण] ब्रह्म से, और जीवात्मा इन्द्रियों से तेरी रक्षा करें । १

४७६४ सोम औषधियां, सूर्य नक्षत्रों, अँधेरा-नाशक चन्द्र मासों, वायु प्राण से तेरी रक्षा करें । २

४७६५ तिस्रो दिवस् तिस्रः पृथिवीस् त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान् ।
त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहुस् तास् त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥ ३
६६ त्रीन् नाकांस् त्रीन् समुद्रांस् त्रीन् ब्रध्नास् त्रीन् वैष्टपान् ।
त्रीन् मातरिश्वनस् त्रीन्त्सूर्यान् गोप्तॄन् कल्पयामि ते ॥ ४
६७ घृतेन त्वा समुक्षाम्यग्न आज्येन वर्धयन् ।
अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दभन् ॥ ५
६८ मा वः प्राणं मा वोऽपानं मा हरो मायिनो दभन् ।
भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावत ॥ ६
६९ प्राणेनाग्निं संसृजति वातः प्राणेन संहितः ।
प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन् ॥ ७
७० आयुषायुःकृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः ।
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥ ८
७१ देवानां निहितं निधिं यमिन्द्रोऽन्वविन्दत् पथिभिर्देवयानैः ।
आपो हिरण्यं जुगुपुस् त्रिवृद्भिस् तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥ ९
७२ त्रयस्त्रिंशद् देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगुपुरप्स्वन्तः ।
अस्मिंश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद्वीर्याणि ॥ १०
७३ ये देवासो दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥ ११
७४ ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥ १२
७५ „ पृथिव्याम् „ ॥ १३
[उक्त ३ मन्त्र कुछ भेद से ऋ० १.१३९-११ और यजुः ७-१९ में भी हैं ।]
७६–७७ [ये दो मन्त्र पहले क्रमांक ४६६१–६२ पर १६.१६.१–२ में आ चुके हैं ।]

सूक्त २८ । दर्भ मणि (वम, अभ्रक, शत्रु-विदारक सेनापति)

७८ इमम्बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे ।
दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस् तपनं हृदः ॥ १
७९ द्विषतस् तापयन्हृदः शत्रूणां तापयन्मनः ।
दुर्हार्दः सर्वांस् त्वं दर्भ घर्म इवाभीन्त्सन्तापयन् ॥ २
४७८० घर्म इवाभितपन् दर्भ द्विषतो नितपन्मणे ।
हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्र इव विरुजं बलम् ॥ ३

४७६५ तीन द्यौ (नोहारिका में, और इस द्यौ के उत्तर-दक्षिण-मध्य), तीन पृथिवी (उत्तर-दक्षिण-
मध्य); तीन अन्तरिक्ष, चार समुद्र(पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण), त्रिवृत् स्तोम(साम-गान में गायत्री
छन्द की तीन आवृत्ति); जल तीन तरह(भूगभ-भूमि-आकाश)का है, वह त्रिवृतों द्वारा तुझे बचाये।३

६६ तीन मोक्ष (विदेह-प्रकृतिलीन-आत्मलीन), तीन समुद्र [आश्रम], तीन ब्रध्न[महान् ईश्वर-
जीव-प्रकृति], तीन वैष्टप [निस्ताप सुख-विशेष], तीन वायु-सूर्य [ग्रीष्म-वर्षा-शरद् के] का मैं
तेरा रक्षक बनाता हूं। ४

६७ हे अग्रणी! तुझे आज्य से बढ़ाता हुआ मैं घी से सींचता हूं। कपटी रोग-कीटाणु अग्नि-
चन्द्र-सूर्य द्वारा दी गयी प्राण-शक्ति को दवा न सकें।५

६८ तुम्हारे-प्राण-अपान-तेज को कपटी दवा न सकें। हे तेजस्वी-विश्ववेत्ता विद्वानो! तुम
दिव्य कर्म से शुद्ध होओ। ६

६९ ईश्वर अग्नि को प्राण से युक्त करता है, उसने वायु प्राण-युक्त की। ईश्वरीय शक्तियों ने
सूर्य को प्राण से ही सब से मुख्य बनाया। ७

७० हे जीव! तू आयुवालों के जीवनानुसार जी, मत मर, आत्मावालों के प्राण से जी, मृत्यु-वश न हो।८

७१ देवों की जिन गुप्त निधि हिरण्य (वीर्य) को जीवात्मा देव-यान पथों से पाता है, जिसकी
रक्षा रक्त-जल आदि त्रिवृत्-स्तोम (मन्त्र ४ में बताये) सहित त्रिवृतों से तेरी रक्षा करें। ९

७२ मानो प्रेम करते हुए तैंतीस देवताओं और तीन(शरीर-मन-आत्मा की)शक्तियों ने इस जीव
की जल के भीतर रक्षा की। इस चन्द्र (मन) में जो हिरण्य है उससे यह पराक्रम करता है। १०

७३ जो देव द्यौ में ११ (१० प्राण-१ जीव) हैं उन्हें जान कर हे विद्वानो, इस हवि का सेवन करो। ११
७४ ,, अन्तरिक्ष में ११(१० इन्द्रिय-१ मन) ,, । १२
७५ ,, पृथिवी पर ११(८ वसु-अहंकार-महत्-प्रकृति) ,, । १३

[ये तीन मन्त्र ऋ० १-१३९-११ और यजु ७-१९ में भी कुछ पाठ-भेद से हैं।]
७६-७७ [ये दो मन्त्र क्रमाङ्क ४६६१-६२ पर १९-१६-१,२ में आ चुके हैं।]

सूक्त २८। दर्भ-मणि (वम, अभ्रक भस्म गुटिका, विदारक सेनापति)

७८ (हे राजन्!) मैं दीर्घायु-तेज के लिए शत्रु-विदारक, द्वेषी के हृदय के सन्तापक दर्भ को
तेरे साथ संबद्ध करता हूं। १

७९ हे दर्भ! द्वेषी के हृदय तपाता हुआ, शत्रुओं के मन को तपाता हुआ तू सब दुष्ट हृदय वाले
निडर शत्रुओं को ग्रीष्म के सूर्य के समान संतप्त कर। २

४७८० हे दर्भमणि (सेनापति)! गर्मी के प्रचण्ड सूर्य के समान तपता हुआ, द्वेषियों को तपाता
हुआ, उनके बल और सैन्य को तोड़ता हुआ, बिजली के समान तू शत्रुओं के हृदयों को
छिन्न-भिन्न कर। ३

४७८१ भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतान्मणे ।
उद्यन्त्वचमिव भूम्याः शिर एषां वि पातय ॥ ४

८२ भिन्द्धि दर्भ सपत्नान्मे भिन्द्धि मे पृतनायतः। भिन्द्धि मे सर्वान्दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे ५

८३ छिन्धि ,, छिन्धि ,, छिन्धि ,, छिन्धि ,, ६
८४ वृश्च ,, वृश्च ,, वृश्च ,, वृश्च ,, ७
८५ कृन्त ,, कृन्त ,, कृन्त ,, कृन्त ,, ८
८६ पिंश ,, पिंश ,, पिंश ,, पिंश ,, ९
८७ विध्य ,, विध्य ,, विध्य ,, विध्य ,, १०

सूक्त २९ । दर्भ

८८ निक्ष दर्भ सपत्नान्मे निक्ष मे पृतनायतः । निक्ष मे सर्वान्दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे ॥ १
८९ तृन्धि ,, तृन्धि ,, तृन्धि ,, तृन्धि ,, ॥ २
९० रुन्धि ,, रुन्धि ,, रुन्धि ,, रुन्धि ,, ॥ ३
९१ मृण ,, मृण ,, मृण ,, मृण ,, ॥ ४
९२ मन्थ ,, मन्थ ,, मन्थ ,, मन्थ ,, ॥ ५
९३ पिण्ढि ,, पिण्ढि ,, पिण्ढि ,, पिण्ढि ,, ॥ ६
९४ ओष ,, ओष ,, ओष ,, ओष ,, ॥ ७
९५ दह ,, दह ,, दह ,, दह ,, ॥ ८
९६ जहि ,, जहि ,, जहि ,, जहि ,, ॥ ९

सूक्त ३० । दर्भ

९७ यत्ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते ।
तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नां जहि वीर्यैः ॥ १

९८ शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते ।
तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः ॥ २

४७९९ त्वामाहुर्देववर्म त्वां दर्भ ब्रह्मणस्पतिम् ।
त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ॥ ३

४८०० सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस् तपनं हृदः। मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ॥ ४

४८०१ यत् समुद्रो अभ्यक्रन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह ।
ततो हिरण्ययो बिन्दुस् ततो दर्भो अजायत ॥ ५

सूक्त ३१ । औदुम्बर मणि

४८०२ औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा ।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् ॥ १

४७८१ हे दर्भ मणि (शत्रु-विदारक सेनापति और अभ्रक के बने वाग्व) ! तू द्वेषी शत्रुओं के हृदय का भेदन कर। जैसे उदय होता हुआ सूर्य भूमि से त्वचा के समान अंधेरे को दूर करता है वैसे ही तू आगे बढ़ता हुआ इनके सिर को दूर गिरा दे। ४

४७८२-९६ (१५ मन्त्र)-

हे दर्भ मणि ! तू मेरे शत्रु-आक्रामक-दुष्ट हृदय वाले सब द्वेषियों का १- भिन्द्ध भेदन कर। ५ २- छिन्द्धि छेदन कर। ६। ३- वृश्च काट डाल। ७। ४- कृन्त कतर डाल। ८। ५- पिंश पीस दे। ६। ६- विध्य बींध दे। १०

सूक्त २९। दर्भ मणि (बम-सेनापति)

७- निक्ष बहुत क्षय कर; चुंबक-समान अपनी ओर खींच। १। ८- तृन्द्धि अनादर-हिंसा कर। २ ९- रुन्धि घेरा डाल। ३। १०- मृण प्राण ले ले। ४। ११- मन्थ मथ डाल। ५। १२- पिण्ढि टुकड़े-टुकड़े कर। ६। १३- ओष झुलसा दे। ७। १४- दह जला दे। ८। १५- जहि मार।

सूक्त ३०। दर्भ मणि

४७९७ हे दर्भ ! जो तेरा प्रभाव वृद्धावस्था-मृत्यु है, और कवचों में सैकड़ों कवच हैं, उस से इसे कवच वाला बनाकर अपने पराक्रमों से शत्रुओं को मार। १

९८ हे दर्भ ! तेरे सैकड़ों कवच और हजारों पराक्रम हैं, अतः तुझे इस राष्ट्र के लिए सब विद्वान् वृद्धावस्था तक भरण-पोषण के लिए दिया करते हैं। २

९९ हे दर्भ ! तुझे देवों का कवच और वेद का रक्षक कहा जाता है। तुझे इन्द्र का कवच कहते हैं। तू राष्ट्रों की रक्षा करता है। ३

४८०० हे राजन् ! शत्रु-नाशक, द्वेषी के हृदय के मर्मनाशक, क्षत्र-शक्ति को बढ़ाने वाले श्रेष्ठ दर्भ (सेनापति और अभ्रक-बम) को मैं तेरा शरीर-रक्षक बनाता हूं। ४

१ वर्षा में जो समुद्र, और बिजली के साथ बादल गर्जा तत्पश्चात् जो सुनहरी बूँद (वीर्य) गिरी तब उससे यह दर्भ (अभ्रक और सेनापति) उत्पन्न हुआ। ५

सूक्त ३१। औदुम्बर मणि

४८०२ सविता (प्रधान मन्त्री) पुष्टि की कामना वाले मेरे लिए विद्वान् वैज्ञानिक द्वारा बनायी औदुंबर मणि से मेरे गोष्ठ में सब पशुओं की वृद्धि करता है। १

४८०३ यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशूनामधिपा असत् ।
औदुम्बरो वृषा मणिः सं मा सृजतु पुष्ट्या ॥ २
४ करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे ।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥ ३
५ यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः ।
गृह्णेऽहं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम् ॥ ४
६ पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् ।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥ ५
७ अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नियच्छतु ॥ ६
८ उप मौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च ।
इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन्त्सह वर्चसा ॥ ७
९ देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये ।
पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु ॥ ८
१० यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे ।
एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ॥ ९
११ आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् ।
सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः ॥ १०
१२ त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान ।
त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बरः स त्वमस्मत् सहस्वारादरातिममतिं क्षुधं च ॥ ११
१३ ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा ।
तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि ॥ १२
१४ पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु ।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं नियच्छ रायस्पोषाय प्रतिमुञ्चे अहं त्वाम् ॥ १३
१५ अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।
स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् ॥ १४

सूक्त ३२ । दर्भ

४८१६. शतकांडो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः । दर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे ॥ १

४८०३ जो हमारा गार्हपत्य अग्नि-समान, पशुओं का पति (रक्षक-स्वामी) है वह सुख-वर्षक औदुम्बर मणि (गूलर का सा बम और व -सेनापति) मुझे पुष्टि से युक्त करे । २

४ धाता (मन्त्री) हमारे घर में औदुम्बर के तेज से गोबर वाली गौ-फल वाली वाटिका-अन्न-जल और पोषण को धारण कराये । ३

५ मैं औदुम्बर मणि धारण करता हुआ, जो दुपाये-चौपाये-अन्न-रस हैं इनकी अधिकता को ग्रहण करता हूं । ४

६ जो पशुओं-चौपाये-दुपायों का पोषण और अन्न है उसे मैं पर्याप्त लेता हूं। महान् पति सविता मेरे लिए पशुओं का दूध और औषधियों का रस दे । ५

७ मैं पशुओं का पति होऊँ; पोषक पति मुझमें पोषण धारण करे । मेरे लिए औदुम्बर मणि धन दे । ६

८ औदुम्बर मणि प्रजा और धन के साथ मेरे पास रहे । इन्द्र (बिजली) से प्रेरित मणि (बम) मुझे तेज के साथ मिले । ७

९ दिव्य-गुणी मणि शत्रु-नाशक; धन-दान के लिए धन-दाता है; वह पशु-अन्न की अधिकता और गौओं की वृद्धि करे । ८

१० हे वन के पति ! जैसे तू पोषण के साथ आगे रहता है वैसे ही सरस्वती (विद्या) मेरे लिए धन की वृद्धि करे । ९

११ मेरे लिए विद्या-अन्न वाली पत्नी और यह औम्दुबर मणि धन-दुग्धवृद्धि-अन्न को प्रदान करें । १०

१२ हे वनाधिपति औदुम्बर ! तू मणियों का पति सुख-वर्षक है, पोषण-पति ने तुझ पर पोषण-अधिकार दिया है; तुझमें ये सब अन्न-धन हैं, तू हमसे कृपणता-कुमति-भूख दूर कर; बल दे । ११

१३ तू ग्राम-नेता है, उठकर अभिषिक्त होकर मुझे वर्च से सींच, तू तेज-ऐश्वर्य है मुझमें तेज-ऐश्वर्य धारण करा । १२

१४ हे औदुम्बर ! तू पुष्टि है, मुझे पोषण-युक्त कर, गृह-मन्त्री है मुझे गृह-पति कर । हममें सबको वीर करने वाला ऐश्वर्य दे, मैं तुझको धन के पोषणार्थ लेता हूं । १३

१५ यह वीर औदुम्बर मणि वीर के लिए संबद्ध किया जाता है, वह हमारा दान मधुर करे, और हमें सर्व-वीर-युक्त ऐश्वर्य दे । १४

सूक्त ३२ । दर्भ (ईश्वर-अभ्रक ओषधि-बम)

४८१६ सैकड़ों से कमनीय, सैकड़ों तनों वाला, न गिरने वाला, हजारों का पोषक; हजारों पत्तो वाला, उत्कृष्ट; उग्र औषधि दोष-नाशक (ईश्वर और अभ्रक) उसे मैं तुझको आयु-वृद्धि के लिए धारण-सम्बद्ध कराता हूं । १

४८१७, नास्य केशान् प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते ।
यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति ॥ २
१८ दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः ।
त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ॥ ३
१९ तिस्रो दिवो अत्यतृणत् तिस्र इमाः पृथिवीरुत ।
त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि ॥ ४
२० त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान् ।
उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान् सहिषीमहि ॥ ५
२१ सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः ।
सहस्व सर्वान् दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून् कृधि ॥ ६
२२ दर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित् ।
तेनाहं शश्वतो जनाँ असनं सनवानि च ॥ ७
२३ प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥ ८
२४ यो जायमानः पृथिवीमदृंहद् यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवञ्च ।
यं बिभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो दिवा कः ॥ ९
२५ सपत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस् तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः ॥ १०

सूक्त । ३३

२६ सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वानपामग्निर्वीरुधां राजसूयम् ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो मणिरायुषा सं सृजाति नः ॥
२७ घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान् भूमिदृंहोऽच्युतश् च्यावयिष्णुः ।
नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन् दर्भारोह महतामिन्द्रियेण ॥ २
२८ त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे ।
त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् ॥ ३
२९ तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः ।
ओजो देवानां बलमुग्रमेतत् तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ॥ ४
४८३०. दर्भेण त्वं कृणवद्वीर्याणि दर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः ।
अतिष्ठाया वर्चसा धान्यान्त्सूर्य इवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५

४८१७ जिस के लिए (वैद्य-पुरोहित) आच्छिन्न-पर्ण दर्भ (कवच-ईश्वर) से सुख देता है उसके केशों को शत्रु नहीं उखाड़ सकते, छाती पर चोट नहीं कर सकते । २

१८ हे ओषधि ! तेरा विस्तार द्यौ में है, तू पृथिवी पर स्थित है । हजारों काण्ड वाली तुझ से हम आयु को बढ़ाते और बढ़ायें, ३

१९ तू ३ द्यौ और इन ३ पृथिवियों को नष्ट करता है, तुझ से मैं दुष्ट हृदय वालों की जीभ और वचनों को नष्ट करता हूं । ४

२० तू सहन-शक्ति-युक्त है, मैं सहन-शील हूं, हम दोनों सहन-युक्त होकर शत्रुओं को वश में करें । ५

२१ तू हमारे अभिमानी शत्रु, उसके अभिमान, और आक्रामक सेनाओं को नष्ट कर । मेरे सभी दुष्ट हृदय वालों को हरा, श्रेष्ठ हृदय वालों को बहुत अधिक कर । ६

२२ देवों से उत्पन्न, द्यौ में स्तम्भित दर्भ से मैं सदैव जीतता हूं और जीतता रहूं । ७

२३ हे दर्भ ! तू मुझे ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र के लिए, जिसे चाहते हैं उसके प्रति, और सब द्रष्टा विद्वानों का प्रिय बना । ८

२४ जो उत्पन्न होकर पृथिवी को दृढ़ करता है, जो अन्तरिक्ष-द्यौ को स्तम्भित करता है, जिस के धारक को पापी नहीं जान पाता; वह हमारा यह वरणीय दर्भ (अभ्रक-कवच) प्रकाश करे । ९

[यहाँ श्री विश्वनाथ विद्यालङ्कार का किया दर्भ का परमेश्वर अर्थ ठीक नहीं लगता ।]

२५ शत्रु-घाती; सैकड़ों पत्तों वाला बली यह अभ्रक औषधियों में पहला मुख्य है । वह हमारी सब ओर से रक्षा करे । उस के बाम्ब से मैं आक्रामक सेनाओं को पराजित करूँ । १०

सूक्त ३३ । दर्भ

२६ हजारों से मान्य, सैकड़ों पत्तों वाला, रस-युक्त, जल की अग्नि (बिजली) के समान, औषधियों का राजा वह हमारा यह श्रेष्ठ दर्भ मणि (अभ्रक-भस्म की गोली और बाम्ब का गोला) सब ओर से रक्षा करे और हमें बड़ी आयु से संयुक्त करे । १

२७ घी से दीप्त (अग्नि-समान), मधु-युक्त, दूध वाला, शरीर-भूमि को दृढ़ करने वाला, अटल, रोग-नाशक हे दर्भ (अभ्रक) ! तू रोग आदि वैरियों को हटाता और नीचा करता हुआ बड़ी इन्द्रियों के साथ प्रकट हो । २

२८ तू ओज से भूमि को पार कर जाता है; तू यज्ञ में वेदि पर (रसायन-निर्माण-शाला में) स्थित होता है, पवित्र तुझे ऋषि (वैज्ञानिक द्रष्टा) धारण करते हैं, तू हम से पाप-दुःखों को हटा कर हमें पवित्र कर । ३

२९ तीक्ष्ण-राजा (दीप्त) विष-नाशक विजयी; राक्षसों (दुष्टों और रोगों) का हन्ता यह देवों का ओज और उग्र बल (अभ्रक) है उसे मैं (ईश्वर-वैद्य) तुझे वृद्धावस्था तक पहुँचाने और कल्याण के लिए सम्बद्ध करता हूं । ४

४८३० (हे मनुष्य !) तू दर्भ (अभ्रक) के द्वारा पराक्रम कर, उसको धारण प्रयुक्त करता हुआ अपने से व्यथित न हो । तदनन्तर तेज द्वारा अन्यों से बढ़कर सूर्य-समान चारों दिशाओं को पूर्णतया चमका दे । ५

यह सूक्त ३३ और अनुवाक ४ पूर्ण हुआ ।

अनुवाक ५ सूक्त ३४

४८३१. जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः ।
द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः ।। १
३२ या गृत्स्यस् त्रिपञ्चाशीः शतङ्कृत्याकृतश्च ये ।
सर्वान् विनक्तु तेजसोऽरसाँ जङ्गिडस् करत् ।। २
३३ अरसङ्कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः ।
अपेतो जङ्गिडाममतिमिषुमस्तेव शातय ।। ३
३४ कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः ।
अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ।। ४
३५ स जंगिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः ।
विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ।। ५
३६ त्रिष्ट्वा देवा अ नयन् निष्ठितं भूम्यामधि ।
तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः ।। ६
३७ न त्वा पूर्व्या ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः ।
विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ।। ७
३८ अथोपदान भगवो जंगिडामितवीर्य ।
पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ।। ८
३९ उग्र इत्ते वनस्पते इन्द्र ओज्मानमा दधौ ।
अमीवाः सर्वाश् चातयञ्जहि रक्षांस्योषधे ।। ९
४० आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम् ।
तक्मानं विश्वशारदमरसां जंगिडस् करत् ।। १०

सूक्त ३५.४१ इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जंगिडं ददुः। देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् ।१
४२. स नो रक्षतु जंगिडो धनपालो धनेव । देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम् ।।२
४३ दुर्हार्दः सङ्घोरं चक्षुः पापकृत्वानमागमम् ।
तांस्त्वं सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय परिपाणोऽसि जंगिडः ।। ३
४४ परि मा दिवः परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् परि मा वीरुद्भ्यः ।
परि मा भूतात् परि मोत भव्याद् दिशोदिशो जङ्गिडः पात्वस्मान् ।। ४
४५ य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः । सर्वांस्तान्विश्वभेषजो रसां जंगिडस्करत् ।।

अनुवाक ५ सूक्त ३४

विषय— जङ्गिडो ऽसि जङ्गिडेत्यादि०, जहि रक्षादि०, परि मा दिव इत्यादि०, यद्माादि-निवारणादि०; जीवला नाम ते मा तेति०, ततः कुष्ठोऽजायतेत्यादि०, मा नो मेघां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत्तपः इत्यादि पदार्थविद्या। —महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

सूक्त ३४ । जङ्गिड (सोम वनस्पति गिलोय)

४८३१ हे जङ्गिड ! तू उत्पन्न रोग को निगलने वाली, रक्षक औषधि है; हमारे सब दुपाये-चौपायों की रक्षा कर । १

३२ जो गृत्नियाँ (गर्धाएँ—अभिकाङ्क्षाएँ) शरीर-वाणी-मन इन ३ में और ५ ज्ञानेन्द्रियों में व्याप्त हैं और जो सैकड़ों हिंसक रोग-कीटाणु हैं उन सबको यह जङ्गिड निस्तेज-नीरस करती है । २

३३ हे जङ्गिड ! तू अस्वाभाविक गले का नाद, सिर के ७ छिद्रों के स्राव को अरस करता है जैसे धनुर्धर बाण को दूर फेंकता है वैसे ही तू यहाँ से कुमति को दूर कर । ३

३४ यह बली जङ्गिड कष्ट तथा कृपणता को दूर करता और हमारी आयु बढ़ाता है । ४

३५ वह जङ्गिड की महिमा सब ओर से हमारी रक्षा करे जिससे वह सूखा को दूर करता है । ५

३६ भूमिस्थ तुझे विद्वान् जोतने-बोने-सींचने के तीन कार्यों द्वारा उपजाते हैं । श्रेष्ठ वैज्ञानिक तुझे अंगिरा इस नाम से जानते हैं । ६

३७ पुरानी-नयी कोई औषधियाँ तुझ से बढ़कर नहीं । जंगिड रोग-बाधक, उग्र-रक्षक-सुमंगल है । ७

३८ हे शक्तिप्रद-समर्थ, अनन्त-वीर्य जंगिड ! उग्र रोगी तेरा सेवन करते हैं, इन्द्र ने तुझे शक्ति दी । ८

३९ हे औषधि वनस्पति ! उग्र इन्द्र बिजली तुझे ओज देती है, सब रोग नष्ट करती हुई क्रिमि मार । ९

४० जंगिड शरीर या अंग की जीर्णता, कफ, पृष्ठरोग, सरदी के ज्वर को निष्प्रभाव कर देता है । १०

सूक्त ३५ । जंगिड वनस्पति

४१ बिजली का जल लेवी सूर्य-किरणें जंगिड देती हैं जिसे विद्वान् सूखा की श्रेष्ठ औषध बनाते हैं । १

४२ वह जंगिड हमारी रक्षा करे जैसे धनपाल धन की, जिसे विद्वान् वैद्य रोग-नाशक रक्षक बनाते हैं । २

४३ हे हजारों रोगों के नाशक जंगिड ! तू रक्षक है, तू दुष्ट हृदय-रोग, अतिघोर नेत्र-रोग, आये हुए पापी क्रिमियों, को उपचार के ज्ञान द्वारा नाश कर । ३

४४ जंगिड मेरी रक्षा द्यौ-पृथिवी-अन्तरिक्ष-वनस्पति-भूत-भविष्य (के कुपथ्य-जन्य रोगों) से करे और हमें प्रत्येक दिशा से बचाये । ४

४५ जो हिंसाएँ प्राकृतिक की गयी हों, और जो अन्य रोग हो जाये उन सब को सर्व-औषधि जंगिड प्रभाव-हीन कर देता है । ५

सूक्त ३६ । शतवार, मणि, सतावर नागी सालम मिश्री औषधि

४६ शतवार तेज से सब यक्ष्मा और उन के क्रिमियों को नष्ट करता है । वह तेज के साथ शरीर-प्रविष्ट इन दुर्णामा (गुल्म-अतिसार-वात-पित्त-रक्त-शोथ-ग्रहणी-योनि के) रोगों का नाशक है । १

४८४७ यह शतवार दो सींगों से क्रिमि, जड़ से यातना-दायी वात-रोग, मध्य से यक्ष्मा को हटाता है; इसे कोई पाप रोग प्रभावित नहीं करता । २

सूक्त ३६ । शतवार

४८४६ शतवारो अनीनशद्यक्ष्मान्रक्षांसि तेजसा । आरोहन्वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥१

४७.शृंगाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः । मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति ॥ २

४८ ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः।सर्वान्दुर्णामहा मणिःशतवारोअनीनशत् ॥३

४९. शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत् । दुर्णाम्नः सर्वान् हत्वाव रक्षांसि धूनुते ॥ ४

५० हिरण्यशृंगो ऋषभः शातवारो अयं मणिः। दुर्णाम्नः सर्वांस्तृड्ढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत् ॥ ५

५१ शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम् । शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये ॥ ६

सूक्त ३७ । अग्नि

५२ इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम् ।
त्रयस्त्रिंशत् यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्र ददातु मे ॥ १

५३ वर्च आधेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम् ।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रतिगृह्णामि शतशारदाय ॥ २

५४ ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा ।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ॥ ३

५५ ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः । धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥ ४

सूक्त ३८ । गुल्गुलु

५६.न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते । यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते ।

५७.विष्वञ्चस्तस्माद्यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते। यद्गुल्गुलु सैन्धवं यद्वाप्यासि समुद्रियम् ॥

५८ उभयोरग्रभं नामास्मा अरिष्टतातये ।।३

सूक्त ९ कुष्ठ (कूट)

५९ ऐतु देवस्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि । तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ १

६० त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिषः ।
नद्यायं पुरुषो रिषत् । यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायं प्रातरथो दिवा ॥ २

६१ जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता । नद्यायं...० ॥ ३

६२ उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव । नद्या...० ॥ ४

६३ त्रिः शाम्बुभ्यो अंगिरेभ्यस्त्रिरादित्येभ्यस्परि । त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्यः ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति । तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ५

६४अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि।तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ॥६

४८४८ जो रोग नये-पुराने और जो घरघराहटवाले हैं; सबको रोग-नाशक शतवार मणि नष्टकरे। ३
४९ यह सैकड़ों को वीर बनाती है; अनेक रोग दूर करती है, सब रोग-क्रिमि मारकर हटाती है। ४
५० सुनहरी काँटे वाला, शतवारों में मणि यह ऋषभक सब रोग नष्ट कर क्रिमि दूर करता है। ५
५१ मैं वैद्य अनेक बीमारी, सैकड़ों सदा आक्रामक, नर-मादा, भूमि-जल-क्रिमि शतवार से दूर करूँ। ६

सूक्त ३७ । अग्नि

५२ यह अग्नि ईश्वर से दिया तेज-यश-सहनशक्ति-ओज-आयु बल आया है, जो तैंतीस शक्ति (१० इन्द्रिय-१० प्राण-५ भूत-५ तन्मात्रा-मन-बुद्धि-अहंकार की) हैं, उन्हें अग्नि मुझे दे। १
५३ मेरे शरीर में वर्च-सहन-ओज-आयु-बल दे, इन्द्रशक्ति-कर्म-वीर्य-शतायु के लिए तुझे लेता हूं। २
५४ हे ईश्वर! मैं तुझे ऊर्जा-बल-ओज-सहन-विजय-राष्ट्र-सेवा-शतायु के लिए धारण करूँ। ३
५५ मैं ऋतु-ऋतु-जन्य पदार्थ-मास-संवत्सर-धाता-विधाता-समृद्धि और संसार के पति के लिए यज्ञ करता हूं। ४

सूक्त ३८ । गुल्गुलु

५६ उसे यक्ष्मा नहीं होता, शपथ नहीं लगती, जिसे गूगल औषधि की सुगन्ध व्याप्त होती है। १
५७ उससे सभी रोग हिरन-अश्वों के समान दूर भागते, काँपते हैं जो गूगल चाहे नदी या समुद्र का हो। २
५८ इस रोगी की नीरोगिता के लिए दोनों का नाम लिया गया। ३

सूक्त ३९ । कुष्ठ (कूट)

५९ यह रक्षक दिव्य कूट हिमालय से आये। वह सब ज्वर और स्त्री-क्रिमियों का नाश करे। १
६० हे कूट! तेरे तीन नाम हैं — कुष्ठ-नद्यमार (नदी के रोगों को मारने वाला)-नद्यारि (नदी-रोग-नाशक)। हे नद्य कूट! यह पुरुष रोग-नाश करे जिसके लिए कहता हूं कि वह सायम प्रातः और दिन में तीन बार तेरा सेवन करे। २
६१ तेरी माता जीवला (जलप्राय भूमि) और पिता जीवन्त (जलद मेघ-सूर्य) है। हे नद्य...० ।३
६२ चलने वाले अहिंसकों में बैल और हिंसकों में बाघ के समान तू औषधों में उत्तम है, हे नद्य...०।४
६३ तीन प्रकार का कूट शाम्बु (मेघ), अङ्गिरा (सूर्य-चन्द्र-किरण; आदित्यों (सूर्य-किरणों) इन सब देवों से उत्पन्न है, वह विश्व-औषधि सोम के साथ रहती है। तू ज्वर और सब स्त्री-क्रिमियों का नाश कर। ५
४८६४ यहाँ से तीसरे द्यौ में अश्वत्थ नाम नक्षत्र-मण्डल है, वहां जल का दर्शन है, उससे कूट पैदा होता है। वह कुष्ठ विश्व० (शेष पूर्व मन्त्र के समान)। ६

४८६५ हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि । तत्रामृतस्य...० यातुधान्यः ॥ ७
६६ यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः । ,, ॥ ८
६७ यं त्वा वेद पूर्वइक्ष्वाको यं वा त्वा कुष्ठ काम्यः।यं वा वसो यमात्स्यस्तेनासि विश्वभेषजः॥९
३८ शीर्षलोकं तृतीयकं सदन्दिर्यश्च हायनः।तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परासुव ॥ १०

सूक्त ४० । बृहस्पति, विश्वे देवाः

६९ यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तञ्जगाम ।
विश्वैस् तद् देवैः सह संविदानः संदधातु बृहस्पतिः ॥ १
७० मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्रमथिष्टन।सुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी॥२
७१ मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत्तपः ।
शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥ ३
७२ या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः । तामस्मे रासताम्मिषम् ॥ ४

सूक्त ४१ । तपः

७३ भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस् तपो दीक्षामुप निषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रम्बलमोजश्च जातन्तदस्मै देवा उप सन्नमन्तु ॥ १

सूक्त ४२ । ब्रह्म

७४ ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः ।
अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः ॥ १
७५ ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता ।
ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः । शमिताय स्वाहा ॥ २
७६ अंहोमुचे प्रभरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः ।
इदमिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ३
७७ अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् ।
अपां नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण त इन्द्रियन्दत्तमोजः ॥ ४

सूक्त । ४३ । ब्रह्म

७८ यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे।अग्नये स्वाहा॥१

७९	,,	वायुः	,,	वायुः प्राणान्	,,	वायवे	॥ २
८०	,,	सूर्यो	,,	चक्षुः सूर्यो	,,	सूर्याय	,, ३
८१	,,	चन्द्रो	,,	मनश्चन्द्रो	,,	चन्द्राय	,, ४
४८८२	,,	सोमो	,,	पयः सोमो	,,	सोमाय	,, ५

४८६५ सुनहरी ज्योति-युक्त, सुनहरे बन्धन से बँधी नौका (नौः नामक नक्षत्र-मण्डल) जब च में आता है तब वहाँ जल के दर्शन होते हैं, उससे कूट पैदा होता है; वह विश्व-औषध है ।० । ७
६६ जहाँ ढलान नहीं; जहाँ हिमवान् का सिर है, वहाँ जल के० ,, । ८
६७ हे कूट! जिस तुझे सुवाणी-इच्छुक; कामी, मोटा-वातरोगी-क्षीण जानता है अतः ,, । ६
६८ हे सबसे पराक्रमी, तू शिरो-रोग-तिजारी-जकड़न वाले वार्षिक ज्वर को दूर हटा। १०

सूक्त ४० । बृहस्पति

६९ जो मेरा दोष मन-वाणी का हो, वाणी क्रोधी के प्रति पहुँचे उसे आचार्य सब देवों के साथ सहमत होकर ठीक करे । १
७० हे आप ! हमारे मेधा-वेदज्ञान को भ्रष्ट न होने दो; सुप्रवाहित तुम आते रहो; पास में बुलाया हुआ मैं सुमेधा-वर्चस्वी होऊँ । २
७१ हमारे मेधा-दीक्षा-तप नष्ट न करो, हमारे माता-पिता आयु के लिए कल्याण-कारी हों ३
७२ हे अश्वी (अध्यापक-उपदेशक) ! जो ज्योतिष्मती, इष्ट, अज्ञान-नाशक प्रज्ञा है उसे हमें दो। ४

सूक्त ४१ । तप

७३ कल्याणेच्छु सुखी ऋषि पहले तप-दीक्षा लेते हैं, उससे राष्ट्र-बल-ओज होता है, अतः इसके लिए विद्वान् मिलकर झुके रहें। १

सूक्त ४२ । ब्रह्म

७४ ब्रह्म होता-यज्ञ हैं, उस से यज्ञ-स्तूप उपमित हैं; अध्वर्यु उससे हुआ, हवि उसमें समर्पित है । १
७५ ब्रह्म घी-युक्त स्रुचा हैं, उससे वेदि स्थिर है, यह यज्ञ का तत्व और यज्ञकर्ता ऋत्विज है, शान्त ब्रह्म के लिए स्वाहा (आहुति-सुवचन-समर्पण-सत्यक्रिया) हो । २
७६ सुमति चाहता हुआ मैं पाप-कष्ट से छुड़ाने वाले, अच्छे रक्षक के लिए मन की इच्छा को पूर्णतया समर्पित करता हूं। हे इन्द्र ! इस हव्य को स्वीकार कर। यजमान की कामनाएँ सत्य हों। ३
७७ दुःख से छुड़ाने वाले, पूज्यों में पूज्य; विशेष दीप्त; यज्ञों में प्रथम, ७ आपः (इन्द्रिय-मन-बुद्धि)को पतित न होने देने वाले ब्रह्म को मैं बुलाता हूं। अश्वी तेरे लिए आत्मिक शक्ति से इन्द्रिय शक्ति-बुद्धि-कर्म-ओज दें । ४

सूक्त ४३ । ब्रह्म

७८,जहाँ ब्रह्म-वेत्ता दीक्षा-तप के साथ जाते हैं,अग्नि मुझे वहाँ लेजाये,मुझे मेधा दे,अग्निको सुवचन हो।

		वायु	,,	प्राण दे; वायु	,,	२
७९.	,,	सूर्य	,,	चक्षु दे; सूर्य	,,	३
८०	,,	चन्द्र	,,	मन दे; चन्द्र	,,	४
८१	,,	सोम	,,	जल दे, सोम	,,	५
८८८२	,,					

४८८३. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे । इन्द्राय स्वाहा ॥ ६
८४ यत्र ,, आपो ,, नयन्त्वमृतं मोपतिष्ठतु । अद्भ्यः स्वाहा ॥ ७
८५ यत्र ,, ब्रह्मा ,, नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे । ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ८

सूक्त ४४ । आञ्जनम्; वरुणः

८६ आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रम् भेषजमुच्यसे ।
तदाञ्जन त्वं शन्ताते शमापो अभयङ्कृतम् ॥ १
८७. यो हरिमा जायान्यो ऽङ्गभेदो विसल्पकः ।
सर्वं ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बर्हिर्निर्हन्त्वाञ्जनम् ॥ २
८८ आञ्जनम् पृथिव्यां जातं भद्रम् पुरुषजीवनम् ।
कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम् ॥ ३
८९. प्राण प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड ।
निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ॥ ४
९०, सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम् ।
वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥ ५
९१ देवाञ्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः ।
न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ॥ ६
९२ वीदं मध्यमवासृपद् रक्षोहामीवचातनः ।
अमीवाः सर्वाश्चातयन्नाशयदभिभा इतः ॥ ७
९३ बह्वीदं राजन् वरुणानृतमाह पूरुषः । तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥ ८
९४ यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम । ,, ॥ ९
९५ मित्रश्च त्वा वरुणश्चानु प्रेयतुराञ्जन ।
तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः ॥ १०

सूक्त ४५

९६ ऋणादृणमिव सं नयन् कृत्यां कृत्याकृतो गृहम् ।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥ १
९७ यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ।
अनामगस् तञ्च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् ॥ २
४८९८ अपामूर्जं ओजसो वावृधानमग्नेर्जातमधि जातवेदसः ।
चतुर्वीरम्पर्वतीयं यदाञ्जनम् दिशः प्रदिशः करदिच्छिवास्ते ॥ ३

४८८३. जहाँ ब्रह्मवेत्ता दीक्षा-तप के साथ जाते हैं, वहाँ इन्द्र मुझे लेजाये, वह मुझे बल दे, इन्द्र के लिए स्वाहा। ६
८४ ,, आप्त ,, मोक्ष दें, आप्तों ,, । ७
८५ ,, ब्रह्मा ;; वेद दे, ब्रह्म ,, । ८

सूक्त ४४। आञ्जन मणि [ईश्वर और अंजन (सुरमा, ऐंटिमनी)]

८६ हे शान्ति-विस्तारक आंजन ! तू आयु-बढ़ाने वाला, विशेष पूर्ति-कर्ता औषधि कहा जाता है,
अतः तू और जल दोनों कल्याण-अभय करें। १
८७ जो पीलिया-क्षय-अङ्गों में टूटन-हड़फूटन हो वह तेरे सब यक्ष्माओं को आञ्जन अंगों
में बाहर कर दे। २
८८ पृथिवी पर प्रसिद्ध आंजन कल्याणकारी और पुरुष-जीवन है, वह हमें मृत्यु-रहित; शरीर-
रथ को सक्रिय, रोग-रहित करे। ३
८९ हे प्राण-स्वरूप ! प्राण की रक्षा कर; हे पूज्ञान ! जीवन के लिए सुखी कर, हे कष्टों से
छुड़ाने वाले ! कष्टों के फन्दों से हमें बचा। ४
९० तू सिन्धु का गर्भ, बिजलियों का फूल है। वायु-सूर्य-द्यौ के समान तू क्रमशः प्राण-दृष्टि-
पयः (रस-जल-दूध) देता है। ५
९१ हे तीनों लोकों में श्रेष्ठ, दिव्य आंजन ! मुझे सब ओर से बचा। बाहरी और पहाड़ी औष-
धियाँ तुझसे बढ़कर नहीं हैं। ६
९२ जब यह शरीर के मध्य (उदर-वक्ष-हृदय) में विशेष फैलता है तो रोग और उनके क्रिमि
नाश करता है। तब अमीवा नष्ट करता हुआ तू अन्य आक्रामक क्रिमि भी नाश करता है। ७
९३ हे सहस्र-वीर्य राजन् वरुण (ईश्वर) ! यह पुरुष बहुत से असत्य बोलता है। तू हमें उस
पाप से बचा। ८
९४ हे वरुण ! हम जो प्राण और गौओं की शपथ लेते हैं हमें उस पाप से छुड़ा। ९
९५ हे आंजन ! मित्र-वरुण (सूर्य-जल; प्राण-उदान, हाइड्रोजन-आक्सीजन) तेरे अनुकूल हैं।
ये दूर तक पीछे चलकर पुनः भोग के लिए ले आते हैं। १०

सूक्त ४५। आंजन

९६ हे आंजन ! जैसे ऋणी लिये धन को वापस करता है, हिंसा को हिंसक के घर भेजा जाता
है वैसे ही तू चक्षु-सूचक दुष्ट क्रिमि की पसलियों को भी तोड़ दे। १
९७ जो हम में, गौओं और घर में बुरा स्वप्न-अनिद्रा हो उसे बदनाम शत्रु और उसका
प्यारा धारण करे, भोगे। २
४८९८ हे मनुष्य ! जो जल और अन्न के ओज को बढ़ाने वाला, अग्नि-समान तेजस्वी, चारों
दिशाओं में वीर, पर्वतीय आंजन है, वह तेरी दिशाओं-प्रदिशाओं को कल्याण-कारिणी करे। ३
४८९९ चारों प्रकार से वीर आंजन तेरे लिए दिया जारहा है, तुझे सब दिशाएँ अभय हों।
हे आर्य ! तू सूर्य के समान यहाँ ध्रुव रह; ये प्रजा तेरा कर भेंट करें। ४
४९००. एक को आँखों में लगा; एक की गोली बना, एक से नहा, एक को औषधि रूप में पी,
ऐसा चार प्रकार का वह वीर हमें चार दिशाओं के कष्टों और ग्राही (जकड़न) के बन्धनों से बचाये। ५
१ अग्नि आग से बचाये। प्राण-अपान-वायु-वर्च-ओज-तेज-कल्याण-विभूति केलिए स्वाहा। ६
२ इन्द्र इन्द्रिय से मुझे ,, । ७
३ सोम सौम्यता से ,, । ८
४ भग ऐश्वर्य से ,, । ९
४९०५ मरुत गणों से बचायें ,, । १०

अथर्व वेद

४८९९ चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशो अभयास् ते भवन्तु ।
ध्रुवस् तिष्ठासि सवितेव चार्य इमा विशो अभिहरन्तु ते बलिम् ॥ ४
४९०० आक्ष्वैकं मणिमेकं कृणुष्व स्नाह्येकेनापिबैकमेषाम् ।
चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश् चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्यः परि पात्वस्मान् ॥ ५
१अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा । ६
२ इन्द्रो मेन्द्रियेण ,, ॥ ७
३ सोमो मा सौम्येन ,, ॥ ८
४ भगो मा भगेन ,, ॥ ९
५ मरुतो मा गणैरवन्तु ,, ॥ १०

अनुवाक ६ सूक्त ४६ । अस्तृत मणि

६ प्रजापतिष् ट्वा बध्नात् प्रथममस्तृतं वीर्याय कम् ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय च । अस्तृतस् त्वाभि रक्षतु ॥ १
७ ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं मा त्वा दभन् पणयो यातुधानाः ।
इन्द्र इव दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः सर्वाञ्छत्रून् वि षहस्व । अ० ॥ २
८ शतञ् च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे ।
तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः प्राणमथो बलम् । अ० ॥ ३
९ इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो यो देवानामधिराजो बभूव ।
पुनस् त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वे । अ० ॥ ४
१० अस्मिन् मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते ।
व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान् यस् त्वा पृतन्यादधरः सो अस्तु । अ० ॥ ५
११ घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्त्सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः ।
शम्भूश्च मयोभूश् चोर्जस्वांश् च पयस्वांश्च । अ० ॥ ६
१२यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा। सजातानामसद्वशी तथा त्वा सविता करद् अ० ॥७

सूक्त ४७ । रात्रि

१३आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः। दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः १
४९१४ न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद् विश्वमस्यां नि विशते यदेजति ।
अरिष्टासस् त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि भद्रे पारमशीमहि ॥ २

अनुवाक ६

विषय—प्रजपतिष्ट्वा बध्नादित्यादि०; भद्रं पारमशीमहि इत्यादि०, घृताचीत्यादि०, रात्रिः शिवमित्यादि०, ये तं राज्यनड्वाह इत्यादि०, कामस्तदग्रे समवर्त्ततेत्यादि- कामविद्यादि०, पूर्णः कुम्भो धि काल आहित इत्यादीश्वरः कालः, कालो स्र्द्रमेत्यादि-पदार्थविद्या। —म० द० सरस्वती

सूक्त ४६। अस्तृत मणि (अपराजित सम्राट्। वध-नखा शस्त्र)

४९०६ प्रजापति पहले जो अपराजित सुखद अस्तृत मणि पराक्रम के लिए धारण कराता है वही मैं तुझे आयु-वर्च-ओज-बल के लिए धारण कराता हूं। अस्तृत तेरी रक्षा करे। १

७ हे अस्तृत! तू सावधान रक्षा करता हुआ उच्च स्थिति में रह। कुव्यवहारी यातनादायी तुझे दबा न सकें। बिजली-समान तू आक्रामक दस्युओं को कँपा। सब शत्रुओं को हरा। अस्तृत०। २

८ प्रहार और हनन करने वाले सैकड़ों तेरा वध नहीं कर सकते। उसमें इन्द्र दृष्टि-प्राण-बल देता है। अस्तृत०। ३

९ तुझको इन्द्र (बिजली) के कवच से ढँकते हैं जो देवों में राजा है। फिर तुझ को सब देव आगे ले चलें अस्तृत०। ४

१० इस अस्तृत शस्त्र में सैकड़ों वीर्य हजारों शक्तियाँ हैं। तू बाघ बनकर धावा कर। जो तुझ पर धावा करना चाहता हो वह नीचा हो जाये। अस्तृत०। ५

११ तू घी से चमचमाती आग-समान तेजस्वी-ज्ञानी-अन्नवाला-हजारों प्राण-शाक्य-घर-आयु-दूध आदि वाला-ऊर्जस्वी शान्तिप्रद-सुख-क्षुब्धक जल से परिपूर्ण हो। अस्तृत०। ६

१२ जैसे तू श्रेष्ठ; शत्रु-रहित; शत्रु-नाशक, सजातीयों का वशीकर्ता हो सके वैसे तुझको सविता कर दे। अस्तृत तेरी रक्षा करे। ७

सूक्त ४७। रात्रि

१३ हे रात्रि! तू पिता [मेघ] के धामों [अन्तरिक्ष] के साथ पार्थिव लोक भर देती है। द्यौ के सदनों में भी फैलकर स्थित होती है। चमकता [तारा-सहित] अन्धकार आजाता है। १

१४ न जिसका पार दिखायी देता, न जो समाप्त होती उस रात में वह विश्राम कर लेता है जो चेष्टा-युक्त है। हे फैली अँधेरी रात! हम बिना कष्ट पाये तेरे पार पहुंचें, हे भद्रे, हम तेरा पार पायें। २

१५-१७ हे रात्रि! जो तेरे मनुष्य-दर्शक ९९, ८८, ७७; ६६ ५५; ४४; ३३, २२ और ११ द्रष्टा नक्षत्र-मण्डल तथा कोशों की शक्तियाँ हैं; हे वेगवाली, सुख-दात्री, द्यौ की पुत्री! उन रक्षकों द्वारा तू हमारी सदा रक्षा कर। ३-५

नौ कोशों का वर्णन अथर्व १३-४-१० में निम्न प्रकार है—

१ स्थूल शरीर में १-२ अन्नमय-प्राणमय कोश की ११-११ (१० प्राण १ जीवात्मा) २२

२ सूक्ष्म शरीर में ३-४-५-६ मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार के कोश की ११-११ शक्तियाँ ३३-६६

३ कारण शरीर में तमः-रजः-सत्त्व प्रधान आनन्दमय कोश की ११-११ शक्तियाँ ७२-८८-९९

४८१५, ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव । अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्तसप्ततिः ॥ ३
१६ षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत्पंच सुम्नयि। चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ॥ ४
१७ द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः। तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ॥ ५
१८ रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत। मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत ॥
१९ माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः । परमेभिः पथिभि स्तेनो धावतु तस्करः।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥ ७
२०.अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु। हनू वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥ ८
२१ त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि ।
गोभ्यो नः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ॥ ९

सूक्त ४८ । रात्रि

२२ अथो यानि च यस्मा ह यानि चान्तः परीणहि। तानि ते परि दद्मसि ॥ १
२३ रात्रि मातरुषसे नः परि देहि। उषा नो अह्ने परि ददात्वहस्तुभ्यं विभावरि ॥ २
२४ यत्किंचेदं पतयति यत्किंचेदं सरीसृपम्। यत्किंच पर्वतायासत्वं तस्मात्त्वं रात्रि पाहि नः ॥ ३
२५.सा पश्चात्पाहि सा पुरः सोत्तरादधरादुत। गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ४
२६ ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति ।
पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति ते नः पशुषु जाग्रति ॥ ५
२७ वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि ।
तां त्वां भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ॥ ६

सूक्त ४९ । रात

२८ इषिरा योषा युवतिर्दमूना रात्री देवस्य सवितुर्भगस्य ।
अश्वक्षभा सुहवा संभृतश्रीरा पप्रौ द्यावापृथिवी महित्वा ॥ १
२९ अति विश्वान्यरुहद् गम्भीरो वर्षिष्ठमरुहन्त श्रविष्ठाः ।
उशती रात्र्यनु सा भद्राभि तिष्ठते मित्र इव स्वधाभिः ॥ २
३० वर्ये वन्दे सुभगे सुजात आजगन् रात्रि सुमना इह स्याम् ।
अस्मांस्त्रायस्व नर्याणि जाता अथो यानि गव्यानि पुष्ट्या ॥ ३
३१ सिंहस्य रात्र्युशती पींषस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे ।
अश्वस्य ब्रध्नं पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कृणुषे विभाती ॥ ४
४९३२ शिवां रात्रिमनु सूर्यं च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
अस्य स्तोमस्य सुभगे निबोध येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु ॥ ५

अथर्व-वेद १९-४७-६

४९१८ हे रात ! तू रक्षा कर, पापी और दुर्भावना वाला हम पर शासन न करे । चोर और भेड़िया (लुटेरा) आज (कभी) हमारी गौ-भेड़ का ईश न हो, काम-क्रोध इन्द्रियों को न लूटें । ६
१९ हे कल्याणमयी रात ! घोड़ों का चोर और मनुष्यों की यातनाएँ अधिकारी न हों । चोर लुटेरे दूर पथों से भाग जायें, दाँतों वाली रस्सी(साँप) और हत्यारा पापी अति दूर चला जाये । ७
२० हे रात! व्यास-जनक फुंकारवाला साँप बेसिर कर, भेड़िये के जबड़े तोड़,उससे उसे पेड़-नीचे मार । ८
२१ हे रात ! हम तुझ में रहते, हैं हम सोये, तू जाग, हमारे गौ-अश्व-पुरुषों के लिए सुख दे ६

सूक्त ४८ । रात

२२ हे रात ! और अन्न जो यत्न-साध्य वस्तुएँ घर में हैं उन्हें तुझे सौंपते हैं । १
२३ हे रात्रि-माता ! तू हमें उषा के लिए दे, उषा हमें दिन के लिए, और दिन तेरे लिए दे । २
२४ हे रात!यह जो कुछ उड़ता(पक्षी), या सरकता(साँप आदि), या पर्वत पर दुष्ट हो उससे बचा । ३
२५ हे रात ! वह तू हमें पश्चिम-पूर्व-उत्तर-दक्षिण से बचा ;यहाँ हम तेरे स्तोता हैं । ४
२६ जो रात में अनुष्ठान करते, जो प्राणियों पर सावधान रहते, जो सब पशुओं को बचाते हैं वे हमारी आत्माओं की और पशुओं की उन्नति से सदा सावधान रहते हैं । ५
२७ हे रात ! मैं निश्चय ही तेरा नाम जानता हूं, तू निश्चय ही घृताची (ज्ञान-प्रकाश देने वाली) नाम वाली है; भरद्वाज (ज्ञान-भरा मन) तुझे जानता है, वह तू धन के सम्बन्ध में जाग । ६
[यह वर्णन काव्यमय मानवीकरण (परसानिफिकेशन) अलंकार है । भाव यह है कि सावधान रहकर सब सुख से रात बितायें । पहरेदारों का भी प्रबन्ध किया जाये ।]

सूक्त ४९ । रात

२८ ऐश्वर्यशाली देव सविता की वश में करने वाली, सक्रिय, घर-कामों में लगी युवति पत्नी के समान रात शीघ्र फैलने वाली, सूर्यास्त पर दीप्त, सुगमता से शब्द पहुँचाने वाली, शोभा-युक्त होकर स्व-महिमा से द्यौ-पृथिवी को भर देती है । १
२९ शान्त सूर्य अतिक्रमण कर पश्चिम में चढ़ता है, यशस्वी तारे पूर्व आकाश में चढ़ते हैं, तब वह सुखदा, हमारा कल्याण चाहती हुई रात मित्र-समान अपनी धारक शक्तियों-सहित आती है। २
३० हे वरणीय, ऐश्वर्यवती रात्रि ! मैं तेरी वन्दना करता हूं, तू आती, मैं यहाँ प्रसन्न होऊँ । तू पुष्टि से हमें, और जो नर-गौ हितकारी उत्पन्न वस्तुएं हैं उन्हें बचा । ३
३१ कामना करती हुई रात्रि शेर-हाथी-बाघ-चीते का तेज, बढ़ा अश्व-तेज, पुरुष-ध्वनि आदि हर लेती है (वे सो जाते हैं) । हे रात । चमचमाती तू नक्षत्र आदि नाना रूप बनाती है ।४

४९३२ सूर्य-पश्चात् मैं शिवा रात्रि की (वन्दना करता हूं) । हिम-निर्मात्री वह हमारे लिए सुगम बुलाने-योग्य हो । हे ऐश्वर्य-शालिनि जगन्माता ! मेरी यह स्तुति जान, जिससे मैं सब दिशाओं में तेरी वन्दना करूँ । ५

४६३३ स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे ।
आसाम सर्ववीरा भवाम सववेदसो व्युच्छन्तीरनूषसः ।। ६
हे ज्योतिर्मयी रात्रि! राजा-समान तू हमारी स्तुति ग्रहण करती है। हम अन्धकार हटाने वाली उषाओं के साथ सब वीरों वाले; सब ज्ञान-धन-सम्पन्न हो जायें।

३४ शम्या ह नाम दधिषे मम दिप्सन्ति ये धना ।
रात्रीहि तानसुतपा य स्तेनो न विद्यते यत् पुनर्न विद्यते ।। ७
हे रात्रि ! तू शम्या (शान्ति-प्रद और काटनेवाली) नाम ठीक ही रखती है। जो मेरा धन लेना चाहें उनके प्राण तपा कर आ,; कोई चोर न हो; यदि हो तो आगे न रहे (चोरी छोड़े या मारा जाय)।

३५ भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्वङ्गोरूप युवतिर्बिभर्षि ।
चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रति त्वं दिव्या न क्षामगुन्थाः ।। ८
हे रात ! तू परोसने वाले अन्न-पात्र-समान कल्याणकारिणी है, बलवती युवति-समान तू पूरा गौ-रूप धारण करती है, आँखों-वाली प्रेम करती हुई तू मेरे लिए दिव्य शरीरों के समान भूमि ग्रहण करती है।

३६ यो अद्य स्तन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः ।
रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् ।। ९
जो कभी घोर पापी वैरी बनकर आये तो रात उसे पहचान कर गर्दन-सिर तोड़ दे।

३७ प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत् । यो मलिम्लुरुपायति स संपिष्टो अपायति अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति ।। १०
(हे रात !) जो नीच पापी लुटेरा आये उसके पैर-हाथ नष्ट कर दे जिससे न आ सके, न खा सके। वह पिट कर दूर चला जाये, बहुत दूर वन में भेज दिया जाये।

सूक्त ५० । रात्रि

३८ अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु ।
अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास् तेन तं द्रुपदे जहि ।। १ [पहले कुछ भेद से क्रमाङ्क ४६२० पर]
और हे रात! प्यासी फुंकार वाले साँप (काम) को बेसिर कर, भेड़िये (क्रोध) की आँखें निकाल ले। उस लुटेरे को पेड़ के नीचे काठ की बेड़ी डाल कर फांसी देकर मार डाल।

३९ ये ते रात्र्यनड्वाहस् तीक्ष्णशृङ्गाः स्वाशवः ।
तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा ।। २
हे रात्रि ! जो तेरे तीक्ष्ण सींग वाले, शीघ्रगामी बैल हैं उनसे हमें अति कठिन मार्ग पार करा।

४६४० रात्रिं रात्रिमरिष्यन्तस् तरेम तन्वा वयम् ।
गम्भीरमप्लवा इव न तरेयुररातयः ।। ३
शरीर से अहिंसित रहते हुए हम प्रत्येक रात पार करें। कंजूस पार न कर सकें जैसे बिना नाव के व्यक्ति गहरे जल के पार नहीं जा सकते।

४१४१ यथा श्याम्याकः प्रपतन्नापवान् नानुविद्यते ।
एवा रात्रि प्रपातय यो अस्मां अभ्यधायति ॥ ४

जैसे समाँ का छोटा दाना गिरता हुआ हवा से दूर जाकर फिर नहीं मिल पाता है वैसे ही हे रात! जो हमें मारना चाहता है उसे गिरा दे।

४२ अप स्तेनं वासो गोअजमुत तस्करम् ।
अथो यो अर्वतः शिरोऽभिधाय निनीषति ॥ ५

गौ और अश्व के सिर को बाँध कर ले जाने वाले चोर को दूर बसा।

४३ यदद्या रात्रि सुभगे विभजन्त्ययो वसु ।
यदेतदस्मान् भोजय यथेदन्यानुपायसि ॥ ६

हे अच्छे ऐश्वर्य वाली रात! चार यदि सोना-धन बाँटें तो उसे हमें भोगने दे, जैसा अन्यों को देती है।

४४ उषसे नः परिदेहि सर्वान् रात्र्यनागसः ।
उषा नो अह्ने आ भजादहस् तुभ्यं विभावरि ॥ ७

हे रात! हम सब निष्पापों को उषा के लिए दे, वह दिन के लिए, दिन फिर तेरे लिए दे दे।

सूक्त ५१ । आत्मा, सविता

४५ अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे प्राणोऽयुतो
मेऽपानो ऽयुतो मे व्यानो ऽयुतो अहं सर्वः ॥ १

मैं-मेरा आत्मा-चक्षु-कान-प्राण-अपान-व्यान-मैं सब अयुत (दोष-रहित, हजारों शक्ति वाला) होऊँ।

४६ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूत आ रभे ॥

देव सविता (ईश्वर-सूर्य) के उत्पन्न किये संसार में मैं तुझ (कर्म) को अश्विओं (सूर्य-चन्द्र) की बाहों से और पूषा (वायु-पृथिवी) के हाथों से आरम्भ करता हूं।

सूक्त ५२ । काम

४७. कामस् तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
स काम कामेन बृहता सयोनो रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ १

४७ आरम्भ में ईश्वरीय काम (ईक्षण) होता है जो मनन (ज्ञान-सामर्थ्य) का पहला बीज है। हे मेरे काम! तू ईश्वरीय काम के साथ, तत्समान होकर मुझ यज्ञ-कर्ता को रयि का पोषण दे।

४८ त्वङ्काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते ।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ॥ २

हे सखा काम! तू मानसिक बल से दृढ़ स्थित होकर सखा के लिए विभूति-रूप, तेजः-सम्पन्न, युद्धों में उग्र और विजयी होता है। यज्ञ-कर्ता को बल-ओज प्रदान कर।

४१४९ दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये ।
आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वः ॥ ३

४६४६ अमरता के लिए चिर काल से कामना वाले इस पुरुष के लिए इस की आशाएँ सुन लेती हैं और कामके द्वारा सुख प्रकट करती हैं। ३

४९५० कामेन मा काम आगन् हृदयाद् हृदयं परि ।
यदमीषामदो मनस् तदैतूप मामिह ॥ ४

काम से कामना आती है, हृदय से हृदय मिलता है, जो इन योगियों का मन है वह यहाँ मुझे मिले।

५१ यत् काम कामयमाना इदङ्कृण्मसि ते हविः ।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥ ५

हे काम! जो कामना करते हुए तुझे यह हवि दें वह हमारी सब समृद्ध हो, यह हवि ले, यह सुवचन है।

सूक्त ५३ । काल

५२ कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस् तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥ १

सात किरण वाले सूर्य के समान हजारों का क्षय-कर्ता, हजारों आँखों वाला, अजर, बहुत शक्ति वाला काल संसार-रथ वहन करता है, मेधावी कवि इस पर चढ़ते हैं; सब भुवन उस के चक्र हैं।

५३ सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः ।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ॥ २

वह काल ७ चक्र (भूः-भुवः-स्वः-महः-जनः-तपः-सत्यम्) और फैले गोल तारा आदि को चलाता है इसकी ७ नाभि(केन्द्र); अमर ईश्वर धुरा है; वह ये सब भुवन व्यक्त करता प्रथम देववत् सक्रिय है

५४ पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस् तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ्कालं तमाहुः परमे व्योमन् ॥ ३

१२ राशियों में पूर्ण कुम्भ तथा घर का भरा कलश काल में स्थित है; हम उसे बहुधा देखते हैं। वह इन सब भुवनों में व्याप्त है,ज्ञानी उस काल को परम व्योम (ईश्वर-आकाश) में कहते हैं।

५५ स एव सं भुवनान्याभरत् स एव सं भुवनानि पर्यैत् ।
पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद्वै नान्यत् परमस्ति तेजः ॥ ४

वही काल सब भुवन धारक-व्याप्त है, पिता होकर इनका पुत्र है, उससे बढ़ कर कोई तेज नहीं है।

५६ कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत ।
काले ह भूतं भव्यञ्चेषितं ह वि तिष्ठते ॥ ५

काल ने इन द्यौ-पृथिवियों को पैदा किया, काल से ही भूत-भविष्य और इष्ट वर्तमान स्थित हैं।

४९५७ कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः ।
काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ॥ ६

काल ने विभूति पैदा की, काल में सूर्य तपता है, काल में ही सब भौतिक हैं; काल में चक्षु देखता है।

५८.काले मनःकाले प्राणःकाले नाम समाहितम्।कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः॥

अथर्ववेद

काल में मन-प्राण-नाम समाहित हैं; ये सब प्रजाएँ आये हुए काल से प्रसन्न होती हैं।

४६५६, काल तपः काले ज्येष्ठङ्काले ब्रह्म समाहितम् ।

कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः । ८

काल में तप-ज्येष्ठता-वेद समाहित हैं, काल ही सब का शासक है जो प्रजापति-यज्ञ का पिता है।

६० तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।

कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ॥ ९

उसने प्रेरित-उत्पन्न यह जगत् उसी में स्थित है, काल ही ब्रह्म होकर द्यौ को धारण करता है।

६१ कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् ।

स्वयम्भूः कश्यपः कालात्तपः कालादजायत ॥ १०

काल ने प्रजा रची, पहले प्रजापति-यज्ञ को रचा। स्वयंभू काल से द्रष्टा, काल से तप पैदा हुआ।

सूक्त ५४। काल

६२ कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः ।

कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः ॥ १

काल से जल-वेद-तप[नेबुला]-दिशाएँ प्रकट हुयीं, काल से सूर्य उदय-अस्त होता है।

६३ कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही । द्यौर्मही काल आहिता ॥ २

काल से हवा चलती है, काल से पृथिवी बड़ी है, महाद्यौ काल में स्थापित है।

६ कालो ह भूतं भव्यञ्च पुत्रो अजनयत् पुरा ।

कालाद् ऋचः समभवन् यजुः कालादजायत ॥ ३

पुत्र काल ने ही पहले भूत-भविष्य पैदा किये, काल से ऋचाएँ-यजु पैदा हुए।

६५ कालो यज्ञं समैरयद्देवेभ्यो भागमक्षितम् ।

काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ४

काल देवों के लिए अक्षित भाग यज्ञ को देता है, काल में गन्धर्व-अप्सरा और लोक स्थित हैं।

वे ६ हैं— अग्नि-औषधि, सूर्य-किरण चन्द्र-नक्षत्र, वायु-आपः, यज्ञ-दक्षिणा, मन-ऋक्साम।

४६६६. कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः ।

इमञ्च लोकं परमञ्च लोकं पुण्यांश्च लोकान् विधृतीश्च पुण्याः ।

सर्वांल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः ॥ ५

४६६६ काल में ये दिव्य अङ्गिरा (अग्नि और प्राण), तथा अथर्वा (सूर्य) स्थित हैं। इस लोक (पृथिवी) और परम लोक (द्यौ); पुण्य लोक और पुण्य विधृति [साधनों], सब लोकों को ब्रह्म के आश्रय से जीत कर वह काल परम देव [ईश्वर] के समान विचरता है। ५

यह सूक्त ५४ और अनुवाक ६ समाप्त हुआ।

अनुवाक सात सूक्त ५५। अग्नि, अग्रणी, परमेश्वर

विषय— रात्रिंरात्रिमप्रयातमित्यादि०, अग्निस्तुत्यादि०; अहरहर्बलिमाहरन्त इत्यादि, स्वप्नादि-संवरनरेत्यादि०, यज्ञमित्यादि०, उत शूर उत आर्य इत्यादि०; उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते आयु वर्धयेत्यादि० प्रार्थना०, सर्वमायुर्जीव्यासमित्यादि० पदार्थ-विद्या। --महर्षि दयानन्द सरस्वती

४६६७. रात्रिंरात्रिमप्रयातं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ १

जैसे प्रत्येक रात बिना रुके स्थित घोड़े के लिए घास आदि देते हैं, वैसे ही हे अग्नि! भोज्य पदार्थ देते हुए, तेरे समीपस्थ हम ऐश्वर्य-अन्न से हृष्ट होते हुए दुःखी न हों। १

६८ या ते वसोर्वात इषुः सा त एषा तया नो मृड।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ २

६८ हे अग्नि! जो वसु तेरा वायु-अस्त्र है वह तेरा है, उससे हमें सुखी कर। तेरे० (पूर्ववत्)।

६९ सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास् तन्वं पुषेम ॥ ३

हमारा गृह-पति अग्नि प्रत्येक सायं से प्रातः तक मन की प्रसन्नता का दाता है। हे अग्नि! तू प्रत्येक प्रकार के धन का दाता हो, तुझे बढ़ाते हुए हम अपना शरीर (राष्ट्र-प्रजा) पुष्ट करें।

७० प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता।
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास् त्वा शतंहिमा ऋधेम ॥ ४

हमारा घर का रक्षक अग्नि प्रत्येक प्रातः से सायं तक हृष्ट करने वाला हो, हे परमात्मा और यज्ञाग्नि! हम तुझे दीप्त करते हुए सौ वर्षों तक धनादि से वृद्धि को प्राप्त हों।

७१ अपश्चा दग्धान्नस्य भूयासम। अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये।
सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥ ५

मैं खेत-पके अन्न का पिछड़ा और जले अन्न के पीछे जाने वाला न होऊँ। अन्न-भक्षी, कर-गृहीता अन्न-पति रुद्र अग्नि के लिए नमः (आदर-अन्न) हो। हे सभ्य! तू मेरी सभा की रक्षा कर और जो सभ्य सभासद् हैं (वे भी रक्षा करें, उनकी भी रक्षा कर)।

७२ त्वमिन्द्रा पुरुहूत विश्वमायुर्व्यश्नवत्।
अहरहर्बलिमित् ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने ॥ ६

हे बहुतों से निमन्त्रित इन्द्र-सम्राट् और अग्रणी! तुम पूरी आयु पाओ (राज्य करो)। जैसे स्थिर घोड़े के लिए प्रतिदिन घास आदि दी जाती है वैसे ही हम तुझे बलि (कर) नियमित दें।

सूक्त ५६। - स्वप्न

४६७३ यमस्य लोकादध्या बभूविथ प्रमदा मर्त्यान् प्र युनक्षि धीरः।
एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त् स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ ॥ १

(हे स्वप्न!) तू यम के लोक (उपराम वृत्ति के चित्त) से प्रकट होता है, मानसिक कर्म-प्रेरक तू मनुष्यों को प्रमत्त करता है; प्राणी के शरीर में निद्रा लाता हुआ एकाकी जीव के साथ विचरता है।

४६७४ बन्धस् त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत् पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि ।
ततः स्वप्नेदमध्या बभूविथ भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः ॥ २

४६७४ हे स्वप्न ! नियम-बद्ध, विश्व-चयन-कर्ता ईश्वर प्रलय-रात्रि के पहले ही सृष्टि-उत्पत्ति के एक पहले दिन तुझको देखता (इच्छा करता) है। और सब संस्कारों का चयन-कर्ता जीवात्मा बन्धन में आकर जन्म के पहले ही दिन भी तुझको देखता है । तब से तू इस जगत् में प्रकट हुआ है, वैद्यों से अपना रूप छिपाये रहता है । २

७५ बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन् ।
तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं त्रयस्त्रिंशासः स्वरानशानाः ॥ ३

७५ महिमा चाहता हुआ बड़ा वेगों वाला स्वप्न असुरों (प्राण-नाशक-ज्वरों) से हटकर देवों के पास चला जाता है; उस को जितेन्द्रिय सुख-पाते हुए तैंतीस देव आधिपत्य देते हैं । ३

७६ नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम् ।
त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः ॥ ४

७६ इस दशा को न देव जानते हैं न पितर, जिनका वाद-विवाद इस में चलता है। आदित्य ब्रह्मचारी नर आचार्य से शिक्षित होकर स्वप्न को त्रित (सेवनीय) व्यापक ईश्वर में रखते हैं। ४

७७ यस्य क्रूरमभजन्त दुष्कृतोऽस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमायुः ।
स्वर्मदसि परमेण बन्धुना तप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे ॥ ५

७७ दुष्कर्मी जिस दुःस्वप्न की क्रूरता के भागी हैं उस का कर्मों से सुकर्मी पुण्य आयु पाते हैं हे स्वप्न ! तू परम बन्धु परमात्मा के साथ सुख से युक्त हो जाता है; सन्तप्त के मनसे पैदा होता है । ५

७८ विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद् विद्म स्वप्न यो अधिपा इहा ते ।
यशस्विनो नो यशसेह पाह्याराद्द्विषेभिरप याहि दूरम् ॥ ६

७८ हे स्वप्न ! हम पहले ही तेरे परिजनों और जो यहाँ तेरा पालक (रजः-तम) है उसे जानते हैं। यहाँ हम यशस्वियों को यश से रक्षा कर, द्वेषों के साथ तू यहाँ से दूर चला जा । ६

सू० ५७ । स्वप्न

७९ यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति । एवा दुष्वप्न्यं सर्वमप्रिये संनयामसि ॥ १

७९ जैसे ऋण का १६वाँ, ८वाँ, चौथा, शेष चुकाते हैं; वैसेही बुरे सपने अप्रिय पर क्रमशः छोड़ दें। १

८० सं राजानो अगुः समृणान्यगुः सं कुष्ठा अगुः सं कला अगुः ।
समस्मासु यद् दुष्वप्न्यं निर्द्विषते दुष्वप्न्यं सुवाम ॥ २

८० जैसे राजा-ऋण-कोढ़-कलाएँ एकत्र होती हैं वैसे ही एकत्रित बुरे सपने स्वशत्रु के लिए दे दें । २

४६ देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न । स मम यः पापस् तद्
द्विषते प्र हिण्मः । मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ॥ ३

८१ हे देव-पत्नी (चित्त-वृत्तियों) के गर्भ, संयमी के प्रेरक भद्र स्वप्न ! तू मेरा है, जो पाप है, उसे द्वेषी के लिए भेजते हैं । हे दुःस्वप्न ! तू प्यासों के बीच काले पक्षी (कौए आदि) का मुख मत बन । ३

४९८२ तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स त्वं स्वप्नाश्व इव कायमश्व इव नीनाहम्।

अनास्माकं देवपीयुं पियारुं वप यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे॥ ४

४९८२ हे सुस्वप्न ! तुझे हम वैसे ही अच्छा अच्छे प्रकार जानते हैं जैसे घोड़ा अपना शरीर, बँधी रस्सी या काठी को जानता है। जो हममें, हमारी गौओं और घर में दुःस्वप्न हो, जो अब हमारा नहीं है, जो देवों को दुःख-दायी है ऐसे को तू छिन्न-भिन्न कर दे। ४

८३ अनास्माकस् तद् देवपीयुः पियारुर्निष्कमिव प्रति मुञ्चताम्। नवारत्नीनपमया

अस्माकं ततः परि दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते निर्दयामसि॥ ५

८३ शत्रु वह दिव्य-गुण-नाशक दुःखद बुरा सपना सोने-समान ले लें, हमारे शरीर से दूर चला जाये, उसे हम द्वेषी के लिए बाहर फेंक दें। ५ सूक्त ४८। यज्ञ

८४ घृतस्य जूतिः समना सदेवा संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती।

श्रोत्रं चक्षुः प्राणोऽच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः॥ १

८४ विद्वानों के साथ मन-सहित वर्ष-भर दिये घी का वेग हवि से बढ़ाता है। हमारे कान-चक्षु-प्राण की शक्ति कम न हो, हम आयु और वर्च से छिन्न (कम) न हों। १

८५ उपास्मान् प्राणो ह्वयतामुप वयं प्राणं हवामहे।

वर्चो जग्राह पृथिव्यन्तरिक्षं वर्चः सोमो बृहस्पतिर्विधत्ता॥ २

८५ प्राण हमें पास बुलाए; हम प्राण को पास बुलायें। पृथिवी-अन्तरिक्ष-सोम (चन्द्र)-विभर्ता शेष धारक सूर्य) ने यज्ञ से वर्च (तेज) लिया है। २

८६ वर्चसो द्यावापृथिवी संग्रहणी बभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा पृथिवीमनु सञ्चरेम।

यशसं गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीर्यशो गृहीत्वा पृथिवीमनु सञ्चरेम॥ ३

८६ द्यौ-पृथिवी वर्च के संग्राहक हैं। वर्च लेकर हम पृथिवी पर विचरें। आती हुई गौएँ अन्न (चारा-पानी) वाले गौ-पति के पास ठहरती हैं। हम यश (अन्न-धन) पाकर पृथिवी पर घूमें। ३

८७ व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि।

पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम्॥ ४

८७ गौ-शाला बनाओ, वह तुम्हारे नरों के दुग्ध-पान और रक्षा का स्थान हो। बहुत विस्तृत कवच-वस्त्र सिओ। सुवर्ण-लौह के अपराजेय, अटूट नगर-दुर्गों को बनाओ। तुम्हारा चमस (अन्न-पात्र) न टपके, उसे दृढ़ करो। ४

८८ यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि।

इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः॥ ५

८८ विश्वकर्मा (शिल्पी-कारीगर-इंजीनियर) यज्ञ का चक्षु, आरम्भक-मुख्य है, मैं उसे वाणी-कान-मन से स्वीकार करूँ। विश्वकर्मा के फैलाये इस यज्ञ को विद्वान् प्रसन्न हो स्वीकार करें। ५

४९८९ ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम्।

इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास् तविषा मादयन्ताम्॥ ६

८९ जो देवों के ऋत्विज और (अध्यात्म-)यज्ञ-कर्ता हैं, जिनके लिए हव्य दिया जाता है, वे जितने देव हैं पत्नी-सहित वे इस यज्ञ में आ कर प्रसन्न हों। ६

सूक्त ५६। अग्नि (ईश्वर; विद्वान्)

४६६० त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः॥ १

४९९० हे अग्नि! तू मनुष्यों में व्रत-पालक, देव, और यज्ञों में स्तुति-योग्य है। १

६१ यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः।
अग्निष्टद्विश्वादा पृणातु विद्वान्त्सोमस्य यो ब्राह्मणाँ आविवेश॥ २

६१ हे विद्वानो। यदि हम अज्ञानी तुम्हारा व्रत तोड़ें तो सबका प्रबन्धक वह ज्ञानी अग्नि उसे ठीक पूरा कर दे जो सोम का विद्वान् ब्राह्मणों में प्रविष्ट हुआ है। २

६२ आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोढुम्।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात् स इद्धोता सोऽध्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति॥ ३

६२ हम देवों के ही पथ पर चलें जिससे उसे निभाने में समर्थ हों। अग्नि विद्वान् है, वह यज्ञ करता है; वही दानी यज्ञों और ऋतुओं को समर्थ बनाता है। ३

सूक्त ६०। वाणी-अंग

६३ वाङ् म आसन् नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम्॥ १

६३ मेरे मुख में वाणी, नथुनों में प्राण, आँखों में दृष्टि; कानों में श्रवण-शक्ति हो। केश सफेद न हों दाँत न हिलें-गिरें, बाहों में बहुत बल हो। १

६४ ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः। प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः॥ २

९४ पट्ठों में ओज, जाँघों में वेग, पैरों में दृढ़ता, सब अंग नीरोग, आत्मा अपतित हो। २

सूक्त ६१। ब्रह्मणस्पति

६५ तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय। स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे॥ १

६५ मेरा सूक्ष्म के साथ स्थूल शरीर सहनशील हो, दाँतों की पूरी आयु प्राप्त करूँ, हे ईश्वर सुखी हृदय में विराज, पालन कर। सुखी हृदय में पवित्र कर। १

सूक्त ६२। ब्रह्मणस्पति

६६ प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये॥ १

६६ मुझको देवों, राजाओं में प्रिय कर, देखने वाले सब का तथा शूद्र और वैश्य में प्रिय कर। १

सूक्त ६३। ब्रह्मणस्पति

६७ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान्यज्ञेन बोधय। आयुः प्राणं प्रजां पशून्कीर्तिं यजमानं च वर्धय॥ १

६७ हे वेद-रक्षक! उठ; देवों को यज्ञ से बोध करा, आयु-प्राण-प्रजा-पशु-कीर्ति-यजमान को बढ़ा। १।

सूक्त ६४। अग्नि

६८ अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्रयच्छतु॥ १

९८ हे अग्नि! बड़े जातवेदा के लिए मैं समिधा लाउँ, वह मेरे लिए श्रद्धा-मेधा को दे। १

६६ इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि। तथा त्वमस्मान्वर्धय प्रजया च धनेन च॥ २

६६ हे जातवेदा! हम तुझे इन्धन-समिधा से बढ़ाते हैं वैसे ही तू हमें प्रजा और धन से बढ़ा। २

१००० यदग्ने यानिकानिचिदा ते दारूणि दध्मसि सर्वं तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यविष्ठ्य॥ ३

१००० हे यविष्ठ्य (मिश्रण-अमिश्रण-समर्थ) अग्नि! तेरे लिए जिन किन्हीं लकड़ियों को हम रखते हैं वह सब मेरे लिए कल्याणकारी हो, इसे सेवन कर। ३

५००१ एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद्भव । आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ॥ ४

५००१ हे अग्नि ! ये तेरे लिए समिधा हैं, तू दीप्त होकर हमें सन्दीप्त कर । हममें आयु, आचार्य के लिए अमरता धारण करा । ४

सूक्त ६५ । जातवेदाः (सूर्य-योगी)

२ हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम् ।
अव तां जहि हरसा जातवेदोऽबिभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमारोह सूर्य ॥१

हे सूर्य (आदित्य योगी) ! क्लेश-हर्ता, सुकर्मा तू योग-ज्योति से द्यौ (सहस्रार चक्र) तक पहुँचता है, हे धनी ! द्यौ की ओर जाते हुए तुझे जो दबाना चाहते हैं उन्हें अपने बल से नष्ट कर । भय-रहित उग्र होकर ज्योति से द्यौ तक पहुँच । १

सूक्त ६६ । काम

३ अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति ।
तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः सपत्नान्प्रमृणन् पाहि वज्रः ॥ १

३ सोने के जाल वाले आसुरी विचार मायावी हैं, जो सोने के पाशों से अङ्कित घूमते हैं । हे जात-वेद योगी ! उन्हें मैं बल से तेरे वश में करता हूं, तू हजारों धारों वाले वज्र-समान होकर शत्रुओं को मारता हुआ अपनी रक्षा कर । १

सूक्त ६७ । सूर्य

४-७ पश्येम शरदः शतम् ।१। जीवेम शरदः शतम् ।२ बुध्येम शरदः शतम् ।३। रोहेम शरदः शतम् ।४
८-११. पूषेम शरदः शतम् ।५। भवेम शरदः शतम् ।६। भूयेम शरदः शतम् ।७। भूयसीः शरदः शतात् ॥ ८

४-११ हम सौ शरद् (वर्ष) तक देखें; जियें, जानें, उन्नति पर चढ़ें, पुष्ट हों, स्वस्थ रहें, शुद्ध रहें, सौ से अधिक भी बहुत वर्ष तक भी रहें । १-८

सूक्त ६८ । वेदोक्त कर्म

१२ अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं विष्यामि मायया । ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे । १

१२ मैं अव्यापक (जगत्-जीवात्मा) और व्यापक (परमात्मा) के भेद को बुद्धि से खोलूँ; उनके लिए वेद का उद्धरण देकर तब कर्म किया करें । १

सूक्त ६९ । आपः

१३-१६ जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ।१। उपजीवा...।२। संजीवा...।३। जीवला...।४

१३-१६ हे आप्तो ! तुम जीवन वाले, आश्रित जीवन वाले; मिलकर जीने वाले, जीवन लानेवाले हो; मैं भी वैसा ही होऊँ, सब पूरी आयु जिऊँ—१-४

सूक्त ७० । इन्द्र-सूर्यादि

१७ इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् । सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १

५०१७ हे इन्द्र (आत्मा-संन्यासी-बिजली के समान वीर-ऐश्वर्य-शाली), हे सूर्य-समान प्रखर-प्रकाशमान-आदित्य ब्रह्मचारी ! तू जी; हे देवो (माता-पिता-आचार्य-पति-पत्नी-अतिथि-विद्वानो) ! तुम जिओ, मैं भी जीवित रहूं, सब (सौ वर्ष) आयु जीवित रहूं । १

सूक्त ७१ । गायत्री

१८ स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

१८ [ईश्वर-विद्वान्-उपासक-वचन-] मैं ने वरदा वेद-माता (वेद-रूपी माता, वेद है माता जिसकी वह गायत्री, और वेद की माता परमात्मा) की स्तुति (वर्णन) की । यह द्विजों (दो जन्म, एक माता दूसरा आचार्य से लेने वालों) को पवित्र करने वाली है, उसे प्रवचन-प्रेरणा कर बढ़ाओ, प्रचोदयात् वाली गायत्री जनों को पवित्र करती है । ७ पदार्थ आयु-प्राण-प्रजा-पशु-कीर्ति-धन-ब्रह्म-वर्चस् मेरे [ईश्वर-विद्वान्-उपासक के] लिए देकर ब्रह्म-लोक [मोक्ष] जाओ-पहुंचाओ-वेदज्ञों में भेजो, २० वें काण्ड में प्रवेश कराओ । १

सूक्त ७२ । परमात्मा और देव

५०१९ यस्मात् कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् ।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ॥ १

५०१९ हम जिस कोश [परमात्मा-आचार्य-पेटी-अलमारी] से वेद निकालें उसे उसी के अन्दर रख दें; हम जीव को उसके अनुशासन में रक्खें । जिस ब्रह्म [परमात्मा-वेद-ज्ञान] के पराक्रम से इष्ट-कर्म पूर्ण किया जाता है उसी तप से हे विद्वानो ! यहाँ [काण्ड २० में] मेरी रक्षा करो । २

[वेद आरम्भ से ही लिखित भी थे इसके ३ तर्क हैं—
१— कोश से निकालना, उस में रखना लिखित का ही हो सकता है।
२— अथर्व वेद ७-५०-५ में 'संलिखितम्' आया है—
अजैषं त्वा संलिखित मजैषमुत संरुधम् । अविं वृको यथा मथदेवा मथ्नामि ते कृतम् ॥
३— ऋग्वेद १०-७१-४ में वाणी को 'उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचम्' कहा है कि कोई वाणी को
देखता हुआ भी नहीं देखता । वह तभी देखी जा सकती है जब लिखित हो । —वीरेन्द्र सरस्वती]

यह सूक्त ७२, अनुवाक ७ और काण्ड १९ समाप्त हुआ ।

अथर्व-वेद काण्ड २० सूची

प्रपाठक ३६

अनुवाक	सूक्त	मन्त्र	ऋषि	देवता	छन्द	विषय
१	१	३	विश्वामित्र-गोतम-विरूप	इन्द्र-मरुत्-अग्नि	गायत्री	इन्द्र त्वां वृषभं वयमित्यादि०,
	२	४	गृत्समद	मरुत-अग्नि-ब्रह्मा-द्रविणोदाः	गा०उ०त्रि०	सोमपानगुण-विद्यादि०,
	३-५	३-३-७	इरिम्बिठि	इन्द्र	गायत्री	यज्ञादि०, इन्द्रं त्वा सत्प-
	६	९	विश्वामित्र	"	"	तिमित्यादि०, पितेव न इ-
	७	४	सुकक्ष	" "	"	त्यादि०; सृष्टिरीश्वर-
	८	३	भरद्वाज कुत्स	" "	त्रिष्टुप्	कृतेत्यादि०; इन्द्रश्वरेत्यादि०
	९	४	नोधा मेध्यातिथि	"	बृहती प्रगाथ	एको देवत्रेत्यादि पदार्थ
	१०	२	"	"	"	विद्या । —महर्षि दयानन्द
	११	११	विश्वामित्र	"	त्रिष्टुप्	सरस्वती
	१२	७	वसिष्ठ अत्रि	"	"	
	१३	४	वामदेव गोतम कुत्स विश्वा	" न०मरुत् अग्नि	ज० "	
२	१४	४	सौभरि	"	"	सखाय मिन्द्रमूतये इत्यादि०
	१५	६	गोतम	"	"	अनवद्यरूपेत्यादि०, उपमान-
	१६	१२	अयास्य	"	"	विद्यादि०, ज्योतिरायमित्यादि०
	१७	१२	कृष्ण१-११; वसिष्ठ१२	"	जगती "	बृहस्पतिः पातु सदा न इत्यादि प०
३	१८	६	मेधा॰ प्रियमेध ;;	"	गायत्री	इन्द्र त्वायन्तः सखाय इत्यादि०
	१९-२०	७-७	विश्वामित्र गृत्समद	"	;;	इन्द्रेशावरेत्यादि, स्तुत्यादि पदार्थविद्य
	२१	११	सव्य	"	जगती त्रिष्टुप्	अभि त्वा वृषभा सुतेत्यादि०; योगे
	२२	३	त्रिशोक प्रियमेध	"	गायत्री	योगे तवस्तरं बाजेवाजे हवामहे सखाय
	२३-२४	९	विश्वामित्र	"	"	इन्द्रमूतये इत्यादि०, इन्द्राय शूषं
	२५	७	गोतम अष्टक	"	जगती ;;	हरिवन्तमर्चतेत्यादि० हरये सूर्यायेत्यादि
	२६	३	शुनःशेप मधुच्छन्दा	"	गायत्री	पदार्थ विद्या ।
	२७-२९	६-४-५	गोषूक्ती अश्वसूक्ती	"	;;	
	३०-३२	५-५-३	वरु वा सर्वहरि	"(हरि)	जगती त्रिष्टुप्	
	३३	३	अष्टक	"	"	

अनुवाक सूक्त मन्त्र ऋषि देवता छन्द विषय

४ ३४ १८ गृत्समद इन्द्र त्रिष्टुप् यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवोदेवानित्यादि
३५ १६ नोधा ,, ,, पदार्थविद्या, यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो
३६ १० भरद्वाज ,, ,, अच्युतच्युत स जनास इन्द्र इत्यादि सोमेन्द्र-
३७ ११ वसिष्ठ ;; ,, विद्या- पदार्थ विद्या
५ ३८ ६ इरिम्बिठि मधुच्छन्दा ,, गायत्री इन्द्र सोमपानादि-पदार्थविद्या, इन्द्रेश्वरादि पदार्थ
३९-४० ५-३ गोषूक्त्यश्वसूक्ती ;; ,, ;; विद्या; सूर्येश्वरस्तुत्यादि पदार्थविद्या इन्द्रसूर्येश्वर-
४१-४२ ३-३ गोतम-कुरुस्तुति ,, ,, प्रार्थनादि पदार्थ विद्या,
४३-४६ ३-३ त्रिशोक-इरिम्बिठि-शुनः. इन्द्र गायत्री इन्द्रेश्वरधारणादि-विद्या, त्वमिन्द्रा-
४७ २१ सुकक्ष-मधु.-,,-प्रस्कण्व ,, सूर्य ,, भिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः। विश्वकर्मा
४८ ६ खिल सर्पराज्ञी सूर्य गौ ,, विश्वदेवो महाँ असीत्यादि
४९ ७ ;; नोधा मेध्यातिथि इन्द्र(६६सूक्त तक),, प्रगाथ इन्द्र शृवरसख्यादि पदार्थ
५० २ ,, ;; विद्या।
५१ ४ प्रस्कण्व पुष्टिगु ,,
५२-५६ ३-३,६ मेध्यातिथि रेभ गोतम बृहती अतिजगती त्रिष्टुप्
५७ १६ ,, मधुच्छन्दा विश्वामित्र, गृत्समद गायत्री
५८-५९ ४-४ नृमेध जमदग्नि मेध्यातिथि वसिष्ठ सूर्य प्रगाथ
६० ६ सुकक्ष वा सुतकक्ष मधुच्छन्दा गायत्री
६१ ६ गोषूक्ती-अश्वसूक्ती उष्णिक् ,,
६२ १० सोभरि ,, नृमेध ,,
६३ ९ भुवन-साधन भरद्वाज गोतम पर्वत ,, त्रिष्टुप्
६४-६६ ६-३-३ विश्वमना: ,, नृमेध ,,
६ ६७ ७ परुच्छेप गृत्समद इन्द्र मरुत अग्नि ऋतु अत्यष्टि जगती वनोति हि सुन्वन्क्षयमित्यादि०
६८-७१ १२-१२-२०-१६ मधुच्छन्दा इन्द्र(७१ तक)मरुत गायत्री इन्द्र सोमपानपात्रादि पदार्थविद्या
तस्मा इन्द्राय गायतेत्यादि पदार्थविद्या. इन्द्रेश्वर-स्तुति-प्रार्थना युद्धादि-जयार्थम्, महाँ इत्यादि प०
७ ७२ ३ परुच्छेप गृत्समद इन्द्र (८७ सूक्त तक) अत्यष्टि विरावेषु हि वा सवनेषु तञ्जते
७३-७४ ६-७ वसिष्ठ वसुक्र शुनः. विराट् जगती अभिसारिणी पं. इन्द्रादि पदार्थविद्या इन्द्रेश्वर-
७५-७६ ३-८ परुच्छेप ,, अत्यष्टि त्रिष्टुप, स्तुत्यादि पदा०, जलादि पदा०,
७७-७८ ८-३ वामदेव शंयु गायत्री ,, अध्वर्यवो रुणं दुग्धमंशुं जुहोतनेत्यादि०,
७९-८० २-२ वसिष्ठ वा शक्ति ,, प्रगाथ पोमेन्द्रादिपदा०, यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्
८१-८२ २-२ ,, पुरुहन्मा ,, बृहस्पतिरित्यस्थो रवेणेतयादि पदा०, बृहस्पती-
८३-८४ २-३ शंयु मधुच्छन्दा ,, ,, श्वर प्राथनादि०; इन्द्रेश्वर प्रार्थना, सख्या दि-
८५-८७ ४-१-७ प्रगाथ मेध्यातिथि विश्वामित्र वसिष्ठ बृहस्पति प्रगाथ त्रिष्टुप्, पदार्थ
विद्या।
८८-९० ६-११-३ वामदेव कृष्ण भरद्वाज इन्द्र ,, ,,

अनुवाक सूक्त मन्त्र ऋषि देवता छन्द विषय

८ ९१ १२ अयास्य बृहस्पति त्रिष्टुप इमां धियमित्यादि०, तो सत्येनेत्यादि०,
९२ २१ प्रियमेध पुरुहन्मा इन्द्र [१०० सूक्त तक] गा अ पं वृ सत्यायाशिषं कृणुतइत्यादि०, अचेत प्राचेत
९३ ८ प्रगाथ देवजामयः गायत्री इत्यादि०, सुदेवो असि वरुण इत्यादि०,
९४-९५ ११-४ कृष्ण गृत्समद सुदाःपैज० त्रि० ज० अ० श० इन्द्रं जातमुपासत इत्यादि, मघवान्नित्यादि,
९६ २४ पूरण यक्ष्मनाशनः रक्षोहाः विवृहाः प्रचेता इन्द्राय शूषमर्चत इत्यादि०, शतशारदाय
त्रि. अ. यक्ष्मनाशन गर्भसंस्राव दुःस्वप्न्य इत्यादि पदार्थ विद्या
९ ९७-९९ ३-२-२ कलि शंयु मेध्यातिथि बृहती भूवतीत्यादि० त्वं दाता प्रथम इत्यादि०
१००-१०२ ३-३-३ नृमेध ,, विश्वामित्र अग्नि उ० गायत्री यो राजेत्यादि०. स्वादोरित्यादि०,
१०३-५ ३-४-५ ,, ,, सुनीति-पुरुमीढ भर्ग इन्द्र प्रगाथ प्रतिमानादि० इमा ब्रह्म बृहदित्यादि
१०६ ३ गोषूक्ति-अश्वसूक्ति इन्द्र (१२६ सूक्त तक) उ. अथर्वावाचत्स्वा त-वामिन्द्रमेवेत्यादि,
१०७ १५ वत्स बृहद्दिवा कुत्स सूर्य गा त्रि ज वितन्वते प्रति भद्राय भद्रामित्यादि,
१०८-९ ३-३ नृमेध गोतम ककुप् पुर उ. ,, पंक्ति विश्वस्मादिन्द्र उत्तर इत्यादि०;
११०-११ ,, श्रुतकक्ष वा सुकक्ष पर्वत ,, ,, वृषाकपायीत्यादि०, य एष स्वप्ननंशन
११२-१४ ३-२-२ भर्ग सौभरि ,, प्रगाथ ,, इत्यादि पदार्थ विद्या।
११५-१७ ३-२-२ वत्स मेध्यातिथि वसिष्ठ ;; बृहती विराट्
११८-२१ ४-२-२-२ भर्ग मेध्यातिथि आयु श्रुष्टिगु, देवातिथि वसिष्ठ प्रगाथ
१२२-२४ ३-२-६ शुनःशेप कुत्स-सूर्य-वामदेव-भुवन गायत्री, पदनिवृत् त्रिष्टुप्
१२५-१२६ सुकीर्ति-अश्विनौ वृषाकपि इन्द्राणी अनुष्टुप् पंक्ति
सूक्त १२७ से १३६ तक १० (उनके १४७ मन्त्र) प्रक्षिप्त हैं। परिशिष्टानि प्रक्षिप्तानि विज्ञेयम्।
१३७ १४ शिरिम्बिठि बुध वामदेव ययाति तिरश्ची-आङ्गिरस वा द्युतान सुकक्ष। देवता—
अलक्ष्मीनाशन विश्वेदेवाः इन्द्र दधिक्रा पवमान सोम अ ज त्रि गा
१३८-१४२ ३-५-५-५-६ वत्स शशकर्ण ;; अश्वी बृहती गा ककुप् अ त्रि त्रि जगती।
१४३'९ पुरुमीढ अजमीढ वामदेव मेध्यातिथि मेधातिथि ,, क्षेत्रपति त्रि वाणीत्यादि ऋतस्येत्यादि
मधुमानित्यादि पदार्थ विद्या।
योग ९ १३३ ८११ पूर्वागत ४०१६ मिलाकर ४८२७ मन्त्र हुए।

दश परिशिष्टानि प्रक्षिप्तानि कुन्ताप सूक्तानि

१२७-१२८ १४-१६ नाराशंसी ४-रैभी ३-पारिक्षिती ४-कारव्य ४-दिशा क्लृप्ति ५—जनकल्प ६।
१२९-१३२ २०-२०-२०-१६ इन्द्रगाथा ५। ऐतशप्रलाप (अग्नेरायुः ४) में ७६ मन्त्र। प्रजापति वा इन्द्र
१३३-१३६ ६-६-१३-१६ कुमार प्रजापति और इन्द्र। प्रवह्लिका ६, आजिज्ञासेन्या ४, प्रतिराध ३।
अतिवाद २; देवनीथ ७ पद, भूतेच्छद ३, आहनस्या मन्त्रेण वचसा वयमित्यादि०, गोमीवा
गोगतीरिवेत्यादि०, आदलाबुकमेककम्। अलाबुकं निखातकमित्यादि०, अलाबूनि: इदं राधो
विभु प्रभिन्नत्वादि०।

योग ९ १४३ ९५८ पूर्वागत ४०१९ सब महायोग ४९७७

अथर्व-वेद संहिता

काण्ड (२०)

अनुवाक १

विषय— इन्द्र त्वा वृषभ वयमित्यादि० सोमपानगुणविद्यादि० यज्ञादि० इन्द्र त्वा सत्पतिमित्यादि। पितेव न इत्यादि० सृष्टिरीश्वरकृतेत्यादि० इन्द्रेश्वरेत्यादि० एको देवत्रेत्यादि पदार्थ विद्या।

सूक्त १—५०२०. इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे। स पाहि मध्वो अन्धसः॥ १

२१ मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः॥ २

२२. उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। स्तोमैर्विधेमाग्नये॥ ३

सूक्त१— हे इन्द्र(ईश्वर, सम्राट्)! हम तुझ बली को सिद्ध ऐश्वर्य में बुलाते हैं; मधुर अन्न की रक्षा कर।
(आगे क्रमाक ४० पर भी)

हे मरुतो(उपासको-सैनिको)! जिस के घर में तुम रक्षा करते हो वह जनक सबसे अच्छा रक्षक है।
हम प्रबलों-वशीभूतों के अन्नदाता, सोम की पृष्ठभूमि, विधाता अग्नि की साम-गानों से स्तुति करें।

सूक्त २— २३. मरुतः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु॥ १

२४. अग्निराग्नीध्रात् " ॥२

२५ इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात् " ॥३

२६ देवो द्रविणोदाः पोत्रात् " ॥ ४

सूक्त २— मनुष्य पवित्र-बड़े स्तुत्य-पूज्य व्यवहार से प्रत्येक ऋतु में सोम (भक्ति-औषध) पान करे। ।२
अग्रणी अग्निधारी से " ।
ऐश्वर्यशाली ब्रह्मा ब्रह्मज्ञ से " ।४
विद्वान् धनदाता पवित्र व्यवहार से "

सूक्त ३—२७ आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्। एदं बर्हिः सदो मम॥१

२८ आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना। उप ब्रह्माणि नः शृणु॥ २

२९ ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः। सुतावन्तो हवामहे॥ ३

सूक्त ३—हे इन्द्र! आ, तेरे लिए मैंने सिद्ध किया है, इसे ले। मेरे इस हृदयासन पर विराज। १
हे सम्राट्! तेरे वेद-ज्ञान-युक्त आकर्षक दुःखहारी बल-पराक्रम सर्वत्र जायें। हमारी स्तुतियाँ सुन।
हे परमेश्वर-शासक! वेदज्ञ योगी सोमपा सन्तान वाले हम सोमपा तुझे बुलाते हैं।
[ये तीन मन्त्र आगे सूक्त सैंतीस और ४७ में तथा ऋ० ८-१७ में भी हैं।]

सूक्त ४— ३० आ नो याहि सुतावतो ऽस्माकं सुष्टुतीरुप। पिबा सुशिप्रिन्नन्धसः॥ १

३१ आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु। गृभाय जिह्वया मधु॥ २

५०३२ स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वे तव। सोमः शमस्तु ते हृदे॥ ३

सूक्त४– ५०३० हे सुमुख उपासक शिष्य! हम सिद्ध गुरुओं की स्तुतियों के पास आ, विद्या-रस पी।
तेरी दोनों कुक्षि (हृदय-मस्तिष्क) सींचता हूं, यह शरीर में व्याप्त हो मानो जीभ से मधु लिया हो।
यह मधुर विद्या-रस कष्ट दूर करने के लिए तेरे मस्तिष्क-हृदय को शान्ति-दायक हो।

सूक्त ५– ५०३३. अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः । प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ १
३४ तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ २
३५ इन्द्र प्रेहि पुरस् त्वं विश्वस्येशान ओजसा । वृत्राणि वृत्रहं जहि ॥ ३
३६ दीर्घस् ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि । यजमानाय सुन्वते ॥ ४
३७ अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ५
३८ शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥ ६
३९ यस् ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः । न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥ ७

सूक्त ५– हे देखनेवाले इन्द्र! तू प्रजा ने घिरा रहता है जैसे माताएँ बच्चों से। यह सोम तेरी ओर बढ़े।
दृढ़-ग्रीवा, स्थूल-शरीर, सुबाहु सेनापति अन्न के हर्ष में दुष्टों का हनन किया करता है। २
हे ओज से सब के ईश, दुष्ट-नाशक सेनापति ! तू आगे बढ़ और दुष्टों को मार।
तेरा अंकुश विशाल हो जिससे तू सोमी यज्ञ-कर्ता के लिए धन देता है। ४
हे इन्द्! यह तेरा ऐश्वर्य पद पर पवित्र है। शीघ्रता कर, इसका पालन कर। यह सोम पी।
हे शक्ति-शाली वाणी वाले, शक्ति-पूज्य शत्रु-खण्डक! यह सोम तेरे हर्ष के लिए है तू निमन्त्रित है।
जो तेरा शस्त्र-वर्षक, न पतनशील अपतित; जल-कुण्डों से पालनीय राष्ट्र है उसमें मन लगा। ७

सूक्त ६– ४०. [पहले आये क्रमाङ्क ५०२०, २०-१-१ के समान हैं ।] १

सूक्त ६– ४०. [वह पहले २०-१-१, क्रमांक ५०२० पर आ चुका है ।]

४१ इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ २
४१ हे कामना-योग्य बहुत प्रशंसनीय ! तू कर्म-प्रद सोम को ले, तृप्ति की वर्षा कर। २
४२ इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः । तिरः स्तवान विश्पते ॥
४२ हे स्तुत प्रजा-स्वामी ! तू हमारे हितकर यज्ञ को सब विद्वानों द्वारा बढ़ा।
४३ इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते । क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥ ४
हे सच्चे पति ! ये निष्पन्न सोम तेरे लिए हैं, ये हर्षद प्रेम-रस तेरे घर की ओर जा रहे हैं। ४
४४ दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तव द्युक्षास इन्दवः ॥ ५
४४ हे सेनापति! तू निष्पन्न वरणीय सोम अपने उदर में रख। ये व्यवहार्य रस तेरे लिए हैं। ५
४५ गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद् यशः ॥ ६
हे वाणी से सेवनीय ! तू हमारे सोम की रक्षा कर। तू मधु-धारा से सिंचित है, यह यश तेरा दिया है। ६
४६ अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता । पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥ ७
४६ भक्त के अक्षय धन शासक की ओर जाते हैं। सोम-पायी बढ़ता-बढ़ाता है। ७
५०४७ अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥ ८
हे दुष्ट-नाशक ! तू पास-दूर से हमारे समीप आया कर। हमारी ये वाणियाँ सेवन कर। ८

१०४८ यदन्तरा परावतमर्वावतम् च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ९

५०४८ हे इन्द्र ! जब तू दूर और पास से पुकारा जाता है तो वहाँ से यहाँ आया कर । ६

सूक्त ७—४९. उद् घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥ १

५० नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २

५१ स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद् गोमद्यवमत् । उरुधारेव दोहते ॥ ३

५२ [क्रमाङ्क ४१, २०-६-२ पर भी हैं]४

४९ हे सूर्य ! तू यहाँ से विख्यात धनी-बली-नर-हितकर—निष्पाप के लिए ही उदित होता है । १

५० जो किरणों के ओज से ९९ (असंख्य) रोग-क्रिमि-गढ़ भेदता और अहि (रोग-नर्प) मारता है । २

५१ वह सूर्य हमारा कल्याणकारी मित्र हमें प्राण-इन्द्रियशक्ति-जो आदि अन्न बड़ी धारावत् देता है । ३

५२ वह बहुत-स्तुत सूर्य ! तू शक्ति-दायक सोम गृहण कर और बली हो ।(क्रमाक ५०४१ पर भी) । ४

सूक्त ८- ५३ एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।

आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥ १

५४ अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।

उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥ २

५५ आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।

समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥

५३ हे ऐश्वर्यशाली मनुष्य ! तू सदा के समान रक्षा कर, वेद सुन, उससे बढ़, सूर्य सेवन कर, अन्न बढ़ा, शत्रुओं को मार, उनकी वाणी नष्ट कर । १

५४ सामने आ, तुझे सोम-कामी मानते हैं, यह सोम हर्षार्थ पी, बली होकर पचा, पितावत् सुन । २

५५ इसका कलश पूर्ण है, यह सेच सींचता है, प्यारे दक्ष सोम ही सूर्य को बढ़ाने के लिए घेरते हैं । ३

सूक्त ९—५०५६ तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ १

५७ द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।

क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ २

५८ तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।

येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ३

५०५९ येना समुद्रमसृजो महीरपस् तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।

सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ ४

५०५६ उस दुःख-कष्ट-नाशक धन-अन्न से तृप्ति-कर्ता ईश्वर के प्रति हम वाणी से सदा स्तुति करें जैसे घरों में गौएँ बछड़े के प्रति रँभाती हैं । १

५०५७ हम उस ऐश्वर्य को चाहें जो दिव्य बनाने वाला, उत्तम दानयुक्त, नाना शक्ति-पूर्ण, मेघ-समान पालक, अन्न-युक्त और सैकड़ों-हजारों को लाभ-दायक हो। २

५८ मैं उस सुवीर्य ब्रह्म की याचना करूँ जिसमें पूर्व-चेतना मिले, जो यति-तपस्वियों के लिए हितकर धन है; जिससे मनुष्य महा मेधावी बनता है। ३

५९ हे इन्द्र ! जिससे तू ने सागर-पृथिवी-जल बनाये वह सामर्थ्य तेरा ही है। इसकी वह महिमा शीघ्र समझ में नहीं आती जिसे अन्तरिक्ष बार-बार गुंजाता रहता है। ४

सूक्त १०। इन्द्र

६० उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।

सत्राजितो धनसाअक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥ १

निश्चय ही वे मधुरतम वाणियाँ-साम-गान उठते हैं जो विजयी विभूतियों को देते हैं जिनको रक्षा कम नहीं, और जो रथ-समान बल-वेग वाले हैं।

६१ कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।

इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ २

तपस्वी जन मेधावियों और सूर्य-किरणों के समान सभी फल पा लेते हैं। बुद्धि-प्रिय स्तोमों से इन्द्र की महिमा को सस्वर गाते हैं।

सूक्त ११। इन्द्र

६२ इन्द्रः पूर्भिदातिरद् दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून्

ब्रह्मजूतस् तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद् रोदसी उभे ॥ १

इन्द्र (जीव) शरीर-भेदन कर क्षय-कर्त्री अविद्या को ज्ञान-प्रकाशों से पार करता है, धन पाकर शत्रु-नाश करता हुआ, ब्रह्म-प्रेरित, सूक्ष्म शरीर से बढ़ता हुआ वह महादानी के लिए दोनों लोक दान कर देता है। १

६३ मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन् ।

इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥ २

हे इन्द्र(परमेश्वर) ! तुझ अमृत के लिए वाणी भूषित करता हुआ मैं यज्ञ-बल रूप तेरे वेग को पाता हूं। तू पृथिवियों, मानुषी-दैवी प्रजाओं का नेता है।

६४ इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद् वर्पणीतिः ।

अहन् व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ॥ ३

सेना-पति बल-नीति से दुष्ट को घेरता है, मायावियों की कपट-नीति नष्ट होती है। शत्रुदाहक वह उनके कन्धे काटता और आनन्दी जनों की गौओं-वाणियों को वनों में प्रकट करता है।

६५५० इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।

प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥ ४

सम्राट् शुभ दिन लाता हुआ सुख देता है, अभीष्ट-साधक वह मेधावियों द्वारा शत्रु-सेना जीतता है मनुष्य के लिए दिनों का केतु [सूचना] देता और बड़े आनन्द के लिए ज्योति देता है।

५०६६ इन्द्रस् तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद्दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद्धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ।। ५

सेनापति बढ़ती हुई सेनाओं में घुसता है; नेता के समान अनेक नर-हितकर कार्य करता है । स्तोता के लिए इनके कर्म चिताता है, उनके शुद्ध स्वरूप बढ़ाता है ।

७ महो महानि पनयन्त्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ।। ६

महापुरुष इस सेनापति के धर्म के महान् कार्य सराहते हैं, ओजस्वी वह पापी-साहसी-दुष्टों को अपनी बल-बुद्धियों से नष्ट कर देता है ।

६८ युधेन्द्रो मह्ना वरिवश् चकार देवेभ्यः सत्पतिश् चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ।। ७

सत्य-रक्षक, मनुष्यों का मनोरथ-पूरक सेनापति युद्ध द्वारा महिमा से विद्वानों के लिए सेवनीय बल देता है । विविध निवास वाले के घर में इसके इन कर्मों को विप्र-कवि कथ्यों से गाते हैं ।

६६ सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ।। ८

जिसने पृथिवी-द्यौ दिये उस पराक्रमी-वरणीय-बली, प्रकाश-दिव्य जल-दाता ईश्वर की प्रशंसा धीर योगी किया करते हैं ।

७० ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसङ्गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ।। ६

ईश्वर सदा चलने वाले श्वास-प्रश्वास सूर्य, सबको भोजन-दात्री पृथिवी; सुवर्णमय भोग देता है, दस्युओं को मारकर वरणीय आर्य की रक्षा करता है ।

७१ इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीँरसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचो ऽथाभवद् दमिताभिक्रतूनाम् ।। १०

सम्राट्, ओषधि-सुदिन-वनस्पति-अन्तरिक्ष देता है, घेरने वाले दुष्ट आदि को नष्ट करता है, वेद-विरुद्ध वाणी वालों को धकेलता और विरोधियों को दमन करता है ।

५०७२ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ।। ११

हम सुखदायक, सम्पत्तिशाली इन्द्र (परमात्मा-विशिष्ट जीवात्मा-बिजली आदि) को इस संघर्षमय संसार में अन्न-बल के पाने के लिए याद करें जो सर्वश्रेष्ठ नेता है, प्रार्थना सुनता है, उग्र है, संग्रामों में रक्षा के लिए है, वृत्रों (घेरने वालों) का नाशक और धनों को जीतने वाला है ।११

[यह मन्त्र सामवेद में एक बार, ऋग्वेद में १४ बार, सब से अधिक १६ बार आया है और विभिन्न अर्थ हैं । वीर-शान्त रस, ओज-प्रसाद गुण, श्लेष अलंकार है ।

सूक्त १२। इन्द्र परमेश्वर, सेनापति

५०७३ उदु ब्रह्माण्यैरयत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ।। १

हे प्राण-संयमी मनुष्य ! तू अन्न-धन-यश-दाता वेदों का उच्च स्वर से गान कर, सभा में उस सेनाध्यक्ष का यश गा जो बल से सब कार्मों को फैलाता और शरण में गये मेरे वचन पास से सुनता है।१

७४ अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि ।
न हि स्वमायुश् चिकिते जनेषु तानीदंहास्यति पर्ष्यस्मान् ।। २

हे इन्द्र ! नाद होने पर देव-बन्धु मैं जब आपकी शरण आता हूं तो मेरी शोक-रोधक वृत्तियाँ आपकी सेवा में लगती हैं; जनों में अपना शब्द प्रकट नहीं होता उन्हीं पापों से हमें पार कर ।२

७५ युजे रथङ्गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ।। ३

मैं खोजने वाले रथ (वाहन-शरीर) को दो अश्वों (अग्नि-जल, धन-ऋण विद्युत्, ज्ञान-कर्म, ऋक्-साम) से जोड़ूँ: ज्ञान-स्तुतियाँ सेवनीय के पास पहुँचती हैं, इन्द्र महिमा से आकाश-भूमि को प्रकाशित-नष्ट करता और दुष्टों को निर्विरोध मारता है ।

७६ आपश् चित् पिप्युस् स्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस् त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ।। ४

हे इन्द्र! आप्त प्राण, बाँझ गौओं के समान, तृप्त हों; तेरे स्तोता सत्य पायें, वायु-समान तू हमारे नियुक्तों के पास अच्छे प्रकार आ, बुद्धियों-कर्मों से तू बल देता है ।

७७ ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसञ्जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ।। ५

हे शूर इन्द ! वे तेरे हर्ष बली-महाधनी तुझे स्तोता के लिए प्रसन्न करें, एक ही देव-रक्षक तू मर्त्यों पर दया करता है, इन यज्ञ में हृष्ट हो और कर । ५

७८ एवेदिन्द्रं वृषण वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः
स न स्तुतो वीरवद्धातु गोमद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।। ६

देश-वासियों में उत्तम जन स्तुतियों से बली-वज्रबाहु सेनापति का सत्कार करते हैं। प्रशंसनीय वह हमें वीरों और गौओं से युक्त करे। हे वीरो ! तुम कल्याणों से सदा हमारी रक्षा करो। ६

५०७९ ऋजीषी वज्री वृषभस् तुराषाट् शुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यन्दिने सवने मत्सदिन्द्रः ।। ७

५०७९ सत्यमार्गी-वज्री-सुखवर्षक-शीघ्र कष्टहारी-बली-राजा, वृत्र-नाशक, सोम-पायी इन्द्र हरियों (ऋक्-साम-अश्वों) से युक्त होकर माध्यन्दिन सवन में हमारी ओर आये, हृष्ट हो। ७

सूक्त १३ । इन्द्र-बृहस्पतिः मरुतः अग्निः ।

५०८० इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन् यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नियच्छतम् ॥ १

८१ आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरुवः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥ २

८२ इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयन्तव ॥ ३

८३ ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस् त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥ ४

५०८० हे सेनापति ! धन-हर्ष-दाता तू और सम्राट् दोनों इस यज्ञ में सोम औषधि पियो । तुम्हें उत्तम ऐश्वर्य मिलें, तुम हमें सब वीरों के सहित धन दो । १

८१ हे सैनिको ! तुम्हें शीघ्रगामी रथ-घोड़े सब ओर ले जायें, अपनी बाहों से विजय पाओ । विशाल अन्तरिक्ष में आओ-जाओ, तुम्हारे लिए घर बनाया है; मधुर अन्न से हृष्ट होओ । २

८२ योग्य, परिस्थिति-ज्ञाता प्रधान मन्त्री के लिए हम मन की इच्छा से रथ के समान रमणीय यह प्रशंसा तय्यार करें, इनकी संसद् में हमारे विचार भद्र हों, हे नेता' हम तेरे सख्य में, दुखी न हों ।

८३ हे अग्रणी ! तू इन सपत्नीक तैंतीस देवों (८-८ वसु-रुद्र-आदित्य, सेनापति-राष्ट्रपति) के साथ रथ, पर आओ; नाना रथ-अश्व तुम्हारा धन हो, अपनी शक्ति-अनुसार उन्हें ला, हृष्ट हो, हृष्टकर । ४

अनुवाक दो

विषय— सखायमिन्द्रमूतय इत्यादि० । अनवद्यरूपेत्यादि०, उपमानं विद्यादि०, ज्योतिरार्यमित्यादि०, बृहस्पतिः पातु सदा न इत्यादि पदार्थ विद्या ।
—महर्षि दयानन्द सरस्वती

सूक्त १४ । इन्द्र । (आगे फिर यही सूक्त ६२)

८४ वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः । वाजे चित्रं हवामहे ॥ १
८५ उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश् चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २
८६ यो न इदमिदम् पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ ३
८७ हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥ ४

८४ हे अपूर्व [सम्राट्, विद्युत्] ! रक्षा के इच्छुक हम शक्तिशाली-समान तुझे धारण करते हुए युद्ध में विचित्र पराक्रमी के रूप में स्वीकार करते हैं ।

८५ कर्म में रक्षार्थ जो युवा-उग्र-रक्षक आगे बढ़ता है ऐसे दानी तुझे हम मित्र वरण करते हैं ।

८६ हे मित्रो ! जो हमारी रक्षार्थ नाना सम्पत्ति देता है उस इन्द्र के गुण कथन करें ।

५०८७ हम अश्व-शक्ति वाले, सबके रक्षक, सेना में प्रभावी, इन्द्र का वरण करें । वह धनी हम स्तोताओं को, सैकड़ों अश्व-गौ दे । ४

सूक्त १५। इन्द्र

५०८८ मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिम् भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥ १
८९ अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥ २
९० अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥ ३
९१ इमे त इन्द्र ते वयम् पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ॥ ४
९२ भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ॥ ५
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयञ्च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥
९३ त्वं तमिन्द्र पर्वतम् महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥ ६

५०८८ मैं अत्यन्त सुखद, महान्, महावेगी, बलस्वरूप बिजली का ज्ञान देता हूं जिसका विज्ञान नीचे की ओर बहते जल के समान बेरोक, सब जनों के लिए बल पाने के अर्थ प्रकट है। १

८९ और तेरे पीछे विश्व इष्ट पाने के लिए दौड़ रहा है जैसे पानी नीचे की ओर दौड़ता है। जैसे मेघ में बिजली का सुन्दर हिरण्मय रूप है वैसे ही इसका वज्रमय हिंसक रूप भी है। २

९० अहिंसक संसार में इस भयङ्कर तथा प्रशंसनीय का आदर से उपयोग करो जैसे उषा का। जिसका नाम-धाम-बल प्रसिद्ध है, और जो अपनी ज्योति को किरणों के समान फैलाती है। ३

९१ हे समर्थ-सुखद बिजली! हम तेरे हैं, तेरे सहारे चलते हैं। तुझ से अन्य कोई वाणी का साधक नहीं है, तू पृथिवी-समान हमें इसे हम तक पहुँचा। ४

९२ हे इन्द्र! तेरा बल बड़ा है; हम तेरे हैं। इस स्तोता की कामना पूरी कर। महान् द्यौ और यह मेरी पृथिवी दोनों तेरे ओज के अनुचर हैं। ५

९३ हे वज्री! तू महान् विस्तारी मेघ को छिन्न भिन्न कर काट देता है। घिरे हुए पानी को बहने के लिए नीचे गिराता है। सत्य ही तू संसार का धारक है, यह बल केवल तेरा है। ६

१६। बृहस्पति

९४ उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः ।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन् ॥ १
५०९५ सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय ।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥ २

५०९६. साध्वर्या अतिथिनीरिषिरा स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः ।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥ ३
९७. आ प्रुषायन् मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः ।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥ ४
९८ अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत् ।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥ ५
५०९९. यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।
दद्भिर्न जिह्वा परि विष्टमाददाविर्निधीरकृणोदुस्रियाणाम् ॥ ६
५१०० बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत् ।
आण्डेव भित्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥ ७
१ अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन् मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् ।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥ ८
२ सोषामविन्दत् स स्वः सो अग्नि सो अर्केण वि बबाधे तमांसि ।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥ ९
३ हिमेन पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद् वलो गाः ।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात् सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥ १०
४ अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।
राज्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन् बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः ॥ ११
५ इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् ॥ १२

५०९४ जल पर तैरते, स्व-रक्षा करते, चहचहाते हुए पक्षी के समान, कड़कती हुई बिजली के घोषों और पहाड़ों से गिरती हर्षद जल-लहरों के समान हमारे मन्त्र बहस्पति की स्तुति करें ।१
९५ किरणों से प्रकाशमान अंगारमय सू ... का भालार हमारी ओर झुकता है, वह संसार को व्यक्त करता है जैसे मित्र पति-पत्नी-गुणों को । हे बृहस्पति, हमें युद्ध में अश्व-समान वशी कर ।२
९६ जैसे किसान जौ आदि अन्न खेत से काटकर लाता है वैसे ही वायु-सूर्य अन्तरिक्षस्थ, गतिशील-इष्ट-स्पृहणीय-स्वच्छ-पवित्र जल मेघों से काटकर पृथिवी पर भेजते हैं । ३
९७ मधुर जल के स्थान मेघ से भूमि को सींचता हुआ सूर्य, द्यौ से उल्का-समान, मेघ से जल फेंकता हुआ। उसकी पर्त छिन्न-भिन्न कर देता है जैसे बैल हल से भूमि की पर्त । ४
५०९८ जैसे बैल और वायु सिवार घास हटा देते हैं वैसे ही सूर्य ज्योति से अँधेरा हटा देता है । जैसे वायु मेघ को वैसे ही सूर्य अन्धकार और मेघ को छिन्न-भिन्न कर किरणें प्रकट करता है। ५

५०९९ दाँतों से घिरी जीभ के समान जब जल से घिरे मेघ को सूर्य अग्नि-तपी किरणों से भेदन करता है तब किरणों को और नदियों के निधि जल को प्रकट करता है । ६

५१०० सूर्य इन घोषकारी नदियों के जल को धर (अन्तरिक्ष) में छिपा जान लेता है तो अपनी शक्ति से मेघ को भेदन कर उन्हें प्रकट कर देता है जैसे अण्डा भेदन कर पक्षी का गर्भ । ७

५१०१ जब वायु, कम जल में पड़ी मछली के समान, मेघ-ढँका मधुर जल सब ओर देखता है तब उसको विशेष शब्द करके मेघ काटकर निकालता है जैसे पेड़ काटकर चमचे आदि पात्र बनाते हैं । ८

२ वह बृहस्पति वायु उषा-प्रकाश-अग्नि प्राप्त कराता, वह सूर्य के द्वारा अन्धकार को हटाता है । वही जलीय-शरीर वाले मेघ के पोरुए-पोरुए से मज्जा-समान जल को निकाल लेता है । ६

३ हिम द्वारा वनों के पत्ते झड़ जाते हैं, वायु मेघ का जल गिराता और पुनः घेरा डालने के कर्म के अयोग्य कर देता है तब सूर्य-चन्द्र दोनों प्रकाशित होते हैं । १०

४ श्याम अश्व को चमकती मणियों के समान, द्यौ को नक्षत्रों से ऋतुएँ शोभित करती हैं । जब जब वायु मेघ भेदन कर जल गिरा देती है तब वे रात में अँधेरा, दिन में ज्योति धारण करती हैं । ११

५ हम यह आदर मेघ-स्वामी बृहस्पति को दें जो पनिहारा गरजता है । वह हमें गौ-अश्व-वीर सन्तान-नेताओं के साथ अन्न-आयु दे । १२

सूक्त १७ । इन्द्र (परमेश्वर-जीव-सम्राट्-सूर्य)

५१०६. अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परिष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥ १

७ न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत् कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म निषदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते ॥ २

८ विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ॥ ३

९ वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद् विदत् स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥ ४

१०. कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत्ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन् नोत नूतनः ॥ ५

११. विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद् वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥ ६

१२ आपो न सिन्धुमभि यत्समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥ ७

५११३ वृषा न क्रुद्धः पतयद् रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥

५११४. उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
विरोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥ ९
१५ गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १०
१६ बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ११
५११७ बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १२

५१०६ मेरी सुख-दायक, सुमङ्गल कामना-युक्त सब बुद्धियाँ इन्द्र को अच्छे प्रकार स्तुति करती हैं जैसे पत्नियाँ रक्षार्थ शुद्ध-धनी-रक्षक-मनुष्य पति का आलिङ्गन करती हैं । १

७ हे बहुत बार पुकारे गये ! तुझ में लगा मेरा मन तेरे अतिरिक्त कहीं नहीं जाता, तुझ में ही यथेच्छ आश्रय लेता है; तू राजा-समान हृदय-अन्तरिक्ष आसन पर विराजमान है, इस सोम(भक्ति) में तेरा रसपान हो । २

८ इन्द्र अमति और भूख को सर्वथा हटाने वाला है। वही धनी और भोग्य सम्पत्तियों का ईश है । वर्षाकारी उसी बली की आज्ञा में फैलने वाली नदियाँ अन्न को बढ़ाती हैं। ३

९ सुन्दर पत्तों वाले वृक्ष को पक्षी के समान इन्द्र(सूर्य)को इन्द्र, द्यावा-पृथिवी-स्थ सोम(जलीय तत्त्व) पहुंचते, इनकी प्राणद शक्ति वल से चमकती, मनुष्य को सुख-ज्योति देती हैं । ४

१० भविष्य में पान जाता विजया जैसे प्रकाश का पुरा है तेरा हाथ वाली बिजली अन्धकार-विजेता सूर्य को । हे बिजली ! तेरा सामर्थ्य पुराना या नया कोई नहीं पा सकता । ५

११ इन्द्र प्रत्येक जन में व्याप्त है; सुख-वर्षक वह जनों की वाणी जानता है। वह जिसके कार्यों में रमता है वह अपने काम आदि शत्रु को तीक्ष्ण सोमों से हरा देता है । ६

१२ सिन्धु की ओर जल और तालाब की ओर नालियों के समान सोम इन्द्र की ओर जाते हैं।
दिव्य दान से वर्षा जैसे अन्न बढ़ाती है वैसे ही मेधावी इसके आश्रय में बढ़ते हैं । ७

१३ जो क्रुद्ध साँड़ के समान जो अपनी रजः (धूल-रजोगुण) झाड़ देता है, जिसने ये प्राण
ईश्वर-पालित किये, वह वर्षक सूर्य याज्ञिक-दानी-मननशील के लिए ज्योति देता है ।

१४ ज्योति के साथ तेरा परशु उच्च हो, तू पुरानों के समान सत्य को सुगमता से दुहने वाला
हो, भानु से उज्ज्वल होकर विशेष चमक; सच्चा पति ईश्वर तुझे सूर्यवत् ज्योतिर्मय कर चमका दे । ९

१५ हे बहु-स्तुत्य, हम वेद-वाणियों से दुष्ट अमति पार करें, अन्त से सब भूख दूर करें, हम
ज्ञान-दीप्तियों और अपनी शक्ति से श्रेष्ठ धनों को जीतें । १०(आगे ८९-१०, ९५-१० में भी है]

१६ बृहस्पति[ईश्वर-वायु-आचार्य-सेनापति] हमें पश्चिम-उत्तर-दक्षिण-पूर्व-मध्य-पापी से बचाये,
इन्द्र [ईश्वर-सूर्य-बिजली-सम्राट्-सेनापति] सखा होकर हम सखाओं के लिए सब प्रकार का
धन दे। ११ [आगे ८९-११ और ९५-११ में भी, दोनों मन्त्र ३-३ बार आये हैं ।]

५११७ हे बृहस्पति ! तू और इन्द्र दोनों दिव्य और पार्थिव धन के स्वामी हो; तुम स्तोता विद्वान्
के लिए ऐश्वर्य दो, तुम सब हमारी कल्याणकारी विधियों से रक्षा करो । १२

अनुवाक ३

विषय— इन्द्र त्वायन्तः सखाय इत्यादि०, इन्द्रेश्वरेत्यादि पदार्थ विद्या, अभि त्वा वृषभा सुतेत्यादि०, योगे योगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्र मूतये इत्यादि०, इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चतेत्यादि०; हरये सूयोयेत्यादि पदार्थ विद्या । —महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ।

सूक्त १८ । इन्द्र

५११८. वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ।। १
१९. न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमं चिकेत ।। २
२० इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः ।। ३
२१ वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् । विद्धी त्वस्य नो वसो ।। ४
२२ मा नो निदे च वक्तवेऽर्योरन्धीररावणे । त्वे अपि क्रतुर्मम ।। ५
२३ त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् । त्वया प्रति ब्रुवे युजा ।। ६

१८.हे इन्द्र, तुमसे प्रयोजन रखनेवाले, चाहनेवाले मित्र-बुद्धिमान् हम स्तवचनों से तेरे गुण बखानते हैं ।
१९ हे शक्तिशाली, मैं क्रिया की नयी प्रशंसा में किसी की स्तुति नहीं करता, तेरी ही स्तुति जानता हूं ।
२० देव कर्म-कर्ता को चाहते हैं, स्वप्न नहीं । तन्द्रा-रहित वे आनन्द पाते हैं । ३
२१ हे सुख-वर्षक इन्द्र, तेरे पाने के इच्छुक हम तेरी स्तुति करते हैं, हे हमारे वसु, तू इसे जान । ४
२२ मेरा स्वामी होकर मुझे नष्ट न कर, मुझे निन्दक-बकवादी-कृपण को न सौंप; मेरा कर्म तेरे लिए है ।
२३ हे शत्रु-नाशक, तू विस्तृत कवच और सामने युद्धक है, तेरी सहायता से शत्रु को ललकारता हूं ।

सूक्त १९ । मन्त्र ७ । ५१२४ से ५१३० तक । इन्द्र (विद्वान् और सेनापति)

२४ वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्तयामसि ।। १
२५ अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ।। २
२६ नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राभिमातिषाह्ये ।। ३
२७ पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ।। ४
२८ इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे । भरेषु वाजसातये ।। ५
२९ वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो । इन्द्र वृत्राय हन्तवे ।। ६
३० द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च । इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ।। ७

२४ इन्द्र ! हम तुझे दुष्ट-हनन, बल, शत्रु-सेना-पराजय के लिए प्रवृत्त करते हैं ।
२५ हे अद्भुत कर्म करने वाले इन्द्र, विद्वान् बुद्धिमान् तेरा मन और दृष्टि उत्तम बनायें ।
२६ हे शतक्रतु इन्द्र, हम अभिमानियों की पराजय के लिए सब वाणियों से तेरे नाम लें ।
हम बहुत स्तुत, मनुष्य-पोषक इन्द्र (सेनापति) की सैकड़ों नामों से प्रशंसा करते ।
मैं दुष्टों के नाश के लिए, युद्धों में बल पाने के लिए, बहुत प्रशंसित इन्द्र का वर्णन करते हैं ।
हे शतक्रतु इन्द्र ! दुष्टों की हत्या के लिए हम तुझ से याचना करते हैं कि तू युद्धों में बलवान् हो ।
५१३०. हे इन्द्र ! तू सेना, स्थल, यज्ञ-धन में और अभिमानी दुष्टों पर गतिशील विजयी हो ।

सूक्त २०। इन्द्र

२१३१ शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम्। इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ १
३२ इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु। इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ २
३३ अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम्। उत ते शुष्मं तिरामसि ॥ ३
३४ अर्वावतो न आगह्यथो शक्र परावतः। उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आगहि ॥४
३५ इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभीषदप चुच्यवत्। स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ५
३६ इन्द्रश्च मृलयाति नो न नः पश्चादघं नशत्। भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ६
३७ इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयङ्करत्। जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ ७

हे शतक्रतो इन्द्र सम्राट्! तू हमारी रक्षार्थ बली-धनी-जागरूक ऐश्वर्य की रक्षा कर। १
३२ ,, पाँचों जन (राज्य-सेना-कोश-दूत-अधिकारी, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-निषाद) में जो तेरी शक्तियाँ हैं उन्हें मैं उत्तम गुणों से युक्त करता हूं, २
३३ हे इन्द्र! हमें बड़ा अन्न-यश-धन-बल मिले हैं, उन्हें स्थिर कर, और हम तेरा बल बढ़ायें। ३
हे शक्तिशाली इन्द्र! पास या दूर और अज्ञात स्थान जहाँ निवास हो वहाँ से यहाँ आया कर। ४
३५ अरे! इन्द्र सब तरफ है, महा भय को दूर करता है, वही दृढ़, और विशेष दर्शक है। ५
३६ इन्द्र हमें सुखी करता है, फिर हमें पाप नहीं लगता, हमारे सामने कल्याण ही होता है। ६
३७ सम्राट्-सेनापति हमें सब दिशाओं से अभय करता है। वह शत्रु-विजेता विशेष दर्शक है। ७

सूक्त २१। इन्द्र

३८ न्यू षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥ १
३९ दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस तमिदं गृणीमसि ॥ २
४० शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु।
अतः सङ्गृभ्याभिभूत आभर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥ ३
४१ एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४
४२ समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥ ५
४३ ते त्वा मदा अमदन् तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते।
यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥ ६
२१४४ युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥ ७

५१४५ त्वङ्करञ्जमुत पर्णयं वधीस् तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ।। ८
४६ त्वमेतां जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ।। ९
४७ त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस् तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ।। १०
५१४८ य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस् ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।। ११

३८ हम सूर्य के घर (पृथिवी) पर, विविध निवास वाले (धनी) के घर में महान ऐश्वर्य-शाली इन्द्र (बिजली) के लिए उत्तम वाणी भेंट करते हैं। निश्चय ही वह सोतों को नींद के समान, रत्न देती है, धन-दाताओं की निन्दा उचित नहीं। १ [ऋ १-२३ में भी]

३९ हे बिजली! तू अश्वशक्ति-गति-अन्न-दात्री, धन-स्वामिनी है, शिक्षा में नेत्री, प्रकाश-दात्री, कामना कम न करने वाली, मित्रों की मित्र है, हम यह तेरी अर्चना करते हैं। २

४० हे सुकर्मा, अनेक कार्य कारी, सर्वाधिक प्रकाशित इन्द्र, सर्वत्र दृष्टि-गोचर धन तेरा ही है मुझे ऐश्वर्य दे, मुझ प्रशंसक की कामना नष्ट न कर। ३

४१ इन प्रकाश-गतियों, हर्षद पदार्थों से हृष्ट होकर मैं अज्ञान दूर करूँ। बिजली से दुष्ट-नाश करते हुए हम द्वेषियों का नाश कर अन्न द्वारा प्रयत्न-शील हों। ४

४२ हे इन्द्र! हम धन-अन्न-बल-यान-प्रकाश-आह्लादायक (सोना-चाँदी) पदार्थ से और विजयी-वीर-गौ-अश्व-युक्त सेना से सम्पन्न होकर कार्य करें। ५

४३ अरी नच्ची रक्षक! क्योंकि तू ज्ञानी-शिष्यों के लिए दसों हजार (असंख्य) दुष्टों को नष्ट करती है अतः वे वीर दुष्ट-विनाशार्थ शस्त्र बरसाते हुए तुझे प्रयुक्त कर हृष्ट होते हैं। ६

४४ ओ बिजली के अस्त्र तू हिमवान से इक गोमा से अन्य तक पहुँचता है, ओज से किले से अन्य किले तक अच्छी मार करता, सखा-समान रात में भी दूर तक न छोड़ने-योग्य कपटों को मारता है। ७

४५ तू हिंसक-डाकू को अतिथि-सेवक प्रजा की रक्षार्थ तेजस्वी शक्ति से मारता है, कुटिल-गति वाले, सेना से धकेले अरि के सैकड़ों किले तोड़ देता है। ८

४६ [illegible] प्राये बीसों जनराज्यों के ६००९९ (असंख्य) सैनिकों को न पकड़े जाने वाले रथ में लगाये चक्र (मशीन गन) से नष्ट कर देता है। ९

४७ हे इन्द्र! तू अपनी पालक रक्षाओं से हिंसक यान वाले यशस्वी को बचाता है। तू इस बड़े युवा राजा के लिए वज्रधारी, अतिथि-सेवक [सेनापति] को पर्याप्त-धन-युक्त करता है। १०

५१४८ हे इन्द्र! जो उच्च स्तुति में देव-रक्षित सखा हैं, वे अत्यन्त कल्याण-कारी रहें। हम बड़ी आयु को धारण करते हुए तेरे साथ उत्तम वीर होकर गुण-गान करते रहें। ११ [पर्याय १ पूर्ण]

५१४९ अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ १
५० मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् । मा कीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥ २
५१ इह त्वा गोपरीणसा महे मदन्तु राधसे । सरो गौरो यथा पिब ॥ ३
५२ अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४
५३ आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि सं नवामहे ॥ ५
५४ इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥ ६

५१४९ हे वीर ! इस उत्पन्न संसार में मैं पीने के लिए सोम को बनाता हूं, तू तृप्त हो, आनन्द पा । १
५० मूढ़-चापलूस-उपहास-कर्ता तुझे न ठगने पायें, तू वेद-द्वेषी का सङ्ग न कर । २
५१ यहाँ तुझे वाणी-युक्त उपदेशक बड़े धन (मुक्ति) के लिए हृष्ट करें, तालाब-जल को मृगवत् उसे पा । ३
५२ तू यथार्थ ज्ञान के लिए वाणी से इन्द्र की उपासना कर जो सत्य का प्रेरक सज्जन पति है । ४
५३ (हे ईश्वर !) हृदय में तेरी क्लेश-हारी किरणें प्रकट हैं जहाँ हम सम्यक् नमन करते हैं । ५
५४ वज्री इन्द्र के लिए वेद-वाणियाँ जो भक्ति-दूध दुहती हैं वह हृदय-रत्न-गुफा में मिलता है । ६

सूक्त २३ । इन्द्र [ऋ. ३ ४१]

५१५५ आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥ १
५६ सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् । अयुज्रन् प्रातरद्रयः ॥ २
५७ इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद । वीहि शूर पुरोडाशम् ॥ ३
५८ रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ४
५९ मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ ५
६० स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥ ६
६१ वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७
६२ मारे अस्मद्वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि । इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥ ८
५१६३ अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू बर्हिरासदे ॥ ९

५५ हे तेजस्वी इन्द्र! हमारा सोम (दुग्ध) पीने के लिए बुलाया गया तू रूप-नाम द्वारा मेरी ओर आ । १
५६ होता ऋत्विज के समान सत्ताधारी निरन्तर बिछे सिंहासन से प्रातः ही दृढ़ व्यक्ति नियत कर । २
५७ हे शूर ! ये ज्ञान-वाहक वेद-व्याख्यान किये जा रहे हैं, आसन पर बैठ, देय कर स्वीकार कर । ३
५८ वाणी से आदरणीय, दुष्ट-हन्ता इन्द्र ! तू हमारे यज्ञ-सामगान-स्तुतियों में आया कर । ४
५९ ज्ञानी ऐश्वर्य-रक्षक, बड़े बल के पति इन्द्र से स्नेह रखते हैं जैसे माताएँ बच्चे से । ५
६० यह तू शरीर से महा-सिद्धि के लिए अन्न से हृष्ट हो, (मुझ) स्तोता की निन्दा न किया कर । ६
६१ हे इन्द्र! हम भक्त तुझे चाहते हुए तेरी अर्चा करते हैं, और वसु! तू हमें चाहने वाला हो । ७
६२ हे जन-प्रिय, अन्न-रक्षक इन्द्र ! हम से दूर न हो, न छोड़, आगे बढ़, यहाँ हृष्ट हो । ८
५१६३ ओ इन्द्र! तुझे सुखद रथ में जलवत् बहते केशी (भाप-पेट्रोल) ले जायें ; आसन पर बैठ । ९

सूक्त २४ । इन्द्र (सम्राट् और विद्वान्)

५१६४ उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् । हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥ १
६५ तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिःष्ठां ग्रावभिः सुतम् । कुविन्न्वस्य तृष्णवः ॥ २
६६ इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ॥ ३
६७ इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ॥ ४
६८ इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दधिष्व शतक्रतो । जठरे वाजिनीवसो ॥ ५
६९ विद्मा हि त्वा धनञ्जयं वाजेषु दधृषङ्कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ६
७० इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरञ्च नः पिब । आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ ७
७१ तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये सोमं चोदामि पीतये । एष रारन्तु ते हृदि ॥ ८
७२ त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ॥ ९

५१६४ हे इन्द्र ! तू दो अश्वों से वेदोक्त विधि-निष्पन्न उस सोम तक आ जो तेरा हितकर है । १
६५ ,, मेघोत्पन्न जल-वत् आनन्द-दायक, विद्वानों से निष्पादित सोम पा जिसे हम चाहते हैं । २
६६ इस प्रकार मेरी प्रेरित वाणियाँ सुरक्षित राष्ट्र में ऐश्वर्य-रक्षार्थ इन्द्र की ओर जायें । ३
६७ हम इन्द्र को सोम की रक्षा-प्रयोगार्थ साम-गानों द्वारा यहाँ बुलायें; वह बार-बार आये । ४
६८ हे बली सेना के बसाने वाले, कर्म-ज्ञान-कुशल सेनापति! ये सोम तय्यार हैं उन्हें वश में कर । ५
६९ ओ कवि ! हम तुझे धन-जयी और युद्ध-प्रचण्ड मानते और सुख की प्रार्थना करते हैं । ६
७० हे इन्द्र ! तू रहो आदर बल वालों से उत्पादित हमारे दूध-अन्न के भोजन पान कर । ७
७१ ,, मैं तेरे ही आश्रम में शिष्य को ब्रह्मचर्य-पालनार्थ प्रेरित करता हूं, वह तेरे हृदय में आदर पाये । ८
७२ ,, पदार्थ-प्रकाशक रक्षेच्छुक हम सोम-पान और शिष्य-पालन के अनुभवी तुझे बुलाते हैं । ९

सूक्त २५ । इन्द्र

७३ अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस् तवोतिभिः ।
तमित्पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥ १
७४ आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियञ्जोषयन्ते वरा इव ॥ २
७५ अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते । ३
७६ आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तङ्गोमन्तमा पशुं नरः ॥ ४
७७ यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस् तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥ ५
५१७८ बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्यस् तस्येदिन्द्रो अभि पित्वेषु रण्यति ॥ ६

५१७६ प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ।। ७

७३ हे इन्द्र ! मनुष्य तेरी रक्षाओं में सुरक्षित होकर अश्व-शक्ति-युक्त रथ में गो (इन्द्रिय-वाणी) तक शीघ्र पहुँचता है तू उसको ही बहुत ऐश्वर्य से वैसे ही भरता है जैसे जल बिन्दु को । १

७४ जल-समान पवित्र देवियाँ अग्निहोत्री के पास जातीं और रजः (लोक-समूह) समान विस्तृत ज्ञान पाती हैं । वरों के समान विद्वान् आगे बढ़ने के उपायों द्वारा देव-ब्रह्म-प्रिय को पाते हैं । २

७५ जो पति-पत्नी-जोड़ा घी का चम्मच पकड़ कर सेवा करते हैं उन दोनों में तू वेद-मन्त्र रखता है । तेरे नियम में न लगा नष्ट होता है; सोम-याजी यज्ञ-कर्ता को कल्याणी शक्ति पुष्टकरती है । ३

७६ शान्ति-युक्त जो वैज्ञानिक उत्तम कर्म से अग्नि दीप्त कर बड़ी आयु-अन्न (ब्रह्म) पाते हैं वे नेता बन कर प्रशंसनीय उद्यम से सब भोजन, और घोड़ा-गौ-युक्त पशु-धन को पाते हैं ४ ।

७७ कूटस्थ ब्रह्म पहले यज्ञों (परमाणु-सङ्गठनों) से पथ [आकाश] का विस्तार करता है तब कान्तिमान नियम-पालक सूर्य उत्पन्न होता है; साथ ही हितैषी कवि परमात्मा वेद-काव्य प्रकट करता है। उस नियामक के प्रसिद्ध अमृत (मोक्ष) को हम पायें । ५

७८ जब उस स्वयंभू के लिए कुशा काटना वर्जित कर दिया जाता है जिसके यश की घोषणा सूर्य द्यौ में कर रहा है, तब जहाँ क्रिया-शील प्रशंसनीय यूरेनियम धातु बोलता है उसी के प्राप्त होने योग्य व्यवहारों में इन्द्र (बिजली) प्रयुक्त होती है । ६

७९ हे अश्व-शक्ति-युक्त इन्द्र ! मैं सतो तेरे लिए, गमनार्थ, उग्र सत्यी रक्षा को प्रेरित करता हूं, अपनी शक्ति स्तुत्य तू सब कर्मों-ध्वनियों से यहाँ हर्षकर । ७ [आगे २०.३३.२ में भी]

[अनुवाक ३ में पर्याय २ समाप्त हुआ । अब पर्याय ३ (सूक्त २६-३३) आरम्भ हुआ—]

सूक्त २६ । इन्द्र

८० योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ।। १

८१ आ घा गमत् यदि श्रवत्‌ सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ।। २

८२ अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ।। ३

८३ युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ।। ४

८४ युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ।। ५

८५ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ।। ६

अधिक बली इन्द्र (बिजली) को बुलाते हैं ।१

५१८० हे मित्रो ! हम रक्षार्थ प्रत्येक अवसर और युद्ध में अधिक बली इन्द्र (बिजली) को बुलाते हैं ।१

८१ यदि वह मिल जाये तो हजारों रक्षाओं और अन्नों के साथ हमारी पुकार सुनले । २

८२ मैं (ईश्वर) श्रेष्ठ स्थान से उत्पन्न; शक्ति-प्रतिनिधि; नेता (बिजली) को पहला स्थान देता हूं जिसे पहले तेरे लिए तेरा रक्षक प्राप्त करे । ३

८३ मनुष्य महान्, रोष-रहित, सर्वत्र गतिशील बिजली प्रयुक्त करता, द्यौ में चमकीले तारे चमकते हैं ।४

८४ इस बिजली के रथ में दो कमनीय-हरणशील; विपरीत पक्ष (ऋण-धन वाली, भूरे-लाल रङ्ग की दृढ़ मनुष्य-वाहक धारक-धार्य शक्तियाँ काम में लायी जाती हैं । ५

५१८५ हे मनुष्यो ! अज्ञानी, के लिए ज्ञान, अरूप के लिए रूप करती हुई बिजली उषाओं के साथ प्रकट होती है ।६ [अन्तिम ३ मन्त्र ऋ० १-६, य २३-५-७ आगे २०-४७,६६ में भी हैं ।]

सूक्त २७। इन्द्र

५१८६ यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्। स्तोता मे गोषखा स्यात्॥ १
८७ शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे। यदहं गोपतिः स्याम्॥ २
८८ धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते। गामश्वं पिप्युषी दुहे॥ ३
८९ न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः। यद्दित्ससि स्तुतो मघम्॥ ४
९० यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद्भूमिं व्यवर्तयत्। चक्राण ओपशं दिवि॥ ५
९१ वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः। ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे॥ ६

५१८६ ओ इन्द्र! जैसे तू अकेला धन का स्वामी है वैसे ही यदि मैं हो जाउँ तो (पृथिवी-वाणी) का सखा मेरा स्तोता हो जाये। १[ऋ. ८-१४-१, साम १२२, १८ ३४]
८७ हे शचीपति यदि मैं गौ-पति हो जाउँ तो इस मनीषी स्तोता को शिक्षित करूँ और दान करूँ। २
८८ हे इन्द्र! तेरी प्रिय-सत्य वाणी सोमयाजी यज्ञकर्ता के लिए वृद्धिकारी हो, गौ-अश्व दे। ३
८९ ,, तेरे ऐश्वर्य का रोकने वाला न देव है न मनुष्य, जब कि स्तुत तू धन देना चाहता है। ४
९० यज्ञ इन्द्र को बढ़ाता है जब कि व्यवहार में पूरा उद्योग कर वह भूमि का विशेष स्थिति देता है। ५
९१ हे इन्द्र दृढ़ और सब धन-विजयकर्ता तेरी रक्षा-करना हम स्वीकार करते हैं। ६

सूक्त २८। इन्द्र

९२ व्यन्तरिक्षमतिरत् मदे सोमस्य रोचना। इन्द्रो यदभिनद् वलम्॥ १
९३ उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः। अर्वाञ्चं नुनुदे वलम्॥ २
९४ इन्द्रेण रोचना दिवो दृळ्हानि दृंहितानि च। स्थिराणि न पराणुदे॥ ३
९५ अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते। वि ते मदा अराजिषुः॥ ४

९२ सूर्य सोम के मद में अन्तरिक्ष और नक्षत्र-मण्डल विशेष फैलाता और अन्धकार हटाता है। १
९३ वह आकाश गुप्त पृथिवियों के अङ्गारे-समान परमाणु समूह से प्रकट कर अँधेरा हटाता है। २
९४ उसने द्यौ की दृढ़ दीप्तियाँ सुदृढ़ और स्थित कीं, जो हटायी नहीं जा सकतीं। ३
९५ हे इन्द्र! हर्ष करता जल-तरङ्ग-समान तेरी प्रशंसा सदा की जाती है। तेरे आनन्द विराजते हैं। ४

सूक्त २९। इन्द्र

९६ त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः। स्तोतॄणामुत भद्रकृत्॥ १
९७ इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः। उप यज्ञं सुराधसम्॥ २
९८ अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः। विश्वा यदजय स्पृधः॥ ३
९९ मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः। अव दस्यूँरधूनुथाः॥ ४
५२००. असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः। सोमपा उत्तरो भवन्॥ ५

९६ हे ईश्वर! तू स्तोम-साम बढ़ाने वाला और भक्त-कल्याण-कर्ता है। १
९७ सुन्दर रश्मि वाली गतियाँ (धारण-आकर्षण गुण) बड़े समृद्ध (सूर्य) को सोम तत्त्व धारणार्थ व्यवहार के लिए उपयोगी बनाती हैं। २
५१९८ हे इन्द्र! तू जल-वर्षा से अवर्षण-दुष्काल का सिर काट देता है (उसको दूर करता है) तथा सभी बाधाओं को जीत लेता है। ३ [ऋ० ८-१४-१३, साम० २११, यजु० १९,७१]

५१६६ हे सूर्य ! ऊपर बढ़ता और आकाश में चढ़ता दिखायी देता तू अपनी शक्तियों से अन्धकार रोग-जन्तु-विनाशक तत्त्वों को हटा देता है । ४

५२०० हे सूर्य ! तू सोम तत्त्व पाकर अधिक शक्तिशाली होता हुआ अशुभ गाथाओं की भीड़को तितर बितर कर देता है । ५ (ऋ० ८. १४. १३-१५,)

सूक्त ३० । इन्द्र । [ऋ १०-६६]

५२०१. प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम् ।
घृतं न यो हरिभिश् चारु सेचत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसङ्गिरः ॥ १

२ हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन् हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥ २

३ सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायकः इन्द्रे निरूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥ ३

४ दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद् वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिम्भरः ॥ ४

५ त्वं त्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्यमसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥ ५

१ हे सूर्य ! तेरी दो धारण-आकर्षण शक्तियों की इस महान् संसार में प्रशंसा करता हूं । मेघ-विनाशक तेरा रमणीय सुख मांगता हूं । किरणों से गाह्य, घी-समान जल-सेचक तुझे मेरी वाणियाँ पहुँचें । १

२ जो कारण रूप सूर्य की प्रशंसा करते हैं वे उसके दिव्य आश्रय के समान दोनों गुणों को है। जिसे गो-समान ऋत्विज हरे सोमों से पूर्ण करते हैं उस सूर्य के किरण-युक्त तत्त्व को प्रशंसा करो । २

३ वह इसका वज्र (बिजली) प्रकाशित चुम्बक-युक्त कमनीय है वह उसकी दो प्रकार की किरणें हैं, द्योतनशील-सुबली, सुकिरण और इन्द्र धनुष हैं उस में सब भासमान ७ रूप मिले हुए हैं । ३

४ द्यौ लोक में कमनीय सूर्य झण्डे के समान है; उसकी शक्ति किरण-समान फैलने वाली है, उसका जो चुम्बक तत्त्व है वह मेघ-नाशक है, बली रश्मियों का स्वामी सहस्र दीप्ति वाला है । ४

५ हे हरणशील किरणवाले मनोहारी प्रकाश-शक्तियुक्त सूर्य ! तू पूर्ण याज्ञिकों से प्रशंसित है । सब प्रशंसनीय, न समाप्त होने वाला धन तेरा ही है । ५

सूक्त ३१ हरि (इन्द्र)

६ ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥ १

७ अरङ्कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन् हरयो हरी तुरा ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे ॥ २

८ हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस् तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥ ३

५२०९ स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः ।

प्र यत्कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ।। ४
१० उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्योरत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद्वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ।। ५

५२०६ वे कमनीय धारणाकर्षण गुण हर्षप्रद-शक्तिशाली-प्रशंसनीय सूर्य को इस रमणीय संसार में धारण करते हैं। इसे भासमान उत्पन्न सोम-तत्त्व और लोक भी धारण करते हैं। १
७ हरणशील किरणें कार्य-पूर्त्यर्थं पर्याप्त शक्ति धारण करती हैं। वे सूर्य-स्थिरता के लिए धारण आकर्षण गुण को प्रेरित करती हैं। जो गतिशील किरणों से सेवनीय स्वरूप प्राप्त करता है वह सूर्य अपने कमनीय सोम-तत्त्व को पाता है। २
८ हरणशील-भासमान किरणों वाला, चुम्बक-युक्त सूर्य पेय जल पीकर किरणों से बल बढ़ाता है। जो गतिशील किरणों से अन्न वाली भूमि का स्वामी है वह रस के लेने-देने से सब दुरित हटाता है। ३
९ जिसकी २ स्रुवों-समान २ शक्तियाँ, और २ दाढ़-समान आकाश-भूमि अन्तार्थ गति करते हैं वह सूर्य अपने इस संसार में सुखद-प्राण-धारक सोम पीकर दोनों गुण पूर्ण करता है। ४
१० और जिस कमनीय सूर्य का स्थान द्यौ-पृथिवी से संबद्ध है, हरण-शक्ति वाला वह, घोड़े के समान, मेघ के साथ संग्राम करता है, जिसके ओज से भूमि प्रशंसनीय होती है वह सूर्य यज्ञ-कर्ता के लिए बड़ा अन्न-जीवन देता है। ५

सूक्त ३२ (हरि) इन्द्र।

११ आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम् ।
प्र पस्त्यमसुर हर्यतङ्गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ।। १
१२ आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन् यज्ञं सधमादे दशोणिम् ।। २
१३ अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनङ्केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषं जठर आ वृषस्व ।। ३

सूक्त ३२। हरि (इन्द्र)

११ अपनी महिमा से द्यौ-भूमि प्रकाशित करता सूर्य नये-प्यार-प्रशंसा-वाचन-योग्य बनता है। हे प्राण-दाता परमात्मन् ! हरण-शील सूर्य के लिए वाणी कमनीय पद (आकाश) प्रकट करता है। १
१२ हे सूर्य ! प्रकाशमान तथा हरणशील बल वाले तुझे प्रकाशचक्र में प्रयुक्त किरणें मनुष्य तक पहुँचाती हैं जिससे यज्ञ को प्राप्त होता हुआ तू दसों उङ्गलियों से निचोड़ा सोम आकाश में पीता है। २
१३ हे रस लेने-देने वाले सूर्य ! तू यज्ञ के प्रातः सवन में सोम लेता; मध्य सवन तो तेरा ही है।

सूक्त ३३। इन्द्र

५२१ अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
मिमिक्षुयमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ।। १
५२१५ [पूर्वागत क्रमाङ्क ५१७८, २०-२५-७] २

५२१६ ऊती शचीवस् तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः ।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ॥ ३

५२१४ [ये ३ मन्त्र ऋ:१०.१०४.२-४ में भी हैं।] हे धारण-आकर्षण शक्ति-युक्त सूर्य ! तू यहाँ यज्ञ में मनुष्य-प्रस्तुत जल में निहित सोम ले, उत्पन्न जगत् तृप्त कर; हे प्रशंसनीय ! जो जल मेघों ने तेरे लिए सींचा है उससे शक्ति बढ़ा। १

१५ [पहले आये क्रमांक ५१७६ , २०-२५-७ के तुल्य है, इन्द्र का अर्थ बिजली भी है।]२

१६ हे शक्तिशाली इन्द्र ! तेरी रक्षा-पराक्रम से प्रजा-युक्त जीवन-धारी, यज्ञ-वेत्ता, मेधावी जन याज्ञिक के घर में तेरी प्रशंसा करते हुए हृष्ट होकर रहते हैं। ३

अनुवाक ४

विषय— यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवानित्यादि पदार्थ विद्या, यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्र इत्यादि सोमेन्द्र विद्या पदार्थविद्या —महर्षि स्वामीदयानन्द सरस्वती

सूक्त ३४ । इन्द्र

५२१७. यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥ १

१८ यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहत् यः पर्वतान् प्रकुपितां अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥ २

१९ यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥ ३

२० येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँल्लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥ ४

२१ यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
यो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥ ५

२२ यो रध्रस्य चोदिता यो कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥ ६

२३ यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥ ७

२४ यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद् रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥ ८

२५ यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥ ९

५२२६ यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ् छर्वा जघान ।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥ १०
२७ यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तञ् चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिम् जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥ ११
२८ यः शम्बरं पर्यतरत् कसीभिर्यो ऽचारुकास्नापिबत् सुतस्य ।
अन्तर्गिरौ यजमानं बहुञ् जनं यस्मिन्नामूर्छत् स जनास इन्द्रः ॥ १२
२९ यः सप्तरश्मिर्वृषभस् तुविष्मानवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥ १३
३० द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥ १४
३१ यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥ १५
३२ जातो व्यख्यत् पित्रोरुपस्थे भुवो न वेद जनितुः परस्य ।
स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद् व्रता देवानां स जनास इन्द्रः ॥ १६
३३ यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा ।
यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः ॥ १७
३४ यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ १८

[यह १८ मन्त्रों का स जनासः० सूक्त, १२-१६-१७ को छोड़ कर, ऋ० २-१२ में भी है।]

५२१७ प्रकाशमान उत्पन्न हुआ ही प्रथम मनन-योग्य जो देवों को कर्म से सुभूषित करता है, जिस के बल से पृथिवी-आकाश अलग हुए; हे मनुष्यो! अपने बल-ऐश्वर्य द्वारा वह सूर्य इन्द्र है । १

[हे मनुष्यो! वह इन्द्र है यह अंश लगभग सबके अन्त में होने से आगे न लिखा जायेगा।]

१८ जिसने व्यथित पृथिवी को दृढ़ किया; कुपित पर्वत शान्त किये, विस्तृत अन्तरिक्ष नापा और द्यौ को धारण किया वह ... । २

१९ जिसने मेघ को गति देकर ७ प्रकार की बहती नदियाँ काट बहायीं, मेघों का रुका जल नीचे गिराया, २ बादलों के बीच बिजली उत्पन्न की, संघर्षों में अन्धकार हटाया वह ... । ३

जिसने ये सब भुवन गतिशील-विनाशी किये, न बरसने वाले बादल नीचे भू-गुहा में लीन किये,
२० धनेच्छुक व्याधा-समान लाखों पर विजय पाकर पुष्ट लोकोंका स्वामी उन्हें नष्टभी करताहै वह...। ४

२१ जिसके विषयमें पूछते हैं कि वह कहाँ है? वह भयानक है,वह नहीं है। जो कहते हैं कि स्वामीवत् पुष्ट लोकों को भी नष्ट कर देता है उस पर श्रद्धा रक्खो, वह परमेश्वर इन्द्र है । ५

२२ जो आराधक-धीर-निर्बल-वेदज्ञ-याचक-स्तोता का प्रेरक; तेजस्वी, योगी-उपदेशक और सोम का रक्षक है, वह इन्द्र है । ६

५२२१ जिसके निर्देश में सब गौ-अश्व-ग्राम-रथ, मन-इन्द्रियाँ-शरीर-अंग-प्रत्यङ्ग रहते हैं, जिसने सूर्य-उषा उत्पन्न किये, जो आप: (जल-प्राण-आप्तों) का नेता है, हे सज्जनो! वह (परमेश्वर) इन्द्र है। ७

२४ जिसको क्रन्दन करने वाले (भू-द्यो लोक, स्त्री-पुरुष) संयत होकर अनेक प्रकार से पुकारते हैं, दूर-पास के दोनों प्रकार के अमित्र जिससे मित्रता के लिए विह्वल रहते हैं; एक-जैसे रथ में बैठे नाना योद्धा जिसे बुलाते हैं; वह सेनापति इन्द्र है। ८

२५ जिसके विना जन विजयी नहीं होते, युद्ध करते हुए जिसे रक्षा के लिए लेते हैं, जो विश्व की निर्मात्री हुई, जो न गिरने वाले (दुर्गों) को गिराने वाली है वह (बिजली) ...। ९

२६ जो न्याय से महापापी नास्तिकों का नाश करता, बलात्कारी की हिंसक क्रिया का अनुमोदन नहीं करता, दुष्ट का हनन-कर्ता है, वह (सम्राट) ०। १०

२७ जो पर्वतों में स्थित जलमय हिम-राशि (ग्लेशियर), मेघों में जमे-रुके जल (अनावृष्टि), मासों में रहने वाले चन्द्र को ४० वें शरद् (वर्ष) में अनुकूल कराता, फिर अपने स्थान पर लाता है। [४० वर्ष के बाद ग्लेशियर पिघलता, सुवर्षा अवश्य होती, चन्द्र अपने स्थान पर आता है; शिष्य पर्वतों में ४० वर्ष रह, विद्या पढ़ कर विप्र आदित्य ब्रह्मचारी बनता है।] जो उमड़े-सोये पड़े जलद मेघ को मार गिराता, हे जनो! वह सूर्य इन्द्र है। ११

२८ जो उस शम्बर (ग्लेशियर-मेघ-चन्द्र-ब्रह्मचारी) को अचल शासन वाली किरणों से तार देता और सोम पीता-पिलाता, जो पर्वत पर अनेक याज्ञिकों को मूर्छित सा कर देता है, वह सूर्य०। १२

२९ जो ७ रश्मि वाला, जल-वर्षक, बली, बहने के लिए ७ प्रकार की नदियाँ नीचे गिराता है, जो द्यौ में बढ़े, बिजली-वज्र-धारी मेघ को कँपा कर भूमि पर फेंकता वह सूर्य०। १३

[७ किरण (बिल्यौर) चित्र कपिश-आसमानी-नीली-हरी-पीली-नारंगी-लाल हैं।]

३० इसके लिए द्यौ-पृथिवी भी झुकते हैं; इस की गरमी से ही पहाड़-मेघ डरते हैं, जो सोम-तत्त्व पीता, चयन किया गया, वज्र-समान बाहु वाला हाथ में शस्त्र लिए (राजा) है वह०। १४

३१ जो रक्षा द्वारा अन्न-उत्पादक-पाचक-उपदेष्टा-श्रोता को बचाता है, ब्रह्म-सोम जिसको बढ़ाते, जिसका यह धन है; हे जनो! वह [धनी वैश्य] इन्द्र है। १५

३२ माता-पिता की गोद में उत्पन्न वह बच्चा भी जिसे बता देता है जो किसी दूसरे को भूमि का जनक नहीं जानता, हम से स्तुत जो देवों के व्रत जानता है वह (वायु) इन्द्र है। १६

३३ जो सोम की कामना वाला, अश्वों का स्वामी, पोषक है, जिससे सब भुवन डरते हैं, जो हिम-गरमी को दूर करता, अकेला ही वीर है, हे जनो! वह [शूर-शिरोमणि] इन्द्र है। १७

३४ जो अन्नोत्पादक-पाचक के लिए धारण करता, अन्न देता, वह [किसान] सच्चा इन्द्र है। हे विश्व-व्यापी इन्द्र! हम तेरे प्रिय-वीर बने रहें और वेद-ज्ञान का प्रचार करते रहें। १८

सूक्त ३५। इन्द्र। ऋ० १-६१

५२३५ अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा॥ १

३६ अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त॥ २

५२३७. अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥ ३

३८ अस्मा इदु स्तोमं संहिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥ ४

३९ अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुराङ्गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥ ५

४० अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद्वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं रणाय ।
वृत्रस्य चिद्विदद्येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥ ६

४१ अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ ७

४२ अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥ ८

४३ अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वरालिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥ ९

४४ अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥ १०

४५ अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद्वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाध तुर्वणिः कः ॥ ११

४६ अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२

४७ अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ १३

४८ अस्येदु भिया गिरयश्च दृढा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः ॥ १४

४९ अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५

५२५० एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १६

५२३५ इसी बली-शीघ्रकारी-महिमायुक्त-स्तुतियोग्य-अबाधगति इन्द्र के लिए ही मैं प्रशंसा युक्त वचन और विज्ञान-वार्ताएँ प्रयुक्त करता हूं। १

३६ उसी के लिए मैं तृप्ति-कारक अन्न के समान, बाधा दूर करने के लिए उत्तमता से लेजाने वाले, प्रशंसनीय निर्दोष यान और घोष-युक्त साम-गान भेंट करता हूं। तुम उस श्रेष्ठ रक्षक-पति के लिए हृदय से ज्ञान द्वारा अपनी बुद्धियों और कर्मों को शुद्ध करो। २

३७ उसी के लिए मैं उस उपमा-योग्य, सुखद साम-गान अपने मुख से प्रयुक्त करूँ जो स्तोताओं की निर्दोष वचनों और सुन्दर निर्दोष प्रयोगों से सब की वृद्धि के लिए हो। ३

३८ उसी वाणी-वाहक के लिए मैं निर्दोष, सर्व-सुखद प्रशंसा-वचन प्रेरित करता हूं जैसे शिल्पी रथ को बनाता है। विद्युद्-यान बनाने के लिए भी शत्रु-नाशक वचन कहता हूं। ४

३९ इस संसार के लिए ही, वेगवान् अश्ववत् उस वाणी से स्तुत्य-वीर-ऐश्वर्य के स्थान-यशस्वी दुर्ग-भञ्जक की प्रशंसा के लिए अन्न-ऐश्वर्य-कामना से सब के सामने वन्दना करता हूं। ५

४० उसीसे शिल्पी युद्ध के लिए अधिक शक्तिशाली, अति ताप-जनक वज्र बनाता है जिस से शत्रु-नाश करता हुआ कितने ही अस्त्र-धारक सेनापति अरि-मर्मों तक पहुँच जाता है। ६

४१ उसी निर्माता के ऐश्वर्यों में व्यापक-अधिकार-सम्पन्न मैं पालक राज्य और उत्तम अन्न पाऊँ। वह बली सेनापति उसको गुप्त रूप से पाता हुआ उत्तम आहार-समान अभेद्य अरि को भी बींध देता है जैसे सूर्य मेघ को और अस्त्र-धारी जंगली सुअर को। ७

४२ इसी इन्द्र के लिए वेग से जाने वाली विजयी जनों की सेनाएं शत्रु-हनन में युद्ध-प्रेरणाओं का आश्रय लेती हैं। वह विशाल द्यौ-पृथिवियों को वश में रखता है; वे उसकी महिमा नहीं पाते। ८

४३ इसी का सामर्थ्य द्यौ-पृथिवी-अन्तरिक्ष से अधिक बढ़ा हुआ है। स्वयं दीप्त सूर्य विश्व को वश में करने वाला, रोगों का उत्तम अरि, अपरिमित बली होकर घर में रोगों से रक्षा के लिए आता है। ९

४४ इसी के बल से सूर्य बली मेघ को किरणों से काट देता है, जल से घिरी भूमियों को छुड़ाता है जैसे ग्वाला गौओं को, और सुख-दान में सचेत होकर अन्न आदि देता है। १०

४५ इसी के बल से सिन्धु रमणीय हैं, जिन्हें बिजली ने वज्र से भूमि के चारों ओर बनाया है। दानी को ईश बनाने वाली, दाता, शीघ्र गति के लिए शीघ्र शक्ति-प्रद बिजली कार्य को सुगम बना देती है। ११

जल-प्रवाह बहाने के लिए इसी मेघ पर नाना किरणों
४६ अनेक गुणों का धारक, शीघ्रकारी सूर्य जैसे वाणी के वर्ण अलग किये जाते हैं। १२
का प्रहार कर तिरछे प्रकाश-वेग से उसे काट देता है
जो प्रशंसनीय होकर युद्ध के लिए
४७ इसी शीघ्रकारी बिजली के श्रेष्ठ कामों का तू प्रवचन कर
शस्त्रास्त्र चलाती हुई बिना रुके अरियों का नाश करती है। १३
उस तेज वाले को
४८ इसी बिजली-सूर्य के भय से दृढ़ पर्वत-मेघ-द्यौ-भूमि-मनुष्य कांपते हैं। १४
पास में रखकर नायक भी संकेत देता हुआ शीघ्र पराक्रम करने के लिए समर्थ होता है।
वह बड़ी शक्ति वाला अकेला ही शासक है।
४९ इसी इन्द्र के लिए यह प्रशंसा की जाती है कि अश्वशक्ति देता और रक्षा करता है। १५
यह उत्तम व्यापक किरणों वाले सूर्य में स्पर्धा करने वाली
अश्वशक्ति-याजक, निर्दोष स्तुतियाँ किया करते हैं।
५२५० हे इन्द्र! तेरे स्तोता इसी तरह, और सदा शीघ्र गाव किया कर। १६
इनमें बुद्धि-धनी तू विश्व-निरूपक बुद्धि धारण करा

सूक्त ३६। इन्द्र। [ऋ० ६-२२]

२२५१. य एक इद्धव्यश् चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान्॥ १

५२ तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम्॥ २

५३ तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान् तमा भर हरिवो मादयध्यै॥ ३

२२५१ उस इन्द्र का मैं इन वाणियों से आदर करता हूं— अकेला ही मनुष्यों से ग्राह्य है, श्रेष्ठ-बली-सत्य-सर्वत्र-बहुरूप है; सब का पराभव करने वाला रक्षक है। १

५२ हमारे श्रेष्ठ रक्षक और नये शिष्य, सातों वेद-छन्दों के ज्ञाता विद्वान् उसी दोष-नाशक, मेघों में विद्यमान बली (बिजली) का वर्णन किया करते हैं। २

५३ हम उस इन्द्र से उस का ऐश्वर्य मांगते हैं जो बहुत वीरों से प्राप्य, उत्तम नेता वाला, बहुत सम्पदा-युक्त है, जो ईश्वरशक्ति-युक्त; बड़ी आयु वाला, निर्बल न होने वाला, प्रकाश-युक्त है। हे अच्छे जनों-सहित वर्तमान विद्वान! तू उसे सब प्रकार प्रयुक्त कर। ३

५४ तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र।
कस् ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः॥ ४

५५ तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ॥ ५

५६ अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन।
अच्युता चिद्वीलिता स्वोजो रुजो वि दृढा धृषता विरप्शिन्॥ ६

५७ तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि॥ ७

५८ आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा।
तपा वृषन् विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च॥ ८

५९ भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस् त्वेषसंदृक्।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः॥ ९

६०. आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि॥ १०

२२६१ स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक्॥ ११

५२५४ हे इन्द्र ! यदि तेरे ज्ञान-सुख को उपदेष्टा-अध्यापक पहले से पात रहे हैं तो उसे हमें भी दे। कठिनता से कार्य न हारने वाला, बहुतों से अपनाया गया, बहुत ऐश्वर्यों वाला तेरा कौनसा बल नाशक और कौन सा जीवन-दायक है ? ४

५५ उस शस्त्रास्त्र-युक्त, वाहन-युक्त बिजली को पूछते-बताते जिस (वैज्ञानिक) की वाणी बेरोक चलती, बुद्धिमती, शक्ति-शाली है वह बहुतों को वश में करने वाली, कार्य-साधक, वेग-युक्त बलदा, महान् बिजली और भूमि को अन्नादि के लिए अच्छे प्रकार पाता है। ५

५६ हे स्व-शक्ति-युक्त सुपराक्रमी; महागुणो ! तू स्वबल से मन-समान वेग वाले, पर्वत-समान दृढ़ शस्त्र से बढ़ते अरि और उसके अचल-दृढ़ नगरों का नाश कर देता है। ६

५७ हम उस बलिष्ठ (बिजली) का नवीनतम वाणी-कर्म से उपयोग करें जो बिना परिमाण की उत्तम चालक है वह सब सङ्कटों से हमें पार करती है। ७

५८ हे बलिष्ठ ! तू पृथिवी-आकाश-अन्तरिक्ष-जल प्रकाशित कर, विज्ञान-द्वेषी, द्रोही जन को सन्तप्त करके शोक-युक्त कर। ८

५९ हे अविनाशी-प्रकाशमान ! तू विजिगीषु-पार्थिव जगत् को प्रकाश दिखाने वाला है; दायें हाथ में शस्त्र धारण कर सब क्रियायें कर शत्रु की कपट भरी चालें नष्ट कर। ९

६० हे शस्त्र-धारी ! तू संयम-सहित कल्याण कर, अरि-नाशार्थ अविनश्वर सामान तय्यार कर जिससे दस्युओं को आर्य और मानव-धर्म को उत्तम वृद्धि-युक्त बनाया जा सके। १०

६१ हे बहु-प्रशंसित, सुप्रयोज्य, बैरी-नाशक देव ! सब से स्वीकरणीय, मिश्रण-अमिश्रण की उन गतियों से हमें मिल जिन्हें अविद्वान् नहीं जानता। तू मेरे सम्मुख शीघ्र प्रकट हो। ११

सूक्त ३७ । इन्द्र (ऋ० ७-१९)

५२६२ यस् तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश् च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥ १

६३ त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस् तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥ २

६४ त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥ ३

६५ त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युञ्चुमुरिं धुनिञ् चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥ ४

६६ तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत् पुरो नवतिञ्च सद्यः ।
निवेशने शततमाविवेषीरहञ् च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥ ५

६७ सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥ ६

५२६८ मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस् तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥ ७

५२६९. प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ८
७० सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्नस्मान् वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥ ९
७१ एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् ॥ १०
७२ नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस् तन्वा वावृधस्व ।
उप नो वाजान् मिमीह्युपस्तीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ११

५२६२ जो तीक्ष्ण सींग के बैल, तेज किरण के सूर्य, तेज लहर की बिजली के समान भयंकर एक ही सब जनों को विचलित कर देता है; वह तू सदा अदानी के धन का नियन्ता होकर दूसरे उत्तम-उत्तम के लिए धन दे देता है । १

६३ हे इन्द्र (सम्राट्) ! तू वह शस्त्र-बल पा, प्रजा की सेवा करता हुआ युद्ध में सेना-बल से इस पृथिवी के जनों के उपकारार्थ, इस शुद्ध के लिए शिक्षा देता हुआ नाशक-शोषक-अन्न-दूषक को दण्डित कर । २

६४ हे निर्भय ! तू अपने प्रभाव, सब रक्षा-साधनों से अन्नादि-रक्षक उत्तम दानी की रक्षा कर, तू दुष्ट-हत्यार्थ बहु-शस्त्र-धारी, दस्यु-त्रासक की क्षेत्रों के विभाजन में रक्षा कर । ३

६५ हे अश्व-शक्ति-सम्पन्न, नरों द्वारा नर-रक्षार्थ मन वाला तू देवों की रक्षा में बहुत से बाधक दुष्टों का नाश करता है, कँपाने वाले घातक चोर-डाकू को मारकर सुला दे । ४

६६ हे वज्रधारी ! तुझ में शत्रु-च्युत करने वाले वे बल हों कि ९९ (असंख्य) शत्रु-दुर्गों का नाश कर सके और सैनिक-बस्ती में सौवें नगर में घुसकर, न छोड़ने वाले को मारे । ५

६७ हे बहुत शक्ति-युक्त इन्द्र ! तेरे वे भोजन कर-दाता दानी के लिए सदा रहते हैं । तेरे वाहन में बली अश्व और बिजली जोड़ता हूं, वेद-वाणियाँ अन्न-बल से युक्त हों । ६

६८ हे बली-अश्वपति ! तेरी इस स्तुति में हम पापों के वश में न हों; तू अघातक कवचों और सेनाओं द्वारा हमें बचा, हम विद्वानों में तेरे प्रिय हों । ७

६९ हे धनी ! हम तेरे प्रिय सखा नर तेरी शरण में सिद्धि पर हृष्ट हों । तू अतिथि-सत्कार के लिए निकटस्थ प्रशंसनीय पुरुष को नियुक्त कर । ८

७० हे पूज्य ! वेद-व्याख्याता नर तेरी सिद्धि पर सदा शीघ्र ही वेदोपदेश किया करें । जो हम हवियों से तेरी स्तुतियाँ करते हैं उन्हें तू योग्य पदों के लिए स्वीकार कर । ९

७१ हे नरों में श्रेष्ठ नेता ! तेरे लिए हमारे ये प्रशंसा-वचन हमें धन दें । पापियों के विनाश में शूर तू नेताओं का रक्षक सखा हो । १०

७२ हे स्तुत शूर इन्द्र ! सबको उत्साहित करता हुआ तू ज्ञानी होकर अपने शरीर और रक्षा से हमें बढ़ा; हमें अन्न-बल दे; हे वीरो ! तुम सदा कल्याणों से हमारी रक्षा करो । ११

अनुवाक ५

विषय- इन्द्र- सोम-प्रार्थनादि पदार्थविद्या; इन्द्रेश्वरादि पदार्थविद्या; सूर्येश्वर-स्तुत्यादि पदार्थ-विद्या, इन्द्र-सूर्येश्वर-प्रार्थनादि पदार्थविद्या; इन्द्रेश्वर-धारणादि विद्या, त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः। विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असीत्यादि इन्द्रेश्वर-सख्यादि पदार्थविद्या।
—महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

सूक्त ३८। इन्द्र

५२७३-७५. आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्। एदं बर्हिः सदो मम॥ १

[यह ६ बार आया है, साम १९१, ६६६ में भी है, यह और अगले दो मन्त्र आ०, ब्र० पहले २०.३ में, आगे ४७ में, और ऋ० ८.१७.१-३ में भी ३-३ बार आये हैं।]

७३ हे बिजली! आ, हमने तेरे लिए यन्त्र तय्यार किया, इसे स्वीकार कर मेरे घर में स्थित हो। १
७४ " तुझे विज्ञान के साथ लगायी २ (ऋण-धन) शक्तियाँ तरंगित हुईं धार ५ करती हैं, हमें वेदमन्त्र (रैडियो से) सुना। २
७५ हे बिजली! हम तेरा उपयोग लेते हैं, उत्तम पुत्र वाले हम तुझे बुलाते हैं। ३

७६ इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः। इन्द्रं वाणीरनूषत॥ ४
७७ इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा। इन्द्रो वज्री हिरण्ययः॥ ५
७८ इन्द्रो दीर्घाय चक्षसे आ सूर्यं रोहयद्दिवि। वि गोभिरद्रिमैरयत्॥ ६

७६ गायक-विचारक साम-ऋग्वेदी मन्त्र-कर्म-सामगानों से इन्द्र के ही गुण वर्णन करते हैं। ४
७७ शक्तियुक्त-हितकारी इन्द्र ही दो हरियों [ऋण-धन] से मिल कर वाणी प्रकट करता है। ५
७८ इन्द्र [बिजली-चुम्बक] दूर तक देखने-दिखाने के लिए सूर्य को द्यौ लोक में चढ़ाता है जो मेघ को विशेष प्रेरणा देता है। ६

[ये तीन मन्त्र आगे भी ४७.४-६, ७०.७-९; ऋ १.७.१-३ में, सब ४-४ बार आये हैं।]

सूक्त ३९। इन्द्र

७९ इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः। अस्माकमस्तु केवलः॥ १

८०-८३ [के ४ मन्त्र व्यन्त०-उद्०-इन्द्रेण०-अपा० पहले २०.२८.१-४ में पृष्ठ ६१८ पर आये हैं।]

सूक्त ४०। इन्द्र

८४ इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा। मन्दू समानवर्चसा॥ १
८५ अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति। गणैरिन्द्रस्य काम्यैः॥ २ [आगे भी ७०.३-४]
८६ आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे। दधाना नाम यज्ञियम्॥ ३ [" ६९-१२]

८४ वायु के साथ संयुक्त सूर्य हमें सम्यक् दिखाई देता है, वे दोनों समान बल से हर्ष-प्रद हैं। १
८५ यज्ञ सूर्य की निर्दोष-प्रकाशमान-काम्य किरणों और वायु के साथ बलवान् होता है। २
५२८६ फिर वे यज्ञ-योग्य देश-पदार्थ-शक्ति पाकर बादल का गर्भ बना कर वर्षा किया करते हैं। ३

[ये अन्तिम दो मन्त्र ऋ के १.६.७-८ भी हैं, तथा पूरा सूक्त यहाँ आगे ७.३-४ और ६९-१२ है।]

सूक्त ४१ । इन्द्र

५२८७ इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ।। १
८८ इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद् विदच्छर्यणावति ।। २
८९ अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ।। ३

८७ अप्रतिष्कुत, न हटने वाला इन्द्र (सूर्य-नक्षत्र) धारक वायु की अस्थिर शक्तियों से ९९ (अगण्य) वृत्रों (आवरण-कर्ता मेघों) को हनन करता (गति देता) है । १

८८ शीघ्रगामी मेघ का जो सिर (उच्च भाग) पर्वतों पर आश्रित रहता है उसे चाहता हुआ वह सूर्य छिन्न-भिन्न करने के स्रोत आकाश में उसे पाता है । २

८९ यहीं पर वैज्ञानिक जन गौ (पृथिवी) का प्रसिद्ध त्वष्टा (सूर्य) के आधीन गृह होना, और इसी प्रकार चन्द्रमा के घर में (सूर्य-किरणों का जाना) मानते हैं । ३

[ये ३ मन्त्र ऋ. १.८४.१३-१५ में, और अगला सूक्त ४२ भी वहाँ ८-७६-१२, ११, १० में] है।

सूक्त ४२ । इन्द्र

९० वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात् परि तन्वं ममे ।। १
९१ अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् । इन्द्र यद् दस्युहाभवः ।। २
९२ उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ।। ३

९० मैं ८ व्याप्त पद वाली वाणी [४ वेद-४ उपवेद, २ प्रकार के नाम (जाति-व्यक्ति वाचक), २ प्रकार के आख्यात (अकर्मक-सकर्मक; आत्मने-परस्मैपद), उपसर्ग, और ३ प्रकार के निपात (उपमार्थ, कर्मोपसंग्रहार्थ और पद-पूरणार्थ)], जो नयी-प्रशंसनीय-सत्य प्राप्त कराने वाली है, उसे इन्द्र (बिजली) से फैलाकर प्राप्त करूँ और जानूँ । १

९१ बिजली जब दुष्ट-नाशक हो जाती है तो द्यावा-पृथिवी (पुरुष-स्त्री) उसके पीछे अनुकूल हो कर समर्थ हो जाते हैं । २

९२ अपनी शक्ति से उच्च स्थिति-प्राप्त बिजली सोम-तत्त्व पाकर बली सेना में प्रयुक्त की जाकर उसका सञ्चालन करती है । ३

सूक्त ४३ । इन्द्र । (ऋ० ८.४५.४०-४२)

९३ भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ।। १
९४ यद्वीलाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् । ,, २
९५ यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति । ,, ३

९३ हे इन्द्र! तू सब द्वेषियों को दूर भगा, बाधाओं -शत्रुओं का नाश कर, उस चाहने-योग्य धनको दे । १
९४ हे इन्द्र ! जो धन वीर-सेना-स्थिर जन-मेघ-विकट स्थान में है वह, ,, । २
५२९५ (,,) विश्व के मनुष्य तेरे दिये जिस बहुत दान को जानते-पाते हैं वह, ,, । ३

[ये मन्त्र ऋ० मण्डल ८ के सूक्त पैंतालीस के चालीस-इकतालीस-बयालीस में भी हैं ।]

सूक्त ४४ । इन्द्र । [ऋ० ८-१६]

५२९६.प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १
९७ यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या । अपामवो न समुद्रे ॥ २
९८ तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् । महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ३
सेनाओं में दीप्त, नायक, नरों को वश में करने वाली अत्यन्त श्रेष्ठ विद्युत का वाणियों से वर्णन करो।
जिस में सब सुनने-कहने-योग्य गुण-प्रवाह, समुद्र में जल-तरङ्ग-समान, विद्यमान हैं।
उस दीप्त, युद्ध में लाभ के लिए काम करने वाली, वेगयुक्त, ज्योतिर्मय बिजली का वर्णन-प्रयोग करूँ।

सूक्त ४५ । इन्द्र (ऋ१-३०)

९९ अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १
५३००० स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ॥ २
१ ऊर्ध्वस् तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ॥ ३
यह प्रयोक्ता तेरा ही है। बन्दरगाह पर जल के जहाज-समान नङ्गत हो। तू हमारे वचन सुन।
हे धन-पति, वाणी-वाहक, ! तेरी विभूति सच्ची है। तेरी प्रशंसा हो।
हे सैकड़ों कर्म करने वाली बिजली ! तू इस युद्ध में हमारी रक्षा के लिए उच्च होकर रह।
अन्यों में हम दो (तार-दूर-भाष से)बात किया करें।

सूक्त ४६ ।इन्द्र ऋ ८-१६-१०-१२

२ प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु सासह्वांसं युधामित्रान् ॥ १
३ स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः । इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥ २
४ स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च । अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥ ३
अच्छे प्रकार उत्तम ऐश्वर्य देने वाली, युद्धों में प्रकाश-दायक, शत्रु-नाशक बिजली का प्रयोग हो।
अनेक रीति से प्रयुक्त पालक बिजली नावों से कल्याण करती है; सब शत्रुओं से पार लगाती है।
हे बिजली ! वह तू हमें अपनी शक्तियों से सुख दे; मार्ग दिखा, अच्छे प्रकार सुख की ओर ले चल।

सूक्त ४७ । इन्द्र

५ तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १
६ इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ २
७ गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ ३
८-१० इन्द्रमिद्० [: बार— पहले क्रमांक ५२७६-७८, आगे २०-७०। ऋ १.७.१-३]
११-१३ आ याहि० [६ बार- ,, ५२२७-२९, ५३७३-७५ऋ८-१७ सा १६१.३३६]
१४-१६ युञ्जन्ति० [६ बार- ,, ५१८३-८५, आगे ५४५७-५९,ऋ१-६।य२३-५-७ सा१४६५
१७-२५ उदु त्यं० से अयुक्त० तक ९ [पहले १३-२-१६-२४ क्रमाङ्क ५२७६-८७ तक]
ऋ १-५०-१-९ । य ७-४१।८-४१।३३-३१-३२। साम १-५। ६-१४-१३

५३०५ उप विद्युत को हम बड़ा शत्रु मारने के लिए वेगयुक्त करते हैं, वह वज्री-सुख-वर्धक हो। १
६ वह वज्री होकर शत्रु-दमन, हर्ष-प्राप्ति में प्रयुक्त की जाती, द्युति-युक्त-प्रशंसनीय और अन्नदाता है। २
७ वज्र-समान वह वेद-वाणी से पुष्ट, बली, न नाश-योग्य, गतिशील-बेरोक होकर भार ढोती है। ३
८-१० [अर्थ पहले २०-३८ में पृष्ठ ६२६ पर है।] ४-६
११-१३ [;;] ७-९
१४-१६ २३ के ३-८ ६१७ पर । १०-१२
१७-२५ १३.२.१६-२४ में पृष्ठ ४४५ पर है। १३-२१

सूक्त ४८ । सूर्य-गौ

५३२६ अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरण्यवः। अभि वत्सं न धेनवः ॥ १
२७ ता अर्षन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः। जातञ्जात्रीर्यथा हृदा ॥ २
२८ वज्रापवसाध्यः कीर्तिर्म्रियमाणमावहन्। मह्यमायुर्घृतं पयः ॥ ३
२९ आयङ्गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः। पितरञ्च प्रयन्त्स्वः ॥ ४
३० अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः। व्यख्यन्महिषः स्वः ॥ ५
३१ त्रिंशद्धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत्। प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ॥ ६

जैसे गौएँ बच्चे को दूध से सींचती हैं वैसे ही सब ओर से आती वाणियाँ सूर्य को वर्च से। १
वे शुद्ध-प्रिय वाणियाँ वर्च-सहित तुम्हारे सम्पर्क करती हैं जैसे माताएँ बच्चे को हृदय से। २
शक्ति-पवित्रता-पूर्ण वह मृत-समान मुझे यश-आयु-घी-दूध देता है। ३
नाना रूप-रङ्ग वाली यह पृथिवी अन्तरिक्ष में माता-जल-सहित पूर्व-ओर पिता-सूर्य की परिक्रमा किया करती है। ४
प्राण-अपान-क्रिया करते हुए वह सूर्यज्योति संसार के अन्दर व्याप्त होती है, महान सूर्य द्यौ में गति करता है। ५
सूर्य दिन-रात ३० मुहूर्तों में किरण-सहित प्रति-घर प्रति-दिन विराजता है। ६

सूक्त ४९ । इन्द्र

३२ यच्छक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिषासथः। सं देवा अमदन् वृषा ॥ १
३३ शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अधृष्णुहि। मंहिष्ठ आ मदर्दिवि ॥ २
३४ शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन् विराजति। विमदन् बर्हिरासरन् ॥ ३
३५ तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥
३६. द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम्।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥५
३७ तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ६

५३३८ येना समुद्रमसृजो महीरपस् तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ ७

जब वर्षक बली सूर्य प्रकाश फैलाता है तब समर्थ देव वाणी-आरोहण (साम-गान) को करते और आनन्द पाते हैं । १

शक्ति-शाली होकर अजेय सूर्य के लिए वाणी का प्रयोग कर, शक्ति-हीन न बन, महान् वह द्यौ में प्रकाशमान होता है । २

(हे मनुष्य !) शक्तिमान् तू वाणी अशक्त न कर । वह प्रत्येक धारण-योग्य व्यवहार में विराजता है, प्रकाशमान होकर अन्तरिक्ष में प्रकट होता है । ३

जैसे गौएँ बच्चे के प्रति प्रेमपूर्वक रम्भाती हैं वैसे ही हम दुःख-नाशक, क्लेशहारी, धन से आनन्द-दायक इन्द्र की अपने वचनों से प्रशंसा करते हैं । ४

द्यौ में स्थित, उत्तम दानी, शक्तियों से युक्त, मेघ-समान अन्न-दाता, पर्वत-समान अचल, सैकड़ों हजारों लोकों के स्वामी, उत्तम-किरण-युक्त सूर्य पाकर हम (स्वास्थ्य की) याचना करें ५

मैं तुझ से उस उत्तम वीरता और अन्न की याचना करता हूं जिससे पूर्व-ज्ञान के लिए यत्न-शील तू परिपक्व-मेधावी की हितकारी धन में रक्षा करता है । ६

हे इन्द्र(सूर्य) ! क्योंकि तू समुद्र में जल बढ़ाता है वह तेरा वर्षा-कारी सामर्थ्य है जिसे द्यो-भूमि निरन्तर चाहते हैं । इस की वह महिमा आजतक किसी ने नहीं पायी । ७

सूक्त ५० । इन्द्र

५३३९ कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥ १
४० कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः ॥ २

सूक्त ५१ । इन्द्र

जीवों में कोन मनुष्य प्रशंसनीय है जो शीघ्र इसके कर्म की प्रशंसा कर सके ? प्रशंसा करते हुए भी हम इसकी ऐश्वर्य-महिमा नहीं जान सकते । १

हे विद्वन् ! कितने स्तोता सत्य-यम चाहते हैं ? कौन मन्त्र-दृष्टा सब प्रकार विचार कर सकता है ? हे इन्द्र ! तत्त्व पाने के इच्छुक स्तोता की पुकार तक तू कब कैसे पहुंचता है २

सूक्त ५१ । इन्द्र (सूर्य-विद्युत्)

४३४१ अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १
४२ शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २
४३ प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥ ३
५३४४ शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥ ४

५३४१ यथार्थ ज्ञान के लिए उत्तम धन-दाता उस इन्द्र के गुण वर्णन कर जो महाधनी स्तोताओं के लिए हजारों प्रकार से देता है । १

४२ वह सैकड़ों सेनाओं-समान धर्षक तेजसे आगे बढ़ता, दानी के लिए मेघों का नाश करता है । बहुत अन्न-दाता मेघ-समान उसके रस-दान सबको सींचते रहते हैं । २

४३ अभीष्ट पाने के लिए उस विख्यात सुधनी शक्ति-शाली के गुण-वर्णन कर जो तत्त्वज्ञ स्तोता के लिए हजारों प्रकार से मन-चाहा धन देता है । ३

४४ उस इन्द्र की शक्तियाँ-अस्त्र-शस्त्र सैकड़ों सेनाओं में काम आते, दुर्लंघ्य हैं और महान् अन्न सम्यक् पार लगाने वाले हैं । जब मेघ-समान वह गति-युक्तों में अन्नादि भोज्य पदार्थ देता है तो वे बढ़कर हृष्ट होते हैं । ४

सूक्त ५२ । इन्द्र (सेनापति)

४५ वयङ्क्त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ १

४६ स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आगम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ २

४७ कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ३

हे दुष्ट-नाशक (सेनापति) ! सोम वाले हम वृद्धि पाने वाले प्रशंसक, जल-समान पवित्र धाराओं में बहते हुए तेरी सेवा में आया करें । १

हे श्रेष्ठ ! प्रशंसक जन सोम बनने पर तुझको पुकारते हैं, तू तृषित होकर घर पर सोम-दानार्थ, सुन्दर तालाब को तृषित बैल-समान, कब आया करेगा ? २

हे निर्भय ! तू मेधावियों द्वारा चाहा, हजारों का उपकारी दृढ़ बल हमें दिला, हे वरी दूरदर्शी! हम तुझ से वाणी-सम्पन्न तेजस्वी रूप शीघ्र पावें । ३

सूक्त ५३ । इन्द्र

४८ क ईं वेद सुते सचा पिबन्तङ्कद्वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥ १

४९ दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाँश्चरस्योजसा ॥ २

५६५० य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ३

४८ इस संसार में उसे कौन जान सकता है जो मेल के साथ तत्त्व-रस पीता है। वह कितना सामर्थ्य रखता है जो तेजस्वी-मुख होकर शत्रु-किले सरलता से तोड़ देता है । १

जैसे जंगली हाथी मद से बहुत तोड़-फोड़ करता स्वच्छन्द घूमता है, वैसे ही हे सेनापते ! तुझे कोई नहीं रोक सकता । इस संसार में तू महान् होकर आता, बल से महान् होकर विचरता है । २

जो उग्र कभी हराया नहीं जाता, दृढ़ होकर रण के लिए उद्यत रहता है। यदि वह महाव्रती इन्द्र, स्तोता की पुकार सुन ले तो अलग न रहे, पास अवश्य आ जाये । ३

सूक्त ५४ । इन्द्र

५३५१ विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रञ्जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् ॥ १
५२ समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥ २
५३ नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वराः ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥ ३

सब अरि-सेनाओं को जीतने वाले, कर्म-व्यवहार में उत्तम; दुष्ट-नाशक-उग्र-ओजस्वी-महाबली को सब मिलकर राज्य का सेनापति बनाते और प्रसिद्ध करते हैं । १

स्तोता सोम-पान के लिए सुख-रक्षक पति को बुलाते हैं वह वृद्धि के लिए अपनी ओज-रक्षाओं से व्रत धारण करता है । २

बुद्धिमान्-अद्रोही-विद्वान् -श्रवण में तीव्र अपनी दर्शन-अर्चनाओं के साथ उस नेता-राजा-सेनापति के लिए नमते हैं । ३

सूक्त ५५ । इन्द्र

५४ तमिन्द्रञ्जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद् राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ १
५५ या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वां असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन् मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥ २
५६ यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वङ्गां भागमव्ययम् ।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ॥ ३

मैं उस इन्द्र को स्वीकार करूँ जो उग्र, सच्चे बल का धारक, बेरोक गति वाला; उदार-यज्ञानुष्ठाता, शस्त्रास्त्र-धारी हो, हमें गौ-सम्पन्न बनाये और धन के लिए सब मार्ग उत्तम बनाये । १

हे मघवन् इन्द्र ! तू जो [illegible] नारी नदियों से छीने उनसे प्रशंसनीय याज्ञिक जन बढ़ा । २

हे राजन् ! जो अश्व-गौ-अक्षय धन तू रखता है उसे पर-उपकारी-याज्ञिक-ज्ञानी, सर्वोन्नति चाहने वाले के लिए दे, कृपण के लिए नहीं । ३

सूक्त ५६ । (इन्द्र)

५७ इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन् महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ १
५८ असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादंदिः ।
असि दभ्रस्य चिद वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥ २
५३५९ यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥ ३

५६३० मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सङ्गृभाय पुरू शतोभया हस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥ ४
६१ मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥ ५
६२ एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥ ६

५७ दुष्ट–नाशक सेनापति मनुष्यों द्वारा हर्ष–बल के लिए बढ़ाया जाता है। उसे ही बड़े–छोटे युद्धों में हम बुलायें, वह हमें युद्धों में बचाये। १

हे वीर! तू ही सेना का हितकारी; बहुत प्रकार से शत्रु–दूरकर्ता, छोटे को भी बढ़ाने वाला है। सोम–सम्पादक याज्ञिक के लिए तू अपना बहुत धन देता है। २

जब युद्ध आरम्भ होते हैं तब निर्भय के लिए धन मिलता है। हे सम्राट्! तू किसे मारता और किसे धन के बीच में रखता है? हमें धन के बीच में रख। ३

सत्य–कर्मा तू आनन्द के प्रत्येक अवसर पर हमें गौ–समूह देता है दानो हाथों तू बहुत से सैकड़ों धन एकत्र कर और दे, हमें धन से भर दे। ४

हे शूर! तू इस जगत् में सदा मेल के साथ बल–धन के लिए आनन्द दे। हम तुझे ही अधिक श्रेष्ठ जानें और अपनी कामनाएँ पूरी करें; तू हमारा रक्षक हो। ५

हे राजन्! ये मनुष्य तेरे लिए सब स्वीकरणीय पदार्थ पुष्ट करें। तू मनुष्यों में स्वामी होकर अदानियों का धन जान और उसे हम दानियों के लिए दे। ६

सूक्त ५७। इन्द्र (परमात्मा)

५३६३ सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १
६४ उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब। गोदा इद् रेवतो मदः ॥ २
६५ अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्। मा नो अति ख्य आ गहि ३
६६ शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम्। इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥४
६७ इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु। इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ ५
६८ अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम्। उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥ ६
६९ अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ७
७० इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत्। स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ८
७१. इन्द्रश्च मृडयाति नो न नः पश्चादघं नशत्। भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ९
७२ इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयङ्करत्। जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ १०
७३ क ई० ११ [देखो ५३४८]
५३७४ दाना० [,, ५१४९] ॥ १२

५३७५-७८ [पहले ५०, ४५-४७]
॥ १३-१६

६३ हम रक्षा के लिए दिन-दिन, दुहने के लिए सुगम दुही जाने वाली गो-समान, सुन्दर रूप-देने वाले ईश्वर की उपासना करें। १ [पहले तीन मन्त्र आगे सूक्त ६८ में भी हैं।]

६४-६५ [पिछला और ये दो ऋ. १-४ में भी हैं।] हे सोम (जगत्) के पालक! तू उपासना में हमारे पास रह, हमारी भक्ति स्वीकार कर, धनी तेरा हर्ष हमें ज्ञान-प्रद ही है। २। और हम तेरी अन्तिम प्रमाण सुमतियों को जानें-गायें, हमें न छोड़, आ जा। ३

६६-७२ [ये ७ मन्त्र पहले २०-१.७, क्रमांक ५१३१-३७ पृष्ठ ६११ पर आ चुके हैं।

७३-७८ [पहले क्रमाङ्क ५३४८-५० और ४५-४७ पर आये हैं] ११-१६

सूक्त ५८। सूर्य। [ऋ ८.९९-१०२, य. अ० तैतो.१.४०-४२,साम]

७९ आयन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रतिभागं न दीधिम ॥ १

८० अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ २

८१ बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि ॥ ३

८२ बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥ ४

हे मनुष्यो! तुम सूर्य का आश्रय लेते हुए इन्द्र की शक्ति से सभी वस्तुओं का उपभोग करो उत्पन्न हुए और होने वाले जगत् में हम प्रत्येक का भाग नियत करें। १

हे मनुष्य! तू अश्लीलता-रहित दान वाले, धन-दाता सूर्य के गुण वर्णन कर, उसके दान कल्याण-कारी हैं। वह कर्मशील का मन दान के लिए उत्साहित कर उसकी कामना नष्ट नहीं करता। २

हे अविनाशी सूर्य! तू सचमुच महान् है, तुझ सच्चे महान् की महिमा गायी जाती है, हे देव! तू निश्चय ही महान् है। ३

हे सूर्य! तू निश्चय ही धन से महान् है, हे देव! तू सचमुच महान् है। अपनी महत्ता से तू देवों का प्राण-दाता, पुरोहित, व्यापक; और न दबने वाली ज्योति है। ४

सूक्त ५९। इन्द्र

८३ उदु त्ये०, ८४ कण्वा० [देखो ५०६०-६१, पृष्ठ ६०४]।१-२

८५ उदिन्न्वस्य रिच्यतेंऽशो धनं न जिग्युषः।
य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥ ३

८६ मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥ ४

५३८५ विजयी समान उसका धन अंश-अंश करके बढ़ता ही जाता है जो इन्द्र शक्ति वाला है; उसे शत्रु नहीं दबा पाते; वह सोम-युक्त में बल धारण कराता है ५।

८६ तुम यज्ञीय व्यवहारों में दर्प-नाशक, पूर्ण-हितकारी, सुन्दर-कोमल मन्त्र धारण करो। परम्परागत उत्तम प्रबन्ध उसे पार लगा देते हैं जो कर्म से इन्द्र में निमित्त हो जाता है। ४

सूक्त ६०। इन्द्र

८७ एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः। एवा ते राध्यं मनः ॥ १
८८ एवा रातिस् तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः। अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥ २
८९ मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते। मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३
९० एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही। पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ४
९१ एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते। सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ५
९२ एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थञ् च शंस्या। इन्द्राय सोमपीतये ॥

निश्चय ही तू वीरों को चाहने वाला शूर-स्थिर ही है; तेरा दिया मन बड़ाई-योग्य है। १

,, हे बहुत धनी इन्द्र! तेरा दान सब धारकों द्वारा धारण किया जाता है अतः मेरा साथी हो। २

हे अन्न-पति! ब्रह्मा-समान तू आलसी कभी न बन, वेद-वाणी-युक्त तत्त्व-रस का आनन्द भोग। ३

निश्चय ही इस की प्रिय सच्ची वेद-वाणी विविध-स्पष्ट वर्णन करने वाली सुख-दायिनी-श्रद्धा-योग्य है, वह दानी के लिए पके फल-फूल वाली शाखा-समान हो। ४

हे इन्द्र! ऐसी ही तेरी विभूतियाँ दानी मुझे रक्षार्थ शीघ्र मिल जाती हैं। ५

इसके मनोहर प्रशंसनीय गुण और कथनीय कर्म भक्ति के स्वीकारार्थ इन्द्र के ही हैं। ६

सूक्त ६१। इन्द्र (परमात्मा)

९३ तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम्। उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ १
९४ येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ। मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ २
९५ तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा। वृषपत्नीरपो जया दिवे दिवे ॥ ३
९६ तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम्। इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ ४
९७ यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी। गिरींरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥ ५
९८ स राजसि पुरुष्टुत एको वृत्राणि जिघ्नसे। इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ ६

हे चराचर के अत्ता (प्रलय-कर्ता)! तेरे उस सुख-वर्षक हर्ष की हम प्रशंसा करते हैं जो संघर्षों में सहनशीलता देता है, लोक-निर्माता है और मनुष्यों में शोभा-धन देता है। १

जिस हर्ष से तू प्रगतिशील मननशील जन के लिए ज्योतियाँ प्रकट करता और प्रसन्न होकर उसके हृदय में विराजता है। २

अतः आज भी तेरे स्तोता तेरी स्तुति करते और तू प्रतिदिन धर्म-पालित प्रजा की जय करता है। ३

९६ हे मनुष्यो! बहु-प्रशंसित और पुकारे गये महान् इन्द्र का सब तरह से गान करो और वाणियों से उसकी सराहना करो। ४

५९६७-९८ दोनों (अभ्युदय-निःश्रेयस) दृष्टियों से बढ़ाने वाले जिसके महान् बल ने द्यौ-पृथिवी, मेघ-जल धारण किये, वह बहु-स्तुत इन्द्र! तू पाप-नाशक है, और विजयी-कर्म-नियामक है। ५-६

सूक्त ६२ । इन्द्र

५३६६-५४०२ [देखो ५०८४-८७ २(०.१४.१-४) पृष्ठ ६०७] १-४

३ इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ५

४ त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ ६

५ विभ्राजं ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः । देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ७

६-८ [देखो ५३६६-६८]६-८

५३९९-५४०२ [देखो ५०८४-८७] १-४

५४०३ ३ उस महान्-व्यापक-धर्म-व्यवस्थापक-मेधावी-स्तुत्य परमेश्वर के लिए बृहत् साम गाओ ५ ॥

४ हे ईश्वर ! तू विजयी है, तूने सूर्य को चमकाया है, तू सबका निर्माता-पूज्य-महान् है ॥ ६

५ हे सूर्य ! ज्योति से चमकता हुआ तू द्यौ को प्रकाशित करता सदा आकाश-युक्त है; देव तेरे मित्रता के लिए यत्न-शील रहते हैं । ७

६ उसी बहु प्रशंसित सूर्य का वाणियों से वर्णन और प्रशंसा करो । [देखो ६६] । ८

७-८ [देखो ९७-९८] ९-१०

सूक्त ६३ । इन्द्र

६ इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।
यज्ञञ्च नस्तन्वञ्च प्रजाञ्चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥ १

१० आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभि रक्षमाणाः । २

११ प्रत्यञ्चमर्कमनयं शचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः । ३

१२ य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ४

१३ कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् । कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ५

१४ यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति । उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ६

१५ य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति । येना हंसि न्यत्रिणं तमीमहे ॥ ७

१६ येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् । येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥ ८

१७ येन सिन्धुं महीरपो रथाँ इव प्रचोदयः । पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥ ९

६ ये उत्पन्न पदार्थ, जीवात्मा और सब इन्द्रियाँ उस सुख को सिद्ध करें जिसे, और हमारे जिस शरीर-प्रजा को ईश्वर आदित्यों (शरीरस्थ चक्रों) -सहित सिद्ध किया करता है । १

१० आदित्यों-मरुतों-सहित ईश्वर हमारे शरीरों का रक्षक हो जब कि देवत्व की रक्षा करते हुए हमारे दिव्य गुण, आसुरी भावनाएँ नष्ट करणार्थ हमें प्राप्त हों । २

११ प्रति वस्तु में व्याप्त पूज्य ईश्वर को जब योगी योग-क्रियाओं से अभिमुख कर लेते हैं तब गति-शील स्वधारणा का साक्षात् करते हैं । हम इस विधि से देव-हितकारी परमात्मा-दत्त बल पायें और सुवीर बनकर १०० वर्षों तक हृष्ट रहें । ३

१२ हे प्रिय! जो अकेला ही दानी के लिए धन देता है वह सर्वेश किसी से झुकाये जाने वाला नहीं है। ४

१३ ,, परमेश्वर आराधना-हीन को, पैर से गजुए-समान, न जाने कब उखाड़ दे और न जाने कब वह हमारी प्रार्थना सुन ले। ५

१४ हे प्रिय, बहुतों में भक्ति-सम्पन्न जो तेरी पूर्ण भक्ति करता है उसके लिए तू अनन्त बल देता है। ६

१५ हे बलिष्ठ परमात्मा! ऐश्वर्य-रक्षक जो हर्ष हमें चेताता है और जिससे तू हमारे खा जाने वाले पाप नष्ट करता है उसे हम तुझ से माँगते हैं। ७

१६ जिस मद(हर्ष) से तू १० इन्द्रिय वाले, दसों दिशाओं में वेरोक गति वाले, कर्मशील-सुखी मनुष्य और समुद्र की रक्षा करता है उस को हम माँगते हैं। ८

१७ जिस आनन्द से तू नदियों-समुद्रों को रथ-समान प्रेरित करता है हम उसे सत्य-पथ पर चलने के लिए माँगते हैं। ९

सूक्त ६४ । इन्द्र

१८ एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः। गिरिर्न विश्वतस् पृथुः पतिर्दिवः ॥ १

१९ अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी। इन्द्रासि सुन्वतो वृधः ,, ॥ २

२० त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि। हन्ता दस्योर्मनो ,, ,, ॥ ३

२१ एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः। एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥ ४

२२ इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम्। उदानंश शवसा न भन्दना ॥ ५

२३ तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः। अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ ६

१८ हे इन्द्र परमेश्वर! तू हमें सब ओर से प्राप्त है। तू प्रिय-सत्य-विजयी-न छिपने वाला, आकाश-व्यापक मेघ-समान सब ओर विस्तृत और द्यौ-रक्षक स्वामी है। १

१९ हे सत्य-स्वरूप, ऐश्वर्य-रक्षक परमेश्वर! अवश्य ही तूने दोनों (सूर्य-भूमि) वश में किये हैं। तू भक्ति-रत वाले उपासक का वृद्धि-कर्ता तथा द्यौ का पति है। २

२० हे परमेश्वर! तू परम्परागत शरीरों का विदारक (मुक्ति-दाता) काम-क्रोधादि-नाशक-ज्ञान-वर्धक और सुख-स्वामी है। ३

२१ और हे अहिंसक पुरुष! तू अन्न से अधिक आनन्द-प्रद मधुर भक्ति को सब ओर सींच। वीर परमेश्वर इसी प्रकार स्तुत किया जाता है और वह हमें सदा बढ़ाया करता है। ४

२२ हे इन्द्रियाधिष्ठाता, तेरी श्रेष्ठ स्तुति को कोई बल-कर्म से नहीं पहुँच पाया। ५

२३ हे उपासक जन! यश-आनन्देच्छुक हम तुम्हारे बल-पति; स्थिर चित्त-वृत्ति और यज्ञ द्वारा वृद्धि-कारक परमात्मा को पुकारते हैं। ६

सूक्त ६५ । इन्द्र

२४ एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखाय स्तोम्यं नरम्। कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ १

२५ अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः। घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ २

२६ यस्यामितानि वीर्या न राधः पर्येतवे। ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥ ३

२४ हे मित्रजन! आओ, हम स्तुत्य, विश्व-नाशक की स्तुति करते हैं जो अकेला ही सब प्रजाओं पर विजय पाता है। १

५४२५-२६ प्रगति न रोकने वाले; ज्ञान-प्रकाश-निवासी उस परमात्मा के लिए घी-मधु से भी अधिक रुचिकर प्रशंसनीय गीत गाओ जिसकी शक्तियाँ अपरिमित हैं और ऐश्वर्य कभी क्षीण नहीं होता तथा ज्योति-समान दान विश्व भर में फैला हुआ है । २-३

सूक्त ६६ । इन्द्र

२७ स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम्। अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥ १
२८ एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम्। सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥ २
२९ वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम्। अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ३

२७ विशेष शक्ति वाले, शान्त-बली-नियन्ता परमात्मा की स्तुति कर जो सबका स्वामी और दानी के लिए श्रेष्ठ धन है। १

२८ ओ विविध वेग-युक्त मन-घोड़े की चञ्चलता से रहित मनुष्य ! तू उस दस (धृति आदि दस धर्म-लक्षणों) की लक्ष्मी-युक्त, सदा नवीन-स्तुत्य-विद्वान्, लोक-लोकान्तर-निर्माता परमात्मा की ही स्तुति किया कर । २

२९ हे अपने अधिकार में न्याय-वज्र रखने वाले परमात्मा ! तू दुःख-निवारण करना जानता है, और शोधक सूर्य-समान सब कष्ट निवारण प्रति दिन किया करता है । ३ । अनुवाक ५ समाप्त ।

अनुवाक ६

विषय— वनोति हि सुन्वन् क्षयमित्यादि॰, इन्द्र-सामराज-पत्रादि-पदार्थविद्या, तस्मा इन्द्राय गायतेत्यादि यज्ञादिविषय; इन्द्र स्तुत-स्तुति-प्रार्थना युद्धादि-जयार्थम्; महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे इत्यादि पदार्थविद्या । —महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ।

सूक्त ६७ । इन्द्र ।

५४३० वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवाना-
मव द्विषः । सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ १
३१ मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत्
पुरोत जारिषुः। यद्वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम्। अस्मासु तन्मरुतो यच्च
दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥ २
३२ अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा। घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचि-
षाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ३
३३ यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत ।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥ ४
३४ आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन् होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु ।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात् तव भागस्य तृप्णुहि ॥ ५

२४३५ एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओज प्रदिवि बाह्वोर्हिता ।
तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यमाभृतस् त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत् पिब ।। ६
३६ यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ।। ७

सोम (औषधि-ज्ञान) पाता हुआ ही मनुष्य कुटिलता नष्ट करता, द्वेषी और द्वेषों को छोड़ता, वैरोक पराक्रमी होकर दुश्मनों को शिक्षा देता है, उसीको इन्द्र सदा स्थायी धन देता है । १

हे मनुष्यो-नेतिको ! हमसे मित्र शक्तियाँ-जन तुम से कभी न घटें, जो आध्यात्मिक सम्पत्तियाँ घोषित हैं वे और जो हममें दुष्प्राप्य धन हैं उन्हें धारण-ग्रहण करो । २

मैं अग्नि को दानी-धनी; बल-प्रेरक जातवेदस विप्र-समान मानता हूं । जो विद्वान् ऊँची शक्ति के साथ अच्छा यज्ञ रचाता है वह अग्नि रहते [illegible] करता है । ३

हे सब के कर्ता ईश्वर के पुत्रो दिव्य जनो ! यज्ञों-शास्त्रों से सम्पन्न होकर शुद्ध, और काम्य कर्मों से प्रिय होकर उत्तम आसन पर बैठकर पवित्र (ईश्वर-चरणों) से प्रकट हुए सोम को पियो । ४

हे विप्र ! तू विद्वानों को आमन्त्रित कर यज्ञ कर, हे होता ! तू तीन योनि (ऋग्-यजु-साम) र में बैठ कर आग्नीध्र (अग्नि-विद्या-धारक वैज्ञानिक) से मिला मधुर मधुर सोम पिया कर और अपने भाग के लिए ही इच्छा कर । ५

हे इन्द्र ! यही सोम धन को बढ़ाने वाला, तेरा शरीर-रक्षक होकर प्रतिदिन बल-रक्षा के लिए हितकर है; तेरे लिए तय्यार किया गया समर्पित है, इसे ब्राह्मण से लेकर तृप्त होकर सेवन कर । ६

जिसे मैं पहले बुलाता हूं उसे ही अब ग्रहण करूं; वही ग्रहण-योग्य है जो दाता-स्वामी है । हे धन-दाता (अग्नि) ! तू अध्वर्युओं द्वारा चलनी-छना मधुर सोम ऋत्वनुसार पिया कर । ७

सूक्त ६८ । इन्द्र ।

२४३७-३९ (१२ मन्त्रों में पहले तीन क्रमांक पहले [illegible] आ चुके हैं ।)

२४४० परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् । यस् ते सखिभ्य आ वरम् ।। ४
४१ उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद् दुवः ।। ५
४२ उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ।। ६
४३ एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन् मन्दयत् सखम् ।। ७
४४ अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः । प्रावो वाजेषु वाजिनम् ।। ८
४५ तन्त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । धनानामिन्द्र सातये ।। ९
४६ यो रायो ऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा । तस्मा इन्द्राय गायत ।। १०
४७ आत्वेता निषीदतेन्द्रमभि प्रगायत । सखायः स्तोमवाहसः ।। ११
४८ पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ।। १२
[२४३७-३९ देखो पहले ५३ ३]

२४४० हे मनुष्य ! पास आ, अकुटिल-प्रशंसनीय उन आप्त विद्वान् से ज्ञान पूछ जो तेरे और तेरे मित्रों के लिए श्रेष्ठ है । ४

५४४१ और कोई निन्दा-वचन न बोलें, अन्य को भी कष्ट न पहुंचायें; इन्द्र के लिए ही अपनी अपनी सेवाएँ समर्पित करें। ५
४२ हे पाप-क्षयकारी! यदि शत्रु और प्रजा हमें बड़ा ऐश्वर्यवाला कहें तो भी इन्द्र को ही शरण में रहें। ६
४३ हे मनुष्य ! शीघ्र सफलता के लिए वेगादि-गुण-युक्त; यज्ञ-शोभा-वर्धक, मनुष्यों को प्रसन्न करने वाले, रक्षक मित्रों के हर्षक धन को सब प्रकार भर। ७
४४ हे शतक्रतो ! तू यह सोम पीकर वृत्रों का छेदक होता है, युद्धों में वीर की रक्षा करता है। ८
४५ हे सैकड़ों कर्म वाले! संग्रामों में महाबली तुझे हम धन-दान के लिए प्रेरित करते हैं। ९
४६ जो ऐश्वर्य-रक्षक महान्, अच्छे प्रकार पार लगाने वाला, सोम-निष्पादक का मित्र है उस इन्द्र के लिए साम-गान करो। १०
४७ मित्रो ! आओ, बैठो, इन्द्र के लिए अच्छे प्रकार गान करो, तुम स्तुति-गीतों के ज्ञाता हो। ११
४८ हे मनुष्यो ! सोम के निष्पन्न होने पर पालकों के सुपालक, वरणीय धनों के स्वामी इन्द्र (परमात्मा-सूर्य-बिजली-सम्राट्) का अच्छे प्रकार गान करो। १२

सूक्त ६९। इन्द्र

४९ स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरन्ध्याम्। गमद् वाजेभिरा स नः ॥ १
५० यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः। तस्मा इन्द्राय गायत ॥ २
५१ सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये। सोमासो दध्याशिरः ॥ ३
५२ त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः। इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ४
५३ आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः। शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ५
५४ त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो। त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ६
५५ अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम्। यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥ ७
५६ मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः। ईशानो यवया वधम् ॥ ८
५७-६० युञ्जन्ति०, केतुं, आदह० [देखो क्रमाङ्क ५१८३-८५ और ५२६०] ९-१२

४९ वही हमारे योग, धन, बुद्धि में प्रकट होता है; वही अन्नों-बलों के साथ हमें सब प्रकार मिले। १
५० जिसके सुस्थित होने पर बल-पराक्रम को युद्ध में शत्रु नहीं ढँक पाते उस सेनापति का गान करो। २
५१ ऐश्वर्य-रक्षक के लिए ये शुद्ध और दही-मिश्रित सोम उपभोग के लिए पहुँचा करते हैं। ३
५२ हे सुकर्मा इन्द्र ! बड़ा होने और सोम पीने के लिए तू शीघ्र उद्यत हो जाया करता है। ४
५३ हे वाणी से सेवनीय इन्द्र ! ये संवेगी सोम तेरे अन्दर प्रविष्ट हों और वे विद्वान् को सुखद हों। ५
५४ हे सैकड़ों यज्ञोंवाले ! तुझे प्रशंसनीय गुण-कथनीय कर्म बढ़ाते हैं, हमारी वाणियाँ भी बढ़ायें। ६
५५ अक्षय रक्षा-युक्त सेनापति उस अन्न का सेवन करे जिसमें सब पुरुषार्थ हैं। ७
५६ ओ वाणी-प्रशंसनीय ! मनुष्य हमसे द्रोह न करें, तू हमारे तन का स्वामी है, हमसे वधकर्म हटा। ८
५७ लोकों में विचरण-कर्ता महान् अहिंसक को प्रकाशमान पदार्थ दीप्त करते हैं। ९
१०-१२
५८-६० [देखो क्रमांक ५१८४-८५और ५२६०]

सूक्त ७० । इन्द्र (परमात्मा)

५४६१ वीलु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अनु ।। १
६२ देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद् वसूञ्गिरः । महामनूषत श्रुतम् ।। २
६३-६४ [देखो ५२८४-८५] ३-४
६५ अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि । समस्मिन्नृञ्जते गिरः ।। ५
६६ इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि, इन्द्रं महो वा रजसः ।। ६
६७-६९ [पहले क्रमाङ्क ५२७६-७८; ५३०८-१०, ऋ० १.७] ७-९
७० इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ।। १०
७१ इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ।। ११
७२ स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि, अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ।। १२
७३ तुञ्जे तुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः। न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ।। १३
७४ वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ।। १४
७५ य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ।। १५
७६ [पहले क्रमाङ्क ५२७९] ।। १६
७७ ऐन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ।। १७
७८ नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै । त्वोतासो न्यर्वता ।। १८
७९ इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि । जयेम सं युधि स्पृधः ।। १९
५४८० वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् । सासह्याम पृतन्यतः ।। २०

६१ हे परमात्मा ! दृढ़बद्ध वासनाओं को भी उखाड़ने वाले योगियों द्वारा हृदय-गुहा में स्थित तू दिव्य प्रकाशों के बाद पा लिया जाता है। १
६२ परमदेव को चाहते हुए योगी जैसे सन्मति पाते हैं वैसे ही वेद-धन पाकर तेरा स्तवन करते हैं। २
६३-६४ [देखो ५२८४-८५] ३-४
६५ हे सर्व-व्यापक! तू इस हृदय या सहस्रार चक्र में प्रकट हो,इस उपासक में तेरी वाणियाँ पकरही हैं।
६६ इस पृथिवी-द्यौ-अन्तरिक्ष से हम परमात्मा-दत्त दान को माँगते हैं। ६
६७-६९ (पहले ५२७६-७८ और ५३०८-१०) ७-९
७० हे उग्र इन्द्र ! तू धना-हजारों युद्धों में अपनी उग्र रक्षाओं से हमें बचा। १०
७१ हम महाधन(मुक्ति) और अल्प धन में भी सहयोगी, दुष्टों पर वज्री इन्द्र को बुलायें। ११
७२ हे सुख-वर्षक;सच्चे दानी, हमारे लिए बेरोक ! यह तू हमारा रजो-गुण हटा। १२
७३ पापों पर वज्र गिराने पर वज्री इन्द्र के जो उत्तम स्तोम हैं उनसे अधिक अच्छी स्तुति नहीं पाता।१३
७४ बेरोक ईश, सेनापति-समान, मनुष्यों को ओज से प्रेरित करता है। १४
५४७५ जो अकेला ही मनुष्य-वसु-पाँच विस्तृत पृथिवियों और महों का स्वामी है वह इन्द्र है।१५

१४७६ तुम मनुष्यों के लिए व्यापक ईश्वर को याद करते हो, हमारा केवल वही सेवनीय हो। १६
१७ हे ईश ! तू हमारी रक्षार्थ विजयी, शत्रु-नाशक, सुख-वर्षी धन से हमें पूर्ण कर। १७
१८ जिससे तेरे-रक्षित हम दुष्टों का मुष्टि-प्रहार द्वारा सरलता से विरोध कर सकें। १८
१९ हे परमात्मा ! तेरे-रक्षित हम घातक शस्त्रास्त्र लेकर युद्ध में शत्रुओं को जीतें। १९
८० हे इन्द्र ! हम तुझ सहायक के साथ अस्त्र-चालक शूरों द्वारा आक्रामक शत्रुओं को पूर्णतया पराजित कर सकते हैं। २०

सूक्त ७१ । इन्द्र

५४८१ महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ १
८२ समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ । विप्रासो वा धियायवः ॥ २
८३ यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते । उर्वीरापो न काकुदः ॥ ३
८४-८६ एवा ह्यस्य सूनृता०, एवा हि०, एवा ह्यस्य० [देखो क्रमांक ५३९०-९२] ४-६
८७ इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ ७
८८ एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ ८
८९ मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभि स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सवनेष्वा ॥ ९
९० असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ॥ १०
९१ सञ्चोदय चित्रमर्वाग् राध इन्द्र वरेण्यम् । असदित् ते विभु प्रभु ॥ ११
९२ अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ १२
९३ सङ्गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् । विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ १३
९४ अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम् । इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ १४
९५ वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् । होम गन्तारमूतये ॥ १५
९६ सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः । इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १६

८१ इन्द्र निश्चय महान्-श्रेष्ठ है, यह महिमा बिजली-वज्र-धारी की है जिसका बल द्यौ-समान फैला है। १
८२ जो नर युद्ध या सन्तान-पालन में लगे हैं वे मेधावी और कर्म-कुशल हों । २
८३ जो कुक्षि (अन्तरिक्ष) को समुद्र-समान जल से भरता, और पृथिवियाँ सींचता, गरजता है। ३
८४-८६ [देखो ५३९०-९२] ४-६
८७ हे सूर्य ! तू प्रकट होकर सोम के सब पूरक अंशों और अन्नसे पूर्ण कर, तू बल से महान्-इष्ट है। ७
८८ संसार में हर्षप्रद-कार्य-साधक इस फलोत्पादक ज्ञान को जगन्निर्माता के लिए समर्पण करो। ८
८९ हे उत्तम-ज्योति-सम्पन्न, विश्व-द्रष्टा ! तू हर्षप्रद स्तोम-युक्त होकर इन सवनों में साथ दे। ९
९० हे इन्द्र ! तेरे लिए मेरी प्रीति-युक्त वाणियाँ तुझ सुखद पति के प्रति उत्कर्ष से पहुँचती हैं। १०
९१ हे सूर्य ! तू विचित्र-वरणीय-धन हमारे लिए दे, तेरा यह प्रकाश-धन विभूति-प्रभावी है। ११
९२ महाधनी! तू वह धन पाने के लिए हम यशस्वी यत्न-शीलों को अच्छे प्रकार प्रेरित कर। १२
९३ हे परमात्मा ! तू हमें वह भूमि-जल-अन्न-यश-युक्त अक्षय धन सब आयु तक देता रह। १३
९४ " हजारों सुख-दायक अन्नादि धन और रथों वाली अभिलाषाएँ पूरी कर। १४
९५ हम वाणियों से गुण-वर्णन करते हुए वसुओं के स्वामी स्तुतियोग्य को अपनी रक्षार्थ बुलायें। १५
[illegible] अर्चना करता है। १६

अनुवाक ७

विषय— भूषतीत्यादि०; त्वं दाता प्रथम इत्यादि०, यो राजेत्यादि०; स्वादोरित्यादि०, प्रतिमानादि०, इमा ब्रह्म बृहदित्यादि०, अयर्वांचोचत्स्वां तन्वमिन्द्रमेनेत्यादि०, वितन्वते प्रति भद्राय भद्रमित्यादि०, विश्वस्मादिन्द्र उत्तर इत्यादि०, वृषाकपायीत्यादि०; य एष स्वप्ननंशन इत्यादि–पदार्थविद्या। यद्वा बाणीत्यादि०, ऋतस्येत्यादि०, मधुर्मानित्यादि पदार्थविद्या।

अथ कुन्तापसूक्तानि— भद्रेण वचसा वयमित्यादि०, गोभयाद् गोगविरिवेत्यादि०, प्रादला बुकमेककम्, अलाबुकं निखातकम्॥ १॥ इत्यादि०, उदभिर्यथालाबुनीत्यादि०, इदं राधो विभु प्रभित्यादि०। इति कुन्तापसूक्तानि समाप्तानि। परिशिष्टानि प्रक्षिप्तानीति विज्ञेयम्। —म० द० स०

सूक्त ७२। इन्द्र

५४९७ विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक्। तं त्वा नावं न पर्षणि शूषस्य धुरि धीमहि। इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः॥ १

९८ वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः। यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि। आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम्॥ २ [आगे भी ५५१३]

९९ उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः। यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि। आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः॥ ३

५४९७ बली–तेजस्वी उपासक सभी ऐश्वर्यों में समान रूप से व्यापक आनन्दस्वरूप एक तुझे ही लेते और तेरी ज्योति चाहते हुए अलग–अलग भी स्वीकार करते हैं। नाव के समान पार–कर्ता हे परमेश्वर! हम तुझे सुख की धुरी में धारण करें, यज्ञों–स्तोमों से चिन्तन करते हुए पुरुषार्थी जन उस परमात्मा का ही ध्यान करते हैं। १

९८ हे परमात्मा! मार्ग के पाने में रक्षा के इच्छुक, गति–शील, भूमि–हितार्थी निकले स्त्री-पुरुष तुझको ही प्रशंसाओं से अलंकृत करते हैं, क्योंकि तू सङ्ग रहने वाले उन्हें बली न्याय–वज्र प्रकट कर यथावत् चिताते रहता है जो ऐन्द्रियिक चञ्चलता-वश सुख को ही चाहा करते हैं।

५४९९ और हममें वह उपासक उस उषा का सेवन करे, ग्राह्य व्यवहारों–पदार्थों से सुख-सेवन में पूज्य परमात्मा के मिलने का बोध करे, क्योंकि हे न्याय–वज्र–धारी परमात्मा! सुख–वर्षक तू दुष्ट–हनन जानता है अतः मुझ नये मेधावी उपासक की स्तुतियाँ अच्छे प्रकार सुन। ३

सूक्त ७३। इन्द्र

५५००तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि। त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि॥ १

१. नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र। न वीर्यमिन्द्र ते न राधः॥ २

२. प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम्। विशः पूर्वीः प्रचरा चर्षणिप्राः॥ ३

५५०३. यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः।

आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः॥ ४

५५०४ सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचाँ इन्द्रः शमश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद् धूनोति वातो यथा वनम् ॥ ५
५ यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस् तविषीं वावृधे शवः ॥ ६

५५०० हे शूर इन्द्र (परमात्मा, सम्राट्, विद्युत्) ! तेरे ये ऐश्वर्य हैं, तेरे लिए ये उन्नति-कारक स्तुतियाँ करता हूं; तू सब प्रकार से पुकारे जानने योग्य है । १
१ हे दर्शनीय अग्! वे अन्य पुरुष तुझ माननीय की महिमा-पराक्रम-बल तक नहीं पहुँच सकते । २
२ हे मनुष्यो ! तुम बड़े वृद्धि कारी महान् ज्ञानी के लिए सुमति करो, स्वयं को पूर्ण करो । हे मनुष्य-मनोरथ-पूरक ! तू पूर्ण मनुष्यों में विचरण कर । ३
३ जब इस नियन्ता के दो घोड़े सुनहरी वज्र और रथ को विद्वानों के साथ ले जाते हैं तब उस में महा-धनी, दान-पूर्ण-दूध; यशस्वी, बड़े पराक्रम का रक्षक स्वामी स्थित होता है । ४
४ वही उसकी अपनी सुख-वर्षा मनुष्यों के साथ है; वह इन्द्र हरा-भरा करने वाली किरणें तथा संसार में पाप-क्षय-कारी मधुर आनन्द बरसाता, पापियों को कँपाता है जैसे वायु वन को । ५
५ जो शूर अपनी वाणी से विरुद्ध-कटुभाषी दुष्ट के हजारों अमङ्गल कर्मों को नष्ट करता और पिता-समान हमारे शक्ति-पराक्रम बढ़ाता, उसी के पुरुषार्थ की हम प्रशंसा करते हैं । ६

सूक्त ७४ । इन्द्र

६ यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ १
७ शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस् तव दंसना । आ तू न... ॥ २
८ निष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने । " ॥ ३
९ ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः । " ॥ ४
१० समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया । " ॥ ५
११ पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि । " ॥ ६
१२ सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् । " ॥ ७

५५०६ हे सच्चे ऐश्वर्य-रक्षक ! हम निराश-निन्दनीय हो जाते हैं । हे महा-धनी इन्द्र (परमेश्वर) ! तू हमें हजारों कल्याणकारी गो-अश्वों, विद्वानों-बलवानों, मनों-इन्द्रियों के सम्बन्ध में सब प्रकार आशा-युक्त तो कर; उपदेश तो दे । १ । [दूसरा वाक्य 'हे महा...' आगे ६ मन्त्रों में भी है ।]
७ हे ज्योतिर्मय, अन्न-बल-पति; शक्ति-शाली, वेदवाणी-प्रज्ञा-युक्त ! यह-सब तेरा (कार्य) है । २
८ तू मिथ्या दृष्टि वालों को सुला दे, वे बिना जगे सदा सोते रहें । हे महा-धनी० । ३
९ हे शूर ! हमारी शत्रुताएँ और शत्रु सो जायें तथा दान-भावनाएँ जागती रहें । हे महा० ४
१० हे इन्द्र ! उस पापी दृष्टि से गधे-समान व्यर्थ चिल्लाने वाले का गधापन दूर कर । " । ५
११ तू पर-दाहक को वन से आती वायु-समान दूर गिरा । हे महा-धनी० । ६
५५१२ सब निन्दा-व्यवहार नष्ट कर । निन्दित कर्म करने वाले को कुचल । हे महा-धनी० । ७

सूक्त ७५ । इन्द्र

५५१३ वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो० [पहले क्रमाङ्क ५४६८] १

१४ विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः ।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते । महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ २

१५ आदित्ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ । चकर्थ
कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे । ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥ ३

५५१३ हे इन्द्र सेनापति !० [देखो ५४६८] । १

१४ मनुष्य तेरे इन सामर्थ्य को जानते हैं जिससे जीतता हुआ तू वर्षभर की पालन-सामग्री सेना में उतार देता है । हे बल-पति ! उस अयज्ञिय पर शासन कर, उसके ये पृथिवी-जल छीन ले । २

१५ हे इनों में सुख-वर्षी ! इसी से तेरे इन बल की चर्चा करते हैं कि जिससे मित्र-जनों की तू रक्षा करता, सेना में इनके सेवा-कार्य के लिए यत्न करता है । वे यशस्वी होकर अलग-अलग हर्ष-नदियों में स्नान किया करते हैं । ३

सूक्त ७६ । इन्द्र । ऋ १०-२६

१६ वने न वा यो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥ १

१७ प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् ॥ २

१८ कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद् दुरो गिरो अभ्युग्रो वि धाव ।
कद्वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ॥ ३

१९ कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन्कया धिया करसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥ ४

२० प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥ ५

२१ मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन्भवन्तु पीतये मधूनि ॥ ६

२२ आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥ ७

५५२३ व्यानडिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥ ८

५५१६ हे नर-नारियो! वन में रख दिये पक्षी-समान तुम्हारा पवित्र साम-गान भर्त्ता ईश्वर को प्राप्त होता है जिससे वह उपासक बहुत दिनों में नरों का श्रेष्ठ नेता बनकर क्षमावान् हो जाता है।

१७ इस नरों के नर के नेतृत्व में हम इस और अगली उषाओं में बने रहें। उसका तीनों, (भाप-बिजली-सूर्य) से तीनों लोकों में चलने वाला रथ सैकड़ों नरों को, जो सोया हो उसे भी, बिजली ले जाया-लाया करता है। २

१८ हे इन्द्र! तेरा वह कौनसा रमणीय-उग्र हर्ष है जो वाणियों के घर तुझ में प्रकट होता है? कब तेरा वाहन इच्छानुसार सामने आये और तेरे पास अन्नों-सहित धन दे-ले सकें? ३

१९ हे इन्द्र! तुझे चाहने वाले नरों को तेरी द्युति कब मिलेगी? जिस बुद्धि से तू कार्य करता है वह हमें कब मिलेगी? हे यशस्वी! तू भरण से हमारे मित्र-समान सत्य है, अन्न में सब की इच्छाएँ हैं। ४

२० हे बहु-प्रसिद्ध सूर्य-समान राजन्, तू उन्हें पार लगाने वाला धन दे जो जन्म-दाता पिता-समान कामना पूरी करें और अन्नों-सहित श्रेष्ठ वाणी समर्पित करें। ५

२१ हे राजन्, तुझ सुविज्ञात निर्माता होने पर बल से द्यौ और वेद-काव्य से पृथिवी श्रेष्ठ बनें। तुझ वरणीय के लिए घी से बनाये भोज्य स्वादिष्ठ और पीने के लिए मधुर पेय हों। ६

२२ ऐसे राजा के लिए मधुर रस-भरा पात्र देते हैं क्योंकि वह सत्य-धन वाले हैं। नर-हितैषी वह कर्म-पुरुषार्थों से पृथिवी के विस्तृत क्षेत्र में बढ़ता-बढ़ाता है। ७

२३ अच्छा ओज वाला वह राजा-सेनापति शत्रु-सेनाएँ नष्ट करता है अतः मनुष्य इस के सख्य के लिए यत्न करते हैं। हे इन्द्र! तू उसकी सत्यतार्थ रथ-समान दृढ़ रह जिस को तू कल्याण-कारी मति से प्रेरित करता है। ८

सूक्त ७७। इन्द्र

५५२४ आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः॥ १

२५ अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन् नो अद्य सवने मन्दध्यै।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म॥ २

२६ कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात्।
दिव इत्था जीजनत् सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः॥ ३

२७ स्वर्यद् वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ॥ ४

२८ ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्युभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव॥ ५

२९ विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः।
अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः॥ ६

३० अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन् प्रावत्ते वज्रं पृथिवी सचेताः।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो॥ ७

५५३१ अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत् सरमा पूर्व्यं ते।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः॥ ८

सूक्त ७७। इन्द्र (सूर्य)

५५२४ सच्चा धनी, सरल-मार्गी सूर्य उदय हो, इसकी किरणें हम तक आयें; उसके लिए ही सुन्दर बलयुक्त सोम हम यज्ञ द्वारा तय्यार करते हैं। मार्ग-दर्शी गुरु-समान वह इसे पाता है। १

२५ हे वीर, तू इस सवन में हर्ष के लिए हमारे मार्ग नष्ट न कर। विधाता-समान अभिलाषी प्रकाशमान, प्राण-रूप तेरे लिए माननीय वर्णन किया करता है। २

२६ कवि-समान, गुप्त-रहस्य-साधक वर्षक सूर्य जब जल का विशेष पान (संग्रह) करता है तब वह इस प्रकार द्यौ की ७ क्रियाशील रश्मियाँ उत्पन्न करता है कि वे उपदेश देती हुई दिन बनाती हैं। ३

२७ जो मन्त्रों से बड़ा ज्ञान मिलता और दिन प्रकाशित होता तब विदित होता है कि यह सबसे बड़ा नेता (सूर्य) नरों को दृष्टि देने के लिए अन्धकार नष्ट करता है। ४

२८ सरल-मार्ग-गामी सूर्य ने अपरिमित जल पाया है। वह अपनी महिमा से द्यौ-भूमि दोनोंको भर देता है। इसी लिए इसकी महिमा अधिक है क्योंकि यह सब भुवनों में विजय पाये हैं। ५

२९ सब नर-हितकारी कार्य-ज्ञाता शक्तिशाली (सूर्य) जल-वर्षा करता, नियमित कामना वाले सखावत् लोकों के साथ रहता है कान्ति-युक्त जो ध्वनियों से पत्थर भी तोड़दें, किरण-समूह खोल दे। ६

३० हे साहसी शूर! जब तू मेघ नष्ट करता तो सावधान पृथिवी तेरा वज्र समझती है। तू अपनी शक्ति से समुद्र के रूप को वर्षा-रूप में प्रेरित करता है। ७

३१ हे बहु-प्रशंसित! जो तू मेघ विदीर्ण कर जल-वर्षा करता है तो पहले गर्जना होती है। तू हमारा नेता होकर पर्याप्त अन्न देता; और मेघ विदीर्ण करता हुआ वैज्ञानिकों से प्रशंसित होता है। ८

सूक्त ७८। इन्द्र (विद्युत्)

५५३२ तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने। शं यद् गवे न शाकिने॥ १

३३ न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः। यत् सीमुप श्रवद् गिरः॥ २

३४ कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत्। शचीभिरप नो वरत्॥ ३

३२ इस उत्पन्न जगत् में तुम मिलकर अनेकों से गृहीत शक्तिशाली के लिए गाओ जो गौ (भूमि, स्तोता) और शक्तिशाली के लिए कल्याणकारी हो। १

३३ सम्पत्तिशाली, सर्वत्र बसी विद्युत् वाणी-युक्त अन्न का दान कभी नहीं रोकती, वह तो सर्वत्र वाणियाँ सुनती-सुनाती है। २

३४ अन्धकार-नाशक विद्युत् बहुत गति वाले मार्गों पर गतियुक्त घेरे में चलती है और हमें अपनी शक्तियों से स्वीकार करती है। ३

सूक्त ७९। इन्द्र

३५ इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि॥ १

३६ मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो माशिवासो अव क्रमुः।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि॥ २

३५ हे बहुतों से स्तुत इन्द्र (विद्युत्-सूर्य! तू हमारे यज्ञ-कर्म को धन से भर जैसे पिता पुत्रों को, इस प्रहर और मार्ग में हमें शिक्षा दे, जीव ज्योति को पायें। १

[यह ५ बार आया है— ऋ ७-३२-२६; साम २५९, १४५९, अथर्व १८-३-६७ और यहाँ।]

५५३६ हे शूर (विद्युत्)! हम पर अज्ञात-पापी-दुष्ट-अमङ्गल-कारी जन आक्रमण न करें। हम तेरे साथ नीचे देशों (खाइयों-सुरङ्गों) और सदा से बहते हुए जल (नदियों आदि) को (विद्युच्चालित मोटरों से) पार करें। २

सूक्त ८० । इन्द्र

५५३७ इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥ १
३८ त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान् सुषहान् कृधि ॥ २

हे विद्युत् ! तू हमारे लिए श्रेष्ठ-बलयुक्त-पालक श्रवण-शक्ति और यश सर्वतः धारण करा
हे अद्भुत वज्र-धारक सुन्दर शक्ति-युक्त ! तूने दोनों (अन्तरिक्ष-भूमि) को भर रक्खा है । १
३८ हे दीप्त, प्राकृतिक शक्तियों में उग्र, मनुष्यों के वश में रहने वाली वसु ! हम तुझे ग्रहण
करें तू हमारे सर्व क्लेशों को खण्डन-योग्य और शत्रुओं को सरलता से हारने योग्य कर । २

सूक्त ८१ । इन्द्र (परमेश्वर-विजली)

३९ यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ १
४० आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥ २ [आगे ९२.२ -२१ भी]

हे शक्तिधारी ! जो सैंकड़ों द्यौ और भूमियाँ भी हों तो वे और हजारों द्यु-भू मिल कर भी
तुझ को नहीं पा सकते । १
हे सुख-वर्षक-बली-ऐश्वर्य शाली ! तू अपने बड़े बल से सब सुखदायक पदार्थों में भरपूर है ।
तू इन्द्रियों वाले शरीर में विचित्र रक्षाओं द्वारा हमारी रक्षा कर । २

सूक्त ८२ । इन्द्र

४१ यदिन्द्र यावतस् त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद्दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासाय ॥ १
४२ शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
न हि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता च न ॥ २

हे सम्पत्ति-दाता इन्द्र तू जितने का स्वामी है यदि वैसा ही मैं हो जाऊँ तो तेरे स्तोता को ही दूँ,
पाप करने के लिए नहीं । १
हे धनी-धनों में श्रेष्ठ, मैं प्रतिदिन कहीं भी विद्यमान प्रतिभा-सम्पन्न को ही धन दूँ । तुझ
से अन्य हमारा कुछ पाने योग्य पदार्थ और रक्षक नहीं है । १

सूक्त ८३ । इन्द्र ऋ ३-३५-४

४३ इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥ १
५५४४ ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभि प्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस् तनूपा अन्तमो भव ॥ २

सूक्त ८८ । बृहस्पति । ऋ० ४-५०

५५६०. यस् तस्तम्भ सहसा विज्मो अन्तान् बृहस्पतिस् त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥ १

६१ धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस् ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥ २

६२ बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्व श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥ ३

६३ बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषा परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस् तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥ ४

६४ स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन बलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत् ॥ ५

६५ एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६

६० तीनों लोकों में स्थित बृहस्पति (वायु) अपने बल-शब्द से पृथिवी की सीमाओं को विशेष प्रकार से दृढ़ करती है । उस सुखद शब्द वाली वायु को ऋषि-मेधावी समक्ष रखते हैं । १

६१ हे बृहस्पति ! हममें जो उत्तम ज्ञानी; प्रसन्न हमें सब ओर प्रसिद्ध करते हैं उनके और मेरे रस-सिंचित, ज्ञानयुक्त, अनष्ट-दोष-नाशक शरीर की रक्षा कर । २

६२ हे बृहस्पति ! तेरी जो परम विभूति दूर तक है इससे सत्य-स्पर्शी विद्वान सब ओर विद्यमान हैं । अतः तेरे लिए खोदे गये, मेघ-प्रवाहित कूप-समान मधुर-जल-पूर्ण भण्डार महान् तेरे समक्ष जल सींचते और बहाते हैं । ३

६३ बड़ी ज्योति से परम आकाश में पहले प्रकट हुआ वायु शब्दके साथ अधिक होकर सप्त-रश्मि (सूर्य) और सप्त-जिह्वा (अग्नि) के समान अन्धकार दूर करता है । ४

६४ पदार्थ क्षति-कर्ता; गर्जन-युक्त वह वायु से प्रशंसित वाणी वाले गण के साथ शब्द से निस्सार आवरण को छिन्न-भिन्न करता है और चमकती नदियाँ को बढ़ाता है । ५

६५ इस तरह हम पालक, विश्व-गति-दाता; वर्षाकारी वायु के लिए यज्ञ-आदर-हवियों से सम्मान करें । हे बृहस्पति ! अच्छी पूजा और वीरों से युक्त हम धनों के पति बन जायें । ६

सूक्त ८९ । इन्द्र । ऋ० १०-४२

६६ अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास् तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥ १

५५६७ दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥ २

५५६८ किमङ्ग त्वा मघवन् भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥ ३
६९ त्वाञ्जना ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥ ४
७० धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आ सुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान् प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान् युवति हन्ति वृत्रम् । ५
७१ यस्मिन्वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।
आराच्चित् सन् भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥ ६
७२ आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद् गोमदिन्द्र कृधी धियञ्जरित्रे वाजरत्नाम् ॥ ७
७३ प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन् तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाह दामानं मघवा नि यंसन् नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥ ८
७४ उप प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले ।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः ॥ ९
५५७५-७६ [देखो पहले ५११५-१६ और आगे ५६३०-३१ कुछ पाठ-भेद से]

६६ हे सौम्य उपासक ! तू, अन्न-प्रयोक्ता-समान [illegible] संस्कार बाहर फैंकता हुआ और अपने को भूषित करता हुआ इन इन्द्र के लिए स्तोम पढ़। हे विप्रो ! तुम वाणी से शत्रु-गण को पार करो, तू स्वामी बनकर इन्द्र को प्रसन्न कर। १

६७ हे स्तोता ! तू ज्ञान-दान से सखा की वाणी को शिक्षा दे; स्तुत्य जीव को चौकस कर; धन से भरे कोश-समान शूर को धन-दान के लिए प्रेरित कर। २

६८ हे प्रिय धनी ! तुझे भोजन-दाता क्यों कहते हैं ? मुझे भी दे, मैं तुझको दानी सुनता हूं। हे शक्तिमान ! मेरी बुद्धि कर्म वाली हो, हे इन्द्र ! हमें धन-युक्त ऐश्वर्य दे। ३

६९ हे इन्द्र ! जन तुझको अपने-अपने सत्य सिद्ध करने के लिए स्थिर होकर युद्धों में बुलाते हैं, यहाँ वही तुझको साथी बनाता है जो हवि वाला है, शूर तू [illegible] नहीं करता। ४

७० जो प्रयत्न-शील इस इन्द्र के लिए प्रशस्य धन-समान [illegible] उसके लिए वह दिन के प्रातः जीवन-व्यापी कामादि शत्रुओं और उनके परिणामों को हटा देता है, और अज्ञान-आवरण को नष्ट करता है। ५

७१ जिस परमेश्वर में हम प्रशंसा धारण करते, जो धनी हम में कामना देता है उससे शत्रु दूर-समीप आता हुआ भय मानता है, उसके लिए सब जनों की सम्पत्तियां झुकी रहें। ६

७२ [illegible] दूर-स्थान के शत्रु को हटा। हमें जो आदि अन्न वाला, गौ-युक्त धन दे, स्तोता के लिए अन्न-रत्न वाली बुद्धि कर। ७

५५७३ जिसके अन्दर वर्षा-समान अति रमणीय अनेक भक्ति-रस पहुँच चुके हैं वह [illegible] कर्मों के फन्दे को नहीं जकड़ता; वह सामों के लिए बहुत उत्तम धन देता है। ८

७४ तथा अति-व्यवहार-कुशल प्रहारी को जीत लेता है जैसे भविष्य काल का प्रयत्न-शील समय पर निश्चित कर्मक्षेत्र चुनकर जीतता है। जो देवों की कामना वाला धनको व्यर्थ नहीं रोकता उसे आत्म-धारक शक्तियों के साथ ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। ६

५५७५-७६ [देखो पहले ५११५-१६]

सूक्त ९० । बृहस्पति । ऋ० ६-७३

५५७७ यो अद्रिभिद् प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥ १
७८ जनाय चिद्य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूंरमित्रान् पृत्सु साहन् ॥ २
७९ बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्वरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ३

७७ जो बड़ा सेनापति पहाड़-समान किलों को तोड़ने वाला, पहले आगे प्रकट होकर सच्चा, अङ्गों में रस-समान, हवि-युक्त, दोनों (आत्मिक-भौतिक) शक्ति-युक्त, प्रतप्त स्थानों में रहकर हमारा पालक, बली होकर द्यौ-भूमि में गर्जा करता है। १

७८ जो गति-शील जन के लिए विद्वानों के आह्वान पर स्थान को बनाता है; दुष्टों को मारता है, वह युद्धों में शत्रु जीतता और उनके नगर ध्वस्त करता है। २

७९ वह विजयी सेनापति धन,गौओं-सहित बड़े प्राणी-समूह को सम्यक् जीतता है। वह जल-प्रकाश-युक्त को व्यवस्था करता, प्रतीत न होकर तेजों से अमित्रों को मारता है। ३

अनुवाक ८

विषय — इमां धियमित्यादि०, ते सत्येनेत्यादि०, सत्यामाशिषं कृणुतेत्यादि०, अचेत प्राचेतेत्यादि०, मुदेनो अग्नि वरुणेत्यादि०, इन्द्रं जातमुपासत इत्यादि०, गायन्तित्यादि०; इन्द्राय शूषमर्चतेत्यादि०, शतशारदायेत्यादि पदार्थ-विद्या । —महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती।

सूक्त ९१ । बृहस्पति (ऋ० १० ६७)

५५८० इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्यो ऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥ १
८१ ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥ २
८२ हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पतिरभि कनिक्रदद् गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥ ३
८३ अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस् तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥ ४
५५८४ विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥ ५

५५८५. इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानाङ्करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत् पणिमा गा अमुष्णात् ॥ ६
८६ स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥ ७
८७ ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः ।
बृहस्पतिर्मिथोअवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ॥ ८
८८ तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे ।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ॥ ९
८९ यदा वाजमसनद् विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥ १०
९० सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद्रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥ ११
५५९१ इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य ।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धून् देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ १२

५५८०. हमारा पिता (एक स्वामी ईश्वर) इन ७ गिरों (छन्दों गायत्री-उष्णिक्-अनुष्टुप्-बृहती-पङ्क्ति-त्रिष्टुप्-जगती) वाली, सत्य से प्रकट, ज्ञानमयी वेद-वाणी को देता है। विश्व-जनक वह जीव के लिए बिना श्रम किये वेद कथन करता हुआ चौथाई ज्ञान ही प्रकट करता है । १

८१ प्रज्ञानी देव के ज्ञानी वीर पुत्र सत्य-सरल वेद के वक्ता ध्यान करते हुए, विप्र पद धारण कर यज्ञ की प्रथम ज्योति का मनन करते हैं । २

८२ हंस-समान बोलते हुए सखाओं के द्वारा, लोहा-समान कठोर अविद्या-बन्धन काटता हुआ बृहस्पति विद्वान् वाणियाँ प्रस्तुत करता, कथन करता और गाता है । ३

८३ परमात्मा असत्य के पुल (पारकर्ता) अपने में छिपी वेद-वाणियाँ दो और एक प्रकार से (पद्य-गीत-गद्य, ऋक्-साम-यजु) को और अन्धकार में ज्योति चाहता हुआ तीन प्रकाशों [सूर्य-अग्नि-बिजली] को प्रकट करता है । ४

८४ परमात्मा प्रलय में सोती हुई [प्रकृति] को भेदन कर स्वतः तीन को मानो अपने उदधि काटकर एक साथ निकालता है। गर्जते द्यौ-समान वह उषा-सूर्य-पृथिवी-मन्त्र हमें देता है । ५

८५ इन्द्र [परमेश्वर] दुह जाने वाले जल के आवरक-रखने वाले मेघ को हाथ-समान विजली-गर्जना से काट कर जल गिराता है मानो जल-कणों से भोजन-निर्माण की इच्छा करता हुआ व्यवहारी बनिया-मेघ को रुलाता और उसका गौ-जल चुरा [छीन] लेता हो । ६

८६ वही ब्रह्मणस्पति सत्य-पवित्र-धनदाता-उत्तम आहार वाले सखाओं (ऋषि-मेघों) द्वारा भू-धारक वेद-जल को खोल देता है और ज्ञान-धन को फैलाता है । ७

८७ वे सच्चे मन से वेद-पति से वाणी को पाते हैं जो बुद्धि-कर्मों से उसे खोजते हैं। परमात्मा और आचार्य अपने योगी, परस्पर अकथनीय आनन्द-रस-पायी मित्रों द्वारा वेद-किरणें फैलाता है। ८

८८ सह-स्थान (हृदय) में सिंह-समान अन्तर्नाद करने वाले उसे कल्याणी बुद्धि-कर्मों से बढ़ाते हुए हम प्रत्येक सङ्घर्ष में शूर काम आदि के नाश के लिए अनुकूल रहकर हृष्ट रहें । ९

८९ परमात्मा जब नाना बल देता है तो उपासक उत्तर-उत्तर द्यौ (मूलाधार से मूर्धा- सहस्रार चक्र) तक बढ़ जाता है । नाना योगी सुख-वर्षी को मुख से बढ़ाते हुए ज्योति धारण करते हैं । १०

९० हे मनुष्यगण! वयो-वृद्धजन से सच्चे आशीर्वाद लो, अपने यत्नों से ही कर्ता को पाओ। पीछे सभी शत्रु छुट जाएँगे । विराट् के पाने वाले स्त्री-पुरुष इन्हें सुनें । ११

९१ इन्द्र महिमा द्वारा बड़े जलद समुद्र अन्तरिक्ष का सिर(मेघ) भेदन करता है, मेघको मार सर्पणशील नदियाँ बहाता है, द्यावा-पृथिवी दिव्य शक्तियों द्वारा हमारी रक्षा करें । १२

सूक्त ९२ । इन्द्र ॥ ऋ. ८-६९.४-१८ । ८.७ .१-६

५५९२ अभि प्र गोपतिङ्गिरेन्द्रमर्च यथाविदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ १

९३ आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि सं नवामहे ॥ २

९४ इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥ ३

९५ उद्यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि । मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ४

९६ अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत । अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ५

९७ अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् । पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ६

९८ आ यत् पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः । अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥ ७

९९ अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत ।
वरुण इदिह क्षयत् तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥ ८

५६०० सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः । अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥ ९

१ यो व्यतींरफाणयत् सुयुक्ताँ उप दाशुषे । तक्वो नेता तदिद्वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥ १०

२ अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः । भिनत् कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥ ११

३ अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम् । स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥ १२

४ आ तू सुशिप्र दम्पते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।
अधा द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् ॥ १३

५ तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते । अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥ १४

६ अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम् । पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ॥ १५

७ यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः । विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ १६

८ इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥ १७ [आगे ५६८३]

९ नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् । इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्ण्वोजसम् ॥ १८

१० अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः ॥ १९

५६११-१२ [देखो पहले ५५३९-४०] २०-२१

सूक्त ९२ । इन्द्र

५५९२[हे मनुष्य]तू यथार्थ-ज्ञान के लिए पृथिवी-पति सत्य-प्रेरक सत्य-स्वामी इन्द्र की अर्चना कर। १

९३ आकाश में अरुण किरणें, हृदयाकाश में मनो-हारी ज्ञान-किरणें प्रकट होती हैं जहाँ हम मिल कर उपासना करें। २

९४ शस्त्र-धारी शासक के लिए गौएँ मधुर दूध दुहाती हैं जब वह उन्हें रण-मैदान में रखता है।३

९५ जब शासक और मैं महान् सन्ताप-रहित घर पहुँचें तब मधुर रस पीकर मित्रता के ७ पद तीन बार चलकर सखा हो जायें। इसी प्रकार ईश्वर-योगी दोनों २० पद (१० इन्द्रिय, ५ भूत और ५ तन्मात्रा पार कर २१ वें पद (अन्तःकरण) में सखा हो जाते हैं। ४

९६ हे मेधा के प्यारो! तुम और छोटे पुत्र भी धषक ब्रह्मको अपने शरीर-समान अर्चना करो। ५

९७ जब इन्द्र के लिए वेद-मन्त्र उद्यत हो तब गर्गर [स्तोता, नारङ्गी] स्वर निकाले, गोधा [स्तोता की धात्री, माता, सितार-वीणा] बार-बार शब्द करे, पिङ्गा [पीले केसरिया वस्त्र वाली उपासिका, तबला-मृदङ्ग-ढोलक आदि] सर्वत्र घूमे। ६

९८ जब गति-शील, कामना-पूरक निश्चल अन्य [बुद्धियाँ और गौएँ] आती हैं तब इन्द्र [जीव] की रक्षा, और पीने के लिए स्थिर सोम [ज्ञान-दूध] प्राप्त किया करो। ७

९९ इन्द्र-अग्नि-सब देव सोम तत्त्व पीकर हृष्ट होते हैं, वरुण [परमात्मा] यदि यहाँ धर जाये तो उसे आपः [प्राण, ७ इन्द्रिय-मन-बुद्धि-विद्या, आप्त पुरुष-स्त्रियाँ] सब ओर से चाहने लगते हैं जैसे वृद्धि चाहने वाली माताएं बच्चे को चाहती हैं। ८

५६०० हे वरुण [परमात्मा-विद्वान्-शब्द]! तू सुन्दर देव है जिसे तेरे ७ सिन्धु [प्रवाह छन्द-स्वर-विभक्तियाँ-लोक-धातुएँ] तालु वाले मुख में प्रवाहित होते हैं जैसे लहरों वाला जल खड्ड की ओर जाता है या अग्नि खोखली आग में घुसकर प्रज्वलता है अथवा भट्टों में घुसता है [पतञ्जलि ने महाभाष्य आह्निक १ में यह अर्थ दिया है]। ९

५६०१ जो परमात्मा विविध चलते रहने वाले उत्तम पदार्थों को आत्म-दानी के लिए उत्पन्न करता और दुःखों से शरीर छुड़ाता है वही व्यापक-नेता-उपमारूप है। १०

२ वह बली इन्द्र सब द्वेष दूरकर बन्धन से छुड़ाता है। कान्तिमय व परिपक्व कर्म-फल की वेदवाणी द्वारा भेदन करता है। ११

३ नया शरीर-धारी शिशु बड़ा कुमार होकर यदि बुरे कर्म करता है तो अगले जन्म में भँवा-हिरत माता-पिता पाकर अनेक पशु-कर्म करता है। १२

४ हे सुमुख-सुकर्मी इन्द्र! तुम ज्ञान-पुरुषार्थ-पथ पर बढ़ा तथा निश्चय करो कि इस व्यवहार-समर्थ, हजारों पैरों की शक्तिवाले, द्युतिमान्-रोष-रहित-कल्याणी-निष्पाप ईश्वर की उपासना करें। १३

५ उसे नमस्कार करने वाले स्वयं प्रकाशमान ईश्वर की सेवा पूजा करते हैं कि उसका उत्तम धन पाकर दान में लगाते हैं। १४

६ इन उपासकों में मेधाप्रिय द्रव्य-यज्ञ छोड़कर दिन में प्रयत्नशील होकर अनादि-नवप्रिय के अनुकूल पूर्वागत आध्यात्मिक प्रयत्न (योग) में लगे रहते हैं। १५

७ जो मनुष्यों का राजा रमणीय गतियों से सर्वत्र बेरोक पहुँचा हुआ है और जो सब दुष्टों का पराजय-कर्ता, ज्येष्ठ और पाप-नाशक है उनकी मैं स्तुति करता हूं॥ १६

५६०८ हे बड़े ज्ञानी! तू रक्षा के लिए उन इन्द्र को सोमा बढ़ जिनको विशेष धारण कर दोनों तो स्थित हैं और जिनने नारी-हनन के लिए व्याघ्र-वज्र दोनों में युग-समान धारण किया हुआ है। १७

[आगे भी ५६८२-८३]

५६०९ कोई किसी कर्म से उसकी महिमा नहीं पा सकता जो सदा वृद्धि करता है। विश्व में उसमें प्रकाशमानः बुद्धिमानों से ग्राह्य, अजेय-निर्भय ओज वाले इन्द्र तक यज्ञों से कोई नहीं पहुँचता। १८

१० जिस उत्पन्न संसार में महावेग-युक्त पृथिवियाँ हैं उसीमें वेद-वाणियाँ, बड़े प्रकाशमान सूर्य-नक्षत्र-तारे- सभी उस अजेय-उग्र-संग्रामों में जिताने वाले परमेश्वर की ही स्तुति करते हैं। १९

५६११-१२ [देखो पहले ५५३९-४०]. २०-२१

सूक्त । ९३ इन्द्र

१३ उत्त्वा मदन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १

१४ पदा पणींरराधसो नि बाधस्व महाँ असि । नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २

१५ त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥ ३

१६ ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रञ्जातमुपासते । भेजानास सुवीर्यम् ॥ ४

१७ त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं वृषन् वृषेदसि ॥ ५

१८ त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिरः । उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥ ६

१९ त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः । वज्रम् शिशान ओजसा ॥ ७

५६२० त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा । स विश्वा भुव आभवः ॥ ८

१३ हे अदीर्ण बिजली ! तुझे स्तोम हृष्ट करें, धन उत्पन्न कर, ब्रह्म-द्वेषियों को मार। १
[मन्त्र १-३ ऋ० ८.६४.१-३ में हैं।]

१४ तू अपनी व्याप्ति से निर्धन कु-वनियों को रोक, तेरे-समान कोई नहीं है। २

१५ तू उत्पन्न-अनुत्पन्न (परमाणुओं) की स्वामिनी और जनों की राजा (दीप्ति-दायक) है। ३

१६ चाहती, प्रगतिशील प्रजा उत्पन्न इन्द्र बिजली) पास रखती हैं, व उत्तम पराक्रम का सेवन करती हैं। ४

१७ हे इन्द्र (बिजली) ! तू बल-ओज-पराक्रम से अधिक उत्पन्न होती है, बली और सुख-वर्षा है। ५

१८ ,, तू अन्धकार-नाशक; अन्तरिक्ष-व्यापक है, ओज से द्यो को स्तम्भित करती है। ६

१९ ,, तू ओज से शस्त्रास्त्र तीक्ष्ण करती हुई दो बाहु (ऋण-धन) से सूर्य को धारण करती है। ७

२० ,, तू ओज से सभी उत्पन्न पदार्थों को वश में रखती है, सब भूमियों में व्याप्त है। ८

सूक्त ९४ । इन्द्र । ऋ० १०-४४

५६२१ आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस् तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अतिविश्वा महांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥ १

२२ सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥ २

२३ एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥ ३

२४ एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्ज स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सङ्गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥ ४

५६२५ गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ॥ ५

५६२६ पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयो ऽकृण्वत श्रवस्या नि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥ ६

२७ एवैवापागपरे सन्तु दूढ्यो ऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥ ७

२८ गिरींरज्रान् रेजमानाँ अधारयत् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥ ८

२९ इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन् बोध्याभगः ॥ ९

६३०-३१ [देखो पहले ५११५-१६ और ५५७५-७६]

५६२१ स्वयं स्वामी इन्द्र सम्राट् हमारे आनन्द के लिए आये जो धर्म से पालता अनेक पदार्थों का स्वामी है वह अपार साहस से शत्रुओं का नाशक हो। १

२२ हे नरपति! तेरा रथ उत्तम-स्थिर हो, दोनों घोड़े सधे हों, हाथ में वज्र हो, हे राजा, तू सुमार्ग से शीघ्र सामने आ; हम तेरे सामर्थ्य का वर्धन करें। २

२३ राजा के वाहक उग्र-हृष्ट-महान्-आनन्दित हों जो उस उग्र-वज्री-सज्जन-धुर्वर्षी को हमारे मध्य लाएँ। ३

२४ इस प्रकार पति, शत्रु-नाशक-सचेत;-बल-स्तम्भ राजा को धारण करने में तू समर्थ हो। पराक्रम कर, ओज-संग्रह कर जो तुझ में रहे जिससे तू वृद्धि के लिए बुद्धिमानों का स्वामी हो। ४,

२५ हमें धन मिले, मैं चाहता हूं कि तू मुझ सोमी के युद्ध में आये। इस आसन पर विराज तेरे रक्षा-साधन धर्म-सहित अजेय हैं। ५

२६ विद्वानों की श्रेष्ठ पुकारें अलग-अलग आती हैं। वे कठिन कार्य करते हैं। जो यज्ञ की नाव पर नहीं चढ़ सकते वे दुराचारी मार्ग में ही पड़े रहते हैं। ६

२७ ऐसे ही दूसरे दुर्बुद्धि पीछे रह जाते हैं जिन के अश्व बँधे ही रह जाते हैं। इनसे भिन्नों के कर्म-भोजन आदि साधन बहुत हैं वे दान में आगे रहते, अधिक ज्ञान-धन पाते हैं। ७

२८ वह सम्राट् कम्पित पर्वत-द्यो-अन्तरिक्ष को धारण-प्रकाशित-व्यवस्थित करता है, भक्त का सोम पीकर हर्ष में वेद-वाचन करता है। ८

२९ हे वज्री! मैं तेरा सुकर्मा अनुशासन मानता हूं जिससे तू शान्ति-भञ्जक कुकर्मियों को नष्ट करता है। इस सवन में तेरा वास हो। हे धनी, तू इस यज्ञ-सोम में भागी बन, हमें जान। ९

५३३०-३१ [देखो पहले ५११५-१६ और ५५७५-७६] १०-११

सूक्त ६५ । इन्द्र । ऋ० २.२२.१, १०.१३३.१-३

५६३२ त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस् तृपत् सोममपिबद् विष्णुना सुतं यथावशत् । स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ १

५६३३ प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत । अभीके चिदु लोककृत् सङ्गे समत्सु
वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ।। २
३४ त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् । अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि
वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ।। ३
५६३५ वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः । अस्तासि शत्रवे वधं यो न
इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ।। ४

५६३२ महान् बली, तीन (शरीर-आत्मा-समाज) की उन्नतियों के विधानों में तृप्त सम्राट् यज्ञ-सम्पादित अन्न-युक्त सोम यथेच्छ पीता है, जो उस महान को बड़े कार्य करने के लिए हृष्ट करता है। वह दिव्य-सच्चा सोम इस देव सच्चे इन्द्र को मिलता है। १

३३ इस राजा की रथ-युक्त शक्ति देकर अर्चना करो। वह पास में ही स्थान कर संग्रामों में शत्रु-हन्ता, हमारी कामना जान लेता है कि शत्रुओं की धनुष-डोरियाँ टूट जायें। २

३४ हे इन्द्र! तू नहरें नीची कर फैलाता है; विघ्न नष्ट करता, शत्रु-रहित हो जाता; वरणीय अन्नादि पुष्ट करता है। हमारी कामना...[शेष पूर्वसमान]। ३

३५ हे सम्राट्! हमारी सब अरि रूपी कृपणताएँ और बुरे कर्म नष्ट हों। जो हमें मारना चाहता है उस पर तू शस्त्र चलाता है। तेरी दान-शक्ति धन देने वाली है। हमारी कामना.. (शेष पूर्ववत)

सूक्त ९६ (क)। इन्द्र। ऋ० १०-१६०, १-५

३६ तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च ।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतासः ।। १
३७ तुभ्यं सुतास् तुभ्यमु सोत्वासस् त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ।। २
३८ य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।
न गा इन्द्रस् तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ।। ३
३९ अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम् ।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ।। ४
४० अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।
आभूषन्तस् ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ।। ५

(ख) यक्ष्म-नाशन (पहले ३-११ में)

४१ मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ।। ६
५६४२ यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ।। ७

५६४३-४४ [देखो पहले ३.११.३-४] ८-६

४५ आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः। सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥ १०

९६ ग ऋ १०.१६२.१-६

४६ ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः। अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥ ११

४७ यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये। अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥ १२

४८ यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम्। जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १३

४९ यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये। योनिं यो अन्तरारेढि तमितो नाशयामसि ॥ १४

९६ घ

५० यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते। प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि

५१ यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा " ॥१६

५२-५८ [देखो पहले २.३३.१-७] १७-२३

५९ अपेहि मनस्पतेऽप क्राम परश्चर। परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥ २४

सूक्त ९६- ५६३६ हे चिकित्सक और सूर्य ! इन तीव्र-वेगी-युवा रोगी की रक्षा कर, सब के लिए रमणीय रोग-हरण-शक्ति (धारणाकर्षण गुण) यहाँ प्रयुक्त कर । तुझे छोड़कर अन्य यज्ञ-कर्ता यह नहीं जानते । ये सोम तेरे प्रयोगार्थ हैं । १

३७ हे चिकित्सक ! ये सिद्ध किये और किये जाने वाले सोम तेरे लिए हैं, उन्हें सेवन कराता तू सबको जानता हुआ सोम की रक्षा कर । २

३८ जो दिव्य गुण चाहने वाला अभिलाषी मन से इस के लिए पूरे हृदय से सोम तय्यार करता है वह इन्द्र उसकी वाणियाँ नहीं टालता, इसके लिए प्रशंसनीय-उत्तम व्यवहार ही करता है । ३

३९ जो नहीं इस के लिए साम नहीं तय्यार करता उसके लिए वह अप्रकट रहता है; उसे कुछ दूर ही रखता है और ब्रह्म-द्वेषियों को बिना कहे मारता है । ४

४० प्राण-गौ-भूमि-बल चाहते हुए हम तुझे पाने के लिए बुलाते हैं । तेरी नयी सुमति में आभूषित रहकर हम हे इन्द्र ! तुझको सुख से बुलायें । ५

४१-४४ ९६ ख । यक्ष्म-नाशन । [देखो पहले ३.११.१-४] । ६-९

४५ हे सर्वाङ्ग! मैं तुझ को मौत से छीनता-बचाता हूं, फिर नया होकर आ, तेरा सब दृष्टि-आयु पाऊँ १०

९६ ग

४६-४७ (हे स्त्री !) जो रोगोत्पादक बुरे परिणाम वाला क्रिमि तेरी गर्भ-यानि में सोया हो उस मांसभक्षी को यहाँ से ब्रह्म (गूलर) के साथ क्रिमि-नाशक अग्नि(चीता नामक औषधि)दूर करे । ११-१२

४८ जो तेरा गिरता-स्थिर-सरकता-उत्पन्न गर्भ नष्ट करे उस क्रिमि को यहाँ से नष्ट करें । १३

४९ जो क्रिमि तेरे उरुओं के मध्य हो, दम्पती में सोया हो, योनि में चाटता उसे यहाँ से नष्ट करें ।१४

५०-५१ जो व्यभिचारी धोखे का भाई-पति होकर,सोती,अँधेरे बेहोशी में तुझ पर गिरे, तेरी सन्तान को मारना चाहे उसे यहाँ से नष्ट करें । १५-१६

५२-५८ [देखो पहले २.३३ १-७] । १७-२३

५५९ हे मन के पति बने पाप ! अलग हट जा, दूर जा, परे जा । कष्ट से भी कह दे कि तू दूर हो, जीवित का मन बहुत प्रकार का होता है । २४ ऋ० १०-१६४-१

अन्तिम प्रपाठक ३६ का अनुवाक ९

विषय— भूषतीत्यादि०, त्वं दाता प्रथम इत्यादि०, यो राजेत्यादि०, स्वादोरित्यादि०, प्रतिमानादि०, इमा ब्रह्म वृहदित्यादि०, अथर्वाचत्स्वा तन्वमिन्द्रमेवेत्यादि०; वितन्वते प्रति भद्राय मदमित्यादि०, विश्वस्मादिन्द्र उत्तर इत्यादि०; वृषाकपायीत्यादि०, य एष स्वप्न-नंशन इत्यादि० पदार्थ विद्या, यद्वा वागीत्यादि०; ऋतयेत्यादि०, मधुमानित्यादि पदार्थविद्या। —म० द० सरस्वती।

सूक्त ९७। इन्द्र। ऋ० ८.६६,७-९ साम २७२; १६६१

६० वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम्।

तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते॥१

६१ वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति।

सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया॥ २

६२ कदू न्वस्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम्।केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा॥३

६० हम यहां इस वज्री को ही सोम पिलाते हैं, तू मन से आज (सदा) उसी के लिए सोम दे। उसकी विजय सुनने पर निश्चय ही उसे आभूषित करो। १

६१ इसके कर्मों में भेड़िया-हाथी-समान अति व्यथाकारी दुष्ट भी इसे भूषित करता है। हे इन्द! वह तू हमारा यह स्तोम स्वीकार करता हुआ विचित्र बुद्धि-कर्म के साथ आ। २

६२ इस इन्द के पौरुष-युक्त कार्य कब नहीं सुने गये? इस दुष्ट-नाशक ने किस जन की वेद-सम्मत बात नहीं सुनी? ३

सूक्त ९८। इन्द्र। ऋ० ६-४६,१-२, यजु २७-३७-३८; साम २ ४,८०९

६३ त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः।त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वत

६४ स त्वं न श्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः।

गामश्वं रथ्यमिन्द्र सङ्किर सत्रा वाजं न जिग्युषे॥ २

हे अभियन्ता! हम कारीगर बल पाने के लिए अज्ञानों में सच्चे पति तुझको ही पुकारते हैं २ दुःखी नर कष्ट की पराकाष्ठा में तुझ को ही बुलाते हैं। १

हे विचित्र वज्रधारी महान् स्तुत! वह तू हमें, विजेता के लिए सच्चे अन्न-बल-समान, गो और रथ-युक्त अश्व दे। २

सूक्त ९९। इन्द्र (विद्युत्) (८-३-७;८) साम २५६; १५७३-७४

६५ अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः।समीचीनास ऋभवःसमस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्॥

६६ अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि।

अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा॥ २ यजु। ३३-९७

हे बिजली! उत्तम मेधावी मनुष्य और क्षत्रिय तुझे सुख पाने के लिए, स्तुतियों द्वारा स्वर सहित गाते हैं। १

विजली ही इस उत्पन्न जीव का सुख-वर्षी बल व्यापक आनन्द में बढ़ाती है। उसकी यह महिमा मनुष्य सदा ही अनुकूलता से वर्णन करते हैं। २

अथर्ववेद

सूक्त १०० । इन्द्र । ऋ. ८-९८.७-९ । साम उ १.१.२३

५६६७ अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान् महः ससृज्महे । उदेव यन्त उदभिः ॥ १

६८ वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि । वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवे दिवे ॥ २

६९ युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे । इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ ३

सूक्त १०० । इन्द्र । ५६६७ हे वाणी-भजनीय बिजली ! हम सदा महा कामनाएँ तेरे साथ पूरी करते हैं जैसे जल जल के साथ मिलता है । १

६८ हे शूर-प्रेरक ! विज्ञान तुझ वृद्धिकारी को दिन-दिन बढ़ाता है जैसे नदियों से जल को । २

६९ बिजली-वाहक वेद-युक्त जन बड़े यन्त्र वाले रथ में दो (धारक-प्रेरक) शक्तियाँ जोड़ते हैं ।

सूक्त १०१ । अग्नि । (१.१२.१-३), साम ७९०-७९२

७० अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १

७१ अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २

७२ अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥ ३

सूक्त १०१- अग्नि । (१.१२.१-३), साम३ । ७० इस यज्ञ के उत्तम विधाता-ज्ञापक, देने-लेनेवाले सब धन के दाता अग्नि (अग्रणी ईश्वर, प्रकाशमान आग-बिजली-सूर्य) को हम वरण करें । १

७१ मनुष्य प्रजा-पति, हव्य के वाहक सर्व-प्रिय आगे ले जानेवाले अग्नि को मन्त्रों से सदा बुलाते हैं । २

७२ हे अग्नि ! आकाश में पहुँचाने वाले चालक और याज्ञिक के लिए ज्ञात हुआ तू देवों (दिव्य गुणों-पदार्थों-विद्वानों) को यहाँ पहुँचा । तू हमारा प्रशंसनीय होता (सुख-दाता) है । ३

सूक्त १०२ । अग्नि । (३.२७.१३-१५) साम १५३८-४०

७३ ईळेन्यो नमस्यस् तिरस् तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ॥ १

७४ वृषो अग्निः समिध्यते ऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईळते ॥ २

७५ वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ ३

अग्नि (३-२७-१३-१५) ७३ स्तुत्य-नमस्य, तम-नाशक-दर्शनीय, सुख-वर्षी अग्नि दीप्त हो । १

७४ अश्व-समान देव-वाहक, सुख-वर्षक अग्नि दीप्त की जाती है, हवि वाले उसकी स्तुति करते हैं ।

७५ हे सुख-वर्षी अग्नि ! बली हम तुझ बली, बड़े देदीप्यमान को दीप्त करते हैं । ३

सूक्त १०३ । (८.७१.१४-१६) साम पू १-५-६

७६ अग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
अग्निं राये पुरुमीळ्ह श्रुतं नरो ऽग्निं सुदीतये छर्दिः ॥ १

७७ अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥ २

५६७८ अच्छा हि त्वा सहसः सूनोअङ्गिरः स्रुचश् चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहे ऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ ३

अग्नि। (८.७१.१४) ५६७६ हे ज्ञान-सिंचित! रक्षा के लिए गाथाओं से बड़े प्रकाश-युक्त विद्यु-अग्नि का वर्णन कर। नेता होकर तू क्लेश-क्षय-करणार्थ घर-समान नेता खोज १
७७ हे विद्वान्! तू अग्नियों के साथ आ, तुझको होता (विद्या-दानी) रूप में वरण करते हैं। संयमी-हवियुक्त जन तुझ याज्ञिक को स्वीकार करें; तू आसन पर बैठ। २
७८ हे बल-प्रेरक, अन्न-रस अग्नि! यज्ञ में स्रुवा आदि पात्र तुझको ही लक्ष्य करके चलते हैं। हम बल-रक्षक, यज्ञों में श्रेष्ठ अग्नि (ईश्वर) से जल-प्रकाश माँगा करें। ३

सूक्त १०४ । इन्द्र। (८.३.३-४)साम २५०; १६०७ यजु ३३.८१-८३

७९ इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितो ऽभि स्तोमैरनूषत ॥ १
८० अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ २
८१ आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥ ३
८२ त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ ४

७९ हे महाबली-पालक (बिजली-सूर्य)! तुझको ये मेरी वाणियाँ विख्यात करें। अग्नि-समान तेजस्वी और पवित्र विद्वान् स्तोमों से तेरी सब ओर से प्रशंसा करते हैं। १
८० यह हजारों मन्त्र-द्रष्टाओं से साहस-धैर्य-पूर्वक साक्षात् किया जाता है और समुद्र-समा फैला हुआ है, इसकी महिमा सत्य है, विप्र-राज्य में उत्तम व्यवहारों में उसके बल को सराहता हूं।
८१ हमारा सब युद्धों में बुलाया गया दुष्ट-नाशक उत्तम-धनुष, पूज्य इन्द्र मन्त्र-यज्ञ भूषित करें।
८२ तू पहला धनों का दानी, सच्चा ऐश्वर्य-युक्त कर्ता है। महाधनी कष्ट-नाशक तेरे महान् बल के योग्य कर्मों को हम वरण करते हैं। ४ [दो मन्त्र ऋ० ८.९०.१-२साम २६९, १४९२]

सूक्त १०५ । इन्द्र। (८.९९.५-७), यजु ३३-६७, साम ३११, १६३७

८३ त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ १
८४ अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ २
८५ इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥ ३[साम पू ३-१०-१]
५६८६-८७ [पहले ५६०७-८] ४-५

५६८३ हे सेनापति! तू युद्धों में सब शत्रु-सेनाएं हराता है, अयश-नाशक, सुखोत्पादक, पाप-विनाशक है। हमारे हिंसकों का नाश कर। १

५६८४ हे इन्द्र ! द्यौ-भूमि (की सेनाएँ) तेरे संहारकारी-वेगयुक्त बल के पीछे चलती हैं जैसे माता-पिता शिशु के पीछे रक्षार्थ चलते हैं । तेरे मन्यु से सब शत्रु ढीले पड़ जाते हैं जब तू घेरने वाले दुष्ट का नाश करता है । २

८५ हे मनुष्य ! तुम्हारी रक्षार्थ युवा-प्रेरक, न दबने वाले, स्फूर्ति-युक्त, शीघ्र विजयी, प्रगति-युक्त, महारथी, जल-सेना के बढ़ाने वाले सेनापति का वर्णन करता हूं । ३

८६-८७ [देखो पहले ५६०७-८] ४-५

सूक्त १०६ । इन्द्र (८.१५.७-६), साम ३ ८-१-११

८८ तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत क्रतुम् । वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ १

८९ तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः । त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ २

९० त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः । त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३

८८ हे बिजली ! तेरा बड़ा ऐश्वर्य है, वेद-वाणी उन बल-कर्म-शक्ति का वर्णन करती है । १

८९ ;; द्यौ तेरा बल और पृथिवी यश बढ़ाती है । जल और मेघ तुझे बढ़ाते हैं । २

९० ,, बड़े ऐश्वर्य-शाली सूर्य-जल (हाइड्रोजन-आक्सीजन), वायु-बल तेरे पीछे चलते हैं । ३

सूक्त १०७ । इन्द्र-सूर्य (८-६-४-६) साम ३ ८-१-१३

९१ समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ॥ १

९२ ओजस् तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ २

९३ वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा । शिरो बिभेद वृष्णिना ॥ ३

१५९४-५७०४ [देखो पहले ५-२-१-६ और १३-२-३४--१५] ४-१४

५७०५ सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।

यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ [ऋ१.११५.२] १५

९१ सब कृषक इन इन्द्र के मन्यु के आगे झुकते हैं जैसे नदियाँ समुद्र के आगे । १

९२ इस इन्द्र(सूर्य)का ओज तब प्रकट होता है जब वह द्यौ-पृथिवी को चम-समान लपेटे रहता है । २

९३ यह कँपाने वाले मेघ का सिर सैकड़ों पर्व के वज्र (किरणों) से छिन्न-भिन्न कर देता है । ३

९४-५७०४ [देखो पहले ५.२.१-६ और १३.२.३४-३५] ४-१४

५ सूर्य प्रकाशमान उषा देवी के पीछे प्रकट होता है जैसे पति पत्नी के पीछे । जहाँ ज्योतिषी नर (गणित के) व्यवहार की कामना करते हुए कल्याण के लिए युगों को गिन कर सुख फैलाते हैं । १५

सूक्त १०८ । इन्द्र [परमेश्वर] ऋ० ८-९८-१०-१२

६ त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे । आ वीरं पृतनाषहम् ॥ १

७ त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ । अधा ते सुम्नमीमहे ॥ २

८ त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ३

६ हे सैकड़ों कर्म वाले विश्व-द्रष्टा इन्द्र ! तू हमें ओज-बल-धन और संग्राम-जेता वीर सन्तान दे । १

७ ,, सर्वत्र बसे ! तू ही हमारा पिता-माता है, अतः तेरा सुख माँगते हैं । २

८ ,, , बली, बहुत नाम वाले ! मैं प्रार्थना करता हूं कि वह तू हमें उत्तम वीरता दे । ३

सूक्त १०६ । इन्द्र । ऋ० १-८४,१०-१२ साम १००५-७

५७०६ स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १
१० ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकम् " ॥ २
११ ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये " ॥ ३

९ इस प्रकार जो पृथिवियाँ वर्षा-कारी सूर्य के साथ गति वाली हैं वे स्वादु मधुर रस पीती और शोभा के लिए हृष्ट होती हैं । वे स्वदीप्ति के लिए वसु (सम्पत्ति) रूप हैं । १

१० इस सूर्य की स्पर्श चाहती-करती, हृष्ट करती प्रिय किरणें औषधि-रस सिद्ध करतीं हैं, ताप-वज्र-बाण को देतीं हैं । वे स्वदीप्ति... (शेष पूर्ववत्) । २

११ चेतना-दायक वे उसकी किरणें अन्न के साथ सहन-शक्ति देती हैं । वे पूर्व-ज्ञान कराने के लिए बहुत नियमों को प्रगति देती हैं । वे स्वदीप्ति ... (शेष पूर्ववत्) । ३

सूक्त ११० । ऋ० (८.९२.१९-२१) साम उ० १-२-४

१२ इन्द्राय मद्वने सुतम्परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १
१३ यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः । इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २
१४ त्रिकद्रुकेषु चेतनन्देवासो यज्ञमत्नत । तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥ ३

१२ हृष्ट शासक के लिए हमारी वाणियाँ उसके ऐश्वर्य की प्रशंसा करें, कारीगर पूज्य को पूजें ।१
१३ जिसमें सब शोभा-सम्पत्तियाँ, ७ की संसदें प्रसन्न रहती हैं उस सम्राट् को अभिषेक पर बुलाएँ ।२
१४ तीन स्थानों (विधान-न्याय-कार्यपालिका) में चेतना-दायक जिस यज्ञ (सङ्गठन) को विद्वान् बढ़ाते हैं उसी को हमारी वाणियाँ बढ़ाएँ । ३

सूक्त १११ । इन्द्र । (ऋ० ८-१२;१६-१८) यजु ३३-३५ साम ३८४

१५ यत् सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये । यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ १
१६ यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे । अस्माकमित् सुते रणा समिन्दुभिः ॥ २
१७ यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते । उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥ ३

हे सूर्य ! जो सोम यज्ञ-द्यौ-अन्तरिक्ष-हवाओं में है उसके रसों से तू हृष्ट होता है । १
हे शक्ति-शाली ! जो सोम दूर तक फैले समुद्र-अन्तरिक्ष में है उससे तू हृष्ट होता ; हमारे भी उत्पादित सोम के रसों से तू हृष्ट हो । २.
हे सच्चे पति ! तू जिस सोमी यजमान को बढ़ाता और जिसके कथन में तेरा महत्त्व प्रतिपादित होता है उसे ऐश्वर्यों से आनन्दित कर । ३

सूक्त ११२ । इन्द्र । ऋ० ८.९३,४-६ साम पू २-४-२ यजु तेतीस-पैंतीस

५७१८ यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ १
१९ यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे । उतो तत् सत्यमित् तव ॥ २
२० ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । सर्वांस्ताँ इन्द्र गच्छसि ॥ ३

हे अन्धकार-मेघ-नाशक ! सदैव जब तू उदय होता है तब सब कुछ तेरे ही वश में होता है। १
ओ सत्य-पति महान् ! यदि तू मानता है कि मैं न मरूँ तो वह बात सत्य हो । २
जो सोम दूर या पास में (यज्ञ-द्वारा) सम्पन्न किये जाते हैं उन सब को तू पाता है।

सूक्त ११३ । इन्द्र ऋ ८-६१-१-२ साम ३ ५-१ -१४

५७२१ उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १
२२ तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥ २

सम्राट् हमारा दोनों पक्षों का वचन सुने, महाधनी-बली वह सच्ची बुद्धि-सहित सोम-पानार्थ आये ।१
उनी बली-सुखवर्षक राजा को बल-पराक्रम के कारण, भूमि-आकाश-समान; शासित-शासक को दो समितियां निर्वाचित करें । क्योंकि तेरा मन सोम-कामी है अतः उत्तमों में प्रथम होकर रह । २

सूक्त ११४ इन्द्र ,(ऋ ८-२१-१३-१४) साम ३ ६-२-५

२३ अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि। युधे दापित्वमिच्छसे । १
२४ नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित् पितेव हूयसे ॥ २

हे परमेश्वर ! सदा स्वभाव से भतीजा-शत्रु-शरीर-बन्धु-रहित तू युद्ध से सम्बन्ध चाहता है ।१
तू धन-लालची को मित्र नहीं स्वीकार करता । वे सुरा के भोगी प्रजा को सताते हैं । जब तू गर्जना-संहार करता है तभी उनके द्वारा पिता-समान पुकारा जाता है । २

सूक्त एक सौ पन्द्रह । इन्द्र ऋ ८.६.दस-बारह । साम ३ ७-१-५

२५ अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ । अहं सूर्य इवाजनि ॥ १
२६ अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् । येनेन्द्रः शुष्मसिद् दधे ॥ २
२७ ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ३

मैं पिता परमेश्वर का सत्य-ज्ञान और बुद्धि पाता हूं, मैं सूर्य-समान हो जाऊँ ।१
मैं उस पूर्व-ज्ञान से, मेधावी-समान, वाणियाँ शोभित करूँ जिससे जीव बल धारण करता है ।२
हे ईश्वर ! जो तेरी स्तुति नहीं करते और जो मन्त्र-दर्शन-कर्ता गुण-वर्णन करते हैं, उनमें मुझसे प्रशंसित तू बढ़ और बढ़ा । ३

सूक्त ११६ । इन्द्र (ऋ ८-एक-तेरह से चौदह)

२८ मा भूम निष्टया इवेन्द्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥ १
२९ अमन्महीदनाशवो ऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सकृत्सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥ २

५७२८ हे शक्तिमान् ! हम तुझ से बहिष्कृत-समान आनन्द-रहित, छोड़े वन-समान निष्फल न हों, हम रोष-रहित होकर प्रबल माने जाएँ और तेरा मनन करें । १
हे अज्ञान-नाशक शूर ! हम धीर-सौम्य हो तेरा मनन करें और स्तोम से एक बार आनन्द पायें। २

सूक्त एक सौ सत्रह । इन्द्र । ऋ ७-२२-१ से-तीन, साम उ तीन-१-तेरह

५७३० पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः। सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा॥१

३१ यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि। स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु॥ २

३२ बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व॥ ३

हे अश्वगन्धा आदि औषधि वाले रोग-नाशक इन्द (वैद्य) ! तू वह सोम पी-पिला जिससे जन हृष्ट हों, जिसे मेघ पैदा करता, पत्थर पीसता, अश्व-समान निष्पादक-बाहुओं से सिद्ध होता है । १

हे समर्थ-बसाने वाले, हरणशील अश्व-युक्त वैद्य ! जो तेरा हृष्ट बल है जिससे तू रोग नष्ट करता है वह तुझे आनन्दित करे । २

हे प्रशंसनीय ! मेरी यह बात अच्छे प्रकार जान जिसे विद्वान् समर्पित करता है । तू मिलकर हर्ष वाले स्थान में ये अन्न-धन सेवन कर-करा । ३

सूक्त ११८ । परमेश्वर । ऋ ८-तीन और ८-६१ के ५-६, साम २१५, १५७९

३३ शग्ध्यू षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।

भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १

३४ पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।

नकिर्हि दानं परिमर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥ २

३५ इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रं समीके वनिनो हवामहे इन्द्रं धनस्य सातये । ३

३६ इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।

इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः ॥ ४

हे शक्ति-पति शूर ! तू सब रक्षाओं से शक्ति दे; हम ऐश्वर्यशाली-यशस्वी-धनी तेरे पीछे चलें । १

ओ देव, तू विश्व-पुर-वासी; अश्व-गौ-वर्धक, शक्ति-स्रोत, तेजस्वी-हितकर-रमणीय है, तेरा दिया कोई नष्ट नहीं कर सकता । मैं जो-जो माँगूँ वह-वह दे । २

हम भक्त दिव्य-गुण-विस्तारार्थ यज्ञ-प्रयत्न-युद्ध-धन-प्राप्ति-दान में परमात्मा को ही पुकारें । ३

परमात्मा महिमा से द्यौ-भूमि फैलाता, सूर्य को दीप्त करता है, उसमें सब भुवन-चन्द्रादि स्थित हैं । ४

सूक्त ११९ । इन्द्र । ऋ. ८.५२.९ । ५१,१० साम उ ८-२-७; ७-६-१९

७ अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।

पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ १

३८ तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः

अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥ २

हे मनुष्यो, सनातन ज्ञान वेद का मनन करो, इस जीवों के लिए उपदेश करो, सत्य-ज्ञान की उत्तम-बड़ी वेद-वाणियों का वर्णन करो जिससे स्तोता की मेधा बढ़े । १

५७३८ शीघ्रकारी-बुद्धिमान् आनन्दस्वरूप-प्रकाश-वर्षक-पूजनीय परमात्मा की उपासना करते हैं कि जिससे हमें ऐश्वर्य-आनन्द-बल-नव जीवन-दायक-ज्ञान-दीप्तियाँ मिलें ॥ २

सूक्त १२० । इन्द्र । ऋ ८.४.१-२ साम ३ ५-१-१३

५७३९ यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग् वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १
४० यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस् त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २

३९ हे इन्द्र ! तू पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण में नरों से बुलाया जाता है; बहुत बार प्रेरित होता चारों पुरुषार्थ चाहने वाले मनुष्य-संघ में भी प्रार्थित होता है । १
४० और तू विद्या धनवान्-शान्त विद्वान्-रक्षक-व्यापारी-शिल्पि वर्गों में सबको हृष्ट करता है । हे कर्मयोगी ! तेरे स्तोता-मेधावी-विद्वान् स्तुतियों से तुझे बुलाते हैं, आ । २

सूक्त १२१ । इन्द्र ऋ० ७-बत्तीस-२२-२३ साम २३३, ६८० यजु २७-पंतीस-छत्तीस

४१ अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १
४२ न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस् त्वा हवामहे ॥ २

४१ हे शूर, दूध-बिना गौ-समान हम इस जङ्गम-स्थावर-स्वामी और सुख-दर्शक तुझ को सब ओर से झुकते; प्रशंसा-नमस्कार करते हैं । १
४२ हे धन-स्वामी, कोई दिव्य-पार्थिव पदार्थ तेरे-समान न हुआ न होगा । अश्व-गो-इच्छुक हम शक्ति-शाली होकर तेरी प्रशंसा कर पुकारते हैं । २

सूक्त एक सौ बाईस । इन्द्र । ऋ० एक-तीस-तेरह-पन्द्रह, साम३ चार-एक-चौदह

४३ रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १
४४ आ घ त्वावान् त्मनाप्त स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः । ऋणोरक्षं न चक्रयोः ॥ २
४५ आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितृणाम् । " शचीभिः ॥ ३

अन्न वाले हम जिन प्रजा के साथ हृष्ट रहें वह सभाओं में सर्वत्र मिल कर सूर्य-बिजली के प्रयोग अति ऐश्वर्य-शक्ति से युक्त हों । १
दो पहियों-बीच लगा धुरा चलता हुआ अपने ही आश्रय रहता है वैसे ही हे वज्री सूर्य-बिजली, स्वाश्रय तुम स्तोता-प्रयोक्ताओं को मिलते हो । २
हे सैकड़ों कर्म वाली बिजली, क्रियाओं से चलते धुरे-समान; तू स्तोता-प्रयोक्ताओं की कामना अपनी शक्ति-क्रियाओं से पूरी करती है । (तीन)

सूक्त १२३ । सूर्य । ऋ० १-११५-४-५ य ३३-३७

४६ तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद् रात्री वासस् तनुते सिमस्मै ॥ १
५७४७ तन्मित्रस्य वरुणस्याभि चक्षे सूर्यो रूपङ्कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ २

५७४६ सूर्य की यह दिव्यता-महिमा है कि अन्तरिक्ष-मध्य फैली किरणों को समेट लेता है। जब यह किरणें एक स्थान से हटाता है तभी रात सबके लिए अँधेरा करती है। १

४७ द्यौ के मध्य सूर्य अपना रूप मित्र-वरुण(हाइड्रोजन-आक्सीजन) के मेल से दिखाता है। इस का चमकता बल अनन्त है,(भूगोल के)एक ओर किरणें दिन, दूसरी ओर काली रात बनाती हैं। २

सूक्त १२४ इन्द्र । ऋ० ४-३१-१-३ २७-३६-४१; १६-४६ साम ३ ·१-१-१२

४८ कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ।। १

४९ कस् त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ।। २

५० अभी षु णः सखीनामविता जरितृणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ।। ३

५१-५३ [देखो पहले २०-६३-१-३]

४८ (हे इन्द्र,) विचित्र-सदा बढ़ा-कमनीय तू सदा बढ़ी-सुखद रक्षा-बुद्धि से हमारा सखा होता। १

४९ सत्य-सुखद-आनन्द-अन्न-दाता-महान् वह तुझे हर्ष-युक्त करता; नीरोगिताओं दृढ़ धन देता है।२

५० सखा-स्तोता-रक्षक तू सर्वतः रक्षाओं से सकड़ों प्रकार सौ वर्ष तक हमारा सुरक्षक हो । ३

५१-५३ [देखो पहले २०-६३-१ से तीन] ४

सूक्त १२५। इन्द्र-अश्वी (ऋ १०-एक सौ इकतीस— एक से तीन)

५४ अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व ।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन् मदेम ।। १

५५ कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ।। २

५६ नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे सङ्गमेषु ।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ।। ३

५७ युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना शुभस्पती इन्द्र कर्मस्वावतम् ।।

५८ पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः ।
यत् सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ।। ५

५९-६० [देखो पहले ७ -९१, ९२ ६-७

५४ हे धनी, रिपु-नाशक, पराक्रमी बिजली के अस्त्र ! तू हमारे पूर्व पश्चिम उत्तर-दक्षिण के रिपु दूर हटा, जिससे हम तेरे विशाल आश्रय में हृष्ट रहें । १

५५ जैसे किसान क्रमानुसार जौ आदि अन्न काटते हैं वैसे ही तू उनके प्रयोज्य साधन यहाँ-वहाँ सर्वत्र कर जो वृद्धि अन्न-दान नहीं त्यागते । २

५६ बिना बैल या एक बैल से हल नहीं चलता और न हो युद्धों में अन्न-यश मिलता है अतः उन्हें चाहने वाले बुद्धिमान् मित्र रूप में आनन्द-दायक बिजली चाहते हैं । ३

५७ [मन्त्र ३-४ य १०-३३, ३ और २०-७६, ७७ में भी हैं ।] मेघ से जल न बरसने पर दोनों सूर्य-चन्द्र! रमणीय देश बचाओ, तुम विशेष रक्षक; शुभ-कर्म-पालक हो, कर्मों में बिजली बचाओ।४

५८ हे सूर्य-चन्द्र, तुम बुद्धिमानों की व्यवहार-क्रियाओं से रक्षा करो जैसे माता-पिता सन्तान की। हे बिजली। तूने रम्य देश का जल पिलाया अब वह तेरी सेवा करे । ५

५७५९-६० [देखो पहले ७ ९१ और ९२।] ६-७

सूक्त १२६। इन्द्राणी (व्योम-कक्षा) इन्द्र (उत्तरी ध्रुव); वृषाकपि(सूर्य) ऋ१०-८६-१-२३)
[यहाँ आध्यात्मिक-आधिभौतिक अर्थ और आधिदैविक (ज्यौतिषिक) अर्थ प्रस्तुत है।]

५७६१ वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १

६२ परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये ,, ॥ २

६३ किमयं त्वा वृषाकपिश् चकार हरितो मृगः ।
यस्मा इरस्यसीदु न्वर्यो वा पुष्टिमद् वसु ,, ॥ ३

६४ यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभि रक्षसि ।
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर् । ,, ॥ ४

६५ प्रियातष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत् ।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं ,, ॥ ५

६६ न मत् स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।
न मत् प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी ,, ॥ ६

६७ उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।
भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति ,, ॥ ७

६८ किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्नि नस् त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं ,, ॥ ८

६९ अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा ,, ॥ ९

७० संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते ,, ॥ १०

७१ इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरञ्चन जरसा मरते पतिर् ,, ॥ ११

७२ नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति ,, ॥ १२

७३ वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
घसत् त इन्द्र उक्षणः प्रियङ्काचित्करं हविर् ,, ॥ १३

७४ उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमस्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १४

५७७५ वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस् त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १५
७६ न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते " ॥ १६
७७ न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो वि जृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृत् " ॥ १७
७८ अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।
असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितम् " ॥ १८
७९ अयमेमि विचाकशद् विचिन्वन् दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशम् " ॥ १९
८० धन्व च यत् कृन्तत्रं च कति स्वित् ता वियोजना ।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप " ॥ २०
८१ पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।
य एष स्वप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा पुनः " ॥ २१
८२ यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्वस्य पुल्वघो मृगः कमगन् जनयोपनो " ॥ २२
५७८३ पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् ।
भद्रं भल त्यस्या अभूद् यस्या उदरमामयद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २३

५७६१ [व्योमकक्षा —] जब प्रकाश छोड़ा गया तब उसने उन इन्द्र (उत्तरी ध्रुव) को अपना स्रोत नहीं माना जहाँ प्रकाशमान किरणों में स्वामी बनकर मेरा सखा वृषाकपि (सूर्य) हृष्ट हुआ । इन्द्र विश्व से उत्तर में है । १ [यह वाक्य इन सूक्त के सब २३ मन्त्रों के अन्त में टेक है ।]

६२ हे उत्तरी ध्रुव ! तू सूर्य से व्यथित हो दूर हट रहा है, अन्यत्र सोम-पानार्थ तू मुझे न पायेगा । २
[यह ध्रुवीय प्रचलन–अक्ष-विचलन–सम्पात-चलन–अयन-चलन का ज्यौतिषीय वर्णन है ।]

६३ [ध्रुव—] हे व्योम-कक्षा ! इस सूर्य रूपी सुनहरे मृग ने तेरा या तेरे पोषक उत्तम धन का क्या बिगाड़ा जो तू इससे ईर्ष्या अथवा घृणा करती है ? ३

६४–६५ [व्योम-कक्षा–] हे इन्द्र ! जिस इस सूर्य की तू रक्षा (समर्थन) करता है इसके कान में भी श्वा नामक लुब्धक तारा (ग्रेट डाग स्टार सिरिअस देनिकूला, जो वर्षा में तीन जुलाई से ११ अगस्त तक सूर्य-समीप निकलता है) ने काट लिया (चमक कम कर दी,) और वराह (सूर्य) का पीछा करने वाले (राहु) तथा वृक (भेड़िया-चन्द्र) ने भी इसके कान काट लिये (सूर्य का खण्ड-ग्रास ग्रहण लगा) ॥ कपि (बन्दर-सूर्य) ने मेरी प्रिय चमचमाती नक्षत्र-ताराएँ दूषित कर दीं अतः मैंने इसका सिर विकृत कर दिया, दुष्कर्म में मैं सुगम नहीं हुई ।६४–५

५७६६ (व्योम-कत्ता—) कोई स्त्री मुझसे बढ़कर शोभा वाली, कार्य शीघ्र-अच्छा करने वाली, प्रतिद्वन्द्वियों को हराने वाली, और टाँगों से उद्यम करने वाली नहीं है । ६

६७ (उत्तरी ध्रुव—) हे उत्तम लाभकारिणी माता जी ! ऐसा ही होगा । मेरा तो अंग-टाँग-सिर मानो विशेष हृष्ट से हो रहे हैं । ७

६८ हे उत्तम बाहु-अङ्गुलि-कीर्ति-जंघा वाली ! तू हमारे सूर्य को क्यों बदनाम करती है ? ८
६९ (व्योम०—) यह शरारती मुझे अवीरा-समान मानता है, और मैं वीरिणी-इन्द्रपत्नी-मरुत्सखा हूं । ९
७० नारी सदा संग्राम-यज्ञ-उत्सवों में जाती है, सत्य-विधात्री, वीरिणी, इन्द्र-पत्नी पूजी जाती है । १०
७१ इन्द्राणी को इन नारियों में मैं उत्तम सुनता हूं, और भी, उसका पति बुढ़ापे से कभी नहीं मरता । ११

७२ (ध्रुव—) हे इन्द्राणी ! मैं सखा वृषाकपि के बिना हृष्ट नहीं, जिसकी यह प्रिय आप्य हवि (आपः अन्तरिक्ष में फैलने वाला प्रकाश) देवों गृहों-उपग्रहों में जाती है । १२

७३ हे वृषाकपि की माता और पत्नी, उत्तम पुत्र-पुत्रवधू वाली रेवती (वनी नक्षत्र) ! तेरा ध्रुव उक्षा (गृह) की स्थायी सुख चयन करने वाली हवि (प्रकाश) खाता है । १३

७४ क्योंकि मेरे लिए ही १५ और बीस मिलकर ३५ गृह-उपग्रह पकते (पक्के-व्यक्त) होते हैं; उन्हें मैं खाता (खगोल में लेता) हूं और मोटा ही हो जाता हूं, मेरी दोनों कोखें (पूर्वी-पश्चिमी गोलार्ध) भर जाती हैं । [१५ उक्षा— सूर्य १, और उनके ८ गृह— भूमि-मङ्गल-बुध-बृहस्पति-शुक्र-शनि-अरुण(अर्यमा)-वरुण । उपग्रह— भूमि का चन्द्रमा १, मङ्गल के २, बृहस्पति-शनि के ९-३, अरुण के ४, वरुण का १ कुल, या उसे (ऋ० १.१०५.६ में वर्णित) स्वतन्त्र ग्रह ही माना जाये, तो सब मिलाकर १० और १५ कुल २५ उक्षा हुए ।] १४

७५ तेज सींग वाले बैल के समान तीक्ष्ण किरण वाले बिजली-सूर्य लोकों के अन्दर गरजते हैं । हे इन्द्र ! यह तेरा मन्थन मेरे हृदय के लिए शान्ति-दायक हो जिसे तेरा भावुक मथता है । १५

७६ वह बिजली वर्षा की ईश नहीं जिसका मेघ संसक्त द्यौ-भूमि के बीच गरजता रहता है; किन्तु वह सूर्य कारण है द्यौ में स्थित जिसका रोम-समान किरण-समूह विशेष फैलता है । १६

७७ यह भी ठीक है कि केवल वह सूर्य ही वर्षा-कारण नहीं, जिस द्यौ-स्थित का किरण-समूह फैलता है अपितु वह बिजली है जिसका मेघ द्यौ-भूमि के मध्य गरजता है । १७ । [दोनों पक्ष ठीक हैं ।]

७८ हे इन्द्र ! यह सूर्य दूरस्थ जल को गतिमान कर पहुँचाता, सञ्चित मेघ को बढ़ाकर भूमि पर फेंकता और नया अन्न पैदा करता है । १८

७९ यह मैं (सूर्य) चमचमाता हुआ, दास-आर्य (उत्तर-दक्षिण गोलार्ध) को विभक्त करता हुआ (विषुवद् वृत्त) पर आता हूं, ओषधि-रस-सञ्चारक सोम पीता हूं, धीर चन्द्रमा चमकाता हूं । १९

[यह संकेत सृष्टि के पहले दिन मेष संक्रान्ति, अश्विनी नक्षत्र, रविवार, चैत्र शुक्ल १ का है ।]

८० हे सूर्य ! धनुष-बाण (पुनर्वसु नक्षत्र मिथुन राशि पर तीर की नोक, और धनुष की एक नोक रेवती नक्षत्र के अन्त में, तथा दूसरी नोक ठीक उसके सामने चित्रा नक्षत्र पर) कुछ ही उतने ही योजन पर है कि जब तू अपना घर (वसन्त सम्पात) छोड़े और पास के अगले घरों में पहुँचे तभी मेरे पास (उत्तरी ध्रुव तक) पहुँच सकता है । [यही उत्तरायण का चरम बिन्दु, मिथुनान्त उत्तर ध्रुव का स्थान है ।] २०

५७८१ हे सूर्य ! तू फिर आ, हम दोनों स्वागत करें, जो यह तू स्वप्न नष्ट कर फिर पथ से अपने घर (मेरे पास) आयेगा । २१

५७८२ हे सूर्य और ध्रुव ! जब दोनों उत्तर के घर आएँगे तो वह पापी जन-पीडक पशु रूप कहाँ रहा, कहाँ गया ? २२

८३ पसलियों वाली मानवी एक साथ २० उत्पन्न करे तो क्या हो ? भला हो उस प्रकृति माता का कि जिसके उदर में २० आ गये। [वे बीस हैं — ५ महाभूत, ५ तन्मात्रा, १० इन्द्रियां।] २३

सूक्त १२६ की आधिभौतिक व्याख्या

इन्द्र सम्राट् सबसे बड़ा है, उसकी पत्नी प्रजा है; वृषाकपि उसका पुत्र-सखा मन्त्री-सेनापति है। वे सम्राट् के अनुकूल-विरुद्ध कार्य करते हैं, प्रजा उनकी शिकायत करती है, राजा उनके बिना नहीं रह सकता। प्रजा सर्वोत्तम है, राजा कभी नहीं मरता, उसके १५ अधिकारी राज्य पालते हैं। वह स्थित रह कर दान और सेना द्वारा शासन करता है। यह दास और आर्य की पहचान करता है। १५-२० अधिकारी परस्पर स्वागत करते हैं। यह सेना में गरजता है प्रजा के दिये गए जल मरुभूमि समाप्त होती है, सञ्चित धन वाला, नया अन्न उत्पन्न कराता है। राजा-अधिकारी एक-दूसरे के घर जाकर परस्पर स्वागत करते, पापी-जन-पीड़क समाप्त होते हैं, प्रजा २० की निर्वाचित सभा बनाती है।

आध्यात्मिक अर्थ

इन्द्र परमेश्वर सबसे बढ़कर है, बन्दर-समान वृषाकपि जीवात्मा उसका सखा-पुत्र है, इन्द्राणी उसकी रचना है, नास्तिक उसे नहीं मानते। वह भक्त के लिए मोक्ष-धन देता है।

सुअर के पीछे चलने वाले कुत्ता-समान (पापी) जीव के (लालच) ने कान काट लिये हैं। वह उस की रक्षा करता है। उस बन्दर जीव ने प्रकृति को भी दूषित कर दिया जिसने उसका सिर बिगाड़ दिया वह उत्तम स्त्री-समान है जिसे वह शरारती तुच्छ समझता है। फिर भी उसके बिना उसका सखा परमेश्वर रह नहीं सकता। योगी की माता श्रद्धा, पत्नी विवेक-ख्याति है।

परमेश्वर के लिए उक्षा (चित्त) और १५ (१० इन्द्रियाँ ५ तन्मात्राएँ, तथा ५ स्थूल भूत मिल कर २० पकते हैं। परमात्मा-जीवात्मा यथास्थित द्यौ-पृथिवी-मध्य ईश हैं।

परमेश्वर मनुष्यों में दास-आर्य (जीव-नास्तिक) को विवेचना करता हुआ भक्त-उपासक धीर योगी को पहचानता है। वह योगी-भक्त का अपने घर (मोक्ष) में बुलाता है वहाँ जाने पर पीडा नहीं रहती। शक्तिशाली ईश्वर मानव के २० घटक (इन्द्रियां-तन्मात्रा-भूत) साथ रख लेता है।

इसके बाद बीच में छपे दस कुन्ताप-सूक्त परिशिष्ट-प्रक्षिप्त हैं, अन्त में दिये जायेंगे।

सूक्त १२७। अलक्ष्मीघ्न विश्वेदेवाः दधिक्रा सोम इन्द्र। ऋ० १०.१५५-४

५७८४ यद्ध प्राचीरजगन्तनोरो मण्डूरधाणिकीः। हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः॥ १

८५ कपृन्नरः कपृथमुद् दधातन चोदयत खुदत वाजसातये।
निष्टिग्रयः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये॥ २

८६ दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत्प्रण आयूंषि तारिषत्॥ ३

८७ सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः। पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वो मदाः॥

८८.इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन्। वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥ ५
८९.सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः। सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६

९० अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः।
आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥ ७

९१ द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥ ८

९२ अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत् तन्वं तित्विषाणः।
विशो अदेवीरभ्या चरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥ ९

९३ त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र।
गूल्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥ १०

९४ त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन् धृषितो जघन्थ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ॥११

९५ तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे। स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १२

९६ इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः। द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ १३

५७९७ गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः। ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ १४

८४ जब खनिज-लौह-निधियाँ पूर्व में हों, व्यूह-धारिणी सेनाएँ आगे बढ़ें तभी इन्द्र के सब शत्रु बुलबुलों-समान मारे जाते हैं। १ ऋ १०-१५५-४ अगला १०-१०१-१२-

८५ हे सुख-पूरक नेताओ! तुम सन्नद्ध सेना के रक्षणीय सुख-पूरक सेनापति को आगे रक्खो, धन पाने, रक्षा के लिए बाधा होने पर प्रेरित-सुखी, यहाँ प्रजा-रक्षा-सोम-पान के लिए उत्साही करो। २

८६ मैं धारक-आक्रामक-विजयी-बली राष्ट्र का कार्य करूँ जो हमारे मुख सुगन्धित (उज्ज्वल) करे और हमारी आयुओं को बढ़ाये। ३ ऋ ४-३९-६ यजु २३-३२ साम पू ४-७-७

८७ निचोड़े-मधुरतम-हर्षकारी-पवित्र सोम (भक्ति-तत्त्व-रस) इन्द्र के लिए बहे हैं, तुम्हारे हर्ष विद्वानों को पहुँचें। ४ [मन्त्र ४-६ ऋ ९.१०१.४-६ साम उ २-२-१२-१, पू ६-६-२]

८८ विद्वान् बताते हैं कि सोम इन्द्र के लिए गति करता, विश्व-स्वामी वेद-पति ओज से यज्ञ करता है। ५

८९ हजार धाराओं के समुद्रवत् वाणी-प्रवर्तक, इन्द्र-सखा, धन-पति सोम दिन-दिन शुद्ध करता है। ६

९० अभिमानी-काला शत्रु आता हुआ दसों हजार सेना-सहित सीमा-वर्ती नदी पर रुका, उस हाँपते हुए को नेता-मन सेना-पति बुद्धि से बचाता, अपनी मारू सेनाएँ हटा लेता है। ७

[मन्त्र ७-११ ऋ० ८.९६.१३-१७, मन्त्र ७ साम पू ४-४-१]

९१ अभिमानी-काले और ओर मेघ-समान शत्रु को सीमा वाली नदी के तट पर छिपे हुए भाग में छिपकर विचरता देखकर हे शत्रु-वर्षक वीरो! मैं चाहता हूं कि युद्ध में लड़ो। ८

५७९२ फिर भड़कीला दर्प वाला शत्रु सीमावर्ती नदी के पास में यदि सेना का शरीर बढ़ाये तो सेनापति-सहित सम्राट् सब ओर घूमती कुव्यवहार वाली शत्रु-प्रजा को जीत ले। ९

५७६३ हे परमेश्वर! जब तू वेद के ७ छन्दों से प्रत्यक्ष होता है तो काम आदि परस्पर मित्रों का नाशक हो जाता है। तू गूढ़ द्यौ-पृथिवी को प्रकट करता आकाश-व्यापी भुवनों में रम्यता देता है। १०
९४ हे न्याय-वज्री परमेश्वर! तू वह धर्षयिता अनुपम ओज है जिस वज्र से तमो-गुण को नष्ट करता है; सुखाने वाले तमोगुण को अपने योग-शस्त्रों से हटाता और स्व-कर्म से स्तुति पाता है। ११
९५-९७ [देखो पहले २०-४७-१-३]

सूक्त १२८। इन्द्र। ऋ ८-६-१-३ साम ५-२-१०-१ यजु ७-४०

९८ महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव। स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १
५७९९ प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः। विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ २
५८०० कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्। जामि ब्रुवत आयुधम् ॥ ३
९८ महान् राजा जो ओज से वर्षा वाले मेघ-समान है, वह आचार्य के व्याख्यानों से बढ़ता है। १
९९ सत्य-पालक विप्र नेता जब प्रजा को पालते हैं तो वे सत्य को दिलाने वाले होते हैं। २
५८०० मेधावी स्तोमों से राजा को यज्ञ का साधन करते हैं, शस्त्र को उत्तम पावक बताते हैं। ३

सूक्त १२९। अश्वी। ४ सूक्त १२९-१३२ ऋ. ८.९. -२१

५८०१ आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥ १
२ यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत्पञ्च मानुषाँ अनु। नृम्णं तद्धत्तमश्विना ॥ २
३ ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः। एवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ३
४ अयं वां घर्मो ऽश्विना स्तोमेन परि षिच्यते।
अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥ ४
५ यदप्सु यद्वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम्। तेन माविष्टमश्विना ॥ ५
१ हे प्रजा-सेनापतियो! तुम प्रजा-रक्षार्थ अवश्य आओ; हमें भेड़ियों-रहित बड़ा घर दो, शत्रु दूर करो १
२ ,, जो अन्तरिक्ष-द्यौ-पञ्च जनों में धन है उसे राष्ट्र में रक्खो। २
३ ,, जो विप्र तुम्हें कर्तव्य-परामर्श दें ठीक उसे मेधावी-शासित प्रजा को बताओ। ३
४ ,, अन्न पति! तुम्हारा राष्ट्र स्तोम से सिंचित है, यह मधुर दूध है; जिससे दुर्भिक्ष हटाओ। ४
५ ,, विविध-कर्म वाले! जो कार्य जल-वनस्पति-औषधियों में करते हो, उसे मुझे बताओ। ५

सूक्त १४०। अश्विनौ

६ यन्नासत्या भुरण्यथो यद्वा देव भिषज्यथः।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥१
७ आ नूनमश्विनोर्ऋषि स्तोमञ्चिकेत वामया। आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिंचादथर्वणि ॥२
८ आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना। आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥३
९ यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि। यद्वा वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ४
१० यद्वां कक्षीवाँ उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद्वां दीर्घतमा जुहाव।
पृथी यद्वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥ ५

५८०६ हे सच्चे देव प्रजा-सेनापतियो! तुम शीघ्रकारी चिकित्सा करते हो, यह तुम्हारा प्रजा-वर्ग
[illegible]दिधयों से तुम दोनों का कार्य नहीं जान पाता, तुम कर-दाता की ओर जाया करो। १
७ पत्नी-सहित राष्ट्र-पति दोनों के कार्य निश्चय जानता है; और स्थिर देश में मनुष्यतम यज्ञ को
[illegible]चता है। २
हे अश्विओ! तुम निश्चय ही सुगम रथ पर बैठते हो, मेरे ये स्तोम दोनों के लिए मेघ-वत् बढ़ें। ३
हे सत्य अधिपतियो! जो हम सदा मन्त्रों से या वाणियों से कर्तव्य बताते हैं वे प्रजा को बताओ। ४
१० हे प्रजा-सेना-पतियो! तुम्हें मन्त्री-ऋषि कक्षीवान् (विविध-शिल्प-विद्या-ज्ञाता); व्यश्व
(विशेष अश्व-ज्ञाता); दीर्घतमा (दीर्घाचारी); पृथी (विशाल-बुद्धि) और वैन्य (शोभा-अध्यक्ष)
पाँचों मन्त्री अपने विभागों में जो-जो बतायें वह-वह चित्त में धारण करो। ५

सूक्त १३१। अश्विनौ

८११ यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा। वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम्॥ १
१२ यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद्वा वायुना भवथः समोकसा।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद्वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः॥ २
१३ यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये। यत्पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः॥ ३
१४ आनूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता। इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ॥ ४
१५ यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम्। तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम्॥ ५
११ हे गृह-पर-राष्ट्र-रक्षको! हमारी ओर आया करो, जगत् और हमारे शरीरों के रक्षक होओ,
हमारे पुत्र-पौत्रों की वर्ति (जीविका) के प्रबन्धार्थ आया करो। १
१२ हे प्रजा-सेना-पतियो! तुम दोनों सम्राट् के साथ रथ पर जाते हो, वायु-सेनाध्यक्ष के साथ
अन्तरिक्ष-वर में रहते, आदित्य विद्वानों-शिल्पियों-साथ प्रीति करते, यज्ञ-विधानों में बैठते हो। २
१३ हे प्रजा-सेना-पतियो! मैं तुम्हें सह-भोजार्थ बुलाऊँ; युद्धों में तुम्हारा नाशक-रक्षक-बल श्रेष्ठ है। ४
१४ ,, तुम निश्चय आओ, ये खाद्य सुरक्षित हैं, क्षत्रिय-वैश्य-ब्राह्मणों में ये सोम तुम्हारे हैं। ५
१५ ,, दूर-पास की औषधें मद-निवारणार्थ और घर पुत्रसमान प्रजा के लिए दिया करो। ६

सूक्त १३२। अश्विनौ

८१६ अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः। व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः॥ १
१७ प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि। प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत्॥ २
१८ यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे। आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम्॥ ३
१९ यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः। यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना॥ ४
२०. प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे। प्र दक्षाय प्रचेतसा॥ ५
२१ यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः। यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या॥ ६
१६ मैंने दिव्य वाणी से दोनों सेनापतियों को कर्तव्य, सम्मति, मनुष्यों से प्राप्त कर बता दिये। १
१७ हे देवी उषा, प्रिय-सत्य-महा-वेदवाणी और यज्ञ-होता! तुम दोनों सेना-पतियों को सदा
बोध कराओ और हर्ष के लिए वेद का महा-श्रावण कराओ। २
१८ हे उषा! तू [illegible] है, यह [illegible] का [illegible], १८-[illegible] वते। ३

५८१९-२१ हे अश्विओ दोनों सेनापतियो ! जब प्रजा गौ के थनों से दूध दुह ले; तत्समान प्रजा उषा-किरणें पी लें, या स्तोता वेद-वाणियां बोलें, तब ज्ञानी तुम यश-अन्न, शत्रु-विनाश के लिए सुख-दत्तार्थ निश्चय बुद्धि-कर्मों और सुखों से पिता परमात्मा की गोद में बैठते हो । ४-६

सूक्त १३३ । अश्विनौ और देव-पांत

२२ तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना सङ्गतिङ्गोः।
यः सूर्यां वहति बन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥ १

२३ युवं श्रियमश्विना देवताता दिवो नपाता वनथः शचीभिः।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम् ॥ २

२४ को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत्॥ ३

२५ हिरण्ययेन परिभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम्।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥ ४

२६ आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन।
मा वामन्ये नियमन् देवयन्तः सं यद्दे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥ ५

२२ हे प्रजा-सेना-पतियो ! हम तुम्हारे उस महावेगी, किरण-सङ्गवि वाले रथ को सदा बुलायें जो पत्नी को साथ ले जाता, रथ-शिल्पी का प्यारा; सुख-संपन्न, धन-युक्त, निर्देशानुसार चलता है। १

२३ हे पतन-रोकने वाले अश्विओ ! तुम देव-विस्तारित-यज्ञ-राष्ट्र में कर्मों से दिव्य शोभा पाते हो । तुम्हारा शरीर मान-पदक धारण करता है; तुम्हें सञ्चालक रथ में ले जाते हैं। २

२४ हे अश्विओ ! तुम्हें सदा कौन धन की आहुति देता है ? रक्षा वा अन्न-रस-पान के लिए कौन अन्नों से सत्कार करता है ? वा उत्तम सत्य पाने के लिए कौन अन्न-दान करता रहता है। ३

२५ हे अ-सत्य-रहित ! तुम सर्वत्र गमनशील सुनहरी रथ से इस यज्ञ में उपस्थित हुआ करो, सोम पियो, सेवक-जन के लिए रत्न दिया करो। ४

२६ सुनहरी सुचालित रथ से तुम द्यौ-पृथिवी से अच्छी तरह आओ। कामना वाले अन्य जन न रोकें क्योंकि पहले का स्नेह-बन्धन रोक सकता है। ५

२७ नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरा यद्वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अग्मन् ॥ ६

हे कष्ट-निवारक अश्विओ ! हमारे दोनों विभागों में हमें बहुत वीरता-युक्त धन दो। क्योंकि अजन्मा के उपासक नर मिलते रहते और स्तुति-सहित भेंट देते रहते हैं। ६

५८२८ इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना।
उरुष्यतञ्जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ ७

५८२८ हे न-असत्य अश्विओ ! यहीं जो दोनों की मन-सहित अन्न-बल-रत्न वाली सुमति है वह हमें दो; प्रशंसक की रक्षा करो। हमारी कामना तुम पर ही आश्रित है ॥ ७

५९८२९ मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनञ्चरेम ॥ ८

२९ औषधियाँ-द्यौ (किरणें और तारे)-जल-अन्तरिक्ष हमारे लिए मधुर हों। क्षेत्र का रक्षक स्वामी किसान हमारे लिए मधुर हो। हम हिंसित न होते हुए इन के अनुकूल होकर चलें। ८

५९८३० पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वां इत् ताँ उप याता पिबध्यै ॥ ९

५९८१० हे अश्विनौ (नगर और सेना के अधिपतियो ! तुम दोनों का किया वह कर्म प्रशंसनीय है जो-अन्तरिक्ष से सुख का वर्षक है । और हे प्रशंसनीयो! गौ(पृथिवी)के शासन रूपी इष्टि-यज्ञ में उन सभी के भक्ति-रस पीने-पिलाने के लिए समीप ही आया करो । ९

अथर्व वेद के इस अन्तिम मन्त्र में अश्विओं से निवेदन किया गया है जिनके महर्षि यास्काचार्य ने निरुक्त में निम्नाङ्कित अर्थ किये हैं—

सूर्य-चन्द्र, दिन-रात, अग्नि-जल, पुण्य करने वाले दो राजा (नगर-शासक और सेनापति)।
महर्षि के अनुसार अन्य भी अर्थ हैं जो दो जोड़े रूप में व्यापक-व्याप्त शक्तियाँ हों—

माता-पिता, परमात्मा, सभापति-सेनापति, चिकित्सक-शल्यक, धन-ऋण (पाजिटिव-निगेटिव)

यह आचार्य वीरेन्द्र सरस्वती कृत अथर्ववेद-भाष्य पूर्ण हुआ।

परिशिष्ट प्रक्षिप्त कुन्ताप सूक्त

सूक्त १ (पुराना १२७) १४ मन्त्र, नाराशंसी १-३, रैभी ४-६, पारिक्षिति ७-१०, कौरव्या ११-१४

१ इदञ्जना उपश्रुत नराशंस स्तविष्यते । षष्टिंसहस्रा नवतिंच कौरम आ रुशमेषु दद्महे ॥
२ उष्ट्रायस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश । वर्ष्मा रथस्य निजिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृशः ॥
३ एष इषाय मामहे शतं निष्कान् दश स्रजः । त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ॥
४ वच्यस्व रेभ वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः । नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव ॥
५ प्र रेभासो मनीषा वृषा गाव इवेरते । अमोतपुत्रका एषाममोत गा इवासते ॥
६ प्र रेभ धीं भरस्व गोविदं वसुविदम् । देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीषुर्नावीरस् तारम् ॥
७ राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवो ऽ मर्त्यां अति । वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः ॥
८ परिच्छिन्नः क्षेममकरोत् तम आसनमाचरन् । कुलायन्कृण्वन्कौरव्यः पतिर्वदति जायया ॥
९ कतरत्त आहराणि दधि मन्थां परि श्रुतम् । जायाः पतिं विपृच्छति राष्ट्रे राज्ञःपरिक्षितः ॥
१० अभी वस्वः प्रजिहीते यवः पक्वः पथो बिलम् । जनः स भद्रमेधति ,, ॥
११ इन्द्रः कारुमबूबुधदुत्तिष्ठ विचरा जनम् । ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत्ते पृणादरिः ॥
१२ इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः । इहो सहस्रदक्षिणो ऽपि पूषा निषीदति ॥
१३ नेमा इन्द्र गावो रिषन् मो आसां गोप रीरिषत् । मासामभित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥
१४ उप नो न रमसि सूक्तेन वचसा वयम् भद्रेण वचसा वयम् ।
वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन ॥

प्रक्षिप्त कुन्ताप सूक्त १ (१२७)

१ जनो, यह सुनो; नराशंस की स्तुति की जायेगी; भूमि-रमे यागियों में ६० हजार और ९० गुण देते हैं।
२ जिस राजा के उटनियाँ-सहित २० उष्ट्र रथ का ढाँचा गतिशील किरण-वत् सक्रिय रखते हैं।
३ इसे प्रज्ञ-अन्न के लिए सौ अशर्फी; दस माला, तीन सौ घोड़े, दस हजार गौएँ भेंट देता है।
४ हे भक्त, पके पेड़ पर पक्षी-समान स्तुति गा-गा, नाश आने पर जीभ घोड़े-पैर-समान लड़खड़ाती है
५ हे नरो, [illegible] बुद्धि [illegible]; [illegible] पुत्र भी गो-समान बाजी रहते हैं
६ हे भक्त, तू गो-धन-दाता बुद्धि संग्रह कर, देवों-साथ यह वाणी बाण-समान तारक को पकड़ा कर
७ जो इन [illegible] राजा का [illegible] कर
८ सदाचार ने कहा भक्त सम त्यागकर कल्याण करता है, भूमि-चर मना उपदेशक पति पत्नी से कहता है
९ परिक्षित (व्यापक) राजा के राज्य में स्त्रियाँ भी पति से पूछती हैं 'तेरे लिए दही-मट्ठा-रस क्या लाऊँ'?
१० 'पका जौ-मध्य-देश सर्वत्र भेंट है'। वह जन कल्याण को बढ़ाता है।
११ [illegible] में चिरस्थ मुझ अग्र का कार्यकर, सब अरि तुझे पालें।
१२ यहाँ [illegible] रहें, यहाँ हजारों की दक्षिणा-दाता पोषक वैश्य भी रहे।
१३ हे इन्द्र, ये गौएँ, इनका ग्वाला दुःखी न हो; इनका अमित्र जन, चोर शासक न बने।
१४ हमने तू अनन्त रही, हम प्रज्ञा-मन्त्रणा-युक्त हों; सुयश-धारक वेद-वाणियाँ हमें मिलें, जिससे हम कभी दुःखी न हों।

सूक्त २ (१२८) [illegible] १२-१३

१५ यः सभेयो विदथ्यः सुत्वा यज्वाथ पूरुषः। सूर्यं चामू रिशादसस्तद् देवाः प्रागकल्पयन्॥ १
१६ यो जाम्या अप्रथयस्तद् यत् सखायं दुधूर्षति। ज्येष्ठो यदप्रचेतास्तदाहुरधरागिति॥ २
१७ यद्भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषिः। तद्विप्रो अब्रवीदु तद् गन्धर्वः काम्यं वचः॥ ३
१८ यश्च पणि रघुजिष्ठ्यो यश्च देवाँ अदाशुरिः। धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम॥ ४
१९ ये च देवा अयजन्ताथो ये च पराददिः। सूर्यो दिवमिव गत्वाय मघवा नो वि रप्शते॥ ५
२० योऽनाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणिवो अहिरण्ययवः। अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता॥ ६
२१ य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्ययवः। सुब्रह्मा ब्रह्मणस्पुत्रस ,, ७
२२ अप्रपाणा च वेशन्ता रेवाँ अप्रतिदिश्ययः। अयभ्या कन्या कल्याणी ,, ॥ ८
२३ सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्त्सुप्रतिदिश्ययः। सुयभ्या कन्या कल्याणी ,, ॥ ९
२४ परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिङ्गमः। अनाशुरश्चायामी ,, ॥ १०
२५ वावाता च महिषी स्वस्त्या च युधिङ्गमः। श्वाशुरश्चायामी ,, ॥ ११
२६ यदिन्द्रादो दाशराज्ये मानुषं विगाहथाः। विरूपः सर्वस्मा आसीत्सह यक्षाय कल्पते॥ १२
२७ त्वं वृषाक्षुं मघवन्नम्रं मर्याकरो रविः। त्वं रौहिणं व्यास्यो वि वृत्रस्याभिनच्छिरः॥ १३
२८ यः पर्वतान्व्यदधाद्यो अपो व्यगाहथाः। इन्द्रो यो वृत्रहान्महं तस्मादिन्द्र नमोऽस्तु ते॥ १४
२९ पृष्ठं धावन्तं हर्योरौच्चैःश्रवसमब्रुवन्। स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम्॥ १५
५८५६ ये त्वा श्वेता अजैश्रवसो हार्यो युञ्जन्ति दक्षिणम्।
पूर्वा नमस्य देवानां बिभ्रदिन्द्र महीयते॥ १६

कुन्ताप सूक्त २ (१२८) १६ मन्त्र। दिशां क्लृप्ति १–५; जनकल्प ६–११, इन्द्र–गाथा १२–१६
जो पुरुष सभ्य–ज्ञानी–सोमी–याज्ञिक और जो सूर्य है उसे अहिंसक विद्वान् उच्च मानते हैं। १
जो स्त्रियों पर अनाचारी, सखा से विश्वास–घाती, बड़ा होकर भी नासमझ हो उसे नीच कहते हैं। २
जो भद्र पुरुष का पुत्र पाप–नाशक होता है वह विप्र–वेदज्ञ है यह सुन्दर वचन है। ३
और जो वणिक लघु–हृदय (कंजूस), देवों को अदानी है उसे हम सदा वीरों से नीचा सुनते हैं। ४
और जो विद्वान् यज्ञ करते और दूसरों को दान देते हैं वे द्यौ–बड़े सूर्य–समान महान् धनी होते हैं। ५
जो अपवित्रेन्द्रिय–अस्वच्छ; मणि–सुवर्ण–हीन; ब्रह्मा (वेदज्ञ) का पुत्र होकर भी अब्रह्मा हो वे
सभी कल्पान्तरों में एक–समान माने जाते हैं। ६
जो पवित्रेन्द्रिय, स्वच्छ-हृदय सुन्दर मणि-स्वर्ण वाला; ब्रह्मा का उत्तम ब्रह्मा-पुत्र हो, वे समान हैं। ७
बिना प्याऊ की बावड़ी, अदानी धनी: कल्याणी कन्या विवाह–अयोग्य ये सभी कल्पों में समान हैं। ८
अच्छी प्याऊ की बावड़ी उत्तम दानी धनी, कल्याणी कन्या विवाह–योग्य ,, । ९
त्यागी गयी दुराचारिणी पत्नी, आराम से युद्ध में न जाने वाला योद्धा दीर्घ-सूत्री भृत्य ,, १०
वायु–समान सक्रिय पत्नी; कल्याण–सहित युद्ध में जाने वाला, शीघ्रकारी भृत्य ,, । ११
हे इन्द्र! १० इन्द्रियों के राज्य में जिस मनुष्य को तूने विविध योनियों में डाला है वह
सब के लिए विरूप था अब नाथ में तुझ पूज्य को पाने के लिए समर्थ हो गया है। १२
हे धनी, सूर्य–समान मनुष्य–स्वामी! तू रस–वर्षी आँख वाले को नम्र बनाता, रजो-गुणी को दूर
फेंकता, और पाप–वृत्र का सिर कुचल देता है। १३
जिसने पर्वत बनाये, जल तरङ्गित किये, जो पाप–वृत्र मारता वह इन्द्र। तुझे महान् नमस्कार हों। १४
ज्ञान–कर्मेन्द्रिय–अश्वों के पीछे दौड़ते, बहरे (योगी) से कहते हैं— कल्याण हो। तू इन्द्रिय–अश्व
जीतने के लिए तू उत्तम माता–बालों–समान विजयी इन्द्र का आश्रय ले। १५
३० हे इन्द्र! जो सात्त्विक योगी रज:–तम: जीतकर प्रत्याहार कर के अनुकूल तुझे योग–युक्त
करते हैं वे दिव्य योगियों में प्रथम बनते हैं। हे नमस्य! तू महिमा पाता है। १६

कुन्ताप सूक्त ३ (पुराना १२९)। ऐतश–प्रलाप (आनेरायु: मन्त्र) ४ सूक्तों में ७९ छोटे मन्त्र।

३१ एता अश्वा आ प्लवन्ते। १ ३२ प्रतीपं प्राति सत्वनम्। २
३३ तासामेका हरिक्निका। ३ ३४ हरिक्निके किमिच्छसि? ४
३५ साधुं पुत्रं हिरण्ययम्। ५ ३६ क्वाहतं परास्य:? ६
३७ यत्रामूस् तिस्रः शिंशपा:। ७। ३८ परि त्रय:। ८। ३९ पृदाकव:। ९
४० शृङ्गं धमन्त आसते। १०। ४१ अयन्महा ते अर्वाह:। ११
४२ स इच्छकं सघाघते। १२। ४३ सघाघते गोमीद्या गोगतीरिति। १३
४४ पुमां कुस्ते निमिच्छसि। १४। ४५ पल्प बद्ध वयो इति। १५
४६ बद्ध वो अघा इति। १६। ४७ अजागार केविका। १७
४८ अश्वस्य वारो गोशपद्यके। १८। ४९ श्येनीपती सा। १९। ५० अनामयोपजिह्विका। २०
३१ ये घोड़ियाँ उछल रही (मन-इन्द्रियाँ चंचल) हैं। १। ३२ सोमी को उल्टा चलाती हैं। २

३३ उनमें एक(नास्तिक) हरि(ईश्वर)की कामना करती है ।३। ३४ हे हरिक्निका ! क्या चाहतीहै ?४
३५ साधु-जाना-सा पुत्र[जीव]चाहतीहूं ।५। ३६ [जीव को] परे फैंकनेवाली दो वृत्तियां!कहाँ मारा? ६
३७ जहां वे तीन शाप-रजस्तम वृत्तियाँ हैं । ७। ३८ घेरे हुए तीन ।८। ३९ अजगर [समान] । ९
४० जो साग बजाती(काम बढ़ाती) बैठी हैं ।१०। ४१ महिमा वाले वे शरीर-रथ को ढोती हैं ।११
४२ वह ईश्वर बुरे इच्छुक को मारता है । १२ । ४३ वह इन्द्रिय-हिनक उनकी चंचलता हटाता है ।१३
४४ पुरुष होकर कुत्सित में नीचता चाहता है ।१४ । ४५ तू शरीर-बद्ध पक्षी-समान है । १५
४६ हे नरदेव, ये तुम्हारे पास हैं । १६ । ४७ हे अजा(प्रकृति-बकरी)के घर वाले, वह सेविका है ।१७
४८ घुड़-सवार गौ-शफ से कुचला जा रहा है । १८ । ४९ वह प्रकृति अनेक-रूपा वेश्या है । १९
५० वह प्रकृति नीरोग को भी जीभ से चाट जाने वाली (सर्पिणी और दीमक-समान) है । २०

सूक्त ४(१३०) । २० मन्त्र

५१ को अय बहुलिमा इषूनि ?१। ५२ को असिद्याः पयः?२। ५३ को अर्जुन्याः पयः? ३
५४ कः कार्ष्ण्याः पयः ?४। ५५ एतं पृच्छ कुहं पृच्छ ।५। ५६ कुहाकं पक्वकं पृच्छ । ६
५७ यवा नो यतिस्वभिः कुभिः।७। ५८ अकुप्यन्तः कुपायकुः।८। ५९ आमणको मणत्सकः ।९
६०. देव त्वप्रतिसूर्य ।१०। ६१.एनश्चिपङ्क्तिका हविः ।११, ६२ प्रदुद्रुदो मघा प्रति ।१२
६३ शृङ्ग उत्पन्न ।१३। ६४ मा त्वाभि सखा नो विदन् ।१४। ६५ वशायाः पुत्रमायन्ति ।१५
६६ इरावेदुमयं दत ।१६। ६७ अथो इयन्नियन्निति १७ ॥ ६८ अथो इयन्निति ॥ १८
६९ अथो श्वा अस्थिरो भवन् ॥१९ ७० उयं यकांशलोकका । २०
५१-५४ हे स्वामी, कौन विविध बाण चलाता, कौन अशुक्ल-शुक्ल-काली वृत्तियों का फल देताहै? ॥१४-
५५-५७ तू पूछ, किससे पूछ। तू किसमात से पूछ। जो यव जिनके घर हैं उनने हमें छुड़ा । ५-७
५८-६० हम अकोपी हुए, तू बुराई से रक्षक। उपदेष्टा-उपदेशक-प्रेमी । आप-समान सूर्य नहीं। ८-१०
६१-६३ पाप-रचित-पंक्ति भस्म हो, धन के पति हटा दिया। हे उत्पन्न काम-वासना । ११-१३
६४-६६ हमारे नवीन तेरे और रहें। जानता-पुत्र के पास आयें। अग्रगामी को काटो। १४-१६
६७-७० और मध्य की ओर आता। बार-बार आता हुआ कुत्ता-अस्थिर बनता।हे लौकिक जन । १७-२०

सूक्त ५ (१३१) । २० मन्त्र

७१ आमिनोनिति भ्यते । १ ७२ तस्य अनु निभञ्जनम् । २
७३ वरुणो याति वस्वभिः । ३ ७४ शतं वा भारती शवः । ४
७५ शतमाश्वा हिरण्ययाः शतं रथ्या हिरण्ययाः ।
शतङ्कुथा हिरण्ययाः शतं निष्का हिरण्ययाः । ५
७६ अहल कुश वर्तक । ६ ७७ शफेन इव ओहते । ७
७८ आय वनेनती जनी । ८ ७९ वनिष्ठा नाव गृह्यन्ति । ९
८० इदं मह्यं मदूरिति । १० ८१ ते वृक्षाः सह तिष्ठति । ११
८२ पाक बलिः ।१२। ८३ शक बलिः ।१३। ८४ अश्वत्थ खदिरो धवः । १४
८५ अरदुपरम ।१५। ८६ शयो हत इव ।१६। ८७ व्याप पूरुषः । १७



८८ अदूहमित्यां पूषकम् ।१८। ८९ अत्यर्धर्च परस्वतः ।१९। ९० दौव हस्तिनोदृती २०

सूक्त ५ (१३१) २० मन्त्र

७१-७३ जो त्यागी वह सुखी है। उस के पीछे क्लेश भग्न हैं। ईश्वर धन-सहित मिलता है। १-३
७४-७५ और उसे भरण-कर्त्री माँ की सैकड़ों शक्तियाँ, सुनहरी अश्व-हाथी-सिक्के मिलते हैं। ४-५
७६-७८ हे त्याग-हल-रहित; भू पर सोये, व्यवहारी खुर-उखेड़े खम्भ! आ, जननी भक्ति-नत है। ६-८
७९-८१ भक्त नहीं सोचते। कि यह मेरे लिए हर्षक है। वे (अन्तःसंज्ञ) हैं, ईश्वर साथ रहता है। ९-११
८२-८४ हे पक्व-शक्तिमान ! हम बलि हैं। हे भक्त! तू मन-अधिष्ठाता, वृत्ति-हिंसक-शुद्ध है। १२-१४
८५-८७ हे समाधि-प्राप्त, तू सोये-मरे-समान उपरत हो। परम-पुरुष तुझ में व्याप्त है। १५-१७
८८-९० - हे शिष्य, तूने पोषक से प्रेम दुहा। दूरस्थ को पूज, हाथ वाले के अभ्यास--वैराग्य दो साधन हैं १८-२०

सूक्त ६ (१३२) १६ मन्त्र

९१-९३ आदलाबुकमेककम्। अलाबुकं निखातकम्। कर्करिको निखातकः। १-३
९४-९६ तद्वात उन्मथायति। कुलायङ्कृणवादिति। उग्रं वनिषदाततम्। ४-६
९७-९९ न वनिषदनाततम्। क एषां कर्करी लिखत् ? क एषां दुन्दुभिं हनत् ? ७-९
१००-१०२ यदीयं हनत् कथं हनत् ? देवी हनत् कुहनत्। पर्यागारं पुनः पुनः। १०-१२
१०३-१०४ त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि। हिरण्य इत्येके अब्रवीत्। १३-१४
१०५-१०६ द्वौ वा ये शिशवः। नीलशिखण्डवाहनः। १५-१६

९१-९३ तुम्बे-समान तैरानेवाला एक ब्रह्म है, जो अविद्या को खोदता, बार बार जगत् बनाता है।१-३
९४-९६ वह आँधी-समान प्रलय में मथता है। उसे घोंसला बनाये। उग्र-व्यापक की भक्ति करे। ४-६
९७-९९ अव्यापक की भक्ति न करे। कौन कर्ता इनका लेखा लिखता, कौन डौंडी पीटता है? ७-९
१००-१०२ यदि यह देवी डौंडी पीटती है तो कैसे-कहाँ ? प्रति घर, बार-बार। १०-१२
१०३-५ उष्ट्र (दाहक ईश्वर) के ३ नाम हैं- एक हिरण्य। जो २ बताते हैं वे शिशु हैं। १३-१५
१०६ वे अन्य २ नाम नीलवाहन(तमोगुण-वाहक) और शिखण्डवाहन(मोर-पुच्छ-समान रङ्ग वाले रजो-गुण का वाहक)। १६

सूक्त ७ (१३३) ६ मन्त्र प्रवह्लिका

१०७ विततौ किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुषः।न वै कुमारि तत्तथा यथा कुमारि मन्यसे॥ १
१०८ मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते। न वै... (शेष पूर्ववत्) ॥ २
१०९ निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे। न वै... ,, ॥ ३
११० उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाव गूहसि न वै ,, ॥ ४
१११ श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि। न वै ,, ॥ ५
११२ अव श्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तर्लोममति ह्रदे। न वै ... ,, ॥ ६

१०७-१०९ विक्षेपक दो तत्त्व मनुष्य के अनृत रजस्तमस् फैले हैं उन्हें पिता-माता ईश्वर ही नष्ट करता है, त्याग-भोग मध्य में रहें। हे कुमारी, तेरा कहना ठीक नहीं जैसा तू मानती है। १-३
११०-११२ हे कुमारी, तू चित्त लेटी-सोती-बैठी-या खड़ी होकर योग करती है हे सुकोमल ११२..., तूने और पिता ने हृदय में प्रेम छिपा रक्खा है। किन्तु कुमारी, इससे मोक्ष मिलना नहीं। ४-६

सूक्त ८ (पहले १३४), आजिज्ञासेन्या ६ मन्त्र।

११३ इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्— अरालागुदभर्त्संथ। १
११४ ,, वत्साः पुरुषन्त आसते॥ २
११५ ,, स्थालीपाको विलीयते। ३
११६ ,, स वै पृथु लीयते। ४
११७ ,, आष्टे लोहणि लीशाथी। ५
११८ ,, अक्लिली पुच्छिलीयते। ६

११३-१८ यहाँ आओ, पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण कहीं जन्म लो, हे कुटिल चालवालो, अ
भर्त्सना करो।१ बच्चे पुरुषार्थी होकर रहते हैं।२ स्थालीपाक पकता और विलीन होता है
वह निश्चय ही बहुत पकता और समाप्त होता है।४ इन्द्रियों में लोन पूँछवाला पशु होता है

सूक्त ९ (१३४)। प्रतिराध १-३ अतिवाद ४-५। देवनीथ ६-१०, भूतेच्छद ११-१३

११९ भुगित्यभिगतः शलित्यपक्रान्तः फलित्यभिष्ठितः।
दुन्दुभिमाहननाभ्यां जरितरोथामो दैव॥ १
१२० कोशबिले रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहि पादम्।उत्तमां जन्यानुत्तमां जनीन्वर्त्मन्यात्॥
१२१ अलाबूनि पृषातकान्यश्वत्थपलाशम्।
पिपीलिकावटश्वसो विद्युत्स्वापर्णशफो गोशफो जरितरोथामो दैव॥ ३
१२२ वीमे देवा अक्रंसताध्वर्यो क्षिप्रं प्रचर। सुसत्यमिद् गवामस्यसि प्रखुदसि। ४
१२३ पत्नी यद् दृश्यते पत्नी यक्ष्यमाणा जरितरोथामो दैव।
होता विष्टीमेन जरितरोथामो दैव॥ ५
१२४ आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन्।
तां ह जरितः प्रत्यायंस्तामु ह जरितः प्रत्यायन्॥ ६
१२५ तां ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णंस्तामु ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णः।
अहानेतरसं न वि चेतनानि यज्ञानेतरसं न पुरोगवामः॥ ७
१२६ उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्यविष्ठः। उतेमाशु मानं पिपर्ति॥ ८
१२७ आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेऽनु त इदं राधः प्रति गृभ्णीह्यङ्गिरः।
इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत् पृथु॥ ९
१२८ देवा ददत्वासुरं तद्वो अस्तु सुचेतनम्। युष्माँ अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत॥१०
१२९ त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः। विप्राय स्तुवते वसुवनिं दुरश्रवस आवह। ११
१३० त्वमिन्द्र कपोताय छिन्नपक्षाय वञ्चते। श्यामाकं पक्वं पीलु च वारस्मा अकृणोर्बहुः॥ १२
१३१ अरङ्गरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया। इरामह प्रशंसत्यनिरामप सेधति॥ १३

११९ जो भोगी है वह भोगों की ओर जाता है, बचाने वाला हट जाता है, फल चाहने वाला योगस्थ होता है। हे स्तुत्य देव ईश्वर! हम इन बातों की डौंडी दो डंडों से पीटें, जन-उत्थान करें १

२० जैसे रात में धन की थैली कोश के बिल में और पैर जूते में सुरक्षित रखते हैं वैसे ही उत्तम जन्म देता और स्त्री-पुरुषों को उत्तम मार्ग में चलाता है। २

२१ हे परमेश्वर! नदी-तारक तुम्बे, जल-बिन्दुओं समान, तू काल रूपी अश्व पर चढ़ा, पल में खा जाने वाला प्रलय-कर्ता चींटियों के बिल में भी श्वास देने वाला, बिजली-सूर्य-चन्द्रादि और पत्तों वाली वनस्पतियों का तथा गौ-भूमि-इन्द्रियों का मूल, है, हम जनों का उत्थान करें। ३

२२ ये सूर्यादि देव विशेष गति कर रहे हैं। हे अध्वर्यु (अहिंसक उपासक)! शीघ्र प्रगति कर। हे परमात्मा! तू ही लोकों में वास्तव में सत्य है और क्रीडा कर रहा है। ४

२३ पत्नी तभी पत्नी है जब यज्ञ करती दिखायी दे, होता पति विशेष स्नेहार्द्र हृदय से पति है। हे स्तोता देव! हम अपना उत्थान करें। ५

२४ हे स्तोता! आदित्य गुरु अङ्गिरा-शिष्यों से दक्षिणा पाते हैं उसे वे लौटा देते हैं। ६

२५ वैसे ही हे स्तुत्य! तू भी हमारी दक्षिणा स्वीकार कर। जैसे दिन के प्रकाश के बिना चेतना-वाले नहीं होते वैसे ही बड़ों के बिना आगे नहीं बढ़ सकते। ७

२६ शुभ्र जन योग में शीघ्र गति करता; ऋचाओं से तीव्र होता और यह मान शीघ्र पाता है। ८

२७ वे आदित्य-रुद्र-वसु इस योग-धन का अनुसरण करते हैं। हे अङ्गिरा शिष्य! तू भी इसे ग्रहण कर। यह योग-धन विभूति-युक्त प्रभुता-सम्पन्न बड़ा विस्तारी है। ९

२८ विद्वान् प्राण-शिक्षा दें, वह सुचेतन हो; दिनदिन मिलता रहे, इसे लेते ही रहो। १०

२९ हे इन्द्र! तू परा विद्या-ज्ञाताओं से हमें सुखद मार्ग से हव्य दे, जो पहले कठिनता से सुनता था अब विप्र स्तोता है उसके लिए भी भक्ति-धन दे। (११)

३० हे परमात्मा! तू पक्ष-विपक्ष-रहित, कपोत-समान विचरते संन्यासी के लिए समा चावल; पका पीलु फल और जल बहुत मात्रा में दे। (१२)

३१ आत्मिक-दैविक-भौतिक दुःखों और स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीरों में अविद्या-रस्सी से बँधा पर्याप्त-भोग-विषी जीव बारबार भोगों की ही चर्चा करता है, अन्न की ही प्रशंसा करता और उस से भिन्न की बात का निराकरण करता है। (१३)

सूक्त दस (पहले १३६)। मन्त्र सोलह। आहनस्या।

३२ २ यदस्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत्। मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ।१

[यह और मन्त्र ४ यजु २३.२८-२९ में भी हैं।]

३३ यदा स्थूलेन पससाणौ मुष्का उपावधीत्। विष्वञ्चावस्या वर्धतः सिकतास्वेव गर्दभौ।२

३४ यदल्पिका स्वल्पिका कर्कन्धूकेव पद्यते। वासन्तिकमिव तेजनं यन्त्यवाताय वित्पति ।३

३५ यद्देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविशुः। सकुला देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा।४

३६ महानग्न्यतृप्नद्वि मो क्रददस्थानासरन्। शक्तिकानना स्वचमशकं सक्तु पद्यम ॥ ५

३७ महानग्न्युलूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत्। यथा तव वनस्पते निरघ्नन्ति तथैवेति ॥ ६

३८ महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टो ऽथाप्यभूभुवः। यथैव ते वनस्पते पिप्पति तथैवेति ॥ ७

यथा वयो विदाह्य स्वर्गे नमवदह्यते ॥ ८

१४० महानग्न्युप ब्रूते स्वसात्रेषितं पसः। इत्थं फलस्य वृक्षस्य शूर्पे शूप भजेमहि ॥ ६
४१महानग्नी कृकवाकं शम्यया परिधावति।अयं न विद्म यो मृग: शीर्ष्णा हरति धाणिकाम्१०
४२.महानग्नी महानग्नं धावन्तमनु धावति।इमास्तदस्य गा रक्ष यभ मामद्ध्यौदनम् ॥११
४३. सुदेवस् त्वा महानग्नीर्बाधते महतः साधु खोदनम्। कुसं पीवरो नमत्॥ १२
४४.वशा दग्धामिमाङ्गुरि प्रसृजतोऽग्रतं परे। महान् वै भद्रो यभ मामद्ध्यौदनम् ॥ १३
४५ विदेवस् त्वा महानग्नीर्विबाधते महतः साधु खोदनम्।
कुमारिका पिङ्गलिका कार्द भस्मा कु धावति ॥१४
४६ महान् वै भद्रो बिल्वो महान् भद्र उदुम्बरः।
महाँ अभिक्त बाधते महतः साधु खोदनम् ॥ १५
१४७ [५६⁹⁷] यः कुमारी पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लभेत्।
तैलकुण्डमिवाङ्गुष्ठं रोदन्तं शुदमुद्धरेत् ॥ १६
इति कुन्ताप सूक्तं समाप्तम्।

१३२ यदि इस पाप-छिन्न-भिन्ना के पास कोई नाटा-मोटा नाश करने पहुँचे तो दो मुस्टण्डे भी, गौ-खुर-बराबर कम जल में दो मछलियों-समान, काँपते हैं। १

३३ जब वह स्थूल नाश से दो मुस्टण्डे प्राणियों का वध करती है तो धड़कते हुए वे बालू में गधों-समान लम्बे लेट जाते हैं। २

४ जब छोटी बहुत छोटी बेर-समान कन्या खिन्न कर दी जाती है तो प्राप्त-पतिका-समान वसन्त के तेज सूर्य-समान हो जाती है और अनाचारी वायु-रहित कोठरी में बन्द कर दिये जाते हैं। ३

३५ जब विद्वान् घर में प्रविष्ट उत्तम व्यवहार वाली वधू की रक्षा करते हैं तो वह नारी कुल-वधू कहाती है यह आँखों-देखे सत्य-समान है। ४

३६ कोपित महानग्नी स्त्री मुझ [पति] से क्रोध-वचन बोलती अस्थान जाया करती है; शक्ति का जङ्गल बनी अपनी ही शक्ति खोकर शक्ति-हीन होकर हठ में सत्तू-समान चिपकी रहती है। ५

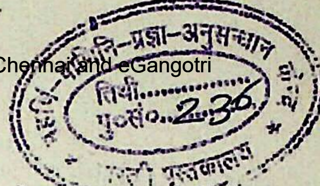
३७ महानग्नी उलूखल छोड़ कर कहती है— हे वनस्पति (लकड़ी के बने), जैसी तेरी पिटाई होती है वैसी ही मेरी भी होती है। ६

३८ महानग्नी कहती है— बारबार पीटा गया तू नष्ट हो चुका है, ऐ वनस्पति! जैसी गति तेरी हो रही है वैसी ही मेरी भी। ७

३६ महानग्नी कहती है— तू तो नष्ट हुआ ही है अब मुझे शोक-दग्ध वयो-वृद्ध-समान स्वर्ग के लिए जला दिया जायगा। ८

४० महानग्नी पति से कहती है अरे! तूने कलह-विनाश ला दिया है अब काटे फल (अन्न) को सूप-सूप भर नाप कर बाँट लें। ९

१४१ महानग्नी कर्कश वाणी वाले पति की ओर लाठी लेकर दौड़ा करती है और कहा करती है— यह नहीं जानती कि कौन पशु सिर पर धान का बोझा ढो रहा है। १०



१४२ महानग्नी दौड़ते महानग्न पति के पीछे दौड़ती हुई चिल्लाती है – तू इस घर की ये गौएँ रख, मुझे ले और भात खा। ११

१४३ उत्तम देव परमात्मा तुझे और महानग्नियों को रोक सकता है। मुझ बड़े की पिसाई ठीक है। इस प्रकार मोटी बुद्धि का पति बड़बक्कू पत्नी के प्रति झुक जाता है। १२

१४४ अन्य अगणा बोलती है– जओ उँगली-समान इस वंश को मत छेड़ो। बड़े को भद्र ही रहना ठीक है। पत्नी बोलती है– मुझ को ले और भात खाया कर। १३

१४५ (पति–) कोई विशेष देव ही तुझको और महानग्नियों को बड़ों की कठोर आलोचना से बचायेगा। बुरे काम की मारी पीली महानग्नी कीचड़-भस्म में धराशायी लोटती है। १४

१४६ निश्चय है कि प्राप्त बड़ा पति फूल-गूलर-समान भद्र है, बड़े का श्रम करना अच्छा है। १५

१४७ (५६७७) जो पति या कुमारी-पीली-मोटी पत्नी अँगूठे-समान मोटे-नाटे, बसे हुए तैल-कुण्ड-समान स्निग्ध प्रिय साथी (पत्नी-पति) को पाये तो उस रोते हुए का अवश्य उद्धार किया करे (सान्त्वना दें और परस्पर के कष्ट दूर करें)। १६

यह माता श्रीमती बसन्ती देवी और पिता श्री हरिशङ्कर अग्निहोत्री के पुत्र
आचार्य वीरेन्द्र सरस्वती कृत अथर्व वेद-भाष्य
पूर्ण समाप्त हुआ।

रचना-तिथि १-१०-१९८२ मुद्रण-समाप्ति-तिथि २०-५-१९९३

अथर्ववेदीय प्रश्न उपनिषद् में ओ३म् की व्याख्या

पिप्पलाद ऋषि के पास जाकर ६ जिज्ञासुओं ने वर्षभर तप-ब्रह्मचर्य-श्रद्धा-पूर्वक रहकर ६ प्रश्न किये । १. कबन्धी कात्यायन— प्रजाएँ कहाँ से उत्पन्न होती हैं ?

२. भार्गव वैदर्भि— प्राण को कितने देव धारण, कितने प्रकाशित करते, कौन वरिष्ठ है ?

३ कौशल्य आश्वलायन—शरीर में प्राण कहाँ से, कैसे, किससे आता; कैसे विभक्त होकर रहत; कैसे छूटता; इसका बाह्य-आन्तरिक जगत् से कैसा सम्बन्ध है ?

४. सौर्यायिणी गार्ग्य— कौन सोता-जागता-स्वप्न देखता, किसे सुख होता, इसका आधार क्या है ?

५. शिविपुत्र सत्यकाम— प्राणान्त तक ओं का ध्यान करे तो किस लोक को जीतता है ?

६. सुकेशा भारद्वाज— सोलह कलाओं वाला पुरुष कौन है ?

५ वें जिज्ञासु सत्यकाम को पिप्पलाद ने उत्तर दिया कि ओं ही पर-अपर ब्रह्म है। इसी के सहारे विद्वान् किसी एक को पा लेते हैं । सृष्टि में दिखायी देने वाला यज्ञ आदि अपर है; सृष्टि से परे निर्लेप परब्रह्म है जिसे योगी पा लेते हैं ।

ओं की एक मात्रा के ध्यान से योगी को पृथिवी का सुख-तप-ब्रह्मचर्य-श्रद्धा मिलती है। उस की दूसरी मात्रा के ध्यान में सोम लोक (अन्तरिक्ष की सौम्यता-विद्युत्), उसकी तीसरी मात्रा के ध्यान से योगी आदित्य लोक को जीतता है।

एक-दो मात्राओं के ध्यान से अपर ब्रह्म और तीनों मात्राओं के ध्यान से परब्रह्म को पाता, पाप से छूट जाता है ।

—०—

गोपथ में ओ३म्

अथर्ववेद के ब्राह्मण ग्रन्थ गोपथ में पूर्व भाग के प्रपाठक १ की सोलह से तीस कण्डिका तक ओम् की व्याख्या, उसके सम्बन्ध में छत्तीस प्रश्नोत्तर दिये हैं ।

ब्रह्म से उत्पन्न ब्रह्मा ने विचार किया कि मैं किस एक अक्षर से दस पदार्थ (कामना-लोक वेद-देव-यज्ञ-शब्द-बसती-भूत-स्थावर-जङ्गम) अनुभव करूँ तो ओम् को देखा जिसमें २ वर्ण और चार मात्राएँ हैं। पहले ओ से व्यापक जल-स्नेह और दूसरे म् से तेज-ज्योतियों को देखा ।

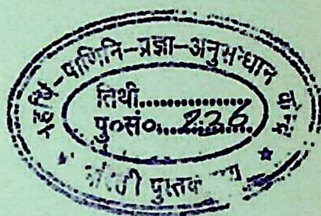
पहली स्वर-मात्रा अ से पृथिवी-अग्नि-औषधि-वनस्पति-ऋग्वेद-भू महाव्याहृति-गायत्री छन्द-त्रिवृत स्तोम-पूर्व दिशा-वसन्त ऋतु-वाणी-अध्यात्म-जिह्वा-रस-इन्द्रिय (चौदह) अनुभव किये ।

दूसरी स्वर-मात्रा से अन्तरिक्ष-वायु-यजुर्वेद-भुवः-त्रैष्टुभ छन्द-पञ्चदश स्तोम-पश्चिम-ग्रीष्म अध्यात्म प्राण-नासिका-गन्ध-घ्राणेन्द्रिय अनुभव किये ।

तीसरी स्वर-मात्रा से द्यौ-आदित्य-सामवेद-स्वः-जागत छन्द-सप्तदश स्तोम-उत्तर-वर्षा-ज्योति अध्यात्म-चक्षु-दर्शनेन्द्रिय का अनुभव किया ।

उसकी व मात्रा (अव् धातु के अंश) से जल-चन्द्र-नक्षत्र-अथर्ववेद-स्वयं-आङ्गिरस जगत्-आनुष्टुभ छन्द-एकविंश स्तोम-दक्षिण दिशा-शरद् ऋतु-मन-अध्यात्म ज्ञान-ज्ञेयेन्द्रिय अनुभव कीं ।

म् से इतिहास-पुराण-वाकोवाक्य-गाथा-नाराशंसी-अनुशासन-उपनिषद्-७ व्याहृतियाँ (बृधत्-करत्-गुहत्-महत्-तत-शम्-ओम्)-स्वर से शान्त करने वाली नाना तन्त्रियाँ-स्वर-नृत्य-गीत-वादित्र-चैत्र रथ दैवत वैद्युत ज्योति, बार्हत छन्द, त्रिणव-त्रयस्त्रिंश दो स्तोम, ध्रुवा-ऊर्ध्वा दिशाएँ; हेमन्त-शिशिर ऋतुओं श्रोत्र-अध्यात्म शब्द-श्रवण इन्द्रिय को अनुभव किया ।


तिथी...............
पु०सं०...236